ISSN : 2278-4632

JUNI KHYAT

जूनी ख्यात

(सामाजिक विज्ञान, कला एवं संस्कृति की शोध पत्रिका)

A Peer-Reviewed and Listed in UGC Care List

मरु भूमि शोध संस्थान, श्री डूँगरगढ़ (राज.)
MARUBHUMI SHODH SANSTHAN, SRI DUNGARGARH (RAJ.)

'जूनी ख्यात' सम्पादक मण्डल

प्रो. हरबंस मुखिया	इतिहास	जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
प्रो. वसन्त शिंदे	पुरातत्त्व एवं प्राचीन इतिहास	पूर्व कुलपति दक्कन कॉलेज, पूना
प्रो. दिलबाग सिंह	राजस्थान इतिहास	जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
प्रो. जी.एस.एल. देवड़ा	मध्यकालीन इतिहास	पूर्व कुलपति, वर्धमान महावीर खुला विवि., कोटा (राज.)
प्रो. एस. इनायत अली ज़ैदी	इतिहास विभाग	जामिया मिलिया इस्लामिया विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
प्रो. सीताराम दुबे	प्राचीन इतिहास	बी.एच.यू., वाराणसी
प्रो. चन्द्रपाल सिंह चौहान	शिक्षा	अलीगढ़ मुस्लिम वि.वि., अलीगढ़ (उ.प्र.)
प्रो. बी. एस. शर्मा	राजनीति शास्त्र	राजस्थान विवि., जयपुर
प्रो. सूरजभान	मध्यकालीन इतिहास	दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली
प्रो. किशोरकुमार अग्रवाल	क्षेत्रीय इतिहास	पं. रविशंकर शुक्ल वि.वि., रायपुर
प्रो. रामेश्वरप्रसाद बहुगुणा	मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन	जामिया मिलिया इस्लामिया विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
प्रो. विपुलसिंह	पर्यावरण इतिहास	दिल्ली वि.वि., दिल्ली
प्रो. जीवनसिंह खरकवाल	प्राचीन इतिहास एवं पुरातत्त्व	साहित्य संस्थान जे.आर.एन, विद्यापीठ, उदयपुर

JUNI KHYAT

जूनी ख्यात

(सामाजिक विज्ञान, कला एवं संस्कृति की शोध पत्रिका)

वर्ष : 12 • अंक 2

जनवरी-जून 2023

A Peer-Reviewed and Listed in UGC Care List

ISSN 2278-4632

संपादक

डॉ. बी. एल. भादानी

प्रोफेसर

प्रबंध संपादक

श्याम महर्षि

मरुभूमि शोध संस्थान

संस्कृति भवन

एन.एच. 11, श्रीडूँगरगढ़ (बीकानेर) राजस्थान

प्रकाशकीय एवं विज्ञापन कार्यालय :
सचिव, मरुभूमि शोध संस्थान, श्रीडूँगरगढ़-331803 (बीकानेर) राज.

व्यक्तिगत 10 वर्षीय सदस्यता 5000 रु.। **इस अंक का मूल्य : 500 रुपये**
संस्थाओं एवं पुस्तकालयों हेतु वार्षिक शुल्क 7000 (रजिस्टर्ड डाक सहित)

Life Membership fees should be transferred directly to the A/c of Institution and send us screenshot

आजीवन शुल्क संस्था के निम्न खाते में सीधा ट्रांसफर करके हमें बताने की कृपा करें।

1. **Punjab National Bank**
2. **Sri Dungargarh**
3. **मरुभूमि शोध संस्थान**
4. **खाता सं. 3604000100174114**
5. **IFSC Code - PUNB0360400**

Marubhumi Shodh Sansthan,
Sri Dungargarh (Bikaner)
Account No.
3604000100174114

ड्राफ्ट/नकद भुगतान भेजने का पता :

श्याम महर्षि
सचिव :
मरुभूमि शोध संस्थान
(राष्ट्रभाषा हिन्दी प्रचार समिति)
श्रीडूँगरगढ़ 331803 (बीकानेर) राज.
फोन : 01565-222670

आलेख सीडी में या निम्न पर ईमेल किया जा सकता है।

श्री देवेन्द्र हांडा
के सौजन्य से प्राप्त डांसिग ब्राह्मणी

सम्पादकीय कार्यालय :
प्रोफेसर (डॉ.) बी.एल. भादानी
रांगड़ी चौक, बीकानेर 334001 (राज.) मो. 9950678920
bbhadani.amu@gmail.com • junikhyat.mss@gmail.com

सावधान

जूनी ख्यात (अर्द्ध वार्षिक) दिसम्बर 1994 ई. से नियमित Print Form में प्रकाशित हो रही है। जून 2019 में 'UGC Care List' (S.N. 220) में सामाजिक-विज्ञान की श्रेणी में सम्मिलित करली गई है। हमारी पत्रिका Online प्रकाशित नहीं होती है।

जूनी ख्यात नाम से ही एक फर्जी पत्रिका (Cloned Journal) ऑन लाइन निकाली जा रही है जो हमारे ही ISSN एवं यू.जी.सी. केयर लिस्ट की संख्या को उपयोग में ले रही है। इस सम्बन्ध में **यू.जी.सी.** ने 23-7-2020 को 'Cloned Journal' की एक सूची जारी की है उसमें अन्य पत्रिकाओं के साथ **जूनी ख्यात** का भी नाम है। यह पत्रिका निम्न वेबसाइट पर प्रत्येक विषय के शोध पत्र आमंत्रित करती है।

Juni khyat Journal

Language	:	English & Hindi
Publisher		NA
ISSNo.		2278-4632
URL http	:	www.junikhyat.com

हमारी पत्रिका **मरुभूमि शोध संस्थान, श्रीडूँगरगढ़** द्वारा प्रकाशित की जाती है। अब 'नकली पत्रिका' बी.एल. भादानी, संपादक के नाम का भी उपयोग कर रही है जो एक आपराधिक कृत्य है।

इसमें तथाकथित रूप से प्रकाशित आलेख का कोई महत्त्व भी नहीं है। इसलिए शोधार्थियों से सावधान रहने की अपील की जाती है।

बी.एल. भादानी
संपादक

Sl.No.	Journal No.	Title	Publisher	ISSN
220		JUNI KHYAT		2278-4632

UGC Journal Details

Name of the Journal : **JUNI KHYAT (Print Form)**
ISSN Number : 2278-4632
e-ISSN Number : NA
Source : **UGC**
Discipline : **Social Science**
Subject : **Social Sciences (all)**
Focus Subject : Cultural Studies
Publisher : Marubhumi Shodh Sansthan, Sri Dungargarh (Bikaner)

वढ़वाण के सूर्य मंदिर का अभिलेख

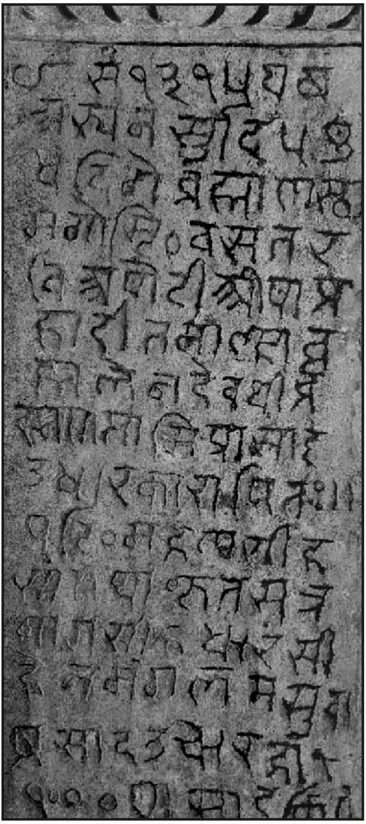

१. ९১ (सिद्धं) सं (संवत्) १३१५ वर्षे
२. अस्वन (आश्विन) सुदि ५ बु -
३. ध दिने ब्रह्माणस्था -
४. ने गोस्टि. (गोष्ठि.) बसत र-
५. वि अपोटी श्रीषा प्र-
६. हा (ह्ला) दीत माल्हा ब्र-
७. ह्मलेन देवथी प्र (ब्र-)
८. ह्मणत्मास्मि (ऽस्मिं) प्रासादे (प्रासादो)
९. उधार (उद्धार) कारापितः॥
१०. पटि महण सीह (सिंह) ॥ (-)
११. स्यतथा कृत सत्र (सूत्र)
१२. बागसीह (बाघसिंह) धारसी-
१३. हेन मंगलमस्तु दा सदा
१४. प्रसाद (प्रासाद) उद्धरद्रा १-
१५. १००० प्रासाद क्रितं (कृतं)

गोष्ठिक : देवालय न्यास का अभिलेखीय साक्ष्य

मंदिरों के निर्माण के बाद उसके निरंतर प्रबंधन के लिए समिति का गठन किया जाता था। इसको गोष्टिक, गोष्ठिक कहा जाता और इसके सदस्य को गोष्ठि। इसमें पद नहीं होता, केवल आयु के आधार पर सदस्य को वरिष्ठ या कनिष्ठ का मान दिया जाता। राजस्थान में 9वीं, 10वीं सदी में महारावल अल्लट, शक्तिकुमार के शासन काल में बने आदिवराह के मंदिर से लेकर चौहान विग्रहराज के काल के हर्षनाथ मंदिर, सकराय मंदिर, केरिंद, सूर्य मंदिर, देवी मंदिर आदि अनेक मंदिरों के लिए ऐसे न्यास बने। आहाड़ की गोष्ठी में ज्योतिषी, वैद्य, आचार्य जैसे विद्वान थे। हूण को भी गोष्ठिक बनाया गया। अधिकांश अभिलेखों में इस संस्था का उल्लेख

मिलता है। अनुवाद के दौरान मुझे अनेक पदाधिकारियों के रोचक नाम जानने को मिले। (मेवाड़ का प्रारंभिक इतिहास, राजस्थान के प्राचीन अभिलेख : डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू')

चौहान महासेनापति चामुंडराज के अभिलेख में गोष्ठिक सूची में पिताओं के नाम भी दिए गए हैं। यह अभिलेख अनेक खंडों वाला है और एक-एक व्यवस्था, दान पालन आदि का निर्धारण किया गया है। सच में मंदिर संचालन किसी बड़े दायित्व से कम नहीं रहा है।

यह गोष्ठिक संस्था की तरह काम करती। मंदिर की पूजा आदि नियमित व्यवस्था के लिए फूल, चौसर माला, तेल, घी, कपास, पेटक आदि का प्रबंध संभालती। जुआरियों से जीत पर अंश, स्थाई और आगंतुक व्यापारियों से आय पर मासिक दान आदि की अधिकृत रूप से देखरेख करती। मंदिर जीर्ण हो जाता, गिर जाता तो जीर्णोद्धार करवाती। यदि कोई सदस्य दिवंगत हो जाता तो उसका उत्तराधिकारी बेटा ही होता। कोई पीछे नहीं होता तो राजाज्ञा से नए गोष्ठिक को रखा जाता। गोष्ठिक को बहुत सात्विक जीवन जीना होता था। चढ़ावे का वितरण होता और यह विभाजन भाग भक्ति कहा जाता।

हाल ही श्री संजय व्यास ने वढवान के खंडहर हाल सूर्य मंदिर का अभिलेख भिजवाया तो गोष्ठिक की परंपरा पर बात करने का मन हो गया। यह अभिलेख आश्विन शुक्ला 5, संवत् 1315 तदनुसार 1258 ई. का है। यह मूलतः जीर्णोद्धार का साक्ष्य है। मंदिर 10वीं सदी का है। अभिलेख का मूलपाठ बहुत सुरक्षित है।

इसमें गोष्ठिकों के नाम, सूत्रधार बाघसिंह धारसिंग के परिचय और व्यय पेटे 11 हजार दाम (उद्धरद्र) लगने की सूचना है। गांव का नाम ब्राह्मणस्थान लिखा गया है। इससे लगता है कि 13वीं सदी तक यह संस्था प्रभावी रही। बाद में लुप्त हो गई! क्यों और कैसे? अभिलेखों में उदाहरण नहीं मिलते। कितना बड़ा सच है कि मंदिर निर्माण का क्रम निरंतर बढ़ता रहा लेकिन ऐसी संस्था अर्थहीन हो गई। कोषों में भी अर्थ नहीं! अभिलेख ही प्रमाण हैं।

(सुनी सुनाई नहीं, अभिलेख ही प्रमाणिक होते हैं।)

डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू'

आजीवन सदस्यता शुल्क में वृद्धि

मरुभूमि शोध संस्थान, श्रीडूँगरगढ़ (बीकानेर) द्वारा **जूनी ख्यात** नामक अर्द्धवार्षिक शोध पत्रिका नियमित प्रकाशित की जा रही है जो UGC Carelist की सामाजिक विज्ञान की श्रेणी में दर्शाई गई है। कोरोना के पश्चात् कागज एवं प्रिटिंग के मूल्यों में लगातार वृद्धि हो रही है इसलिए हमें विवश होकर आजीवन सदस्यता शुल्क रुपये 4000/- से रुपये 5000/- करने पड़ रहे हैं। आशा करते हैं कि आप हमारी विवशता को समझ कर हमारा सहयोग करेंगे। यह वृद्धि जुलाई-दिसम्बर 2022 के अंक से लागू होगी।

पत्रिका के आजीवन सदस्यों को दस वर्षों तक पत्रिका मिलेगी एवं विषय विशेषज्ञों द्वारा स्वीकृत शोध आलेखों के प्रकाशन पर सदस्यों से किसी प्रकार की फीस नहीं ली जायेगी। आजीवन सदस्यता हमारी संस्था के निम्न अकाउण्ट (खाता) में जमा करवा कर हमें उसका स्क्रीनशाट भिजवाने का कष्ट करें।

शोध आलेख संपादक की ईमेल पर भेजें : आलेख के साथ अपना ई मेल पता डाक का पूर्ण पता एवं मोबाइल नंबर का उल्लेख आवश्यक रूप से करें। bbhadani.amu@gmail.com

Life Membership fees should be transferred directly to the A/c of Institution and send us screenshot

आजीवन शुल्क संस्था के निम्न खाते में सीधा ट्रांसफर करके हमें बताने की कृपा करें।

1. **Punjab National Bank**
2. **Sri Dungargarh**
3. **मरुभूमि शोध संस्थान**
4. **खाता सं. 3604000100174114**
5. **IFSC Code - PUNB0360400**

Marubhumi Shodh Sansthan,
Sri Dungargarh (Bikaner)

Account No.
3604000100174114

पुनश्च : आजीवन सदस्यता एवं पत्रिका से संबंधित अन्य प्रकार की जानकारियों हेतु प्रबंध संपादक **श्री श्याम महर्षि** से संपर्क करने का कष्ट करें, जिनके मोबाइल नं. 9414416274

अनुक्रम

Some Interesting Sculptures From Jhalrapatan 11
● *Devendra Handa*

Factors Facilitating Mobility: The Economic World of a North Indian Merchant in Mughal Times 20
● *Dr. Kalpana Malik*

Water Reservoirs in Rajasthan : A Historical Study of The Bhavalde *Baori* 31
● *Prof. Preeti Sharma*

Banking and Insurance systems in early-modern India 44
● *Abhishek Parashar*

Trade Routes as the Engines of Economic and Urban Growth : A Study of Nagaur, Merta and Ladnun (17^{th}-18^{th} Century) 59
● *Shabir Ahmad Punzoo*

Analsing the Popularity of Havelis and Jharokas of Rajasthan 72
● *Dr. Sanjeev Kumar*

Revisiting Charans and Bhats of Rajasthan 83
● *Tripti Deo*

Women's Education and Social Change in Colonial India 93
● *Dr. Nirmala Shah*

Unfolding Socio-Political Connotations by adopting Gandhian notion of Sarvodaya 101
Dr. Priya Bhalla ● *Dr. Pooja Sharma*

Child-Friendly Police System in Rajasthan : An Insight from Gandhian Perspective 109
Dr. Shaizy Ahmed ● *Mr. Praveen Singh*

Understanding Media Portrayal of Immigrants 123
● *Biswajit Mohanty*

Reforming Teacher's Role toward Competency Based learning 131
Reena Sheerin A Sangma ● *Dr. Saru Joshi*

Colonial Improvement versus Cultural Anxiety : Introduction of Piped Water Supply in Kanpur (UP), 1894 140
● *Saumya Gupta*

Demobilisation of Soldiers of the Indian Army after World WarII 152
● *Dr. Narender Yadav*

Family Environment and Mental Health : A Correlational study on Married And Unmarried Working women 161
● *Dr. Megha Arya*

Rural Women Artisans, Entrepreneurial Challenges and Coping-up with Digital Technology in Thar Desert of Western Rajasthan 174
Dr. Jaya Kritika Ojha ● *Dr. Debendra Nath Dash*

Human as Divine in Amish Tripathi's Shiva Trilogy 186
● *Sunayana Pandey*

A comparative Study on Administrative Behaviour among Male and Female Institutional Heads 198
Narendra Singh Rana ● *Prof. Vandana Goswami*
● *Dr Meena Sirola*

Teacher Leadership for Enhancing Quality Education (SHAS) 206
Ibakordor Tiewsoh ● *Rihunlang Rymbai*

Women and Chronic Illness : looking Illness through a gender lens 217
Kumaresh Skandan Kashyap ● *Paridhi Bansal*

Knowledge regarding Pros and Cons of Organic Food among Women Consumers of Patna Sadar 225
Shubham Sinha ● *Anju Srivastava*

Recent Trend of Cross-Region Marriages: A Special Reference to Haryana and Uttar Pradesh 232
● *Ashish Kumar*

Application of Water Poverty Index at Local Level : A Case Study of Delhi 251
● *Dr. Kiran Dabas*

Role of Social Media in Education 261
Mohd Tariq Mir ● *Dr. Mehraj ud din Mir*
● *Showkat Ahmad Lone*

Social Responsible Investing Strategy of Mutual funds 275
● *Dr. Puneet Joshi*

Yoga and Ayurveda as a Global health aproach to Covid-19 : A Stud of Prinary Prevention 281
Divyansh Jain • J.K. Sawalia

Tech-Savvy World of Remote Workers: SWOT Analysis of Stress due to Financial Unawareness 288
Shubham Dadariya • Mohsina Bano • Swasti Singh

Review Artical

Inscriptions and Insights : The Embodiment of Shah Jahan's Faith and Spirituality in Michael Calabria's The Language of the Taj Mahal: Islam, Prayer and the Religion of Shah Jahan 298
• *Prof. Khurshid Khan*

पाली जिले में पाषाणकालीन स्थलों की खोज : एक सर्वेक्षण 303
कल्पेश प्रताप सिंह कनोज • चिंतन ठाकर • तमेघ पंवार • पुनाराम पटेल

बैराठ : बौद्ध पुरातात्विक साक्ष्यों के सन्दर्भ में मौर्य कालीन सामाजिक धार्मिक इतिहास का विश्लेषण 315
• *विजय लक्ष्मी सिंह*

भारतीय चित्रकला का स्वर्णिम इतिहास 326
• *डॉ. राकेश कुमार किराडू*

शरभपुरीय तथा पाण्डुवंशीय विविध कलात्मक शैव प्रतिमायें 333
मोना जैन • नमन जैन

प्रताप की राजधानी चावंड की जनसंख्या का अनुमान 340
• *बी.एल. भादानी*

भारतीय इतिहास में 18वीं शताब्दी 353
• *सूरजभान भारद्वाज*

प्रासाद वास्तु-उद्भव, विकास, चर्मोत्कर्ष तथा शैलियों का आंकलन 365
• *डॉ. रीतेश व्यास*

पुष्टिमार्गी परम्परा में वसन्तोत्सव सेवा : वसन्त के दस दिन 380
• *शिव कुमार व्यास*

अंग्रेजी सरकार की मारवाड़ रियासत के साथ नमक संधियां एवं उनका प्रभाव 389
• *डॉ. सुखाराम*

पण्डित काशीराज की कलम से-तृतीय पानीपत युद्ध के अनछुए प्रसंग 396
अंतिमा कनेरिया • दिनेश महाजन

स्त्री-विमर्श का स्वरूपः एक विश्लेषणात्मक अध्ययन 401
• *अरुण कुमार*

हरिभाऊ उपाध्याय का साहित्यिक योगदान 410
• *डॉ. वीरेन्द्र शर्मा*

गवरी बाई : मीरा की परंपरा और सगुण निर्गुण समन्वय 418
• *डॉ. आशाराम भार्गव*

राजस्थान की कृषि संस्कृति का आधार स्तम्भ : ला प्रथा 428
• *देवेन्द्र कुल्हार*

समाज तथा संस्कृति का बदलता स्वरूप.... 439
• *डॉ. विनोद कुमार*

पश्चिमी राजस्थान की प्राकृतिक धरोहर एवं पर्यटन 454
• *हरिमोहन मीना*

मारवाड़ी लोकोक्तियों व लोक गीतों में जल 464
• *डॉ. उषा लामरोर*

उदार लोकतंत्र और इतिहास का अंत 474
• *डॉ. मोहम्मद कामरान खान*

निर्मितिवाद उपागम पर आधारित शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया का शिक्षार्थियों के उपलब्धि स्तर पर प्रभावशीलता का अध्ययन 489
आशु शर्मा • डॉ. गिरिराज भोजक

असंगठित श्रमिकों में सफाई कर्मकारों के आर्थिक विकास 499
• *इमरान मेमन*

मोहनदास करमचंद गांधी से महात्मा गांधी तक की यात्रा 508
• *डॉ. अनिल कुमार मिश्र*

एकीकृत बाल विकास सेवा (आईसीडीएस) से लाभान्वित बच्चों के पोषण एवं स्वास्थ्य शिक्षा का एक अध्ययन 518
डॉ. प्रगति • सोनी कुमारी सिंह

Some Interesting Sculptures From Jhalrapatan

• **Devendra Handa**

Jhalrapatan is located at 24.55° N & 76.17° E slightly more than a thousand feet above the sea level in district Jhalawar in southern Rajasthan. It is situated about 7 km south of the district headquarters on NH 27 (and to the west of NH 52) to the east and south of Gomati Sagar Lake. The Chandravati river, a tributary of the Chambal, flows south-north about four km east of it touching Jhalawar on its north. Actually it was given the new name of Jhalrapatan after Jhala Zalim Singh, who founded in 1789 CE the new town in close vicinity and partly including the old city of Chandravati. It had a group of early temples. Tod has referred to the existence of 108 temples here.[1] The ruins and many old sculptures which may have remained part of old temples of the city of Chandravati have been lying and recovered from the left bank of the river Chandrabhaga. Sitalesvara (Chandramaulisvara) Mahadeva Temple situated on the bank of the Chandrabhaga River, however, is the oldest and most well known of all these shrines. It is one of the most beautiful and elegant temples of India built in 689 CE during the reign of Durgagana according to an inscription. Verse 3 of this inscription glorifies Siva in the aspect of Visvamurti.[2] Though Sitalesvara temple has been reconstructed it retains some of the original pillars of the *mandapa*, sanctum and the base. The *lalatabimba* shows two-armed Lakulisa.[3] Noteworthy images in the sanctum include those of Parvati behind the Sivalinga and Haragauri riding the bull.[4] Another inscription refers to a Pasupata Saiva teacher Isanajamu who lived there and may have been the chief priest of the temple.[5] Coins, inscriptions and sculptural remains recovered from Jhalrapatan indicate that architectural activities started here sometime in the seventh century and continued for more than half a century.[6] Besides the Sitalesvara there are two more small shrines with very fine carvings dedicated to Siva located on the bank of the Chandrabhaga.[7]

Another inscription from Jhalrapatan refers to the construction of temple of Siva by Janna during the reign of Paramara king Udayaditya in VS 1143 (=1086 CE)[8] but it is completely lost now. Saivism and Saktism flourished in this region from early period as evidenced by Gangdhara inscription of circa 423-24 CE referring to the temple of *dakinis* on the banks of the river Gargara. The Nava-Durga temple here containing some gigantic images which are not commensurate with the present size of the shrine and contains images of Chamunda and other goddesses emphasizing their nudity also corroborate that the region was a stronghold of Sakti-puja and tantric practices.

Abbott, the Political Superintendent of the State of Jhalawar, states that when the modern town was founded separately from the ruins of Chandrabhaga, a Vaishnava temple known as Sat Saheli, was already there in the centre of the new city.[9] Jhalrapatan (literally meaning 'the city of bells')[10] is especially famous for the ruins of a large number of its old temples with relics spread over a large area of 3 km east-west and a km north-south. Still extant, however, are some fanes of which the 96 feet high double-storeyed Sun Temple (also known as Padmanabha Temple) located in the heart of the town is the most celebrated one. Others include Dvarakadhisa, Varaha, Kalika, Navadurga (ruined), and Jaina temple.

The Sun Temple of Jhalrapatan built by the Paramaras with its massive and high Bhumija spire is visible from a long distance. A protected monument by the Departmrnt of Archaeology and Museums, Rajaasthan, Jaipur, this is a living and self supporting shrine under the management of Devasthan Department of the Government of Rajasthan. The temple consists of a *garbhagriha* (sanctum sanctorum), *antarala* (vestibule), vast *sabha-mandapa* (congregation hall) having lateral transepts with ceiling supported on finely carved 50 pillars and a *mukha-mandapa* (entrance porch). The octagonal pillars are bedecked with chain and cord design. The walls are embedded with fine carvings of divinities, *sura-sundaries* (divine beauties), *mithunas* (couples), *vyalas* (griffins), etc. Now a double-storeyed fane, it has been renovated and restored from time to time. The *sabhamandapa* and entrance porches seem to have been added in the early 12th century; the terrace, cupolas and other additions were made during the 16th and 18th centuries.[11]

Numerous images collected from Jhalrapatan-Chandravati area and housed in the Jhalawar museum, particularly the Nataraja and Ardhanarisvara figures[12], bespeak of the maturity the craftsmen

had achieved in chisel work in this region. The Sun Temple of Jhalrapatan shows some iconographically interesting images still adorning its walls. In the principal niche on the southern exterior of the sanctum may be seen an image of Narasimha showing the demon wrestling with the god who has caught hold of his hands while their legs are interlocked (Pl. I). Though the face and hands of the god are damaged yet the dynamic posture to overpower the demon betrays the ingenuity of the artist. Images of this type are restricted to the region of Manora, Khajuraho in Madhya Pradesh and Ellora in Maharashtra besides Rajasthan and are rare elsewhere.[13]

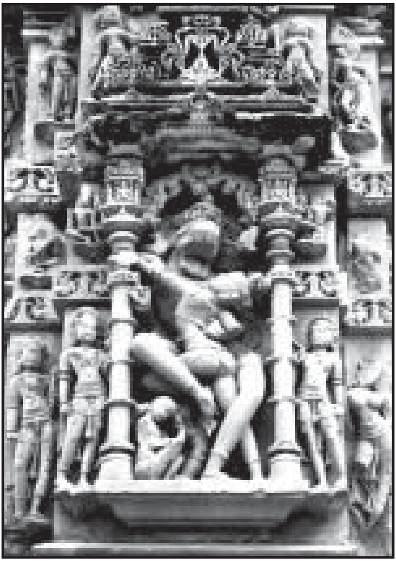

Narasimha Sun Temple Jhalrapatan

The religious tolerance of the people of the region indicated by the composite image of Ardhanarisvara referred to above and Surya-Narayana standing under the canopy of seven-hooded serpent[14] and another one of Surya-Hari-Hara (Acc. No. 42) displayed in the Jhalawar museum is corroborated by the niches on the outer walls of the vestibule of the Sun Temple which depict Vishnu-Lakshmi and Siva-Parvati. The culmination of this syncretistic concept may be seen in the image of eight-handed Harihara-Pitamaha-Surya in the *bhadra-rathika* of the back wall of the temple (Pl. II). The hands are unfortunately mutilated but the matted locks

Harihara-Pitamaha-Surya

and half cylindrical crown on the central head, additional faces in profile on the sides and the presence of Surya's acolyte Pingala holding stylus and leaf in his hands near the left foot of the deity leave absolutely little doubt to its identification.[15]

Kubera As Doorkeeper

Depiction of the regents of the four cardinal and four intermediary quarters are a usual feature of medieval temples of north India from eighth century onwards. An interesting feature met with at Jhalrapatan is the depiction of Kubera as a doorkeeper along with Brahma on one side and Kala on the other (Pl. III).[16] Kubera here is shown as holding the *nakulaka* (mongoose-shaped purse) over his shoulders supporting it from the bottom with his left hand and grabbing the mongoose-head by the neck with his right hand. He bears a *karanda-mukuta* with a nimbus behind and wears usual ornaments with long garland. A vase representing his treasure (nidhi-kalasa) is placed on the pedestal near his right foot. Such depiction of Kubera as the doorkeeper may also be seen in the Kamvalesvara Mahadeva temple at Indragarh (Bundi). It thus seems to have been a regional characteristic.

The *kumbhaka* niches of the southern and northern walls of the *garbhagriha* of the Sun Temple present images of Kshemankari showing two lions on the pedestal. Of these the latter has been depicted with outgoing lions and adorning herself (Pl. IV). The ten-handed goddess is seated in *sukhasana* with right leg hanging slantingly and touching the ground with forepart of the foot while the heel is raised above, the left leg is held upwards with bending knee and foot placed on the lotus seat. She is adjusting the earring in her right ear with the uppermost right and normal left hand. One left hand seems to hold a rosary or pearl ornament. Unfortunately other hands are mutilated. Such images of the goddess adorning

Sringara-Durga

themselves with ornaments are generally known as Sringara-Durga and have been found from Abaneri, Amva, Lamba, Osian, etc. in Rajasthan and have also been met with in Uttar Pradesh, Madhya Pradesh and Gujarat.[17] A.L. Srivastava has shown that the depiction of two lions is not exclusive to Durga but other deities also and as such it "should be taken as a general feature symbolizing a lion-throne and not the specific feature of a particular goddess who should be identified on the basis of her attributes, mounts or her well established specific characteristics."[18]

In the *kumbhaka* niche of the back wall is depicted twelve-handed tri-cephalous goddess seated in *sukhasana* on a lotus seat holding a rosary in her normal right *varada* hand and a bell, *ankusa* (goad), bud (?) and *sruva* (sacrificial ladle) in the other visible right hands while the proper left hand holds the water-pot and other visible ones support a noose, lotus and manuscript in additional ones (Pl. V). These attributes betray her syncretistic character

Brahmani Sun Temple Jhalrapatan

though the main figure is obviously that of Brahmani as evidenced by her three heads, matted locks and goose under her seat. Garland bearing *vidyadhara* couples in the upper corners and figures of the donor couple in the lower corners may also be seen making it an elaborately and meticulously carved image. Another independently carved tri-cephalous four-armed Brahmani with hands disposed in *abhaya* with rosary, holding *sruva*, manuscript and water-pot on a juxta-buttress of this temple attracts our attention for being an exquisite figure in a dancing pose to the tune of music and accompanied by her mount swan (Pl. VI). The rhythmic and lyrical movement has been very well depicted by the artist. Mention may also be made of a broken a detached sapta-matrika panel showing dancing Ganesa, seated three-headed quadrumanous Brahmani with goose and dancing four-handed Mahesvari accompanied by her mount bull (Pl. VII). Saptamatrika panels

Dancing Brahmani

Saptamatrika

showing seated or standing or dancing figures are well known but panels with alternating seated and dancing figures of the *matrikas* are not very common.

Images of seated or standing Vishnu holding *sankha, chakra, gada, padma* are so common to deserve any description but one

image from our temple showing the deity seated in *ardhaparyankasana* with right leg folded on the lotus seat and left hanging down slantingly to touch the ground attracts our attention for holding the hilt of the mace in the normal right hand, *chakra* and *sankha* in the additional back hands and lotus in the normal left hand (Pl. VIII). The shaft of the mace crosses the ankles of the two legs and its thicker end touches the ground under the left calf of the god. The mount Garuda is missing altogether. Such a depiction of the attributes is rare though the order of emblems suggests it to be figure of Trivikrama according to the *Padma Purana* (IV.79), Madhava according to *Rupa-mandana*, and Hrishikesa according to *Paramesvara* and *Ahirbudhnya Samhita*.[19]

Vishnu

The most interesting and iconographically significant image from Jhalrapatan is that of Brahma-Brahmani (Pl. IX). Tri-cephalous Brahma has the bearded central face while the additional side faces are juvenile. Matted locks, pearl torque, sacred thread, *karna-kundalas*, *angadas*, wristlets, etc. and dhoti secured by a *katisutra* are the usual features. Both the right hands are damaged but may have been disposed in *varada* with rosary and holding the *sruva* while the left hand embraces the goddess touching her left breast and upper back hand supports the book. She is seated in *sukhasana* on the left thigh of the god embracing him with her right hand. Her left hand is gone. Garland-bearing

Brahma-Brahmani

divine minstrels in the upper corners and donor couple in the lower corners give a balanced look to the figure. What, however, is important is the hybrid character of the mount which has the human body and the head though slightly damaged surely seems to be that of the goose (Pl. X). This thus is the unique depiction of the mount in simulation of the hybrid Garuda which is generally shown as supporting Vishnu or Vishnu-Lakshmi or Vaikuntha-Lakshmi.

Enlargement of the lower half

The *narathara* friezes show varied scenes, the dancing *sura-sundaris* in various stances and numerous subsidiary figures of the temple also deserve detailed treatment and proper identification.[20]

Notes and References

1. James Tod, *Annals and Antiquities of Rajasthan*, 3 Vols. (edited by William Crook), London, 1815 (reprint, Delhi: MLBD, 1971), Vol. III, p. 1784.
2. G. Buhler, "Two Inscriptions from Jhalrapatan", *Indian Antiquary*, V (June, 1876), pp. 180-83.
3. A. Cunningham, *Report of a Tour in the Punjab and Rajputana in 1883-84*, Vol. XXIII, p. 125.
4. K.C. Jain, *Ancient Cities and Towns of Rajasthan*, Delhi: MLBD, 1972, p. 133.
5. D.R. Bhandarkar,"An Ekalinga Stone Inscription and the Origin and history of the Lakulisa Sect", *Journal of the Bombar Branch of the Royal Asiatic Society*, Vol. XXII, p. 58.
6. Cunningham, *ASR*, II, p. 264; Tod, *op. cit*., III, pp. 1787-89; Catalogue Jhawar Museum; etc.
7. H.C. Chaturvedi, 'Chandravati', *Marg, Rajasthani Sculpture*, XII

(2), March 1959, pp. 39-40; Neelima Vashishtha, *Sculptural Traditions of Rajasthan*, Jaipur-Indore: Publication Scheme, p. 41; Lalit Sharma, *Jhalawar ki Murtikala Parampara* (Hindi), Jhalawara, 2015.

8. B.N. Reu, *Glories of Marwar and the Glorious Rathors*, Jodhpur: Archaeology Department, 1943, Appendix D, pp. 223-25.
9. *Rajputana Gazetteer*, Vol. II, p. 206. It was so-named because of the depiction of seven mothers (sapta-matrikas) on the sur-lintel.
10. The *sabhamandapa* of the Sitalesvara temple having 28 round pillars adorned with beautifully carved chained bells may have been well-known to suggest the present nomenclature.
11. Chandramani Singh (2002), *Protected Monuments of Rajasthan*, Jaipur: Jawahar Kala Kendra and Publication Scheme, p. 255.
12. *Marg*, XII (2), p. 12, fig.1 and p. 18, fig. 11 respectively.
13. Neelima Vashishtha, *op. cit*., p. 70.
14. Kalpana Desai, *Iconography of Visnu*, New Delhi: Abhinav Publications, 1972, p. 54, Fig. 50.
15. Lalit Sharma wrongly describes it as three-faced Sun (*op. cit*., fig. 34).
16. See also *Marg*, XII (2), p. 40, fig. 3.
17. Kalpana Desai, *op. cit*., pp. 56-57; Shilpi Gupta, ‘Uttara Bharatiya Murtikala mem Sringara-Durga’, *Pragdhara*, XVII (2006-07), pp. 179-82; ‘Rajasthana mem Sakti-Puja: Katipaya Asadharana Pratimayem’, *Vaichariki*, Bikaner, XXV (4), Jan.-March 2010, p. 61; Lalit Sharma, *op. cit*., pp. 66-67, fig. 32.
18. A.L. Srivastava, ‘Ksemankari: A Riddle in her Identification’, *Kala*, XVI (2010-2011), p. 5.
19. Kalpana Desai, *op. cit*., p. 151.
20. I am thankful to Shri Sabya Sachi Ghosh for his permission to use the scans published with this article.

Devendra Handa
1401, PUSHPAC Complex
Sector 49 B, Chandigarh – 160 047

❑ ❑ ❑

Factors Facilitating Mobility : The Economic World of a North Indian Merchant in Mughal Times

• Dr. Kalpana Malik

Migration and mobility have been a persistent phenomenon in the lives of peasants, merchants, artisans, and craftsmen. There could be varied reasons due to which they travel to distant places, sometimes for a short duration while at other times their stay stretched for a longer span of time. If at times being mobile was a matter of personal choice, on other occasions it sprang from difficult political circumstances or to pursue better business prospects. In the present article an attempt has been made to study the various aspects of mobility in the economic life of a merchant in Mughal times. Pertaining to the theme, we have an interesting contemporary account in the Ardhakathanaka,[1] that is quite illuminating. With the help of the Ardhakathanaka as the chief source the present work attempts to reconstruct the aspect of mobility that was so crucial to the economic world of a middle class, North Indian merchant in Mughal times.

Keywords : Mercantile community, mobility, oppression, apprehension, extortion, commercial centers, caste/kinship, better business prospects

The *Ardhakathanaka* is a versified composition written in A.D. 1641 (*V.S.*1698) by a Jain merchant Banarasidas. He calls the *Ardhakathanaka* the story of his life, narrated by himself (*so Banarasi nij katha kahai aap so aap*).[2] The language of the *Ardhakathanaka* is *brajbhasha* interlaced with *khadiboli* (*madhyadesh ki boli boli, garbhit baat kahaun hiya kholi*).[3] Banarasidas decided to pen his biography while he was settled in Agra, along with his third wife at the age of fifty-five. The narrative was brought down to the present when he began to compose the work. The space covered in the *Ardhakathanaka* is the

geographical area of Narwar, Agra, Jaunpur, Banaras, Allahabad, Patna, and Bengal where Banarasidas, his grandfather Muldas and his father Kharagsen lived and carried out their business activities. In Banarasidas's family his grandfather lent out money on credit, his father practiced *sarrafi*, lent money on credit, dealt in jewels besides commodity merchandise. Banarasidas himself bought and sold jewels and was a commodity merchant. Muldas was the *modi* (grocer/provision merchant) of a Mughal noble and Kharagsen served as a *fotadar* (treasurer) of Rai Dhana in Bengal. He was the diwan of Sulaiman Karrani. Later Kharagsen became a bullion merchant. Thus, besides geographical mobility a professional flexibility was also present in the business occupation.[4]The *Ardhakathanaka* can be hailed as a source of historical importance as it gives us an insight into reconstructing the various phenomenon of spatial and professional mobility especially when they change their religion that led the three generations of the author's family to travel to various places. With the help of the *Ardhakathanaka* as the chief source the present work attempts to reconstruct the aspect of mobility that was so crucial to the economic world of a middle order, North Indian merchant in Mughal times.

Business Prospects and Geographical Mobility

Through the text the author informs us about his origins, caste configuration and caste loyalties. Banarasidas claims that his ancestors were originally Rajputs and their profession was that of warriors. They lived in Biholi - a village in Madhyadesh, identified with the area lying in modern Uttar Pradesh from Jaunpur to Agra.[5] Jaunpur was the home of Banarasidas's ancestors for many decades. Situated on the banks of the Gomti to the north east of Banaras, it is a small town now known for its fine distinctive mosques dating from the Sharqi period. They got converted to Jainism at the behest of a guru (*te gurumukh Jaini bhaye*, *tyagi karam adbhut*)[6]and became members of the Srimal caste of Biholia *gotra* (sept). While simply introducing his earlier ancestors in succession Banarasidas narrows down his focus of attention to his grandfather, Muldas. He was a businessman who came to Malwa and joined the services of a Mughal noble of Humayun, who had his *jagir* in Narwar near Gwalior.[7]He became a *modi*[8] in the noble's establishment and looked after the provisioning of food etc.[9]The noble was very kind towards Muldas. While giving a general introduction about his ancestors, Banarasidas becomes specific while informing about his grandfather

Muldas. He emphasizes the fact that his grandfather had adopted the profession of a *bania* (*Muldas biholiya, banik vritti ke bhes*).[10] Lath has translated the relevant verse (*kare uchapati sonpai mal*)[11] as: Muldas having his employers trust, carried out a profitable business of money-lending on behalf of his employer.[12] However, B.L. Bhadani while reviewing the translation of the *Ardhakathanaka* by Lath has criticized his translation of the relevant verse. As per Bhadani's view, the *jagirdar* had confidence in Muldas, hence he (that is, Muldas) after realizing the revenue, handed it over to the *jagirdar*.[13] Hence, Bhadani's explanation is more accurate.

The emphasis here is on the fact that Banarasidas's grandfather travelled from Jaunpur to Narwar in search of a better future. We get to know that it was Muldas who first adopted the profession of a *bania* in their family and the same was pursued by Kharagsen and Banarasidas. After the death of Muldas his patron confiscated his possessions, seized his house, and put everything under his seal. However, Banarasidas does not elaborate much as to why such an action was taken.

Banarasidas's grandfather, Muldas came to Malwa from Jaunpur to seek a better fortune and he did well in life but after his death, Kharagsen and his mother were left friendless and despondent. Therefore, they decided to travel east and go back to their native place - Jaunpur where they were received well by Madan Singh, an older brother of Chhajmal, the maternal grandfather of Kharagsen. When Kharagsen attained the age of eight years he was sent to school where he learnt to read and write. Besides the formal knowledge gained at school he was also trained in the art of conducting business. In this way he became skillful in assaying and money-changing which were crucial to the profession of *sarrafi*. He also learnt about drafting bills for money-lending and account keeping (*geh uchapati likhe banai*). [14]Kharagsen's proper and timely initiation into business by his maternal grandfather boosted his confidence and he ventured to travel to Bengal at the young age of twelve years. He got himself employed as the *potdar* (*fotadar*/treasurer) of Rai Dhana.

The author and his father carried out their professional activities mainly in Jaunpur and Agra. The Mughal emperor Humayun had established his control over Jaunpur but later it passed into the hands of the Surs and continued under their control until Akbar regained it in A.D. 1560. In A.D. 1575, the provincial capital was shifted to Allahabad. Subsequently, Jaunpur declined in

importance and became a *sarkar* or sub-province in the *suba* of Allahabad.[15] It comprised of forty-one *mahals*. [16] Jaunpur is described as a large city by Abul Fazl.[17] Due to the declining importance and the limited opportunities it offered to do business many small traders like Kharagsen must have decided to seek their fortune in more prosperous cities like Agra. With the establishment of the Mughal Empire, Agra had become an important administrative and commercial center in Northern India. The city of Agra being the imperial capital was an important trade node in the north. The linkages of *suba* Agra were not restricted by political or territorial limits. Traders and merchants from far corners of the sub-continent and from different Asian regions, were a common sight.[18] Agra had a truly urban population with expertise in professions other than agriculture: traders and merchants and menial workers in households of the elites of the city.[19]Kharagsen belonged to the second generation of the author's family who did business. He started at the young age of eighteen years and decided to travel to Agra as it was a prosperous commercial center and had bright prospects for a beginner. He joined his uncle Sundardas in the family business and dealt in money-changing and selling of gold (*karai sarafi bechai hem*). [20]It proved to be a very profitable enterprise and from the growing capital he was able to save money to meet the expenses of his marriage. He not only got married but even got a separate place where he could lodge himself with his wife, though our author is not specific whether the house was (on rent or it was) purchased. After staying in Agra for almost seven years when Kharagsen had accumulated a respectable amount of wealth and his uncle had also died, he decided to return to Jaunpur, though he and his son kept travelling to Agra for business.

Kharagsen launched his son Banarasidas into business when he was twenty-four years of age. He decided to send him to Agra on a trading mission. Though he failed miserably yet he persisted. For the next two years he did a reasonably good business but suddenly he decided to travel to Khairabad to meet his wife, who suggested to Banarasidas that instead of going back to Jaunpur, he should go to Agra for that was the only place for him to go (*banita kahai sunahu piya baat*, *uhaan maha bipda utpat. Tum phir jahu aagraimahi*, *tumko aur thaur kahun nahi*),[21]stressing the fact that Jaunpur was in a turmoil afflicted with a hundred troubles. It was this second visit to Agra when Banarasidas succeeded as a businessman and travelled between Agra, Patna, and Banaras to carry out trading activities. In

fact, the very nature of their business was to maximize opportunities for trade which required a general mobility. The author finally settled at Agra for good. Thus, the emphasis is that in the mercantile and professional groups there was a considerable geographical mobility.

Movement due to extortion and a sense of foreboding

Sometimes high handedness of the political authority forced the merchants to shift their locale either on a temporary or permanent basis. In the *Ardhakathanaka* we get a contemporary account of the operation of Mughal political authority at the local level. The author narrates two incidents relating to the extortionist tendencies of the nobles that compelled the merchants to migrate to other areas for a temporary period. The Mughal nobles Chin Qilij Khan and Agha Noor terrorized the jewelers, shopkeepers, *sarrafs*, when they could not meet their extortionist demands. The first persecution occurred when Banarasidas was of eleven years of age. Nawab Qilij Khan, [22]who was jointly the *subedar* of Allahabad and held Jaunpur in *jagir*, got all the jewelers arrested, including the author's father, and put them behind bars. Banarasidas recollects that the governor demanded something valuable which these people did not possess (*badi bastu maange kachhu so to inpe nahi*).[23] One day he gave vent to his anger and early in the morning, he ordered the jewelers to be put in chains and made them stand like thieves (*bandhi bandhi sab jauhari, khade kiye jyon chor*). [24]He got them thrashed with thorny whips so that they almost appeared as dead. Then they were released. After coming back home, all the jewelers decided to flee along with their families for the fear of facing the crisis again. Kharagsen went to Shahzadpur. Such acts of oppression by provincial officials were not infrequent and, in most cases the only alternative the oppressed had was to leave the place and to seek asylum elsewhere.[25] The text informs us that there was cooperation among the *banias* belonging to different communities. This notion gets highlighted through the hospitality extended by Karamchand Mahur (Mathur) at Shahzadpur.[26] The author informs us that he was a *bania* by profession although Karamchand was a Hindu while Kharagsen was a Jain. Yet, both belonged to the larger *bania* fraternity. He vacated his own house in Shahzadpur to lodge Kharagsen and his family.

It would be worthwhile to mention Bayly's opinion that in merchant family children were taught from early youth the traits of good business, it lay in the art of persistent division of the capital into

small and manageable portfolios that ought to be divided at least into four portions. Out of this, one part should be stored as coin, one part to be used to purchase jewelry, one should be lent out at interest and just one part should be invested in trade.[27] The purchase and hoarding of jewelry symbolized security and a family could easily fall back on it in adverse circumstances just as Kharagsen and probably the other jewelers did when they were forced by persecution and had to leave Jaunpur, he carried his ready wealth which could be either cash or jewelry. It was only after one and a half year, when the *nawab* was called back to Agra that Kharagsen and the other jewelers could muster courage to go back to Jaunpur and resume their work. Strangely the author does not express any protestation which indicate that he along with the others had learnt to bear such coercion.

The second oppression recorded in the source took place when Banarasidas's business was doing well. This time the calamity descended in the form of Agha Noor, another Mughal official. There is a great possibility that he had a notorious reputation among the merchants. This was the reason that when people heard about his arrival, the panic was so great that they fled in all directions. Banarasidas and Narottamdas had gone out of Jaunpur at this time. They rushed back, hid their families, and then went to a safe place - Raunahi via Ayodhya. They stayed there for seven days and then decided to return home. On the way they heard from other travelers that Agha Noor had wreaked havoc between Banaras and Jaunpur. He had arrested engravers (*jadia*), people having business establishments (*kothibal)*, bankers (*hundibal*), money-changers (*sarrafs*), jewelers (*jauhari*) and brokers (*dalal*), with or without pretext. Some of them were lashed, some were put in fetters while others were kept in dungeons. Hearing this, both turned back from Surhurpur and after crossing the river went into hiding in a fortress in the forest. Here they lived for forty days and only when Agha Noor was called back to Agra that they decided to return. But Agha Noor did not go empty handed. He got a few rich men severely beaten and then led them into captivity with him. Agha Noor's harsh treatment of the merchants proves that their apprehensions about his arrival were not without cause. The extortionist tendency among the nobles was noticed by the foreign travelers also. Fryer opined that: the governor often finds occasion to fleece them.[28] However, it is difficult to ascertain whether the Mughal central authority was aware of this coercion or it simply turned a blind eye.

The *Ardhakathanaka* has ample evidence to reinforce

movement of the people when their patron died and they apprehended a sense of foreboding. A benefactor facilitated security but his demise was associated with panic and instability. The author's father, Kharagsen migrated to the east from Jaunpur to the *suba* of Bengal for better prospects. It was then ruled by an independent Pathan king named Sulaiman Sultan. The Sultan's brother-in-law was a man called Lodhi Khan and Kharagsen went to meet Lodhi Khan's *diwan*, Rai Dhana. He had five hundred men working under him. The latter made Kharagsen a *potdar* (treasurer) and handed over to him the charge of four *parganas* (administrative districts). He was given two *karkuns* to serve and assist him in his work. Kharagsen was very diligent. He began to collect revenue and manage affairs and dutifully dispatched all the collected sums to Lodhi Khan or the Rai. Thus, after serving like this for a period of seven or eight months, unfortunately the Rai died. In apprehension of the calamity that may fall on everyone (*ehi bidhi rai achanak mua. Gaun gaun kolahal*) [29] lest the new *diwan* may coerce them and compel to part with whatever little they had earned, Kharagsen immediately left his post and started making hurried preparations for escaping to Jaunpur. He disguised himself as a beggar and covered the journey on foot over wild, unfrequented paths, away from the eyes of men. A patron's image is associated with peace, security, and stability among the common people. This was the reason that Kharagsen had a premonition that his patron's death would result in a political turmoil. Therefore, he undertook precautionary measures and decided to travel back to Jaunpur.

Caste/Kinship network

Caste and kinship network played a very significant role in the economic life of a merchant. Our source gives ample proof of this consideration that operated in the mercantile community. After the death of Muldas when the homeless and grief-stricken mother and son Kharagsen, the author's father, decided to leave Malwa. Their choice fell on Jaunpur where the widow's paternal uncle, Madan Singh Srimal lived. Madan Singh was the elder brother of Kharagsen's maternal grandfather - Chhajmal. Mother and son travelled under great privations. It was Madan Singh who consoled his niece (the author's grandmother) and grandson (the author's father) and extended emotional support. He not only fulfilled the obligation of providing them food and clothes but also made them available the comfort of his own house. In this way Kharagsen's

childhood passed amidst the loving care and warmth of Madan Singh who also shouldered the obligation of educating him. He also learnt the art of doing business as Madan Singh was a jeweler by profession and dealt in diamonds and rubies (*banajai heera-lal*).[30] This incident provides an insight into how the ethnic network operated in times of distress. The uncertainty at Narwar prompted Kharagsen's mother to migrate to Jaunpur where her uncle accepted her with paternal warmth. Another instance when the kinship network acted as a support system was when Kharagsen stepped in to begin his career as a merchant. When he attained the age of eighteen years, he travelled to the west in A.D.1569 (*V.S.*1626) to the city of Agra. However, one may be curious to know as to why Kharagsen decided to leave Jaunpur and go to Agra. But our text is silent on this issue. The silence perhaps indicates that the years spent in Jaunpur were not remarkable. One of the reasons for his decision to choose Agra was presumably dictated by the consideration of the presence of his paternal uncle, Sundardas, who held Kharagsen in great affection. Kharagsen's paternal uncle Sundardas was a money-changer and dealt in gold. He joined his uncle in the family business and got an opportunity to gain from the knowledge and experience of his paternal uncle. The two had mutual affection for each other and people called them father and son. Kharagsen stayed at Agra for almost seven years after which he returned to his native place Jaunpur after the death of his uncle. In A.D. 1576 (*V.S.* 1633) Kharagsen covered the return journey with a horse, a coach along with personal guards and a lot of money, indicating that Kharagsen was in a good financial condition which also helped him to immediately set up his business in Jaunpur. The presence of a strong kinship network in Agra must have been a deciding factor for Kharagsen when he sent his son to Agra to do business. The author sought kinship help to seek shelter and food. On his first business venture to Agra, it was raining and he wondered where he could go and stay. It was his brother in-law Bandidas who helped him. Later, when his business failed, he was pulled out of his pathetic situation by his father in-law's brother Tarachand Tambi. Thus, our study reveals that caste/kinship network became not only a cause but also a motivating factor for migration to a particular place.

It is evident from the *Ardhakathanaka* that it was important to undertake travels in order to meet professional requirements. We are given to believe that the political unification of the country under the Mughals not only provided stability but also paved the way for peace

and security which was beneficial for the mercantile community. But on the basis of what Banarasidas narrates it seems that high handedness of Mughal officials was quite frequent at the local level. The otherwise safe atmosphere was sometimes disrupted due to the extortionist tendencies of the Mughal officials at the local level as is evident from our source. Decline in the old towns led to changes in their fortunes and growth of new cities led to mobility among the mercantile community. The *Ardhakathanaka* provides us with convincing evidence about the diverse factors that had an impact on the lives of the merchants that prompted them to travel. Based on our source we can say that it was motivated broadly by three main considerations. The very first reason was migration for better business prospects. The decay of older towns paved the way for exploring new opportunities in other places which could be at times far-flung. At times due to misfortune operational activities shrunk. At other times it was to save themselves from political extortion. This in turn provides us with valuable information about how business transactions were carried out and the various hardships faced by the merchants in a particular area. The third factor evident from the *Ardhkathanaka* for undertaking journeys was the caste and kinship network that had spread out and settled in different towns. The nature of mobility varied from temporary to permanent. Sometimes their business activities required them to stay at a particular place for a short duration while at other times it could turn out to be staying on a permanent basis if the business prospered. The author's grandfather travelled from Jaunpur to Narwar in Malwa, his father undertook a journey from Jaunpur to Bengal and the author himself migrated from Jaunpur to finally settle in Agra. Mobility was required for maximizing opportunities for meeting the requirements of business. There was specialization within the mercantile commercial activities that included money-changers (*sarrafs*), commodity merchants among others. Merchants even worked as a *modi* and *fotadar*. There was cooperation not only among the extended families of the *banias*, members of the same septs, it was present even among *banias* belonging to different castes. The author and especially his father were benefitted due to this cooperation and solidarity when they had to migrate to Jaunpur, Agra, Bengal and Shahzadpur. Thus, our source corroborates that frequent travels and migration were quite common in the medieval mercantile class.

References and Notes:

1 Banarasidas, *Ardhakathanaka*, Mukund Lath ed. & tr.

Ardhakathanaka as *Half a Tale: A Study in the interrelationship between autobiography and history*, Jaipur, Rajasthan Prakrit Bharti Samsthan, 1981.

2 Lath, *Half a Tale,* verse 3 (hereafter indicated by v.), p. 223.

3 Ibid., v. 7, p. 224.

4 Iqtidar Alam Khan, 'The Middle Classes in the Mughal Empire', *Proceedings of the Indian History Congress*, Thirty-sixth session, Aligarh, 1975, pp. 130,132.

5 Dr. Hiralal Jain, '*Ardha-Kathanaka ki bhasha*', in *Kavivar Banarasidasvirachit Ardha Kathanak* ed. Nathram Premi, Bombay, revised edition, 1957, p. 15.

6 Lath, *Half a Tale*, v. 9, p. 224.

7 Banarasidas does not inform us about the name of the noble.

8 Lath, *Half a Tale*, the word means a grocer, a provision merchant. The post of *modi* was greatly coveted and in a rich household they had multiple opportunities for making money, p. 115.

9 Ramesh Chandra Sharma tr., The *Ardha - kathanak*: 'A Neglected Source of Mughal History', *Indica,* vol. VII, Nos. 1 and 2, March & September, Bombay, Heras Institute of Indian History and Culture, 1970, p. 52.

10. Lath, *Half a Tale*, v.14, p. 224.

11. Ibid., v. 15, p. 224; In Nathuram Premi edited *Kavivar Banarasidas Virachit Ardh Kathanak*, Bombay, 1957, the term *uchapati* is explained in the glossary as giving money (*maal*) on credit. Premi emphasizes that in the Sagar district the term is still in use in the same context, p. 141.

12. Lath, *Half a Tale*, p. 3.

13. B. L. Bhadani, 'Review of Mukund Lath ed. *Ardhakathanaka* of Banarasidas, *Indian Historical Review*, vol. IX, Nos. 1-2, July 1982-Jan., Delhi, Motilal Banarasidass, 1983, p. 275.

14. Lath, *Half a Tale*, v. 46, p. 227.

15. Ibid., p. 121.

16. Abu'l-Fazl Allami, *The Ain-i-Akbari*, tr. Colonel H.S. Jarrett, second edition corrected and further annotated by Sir Jadunath Sarkar, Vol. II, A Gazetteer and Administrative Manual of Akbar's Empire and Past History of India, Third edition, Calcutta, Royal Asiatic Society, 1978, Ibid. p. 174.

17. Ibid., p. 170.

18. M. Thevenot and Giovanni Francesco Gemelli Careri, *The Voyages of Thevenot and Careri, in India in the Seventeenth Century*, vol. II, Akbar's declaration of Agra as the capital motivated merchants belonging to different communities to flock the city, p. 57
19. K.K. Trivedi, *Agra Economic and Political Profile of a Mughal Suba: 1580-1707*, Pune, Ravish Publisher, 1998, pp. 161,162.
20. Lath, *Half a Tale*, v. 67, p. 229.
21. Ibid., v. 383, p. 252.
22. Banarasidas calls him '*Novab Kilich*', Lath, *Half a Tale*, v. 110, p. 232; pp. 153,154, He was Qilij Khan Andjani. Emperor Akbar had married his third son, Daniyal to Qilij's daughter. Daniyal was appointed as the governor of Allahabad.
23. Ibid., v. 111, p. 232.
24. Ibid., v.112, p. 232.
25. Sharma, 'A Neglected Source', p. 58.
26. Nathuram Premi ed. *Kavivar Banarasidas-virachit Ardh Kathanak*, glossary, p. 149, Mahur = Mathur, Mahaur, a caste of the Vaishyas.
27. C.A. Bayly, *Rulers, Townsmen and Bazaars: North Indian Society in the Age of British Expansion 1770-1870*, Cambridge, Cambridge University Press, 1983, p. 396.
28. John Fryer, *A New Account of East India and Persia Being Nine Years Travels 1672-1681*, ed. William Crooke, Volume I, New Delhi, Asian Educational Services, 1992, p. 320.
29. Lath, *Half a Tale*, v. 63, p. 228.
30. Ibid., v. 39, p. 226.

Dr. Kalpana Malik
Associate Professor
Department of History
Motilal Nehru College
Benito Juarez Marg
University of Delhi
New Delhi
E-mail address: kalpanamalik.du@gmail.com

❑ ❑ ❑

Water Reservoirs in Rajasthan : A Historical Study of the Bhavalde *Baori*

• **Prof. Preeti Sharma**

I

Tradition of Water Reservoirs and Stepwells

A close communion and harmonious relation with nature has been a characteristic feature of the Indian culture since its formative stages. Consciousness towards a cogent use of natural resources was deemed vital for the perpetuation of human race. Subsequently a symbiotic equation evolved for sustenance of the ecological equilibrium. The material, civilizational progression was also reflective of such sensitivities. Known variously as *vapi*, *vapika*, *baori*, *bauli*, *kund*, *vav*, *sagar*, *pushkarni*, or stepped wells in classical texts and in common parlance, the man-made hydraulic structures or water reservoirs, traditionally used for underground water harvesting remained hallmark of ancient Indian system of water conservation, especially popular in arid and semi-arid areas. Western Indian states of Gujarat and Rajasthan in particular, being water parched for most of the year, are renowned for such manmade water storage edifices as recorded by several European travellers too. James Tod mentioned them as utilitarian monuments. (1839[1971]:133) The initially mere functional edifices eventually evolved into splendidly embellished architectural monuments by medieval times, symbolising not only sites of drinking and irrigational water storage but also the aesthetics and prowess of their patrons and artistic excellence of the artisans.

Several canonical texts on architecture - *silpasastras* such as the *Samarangana Sutradhara*, *Aparajitaprchha*, *Rajavallabha*, *Manasara*, *Mayamatam*, to name a few, though referred to terms as *vapi* and *pushkarni*, they did not elaborate upon their architectural features. *Aparajitaprchha* may be deemed as the

earliest exposition wherein one whole chapter, chapter number 74, was dedicated to stepwells, ponds, etc. and which classified stepwells into the four categories of *nanda*, *bhadra*, *jaya* and *vijaya*, on basis of number of their entrances and pavilion towers (v.9). Stepwells were further classified variously on basis of their shape as rectangular, circular or ‘L’ shaped; scale and designs ranging from simple utilitarian to elaborately embellished, ornate structures; their construction materials varying from sandstone, brick, stucco, marble, to rubble, etc. They could be in the form of either a deep well or a *kund*. The stepwell - *vapika* with down-leading steps or passage - *avarohana* was mentioned in texts as *Amarakosa* (1886: 61, v. 26-28). In a characteristic stepwell the construction design and layout placement of wide, stone lined, sloping excavation, elongated stairway and lateral niches remained prominently embedded and provided access to the fluctuating water levels flowing through an opening in the well cylinder. Stepwells usually narrowed from surface as they receded to lower ground levels, creating visual effect of a reverse architecture. The *Vishvakarma Prakasa* comprised of one chapter, number 33, regarding characteristics of stepwells. Quite interestingly, the edifice exhibited disparate functions at different times. In parched seasons the water could be accessed by going down through the stairs while during the rains the conduit would be transformed into a reservoir, often submerging the steps till the surface of the top storey.

Commissioning of a stepwell was deemed extremely meritorious, an act to stake claim to eternal fame, for example as cited in the *Visnudharmottara Purana* (chapter 91: v.1-2) and *Rajavallabha* (chapter 4, v.1.). Water reservoirs were held analogous to fertility oriented and life giving places. They were sponsored by affluent laity and more often by royalty. No doubt that they thrived as public monuments along trade routes, strategic places, public sites, or in private spaces, proliferating from early times of civilised communities. Their functions were also varied, from serving as water reservoirs, to socialisation venues, cool retreat places in scorching summers for travellers and local inhabitants, to religio-spiritual spaces, and even as washing places or irrigational channels, making it explicit that stepwells catered to miscellaneous needs and requirements of the prevailing communities.

II

Female Patronage to Water Bodies in Bundi

The erstwhile state of Bundi, founded by the Hada Chauhan branch of Rajputs and located in southeast Rajasthan, nurtured a rich traditional and cultural ambience, captivating works of art, painting, and architecture. It was renowned as *chhoti* Kashi and abounded in water reservoirs – *baoris*, *kunds* and tanks, numbering over a hundred, a viable practice considering the fact that the climate on plains generally remained dry while the soil was hard and stony (Dhoundiyal 1964: 3). *Rani Ji Ki Baori*, *Sukhi Baori*, *Purushottam Ki Baori*, *Chand Baori*, *Manohar Ji Ki Baori*, *Naval Sagar*, and *Sisodia Ji ki Baori*, to name a few, represent a continuity of the practice of harvesting, storage and conservation of water, patronised over centuries by the royalty and wealthy laity.

Female patronage towards creation and maintenance of water bodies in Bundi state was also quite significant, for instance, the Jaitsagar Lake was renovated and enlarged by Dowager Queen Gehlotji Jagat ji, mother of *Rao* Surjan Singh in 1568 CE, while *Rao Raja* Bhao Singh's foster mother – *Dhai Ma* commissioned the *Sabiran-Dha-ka-kund* or *Dabhai ji ka kund*, located southwards of the city, in 1654 CE (Dhoundiyal 1964: 270). The Phoolsagar was built by orders of Phool Lata, sub-wife – *padaayat*, of *Maharao Raja* Bhao Singh in 1659 CE (Gahlot 1960: 24). The widowed *Rani* of *Maharao* Anirudh Singh, *Rani* Nathawat ji built the *Rani Ji Ki Baori* in 1699 CE (Dhoundiyal 1964: 270) to the south of the city exteriors, near *Dabhai ji ka kund*, during reign of her son *Maharao* Budh Singh. *Maharao Raja* Vishnu Singh's concubine Sunder Shobhaji had sponsored the Sunder *ghat* and associated structures (Ibid: 271). Thus, it is apparent that several of the affluent females were generously patronising making of water bodies in Bundi state on different occasions. It is estimated that customarily women philanthropists constituted almost one-fourth of the patrons of the water bodies, manifesting social-religious merit of the act.

The paper highlights the significance of one such royally patronised stepwell in Bundi, known as the Bhavalde, Bhavaldi or Bhavaldevi *baori* - in terms of its architectural features, secular and

religious sculptural components, structural elements, chronology, and female artistic patronage, etc. Its information is largely derived from epigraphic evidence. The Bhavalde *baori* was commissioned by queen Bhavaldevi, chief wife of *Maharao Raja* Bhao Singh in public interest, upholding the royal tradition of the queens sponsoring a *baori* after assuming status of the Queen Mother. Thus, it marks the philanthropic tradition of Bundi state royal family as also its patronage towards water harvesting, a practice that was perpetuated even by their women.

III

The Bhavalde Baori

Located in the centre of the Bundi city in *Sethji ka chowk*, the late medieval *baori* monument, in keeping with the tradition of stepwells' association with religious shrines, is adjacent to the Radha Damodar temple. It is in vicinity of the residence - *haveli* of *Rajkavi* Surya Malla Mishrana. As known during the author's fieldwork, it is quite significant to note that *Mahakavi* Surya Malla Mishrana (1818-1868 CE), the Bundi royal court poet laureate, whose residence was in the locality, was given the *baori* and he had authored several of his writings such as *Vansh Bhaskar*, *Vir Satsai*, *Basant Vilas*, etc., in its *baradari* premises. The *baradari*, exhibiting influence of Mughal garden architecture, was usually a canopied pavilion, meant for leisure, with twelve openings on all sides, facilitating flow of air and light and scenic sightseeing.

Primarily a rather modest and unpretentious underground structure, the *baori* was made in consonance to the local hydrology, geology, and soil systems. Its dimensions include 155 ft length, 22 ft 5 inches width and 65ft depth, angularly the edifice constitutes 'L' shaped structure. The flight of 75 steps leading from topmost level spiral at 90 degrees to reach the water tank - *kunda* below. One storey is submerged in waters underneath. The steps break at small, regular intervals and at each break the number of levels enhance in descending direction. For instance, the first step break comprises two levels while second break constitute three levels. The largest break is in the corner where it turns and makes the 'L' shape.

Plate.1. The main entrance *chhatris*, view from inside.

The *baori* with its two entrances represents the *bhadra* type plan as enunciated in the *Aparajitaprccha*. The monument entrance flanking pillars are topped by two octagonal pillared twelve feet high rectangular cenotaphs (Plate.1). The entrances' sequence coordinates till end of the second level of steps, which is one level above the depth of the stepwell. (Plate. 2 and Plate.3)

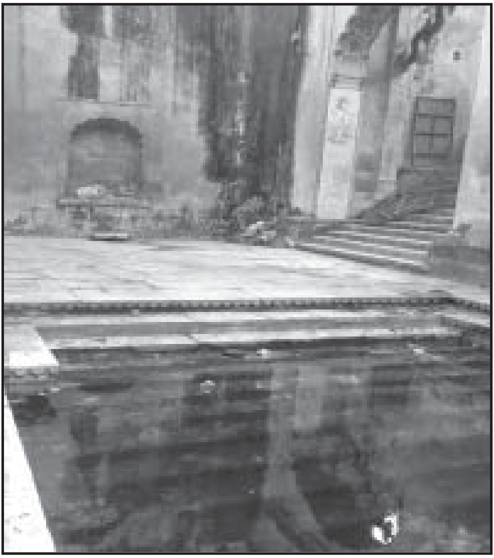

Plate. 2. Water submerged level 2 steps.

Plate. 3. Level 2 steps with receded waters

The 15th step from the main entrance is a 25x3 sq ft. slab and has two arched niches on flanking walls, the right wall niche housing an inscription while the leftwards is empty. The *baori* epigraph (Plate. 4 and Plate. 5) partly inscribed in Sanskrit and partly in *hadoti* idiom, interpreted by the author, begins with invocation of lord Ganesh and Brahma. The initiation of any building process in auspicious settings and with veneration of Ganesh at the onset of the process was deemed befitting to ward off any probable obstructions. The inscription is informative about the genealogy of Hada Chahuman or Chauhans beginning with Rao Surjan, his son Bhoj bhuj, his son Shatrushalya and his son Bhao Singh. The inscription then specifically highlights and eulogises the prowess and achievements of *Maharajadhiraja* Maharao Shri Bhao Singh whose valour fragrance spreads far and wide. The inscription was inscribed in *Vikram Samvat* 1734, Saka era 1599 *prabhav samvatsar* of *uttarayan surya* during *vasant ritu* (spring season), *vaisakh*, *shukla paksha*, on the auspicious day of - *tithi akshya tritiya*, *ghati 58 rohini nakshatra,13 ghati uprant margasirsa ati gand yoge ghati 19 taitil karane*.

The *hadoti* dialect part of the epigraph describes initiation of the *baori* making process. *Raniji* Bhavalde, Bhao Singh's chief wife of Sisodia descent, sponsored the *baori* in interest of the entire public. A festivity was held on the occasion in *singh lagna*, propitious *muhurat* in centre of the Bundi fortress - *garhi* and

rituals were performed by *purohit* Kikoji. *Jyotishi* Bhat Kishanji, *Vyas* Kamalnayanji, *kotwal* Ramchandraji, *karkun* Shankar, Vaikuntharaiji, Anoopchandraji, Shubhkaranji; and the queen's attendants Asadhari, Kanakveli, *dasi* Manu, Rupa, *badarani* Kasumbhi; *usta* Rauji, *pancholi* Jodhraj, etc., were amongst the event attendees. Last lines in the epigraph have become rather illegible to comprehend.

Plate 4. Epigraph Niche

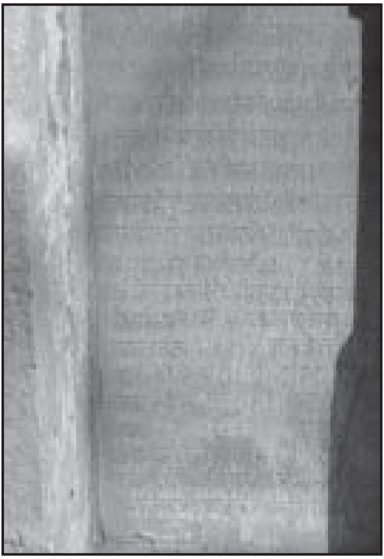

Plate 5. The Epigraph

The 19th step from here, with 20x20 sq. ft. size is larger in dimensions, takes a northward turn and has an imposing 20 x14 ft. Jaina style *torana*. The adjacent 18x12 ft. archway-*mehrab* entrance (Plate 6.) was embellished with dancing females painted in Bundi style on flanking pilasters, and floral motifs and illustrations on the front and ceiling, though much of the

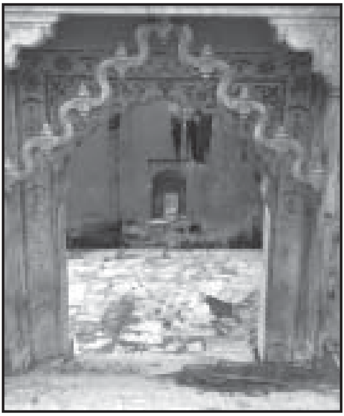

Plate 6. First entrance with torana and mehrab.

colours and forms presently seems faded and worn out. (Plate. 7 and Plate. 8)

Plate 7. Painted forms on first entrance *mehrab*, left side.

Plate 8. Painted motifs on first entrance *mehrab*, right side

Two fish figures suggestive of water symbol adorn the arch *mehrab* behind the *kund*, flanking left and right. (Plate. 9) The support walls were buttressed and made massive at the bottom, intended in all likelihood to provide strength against intense lateral pressures to the underground edifice. The *kund* is rectangular and 32x25 sq. ft. in proportions. As known locally, the main sources of water are the two lakes Navalsagar – built by Maharao Raja Ummedsingh, and Jaitsagar – built by Mina chief Jait Singh, ground water and rainwaters, etc.

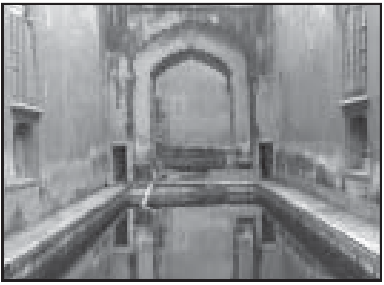

Plate. 9. Arched entrance with fish symbols above the *kund*

The *baori* also consist of a twelve pillared pavilion *baradari*, on second level steps, atop the *torana* and arched entrance. (Plate.10. and Plate. 11.) It displays remnants of an imposing structure with domical roof, two cenotaphs at either end, trabeate corbelled arches, bracketed eaves, etc. The pillars, representing *mishraka* type, are generally square based, slender and fluted shaft, placed within arched enclosures. This is the same legendary *baradari* where poet Surya Malla Mishrana is said to have composed several of his illustrious works.

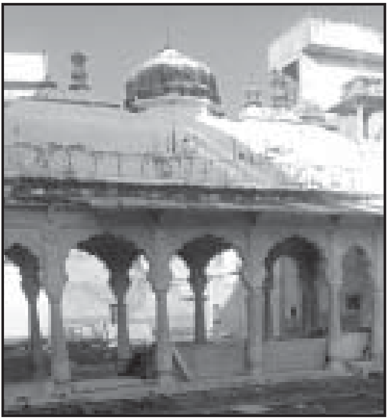

Plate 10. *Baradari*

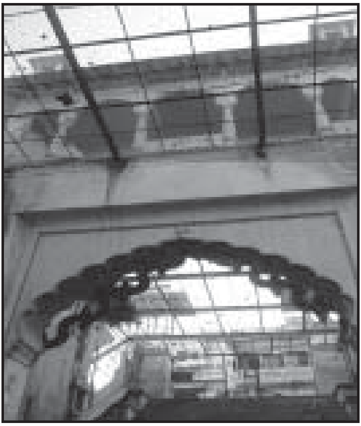

Plate 11. *Baradari*, view from below

The monument, itself symbolising water that represents sacred source of life in Hindu culture, is embellished with several decorative niches, mostly housing divine figures that validate its sacrosanct nature. The *Aparajitaprchha* enjoined installation of deities' images – *devata murtis*- in the niches or *gavakshas*. The deities projected in the *baori* niches include Ganesha, Saraswati, Vishnu, Brahma, Sivalinga with Nandi and Indra amongst others. Placement of Ganesha and Saraswati icons below entrance cenotaphs manifests the ancient practice of sculpting Ganesha and Goddess Saraswati on flanking sides of the *baori*. *Airavataruda Indra*, epitomising his relation with rains and water, is placed on the arched niche fronting the *baori* entrance. Figures of the primordial creator, *chaturmukh* bearded *padmasana* Brahma, (Plate.12 and Plate.13) and sustainer of the creation, *garudasin chaturbhuji* Vishnu, with their characteristic iconographic aspects,

respectively occupy the left and right-side niches of the *kund*. Their niches are topped by temple *shikhar* forms in arched frames. Miniatures forms occupy panel frames in Vishnu, Brahma and Indra niches. As a deviation from prescribed iconography, Vishnu has been carved in standing - *sthanaka* posture with *garuda* rather than in his s*esashayyin* or *jalasayyin* aspect (Plate.14 and Plate.15).

Plate.12. *Padmasana* Brahma in corbelled Niche

Plate.13. Brahma Image, details.

Plate.14. *Garudarudha* Vishnu in corbelled Niche

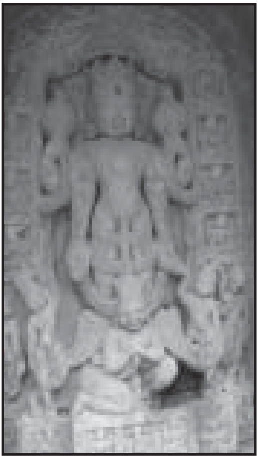

Plate.15. Vishnu Image details

The *baori* displays variety in structure of the cenotaphs viz., rectangular at main entrance, domical above the archway on the *kund*, and small square above the *baradari* roof. (Plate. 16, Plate.17 and Plate.18)

Plate 16

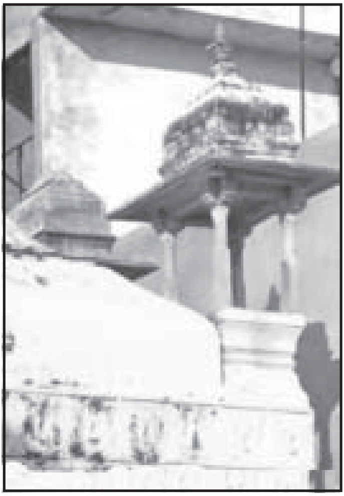

Plate.16, Plate.17, Plate.18. Types of Cenotaphs on kund mehrab, entrance, and above baradari.

The *baori* structures are made of red coloured stone and limestone while the walls are embellished with rectangular slabs.

The *baori* walls towards its back are jutted against haphazardly adjoining houses while a meshed grill has been added overhead for safety purposes of the site from stray animals, birds, etc.

IV

Summation

Given its mainstream city location near a prominent shrine, the regally commissioned *baori* might have served variety of purposes, such as that of a subterranean water site, patronising a popular architectural form, public convergence place for the women gathering for filling water, performing religious rituals, etc., signifying its life-giving forces and socialisation role. Its architectural components reveal a synthesised version with elements of Hindu, Jaina and Islamic art features assimilated therein.

However, like several other heritage sites the status of the monument has adversely affected both its utilitarian function as well as aesthetic aspect, posing imminent threat of its falling into oblivion. Dumping of varied stuff including garbage, haphazardly located encroachment prone dwellings, eroded painted forms, mutilated sculptures, broken stairs, unkempt surroundings, pigeon droppings tarnishing heritage sculptures, and general inertia and apathy towards indelible significance of the historic heritage, may entail a loss of the cultural heritage for posterity. Conservation of such places of historical relevance and ingenious technology is need of the hour. On a positive note, the *baori*, presently under lock and key, has been entrusted to the Indian National Trust for Art and Cultural Heritage (INTACH) by the Government of Rajasthan under its 'Adopt a Monument' Scheme to ensure public/private participation in association with the Department of Art and Culture for maintenance and preservation of dilapidating monumental heritage for future generations.

Perpetuation of heritage sites is not merely the responsibility of the government. A pro-active approach and sensitivity on part of the locals as well may not only contribute towards conservation of the artistic, synthesized cultural, historic legacy and preserve built heritage, preserve traditional hydraulic engineering techniques, sustain water resources, but would also boost up tourism prospects. The monument symbolises the distinct Indian tradition of environmental consciousness, architectural ethos, and historical milieu. In keeping with its historical, artistic and heritage prominence, the paper underlines the need for preservation of the now decrepit heritage masterpiece.

Acknowledgements

The author is obliged to Prof. Indresh Pathik, Department of Sanskrit, Dev Sanskriti Vishwavidyalaya, Shantikunj, Haridwar for his generous assistance in interpreting the *baori* inscription. The valuable logistic assistance by Mr. Vijay Gour, resident of Mochi Bazar, Bundi is gratefully acknowledged. Plate. 4 is courtesy silkroadgallery.co.uk video, rest all are self-photographed.

References

1. Study of the monument through site visit.
2. Inferences drawn from the *Bhavalde Baori Inscription*.
3. *Aparajitaprccha of Bhuvandeva*. 1950. ed. Popatbhai A. Mankad. Gaikwad Oriental Series no. CXV. Baroda: Oriental Institute.
4. Jhalakikar, Vamanacharya.1886. *Amarkosa, with commentary by Mahesvara*. Bombay: Nirnayasagar Press.
5. Dhoundiyal, B.N. 1964. *Rajasthan District Gazetteers- Bundi*. Jaipur: Jaipur Printers.
6. Gahlot, Jagadish Singh. 1960. *Bundi Rajya (History of Bundi State)*. Jodhpur: Hindi Sahitya Mandir.
7. *Rajavallabha*. 1965. Ahmedabad: Mahadev Ramchandra Jagusthe Books Depot.
8. *Samarangana-Sutradhara*. 1966. Gaikwad Oriental Series no. XXV. Baroda: Oriental Institute.
9. stepwell | Definition, History, Major Sites, & Facts | Britannica, https://www.britannica.com
10. *The Stepwells of Bundi - Rajasthan*, Silk Road Gallery, available at:https://www.youtube.com/watch?v=_rG5tjRCHvs
11. Tod, James.1839 [1971].*Travels in Western India: Embracing a Visit to the Sacred Mounts of the Jains, and the Most Celebrated Shrines of Hindu Faith Between Rajpootana and the Indus*. London: W. H. Allen.
12. Shah, Priyabala. 1958. *Visnudharmottara Purana*. Baroda: Oriental Institute.

Prof. Preeti Sharma

Dean, FSS & Head

Department of History & Indian Culture

Banasthali Vidyapith

P.O.Banasthali Vidyapith Tonk-304022 (Rajasthan)

Email: preetisharma1998@gmail.com

M. : 9887550864

❑ ❑ ❑

Banking and Insurance Systems in Early-Modern India

• **Abhishek Parashar**

In pre-modern India, bankers and moneylenders formed a highly specialized commercial group engaged in activities such as money exchange, usury, issuing and discounting hundis, insurance, banking, and trade. The bania and mahajan communities dominated the banking and insurance industries. Yet, there is evidence that individuals from other communities also engaged in these professions. These bankers played a significant role in providing loans, advances, and other services to the rulers and state, officials, ordinary citizens, merchants, etc. Indigenous banking focused more on lending and providing other essential services than on accepting deposits and managing funds. Thus, it had disadvantages in comparison to modern banking. However, it was a highly effective and precise system that was straightforward to implement and devoid of delays. During the pre-modern era, the insurance business was a distinctive feature of the Indian commercial landscape, as it was highly competitive and yielded enormous profits for its businessmen. In an era without modern transport and communication, it was a highly risky industry, but it flourished throughout India due to its simplicity and dependability. Even goods destined for foreign destinations were insured prior to the advent of modern insurance systems. This paper relies heavily on archival records located at the Rajasthan state archives in Bikaner and the private records of the Poddar family held at the NagarShri shodh sansthan.

Keywords : *Banking, insurance, business, community, indigenous.*

Introduction

The origins of banking and credit can be traced back to ancient India,[1] where bankers played a crucial role in society.

Historical evidence demonstrates that the concept of banking flourished in India even before the arrival of the British.[2] The majority of the Vaishya community was involved in this line of work.

This paper discusses banking and insurance practices, as well as their structure and nature of transactions, using primary evidence from records accessible from the Rajasthan State Archives in Bikaner and private record collections from the homes of mahajans and poddars who were known for their moneylending and trade businesses.

The term “indigenous” banking outlines the role of “indigenous bankers” in society without imposing any legal requirements on the bankers. This description becomes complicated because so-called bankers would lend out their own personal or family funds for interest. So, the question arises of how to differentiate these moneylenders from bankers. L. C. Jain defines a banker as “individuals or firms that extend loans, accept deposits, and sell in hundis, plainly showing banking functions,” whereas the term “moneylender” refers to individuals or firms who extend loans but do not often deal in deposits or hundis.[3]

Role of liquidity: pre-modern times

The development of banking as an institution can be evaluated based on the use of liquidity, as evidenced by the collection of cash-based land revenue from villages, thereby incorporating them into the formal money banking system.[4] Tavernier noted that if a village does not have sarraf, it must be a small village. Generally, for villages sarraf served as a banker, dealt in remittances of money, and issued letters of exchange.[5] During the pre-modern era, sarrafs were responsible for the examination and exchange of currency, issuance and discounting of hundis, insurance of products, and short-term deposits. In addition, they benefited from the absence of caste hegemony in the money-lending industry.[6] Even government employees deposited revenue revenues with sarrafs instead of the treasury in order to profit from interest. For financial gain, the sarrafs then lend money at higher interest rates. The structure and functions of merchant’s and usurer’s capital depended on the size and nature of the social division of labour, linkages between the different areas of production and

consumption, methods in which the surplus product was taken out and redistributed, and the specifics of the reproduction processes.[7] Commerce and usury were the traditional business activities of occupational castes and communities in India during the pre-modern period.

Communities and their role

The trading and moneylending communities played a vital role in tax collection, state finances, commerce, and army supply, which allowed them to climb to important positions in the government of the princely realms of Rajputana. Later on, when these communities migrated out of Rajasthan they came to be referred to as the Marwaris. Due to their different operations, bankers can be categorized as minor bankers and moneylenders based on their presence in major cities and large villages. Money was lent to farmers and artisans for seeds, payment of land taxes and rent, and the purchase of carts, livestock, and land.[8] During famines and times of scarcity, the government provided tagai (agricultural) loans using sahukars and bohras. These bankers also lent money to princes who were experiencing financial difficulties. The transactions were conducted with hundis or bills of exchange, and the big seths established banking branches in India's premier cities, including Rajasthan. This firm generated primarily interest income on loans and hundawan, which is commission money from hundis.

The operating mechanism of the indigenous Indian banking system was quite simple, well organized, but lacked coordination. Thus, at the village level, the moneylenders were mostly the wealthy squirearchy who dominated village culture and lent in cash, while others were the professional moneylenders who were labeled mahajan and bohra and whose primary business was the distribution of loans. Some moneylenders worked at a macro level with branches named after their forefathers in numerous cities around the nation. Moving on to the next category of bankers, who had offices and branches throughout India in major cities where munims and gumashtas, or agents, worked as employees and operated the business on their behalf, we find those who employed munims and gumashtas, or agents. These agents were generously compensated and worked with great efficiency. The agents utilised

instructions and submitted returns and work reports to the top office. In addition, sahs and mahajans previously worked for bankers. Predominantly, bankers and moneylenders ran their businesses on an individual basis, with occasional private collaboration amongst family members in joint families. Though not definitive, there was a connection between moneylenders and bankers in villages and towns, since some moneylenders from towns would loan money to professional lenders in villages for agricultural activities with the understanding that the produce would be sold to the moneylender.[9]

Indigenous and Modern Banking: Differentiation

The two systems differ significantly in that all indigenous bankers did not accept deposits, whereas modern banking systems rely on deposits as an essential component of their working capital. Both systems permitted withdrawals against deposits, which included cash transactions for indigenous banking and cheque transactions for modern banking. Pre-colonial indigenous moneylenders and bankers were not particularly committed to money-lending or banking because they combined it with other businesses. Furthermore, the integration of banking and other businesses is essential to modern banking. There was a banking system in early and medieval Europe, for example, there is evidence of Jewish moneylenders in Islam who employed credit instruments, specifically bills of exchange, and early bankers in the Mediterranean region were exchange merchants.[10] Furthermore, the literature provides examples of medieval Europe where banks began to function to provide services previously performed by various merchant companies and firms for one another.

Banking instruments

The primary responsibilities of bankers were money lending, currency exchange, vending in hundis, commodities insurance, deposits, and commerce. These bankers were called as sah, sahukar, sarraf, bohra and mahajan. Sarrafs were involved with hundi writing and discounting, currency exchange, insurance, and the acceptance of deposits. The Sahs worked separately from the Sarrafs in urban areas[11] on fund circulation, in hundis, lending, and commerce, while the mahajans worked in rural areas by providing

loans for agricultural activities and small artisans.[12] The commercial community of sarrafs and sahs contributed to the establishment of a credit system in Rajasthan. The state imposed a professional tax on mahajan's earnings, and in exchange, they enjoyed the patronage of the ruling class. The traders and merchants were commercial borrowers, and because of the inherent risk of non-payment, they were charged a lower interest rate than the state, rulers, and officials. There are mentions of individuals borrowing money from bankers of their caste and, in certain situations, from bankers of a different caste. In addition, women were active in money lending and banking. The amount borrowed was proportional to the need and not in multiples of 5 or 10, etc.[13]

There were written agreements duly signed by the borrower, such as hundi, chithi, khat, etc.,[14] for the extension of loans with details such as amount, interest rate, repayment date with duration, and the mortgage associated, such as gold jewels, etc., and the lender in bahi kept accurate records. Loans were also issued based on verbal agreements,[15] with the moneylender occasionally including a condition for a mortgage deed known as 'aiwalo',[16] in the absence of which the mortgage would be liquidated to recover the loan amount. Repayment was either in cash or hundis. Moneylenders and bankers also engaged in various trades of grain, precious metal, fabric, and speculation of these commodities, wherein grain, oilseeds, etc. were preserved during harvest and sold later for a profit,[17] such as storing maize in khattis (granaries) to prevent it from decaying.[18]

Tavernier describes the transformation of money by bankers as state-issued currency coins with different names, weights, and fineness.[19] The value of these coins fluctuated constantly in relation to the price of bullion. The premium charged on metal coinage and exchange ranged from 1 ½% to 2%, and this activity yielded profitable returns.[20] This dual function of receiving deposits and lending funds is fundamental to the current banking system. Sarrafs who drew a hundi to facilitate remittance also accepted deposits, and when hundis were discounted, money lending occurred, demonstrating that deposit banking did exist in pre-modern Rajasthan. The banking community of Rajasthan assisted Rajput princes and their families with their personal finances for hath-kharch and rozana-kharch to cover the daily expenses of the ruling

chief's household, state administration, repayment of loans and interest, etc.[21] The repayment of these debts was accomplished by attributing governmental income to the bankers. The mahajans and sahs were selected by the Rajput monarchs of Rajasthan to handle revenue at the pargana and state levels, respectively.[22] There are literary references to modi, who supplied rations and paid the state army. In addition, this interdependence between state and banker led to a shift in investment patterns, such as the system of 'ijara,' or revenue farming.[23]

Indigenous Insurance: *Jokham* or *Bima*

During the pre-modern time in India, the sarrafs operated the bima or jokham system, which was also known as the insurance business. The ships and cargo were insured, especially the East India Company ships that sailed in the Indian Ocean, by sarrafs from Surat.[24] Moreover, there were practices of commercial insurance (bottomry) known as 'avog'.[25] Many insurance companies were functioning in Rajasthan and other parts of India, as evidenced by chitthis, parwanas, etc.[26] References to insurance transactions can be discovered in private documents, such as Poddar family records, which contain mentions of 'jokhim' or 'Jokhum' or 'Jokham,' and in subsequent records where the term 'bima' has been employed to emphasize various aspects of the insurance industry. These documents included the nature and extent of insurance coverage, as well as commodity-specific information and insurance premium rates. The Marwaris provided jokhim as insurance, meaning a guarantee for goods and cash transfer, or hunda-bhara,[27] meaning risk and transportation charges, by means of a well-written contract or insurance deed specifying the details of name of the insurer and the insured, amount, premium charged, dates, and destination by utilizing their own transportation network. According to Sujan Rai, merchants entrust sarrafs with the carrying of their products and wares via hazardous roads often known as bima.[28]

Insurance Procedure

Correlative understanding and trust underpinned the sale and acquisition of insurance policies supported by complete and accurate record entry in a bahi. Jokhim ki Chitthi, a contract letter

outlining the terms of the insurance agreement,[29] was the primary document utilized. The hind side of the chitthi typically featured information about the commodities insured. A ‘firoti’ fine was imposed on those who breached their insurance contracts.[30]For instance, a jokhim of Rs.3,750 was taken from Churu to Amritsar at the rate of Rs. 5 and 12 annas percent. The chithi was revoked and a firoti of Rs.11 and 8 annas was paid.

The subsequent phase of the insurance procedure was nondh of covered goods.[31] The insurance company became liable for reimbursement only after nondh in which the owner of the insured products provided complete information about the insured goods. On the back of the chithi or on a separate invoice, the nondh was recorded. In both instances, the insurance company duplicated the nondh into the bahi. In the event that the insured products were fully damaged and lost, they were paid for their full value and cost. In the case of partial loss, however, bararh compensation was calculated based on a percentage proportional to the degree of loss or damage. For example, one bahi mentions that commodities worth Rs.2,000 were insured and shipped via ship. Due to various factors, the products were largely ruined, and the bararh was set at 75%. As a result, the insurance company compensated Rs.1,500 for the lost products.[32]

A key element of these agreements was the theek,[33] which stipulated a deadline by which commodities must arrive at their final destination or face penalties in the form of fines and interest. Records reveal that those working in the insurance field were compensated according to a predetermined schedule. In addition to merchants’ relatives, munims, gumashtas, and intermediaries like chadhandars, dalals, chowkidars, adhatis, qassids, boatsmen, cartmen, camel riders, and bahangiwalas (people who used to carry goods tied to both ends of a pole placed on their shoulder) worked in the insurance business.

There are references to communities like Brahmins, Jats, Charans, Gusains, Rajputs, Lavans, Jogis, Rebaris, Muslims etc. These communities worked with insurance firms to transport things from one location to another.[34] Vast caravans of bullock carts and katars of camels were on the move day and night, and along the navigable waterways were cargo-laden ships. Transportation and commerce were extensive and plentiful.

Insurance firms of Poddar seths'hadgaddis (branch seats) and business operations spanning throughout the country, wherein each region was managed by a local munim or gumashta who had been selected by the seths and who followed orders from the central office located at Churu in Rajasthan. Risk updates were communicated every two weeks via periodic assessment reports called utara. Gumashtas, or branch agents, may transact insurance business on behalf of their respective branches.[35] For example, in AD 1824, the Poddar seths sent a gumashta named Mukundram Brahman to Madhopur to purchase opium, where the agent purchased jokhim for Pali, Kishangarh, Kota, Jaipur, Tonk, Agra, Bundi, Churu, Karoli, Nagaur, and Pokhran, while earning insurance premiums of Rs. 103 and 2½ annas.[36]

The branch agentsor gumashtas of any given branch were empowered to transact insurance for other locations. The records of these transactions or *bahis*, particularly of seth Mirzamal Poddar tells us about the goods insured and trade routes, for e.g. bullion like gold and silver coins, iron, valuable jewellery and stones, opium, ordinary coarse cloths and expensive silk and woollen, saffron or musk, chheent (cloth), pash qabz (katar), zadave, jawahar (gold ornament with jewellery) and panna (emerald)[37] moving from Bikaner to Bhiwani, Bhiwani to Pali (Marwar) via Bikaner; Jaipur to Pali (Marwar) via Bikaner, Jodhpur to Bhiwani; Bikaner to Ajmer, Kota; Bikaner to Bahawalpur in Sindh, Bhavnagar to Jaipur etc.[38]

Insurance Rates

Marwari companies levied a jokhim fee as an insurance premium that was proportional to the value of the insured items and was based on the distance and volume of the covered commodities. There is a description of Rs 1882 and 2 annas which were charged as jokhim fee for goods worth Rs 47,058 and 4 annas at the rate of 4%, whereas Rs 71 and 12 annas were charged as a hunda-bhara fee for goods weighing 10 maunds at the rate of Rs 7 per maund.[39]This was known as the jokhim and hunda-bhara charge, and the rates were variable and calculated per maund item. The charges varied according to the commodities, such as gold and diamonds, and the required transportation distance.[40] The jokhim tax was higher for more valuable but lighter commodities, while the

hunda-bhara tax was lower, and vice versa for heavy items like iron and salt. Poddar insurance firms' competitiveness resulted in cheaper insurance prices.

In the indigenous insurance system, kachhi and pakki bima were also available. According to available documents, the insurance firmunder pakki jokhim paid full compensation in terms of quantity, quality, and value. In contrast, under kachhi jokhim, the insurance firm compensates the owner of insured goods based on the number and quantity of products, but not their value or quality. There was a substantial disparity in the responsibilities and liabilities of pakki and kachhi jokhim, which resulted in pakki jokhim having a higher rate than kachhi jokhim. In kachhi bima, the standard insurance rate was eight annas percent, whereas in pakki bima, the fee was one rupee percent.[41]

Hence, jokhim was classified as pakki jokhim with a larger premium where the insurer paid full compensation based on the value and quantity of the products, and kachchi jokhim with a smaller premium where the company simply reimbursed based on the amount of the items. On the record ofRaznawa bahi of Nanag Ram Mirzamal, dalali was charged at a rate of 10 annas per thousand on pakki bima worth Rs 1,11,300 and four annas and at a rate of 5 annas per thousand on kachchi bima worth Rs 33,200 and four annas.[42]

In addition, the Marwari insurers charged 10 annas per thousand for adhat and dalali on pakki bima. The intermediary bankers charged adhat,[43] while insurance agents charged dalali, and dharmada was levied for charitable and religious causes. Dharmada[44] was levied on all insurance transactions, which reveals the religious nature of the traders who had confidence in the almighty in order to lessen the business's inherent risk. In addition, insurance companies were responsible for the transit duty and zakat costs.[45] H.H. Wilson defines awak[46] as insurance, which is a transaction in which a person enters into a contract with a third party that protects him against future loss for a fee. Poddar records have numerous mentions of bima for the safe arrival of a ship, known as 'salamati ka bima.'[47] The insurance business was done on both an individual and partnership basis, with partnerships being more prominent due to their ability to share risk.[48] The term jokhim referred to transportation via waterways, whereas jokhim hunda-

bhara referred to the conveyance of products and money via road. The insurance industry was not immune to problems, which were resolved through mutual agreement and the panchayat.[49] Additionally, the indigenous insurance system was extended to cover imports and exports of goods through ports such as Calcutta and Bombay. Similarly, the Poddar collection contains references to insurance transactions in nations such as China, Vilayat (England), and others.[50]

Hence, the insurance business became a source of wealth for Marwari businesses in the 18th and 19th centuries, and it was regarded as a desirable investment. Looking at the nature and scope of the insurance industry, it can be summarised that it was simple, efficient, safe, and profitable when the routes were dangerous and modern modes of transportation and communication were unavailable.

Bibliography

1. Amar Farooqui, Opium City: The making of early Victorian Bombay, Three Essays Press, New Delhi, 2008.
2. B. L. Bhadani, Peasants, Artisans and Entrepreneurs, Delhi, 1999.
3. C.A. Bayly, ‘Indian Society and the Making of the British Empire,’ New Cambridge History of India, Cambridge, 1988.
4. Dilbagh Singh, ‘Rural Indebtedness in Eastern Rajasthan,’ PRHC, 1974.
5. F. Braudel, Civilisation and Capitalism (15^{th}-18^{th} Century), Vol. II, ‘The Wheels of Commerce,’ London, 1979.
6. George Buhler, The Laws of Manu, The Sacred Book of the East, Vol. XXV, 1806.
7. Girija Shankar Sharma, ‘The Role of Marwari Bankers in 19th Century,’ seminar organized by the Association of Indian Archivists and Punjab and Sindh Bank, New Delhi, 1983.
8. Govind Aggarwal, Samriddha Bhartiya Bima Paddati, Nagar shri, Churu.
9. G. D. Sharma, ‘Indigenous Banking and the State in the Eastern Rajasthan during the Seventeenth Century’, PIHC, 1979.
10. H. H. Wilson, A Glossary of Judicial and Revenue Terms, London, 1855.

11. Irfan Habib, "Banking in Mughal India," in Tapan Ray Chaudhary ed. 'Contributions to Indian Economic History,' Vol. I, Calcutta, 1960.
12. L.C. Jain, Indigenous Banking in India, Macmillan and Co. Limited, London, 1929.
13. Maru shri, Jan-June, Nagar Shri, Churu, 1980.
14. Nondh bahi, Raznawa bahi and other important records in Poddar collection, Churu.
15. R.C. Dutt, History of Civilisation in Ancient India, Vol. I, Delhi, 1972.
16. Sanad Parwana Bahi, Sawa Bahi, Kagad Bahi, Khat Bahi, Merta Bahi and Chithi Bahi, RSAB, Bikaner.
17. Tavernier, Travels in India, tr. V. Ball, ed. W. Crook, London, 1923.
18. V.I. Pavlov, Historical Premises for India's Transition to Capitalism, Moscow, 1979.
19. W.H. Moreland, From Akbar to Aurangzeb - A Study in Indian Economic History, Delhi, 1990.
20. Zakat Parwanas, communication letters addressed to various branches written from Churu, Poddar collection, Churu.

Footnotes

1. R.C. Dutt, History of Civilisation in Ancient India, Vol. l, Delhi, 1972, p. 39. In those days, loans and usury were well understood, and Rishis (worldly men, not hermits) occasionally lament their state of debt with the simplicity of primitive times.
2. George Buhler, The Laws of Manu, The Sacred Book of the East, Vol. XXV, 1806, p. 286: "It must have happened before Manu's time that moneylending gave way to banking. To paraphrase his section on the topic, "a sensible man should deposit money with a person of good family, of good conduct, well acquainted with the law, veracious, having many relatives who are wealthy and honourable (arya)," he writes, "a person of good family, of good conduct, well acquainted with the law, veracious." And he goes on to detail the regulations that guided the administration's approach to loans and interest."
3. L.C. Jain, Indigenous Banking in India, Macmillan and Co. Limited, London, 1929.

4. Ain-i-Akbari (1595-96) estimated that the total assessed revenue (Jama) was approximately 90 million rupees: Irfan Habib, "Banking in Mughal India," in Tapan Ray Chaudhary ed. 'Contributions to Indian Economic History,' Vol. 1, Calcutta, 1960, p. 2.
5. Tavernier, Travels in India, tr. V. Ball, ed. W. Crook, London, 1923, I, p. 24.
6. W.H. Moreland, From Akbar to Aurangzeb - A Study in Indian Economic History, Delhi, 1990, p. 146; Irfan Habib, 'Banking in Mughal India', op. cit., pp. 1-20: Citing Sujan Rai, "the honesty of the people of this country" when he says that "even when a stranger and unfamiliar person deposits hundreds of thousands in cash, for safe keeping, with the sarrafs in the absence of any witness, those righteous ones repay it on demand without any invasion or delay."
7. V.I. Pavlov, Historical Premises for India's Transition to Capitalism, Moscow, 1979, p. 83.
8. Dilbagh Singh, 'Rural Indebtedness in Eastern Rajasthan,' RHC, 1974, p. 82.
9. L.C. Jain, Indigenous Banking, op. cit., p. 28.
10. F. Braudel, Civilisation and Capitalism (15th-18thCentury), Vol. II, 'The Wheels of Commerce', London, 1979, pp. 390-95.
11. G.D. Sharma, 'Indigenous Banking and the State in the Eastern Rajasthan during the Seventeenth Century', Proceedings of Indian History Congress, 1979, pp. 432-33, 435.
12. The description of the indigenous bankers given in the Banking Enquiry Committee, Vol. IV (1929-30), provides a better understanding of the functional aspects of bankers.
13. Merta Bahi, VS 1750/AD 1693, Bhartiya Vidyamandir Shodh Pratishthan, Bikaner: Sivdas Agarwal, a trader borrowed Rs. 19 for four months at a 10 ½ percent rate of interest against the security of Rs. 22.50 from a moneylender in Merta for his trade-related requirement.
14. Kagad Bahi, Khat bahi, Chithi bahi and Sawa Bahi, VS 1820-80/ AD 1763-1823, RSAB, Bikaner and many other archival documents mentions these written agreements repeatedly.
15. Merta Bahi, VS 1750-51/AD 1693-94, Bhartiya Vidyamandir Shodh Pratishthan, Bikaner: The oral agreement was known as 'arah ki boli'.

16. Merta Bahi, VS 1790/AD 1733, Bhartiya Vidyamandir Shodh Pratishthan, Bikaner: in this bahi we get an instance,in which Rs.345 were lent in AD 1737 on aiwalo, while mortgaging opium, cloth and hundi.

17. Merta Bahi, VS 1790/AD 1634, Bhartiya Vidyamandir Shodh Pratishthan, Bikaner.

18. B. L. Bhadani, Peasants, Artisans and Entrepreneurs, Rawat Publishers, Delhi, 1999, pp. 355.

19. Irfan Habib, 'Banking in Mughal India', op. cit., pp. 3-8.

20. Sanad Parwana Bahi, No. 14, VS 1831/AD 1774, Jodhpur Records, Rajasthan State Archives, Bikaner (from now on RSAB).

21. Sawa Bahi Sadar, No. 22, VS 1837-38/AD 1780-81, Bikaner Records, RSAB.

22. G.D. Sharma, 'Indigenous Banking', op. cit., pp. 432-41.

23. C.A. Bayly, 'Indian Society and the Making of the British Empire,' New Cambridge History of India, Cambridge, 1988, pp. 36-37; Girija Shankar Sharma, 'Sources on Business History of Rajasthan (18th-19thCentury),' Abhilekh, 1982, p. 40.

24. Amar Farooqui, Opium City: The Making of Early Victorian Bombay, Three Essays Press, New Delhi, 2008; Shireen Moosvi, "Trade in Mughal India" in 'Indian Business Through the Ages,' FICCI, 1999, p. 76.

25. Govind Aggarwal, Samriddha Bhartiya Bima Paddati, Nagar Shri, Churu, p. 29.

26. Ibid.

27. H.H. Wilson, A Glossary of Judicial and Revenue Terms, London, 1855, p.212. It defines hunda-bhara as "the contract for the transportation of goods or the like, in which all duties and charges are included."

28. Irfan Habib, Banking in Mughal India, op. cit., pp.15-17.

29. Girija Shankar Sharma, 'The Role of Marwari Bankers in 19th Century,' paper presented in a seminar organised by the Association of Indian Archivists and Punjab and Sindh Bank, New Delhi, 1983.

30. Govind Aggarwal, 'Samriddha Bhartiya,' op. cit.,p. 13.

31. Bahi no. S 161, Asoj Sudi 2, VS 1877/AD 1820, pp. 228-243, Poddar collection, Churu: a nondh regarding goods transport is

explained. Nondh was done for places like Farrukhabad, Calcutta, Lucknow, Patna, Makhsudabad, Amritsar, Jaipur, Kanpur, Rewari, Prayag, Agra, Mathura, Jhansi, Benaras, Kalpi, Bikaner, Rampur, Ramgarh, Rajapur, Vikrampur, Mau, Kota, Gokul, Chhatrapur, Sitapur, Daulat Rao ka Lashkar etc.

32 Bahi No.S161, op. cit., p.195.

33 Govind Aggarwal, 'Samriddha Bhartiya,' op. cit.,p. 19.

34 Girija Shankar Sharma, 'Sources on Insurance Business in Rajasthan during 19thCentury,' Abhilekh, 1983, p.4.

35 Bahi No.S161, VS 1874-77/AD 1826-30, Poddar Collection, Churu, pp.171-74, 228-43.

36 Bahi No.V19, VS 1881/AD 1824; Poddar Collection, Churu, pp.216-17.

37 Maru Shri, Jan-June, Nagar Shri, 1981, p. 14. Nondh bahi of Zindaram Mirzamal's Bombay branch, VS 1871-74/AD 1814-17, p. 19, nondh details given in the particular record are as follows:

4258) Kapare ki vigat

9000) Petee aik chamro mandi jis mahi iso bhant chhay

5000) Pesh qabaz-aik jadau-1 4000) Pesh qabaz-4

26900) Jadane tatha Jawahar- aik mahi

6000) Dabbi aik- jis mahi panna chhai

5000) Panna-533 Rathi-975

1000) Panno aik moto rathi-108

900) Chheent

52,058)

38. Girija Shankar Sharma, Marwari Vyeopari, Bikaner, 1988, pp. 27-28.

39. Nondh bahi of Zindaram Mirzamal, Bombay shop, VS 1871-74, p. 19; Maru shri, Jan-June, Nagar shri 1980, p. 14. The details of rates of insurance fees are as follows:

1882) Jokhum Rupiya 47058) Dar 4) Sainkara

71) Hunde bhara ka Man 10) Dar 7)

8) Bardano

1961)

40. Kagad Bahi, VS 1871/AD 1814, Bikaner Records, RSAB: It mentions the name of seth Jagman Pratap Sadani of Bikaner, an owner of an insurance firm, who was indulged in the insurance

business on the route of Bikaner-Bahawalpur, whereas Mirzamal and his brothers insured goods from Churu to Pali and Churu to Ajmer via Ramgarh, and Bhavnagar to Jaipur.

41. Govind Aggarwal, Maru shri, op. cit., p. 14.
42. Raznawa bahi, Nanag Ram Mirzamal, Calcutta shop, VS 1883-87/ AD 1826-30, p. 199, Poddar collection, Churu.
43. Ibid.
44. Ibid, p. 201.
45. Zakat Parwanas issued by various rulers mentions this particular practice among traders. Marwari insurance firms paid all kinds of custom duties enroute, whether the goods were insured or not.
46. H.H. Wilson, A glossary, op. cit., p. 40.
47. Letter No. S 779 in the Poddar collection, Churu. The letter written from Churu headquarters to Bombay branch dated Sawan Badi 14, VS 1883/AD 1826. It was addressed to Zindaram Mirzamal of Bombay branch regarding a famous ship kaderbaksh.
48. Govind Aggarwal, 'Samriddha Bhartiya,' op. cit., p. 35.
49. Ibid, p. 103.
50. Bahi No. S 161, VS 1874-77/AD 1817-20, Poddar Collection, Churu, pp. 191-96; Govind Aggarwal, 'Samriddha Bhartiya,' op. cit., p. 79 mentioning letter no S 1677 having foreign insurance example of Bhavnagar to Muscat.

Abhishek Parashar
Assistant Professor
Department of History, Hansraj College
University of Delhi

❑ ❑ ❑

Trade Routes as the Engines of Economic and Urban Growth : A Study of Nagaur, Merta and Ladnun (17th-18th Century)

• Shabir Ahmad Punzoo

Trade and urbanization go hand-in-hand. Trade centers generally evolve as urban regions. For the measurement of the development of any small area, town, city, or even country, trade is one of the basic indices. For trade, good routes are required. Throughout history, trade routes have played a significant role in the urbanization of several countries and still continue to play a similar role. The afore-mentioned study analyzes how trade routes served as engines of economic and urban growth and key centers for the urbanization process in the seventeenth- and eighteenth-century Nagaur, Merta, and Ladnun regions of Western Rajasthan. The present study examines their significance as commercial towns. Our study tries to explore how the towns became the rendezvous of merchants due to their proximity to trade routes.

Keywords: Trade routes, Trade, Urbanization, Commodities.

Nagaur

Nagaur was the prominent town in the Marwar division of Rajasthan. It was a place of great antiquity.[1] It was an important centre of Jainism and Sufism.[2] It is the chief town of the same name located in the Jodhpur division. It is situated at 26°25´ and 27°40´N latitude and 73°10´ and 75°15´E longitude.[3] Being situated in the centre of the state, it is bounded by Bikaner and Churu on the north, Sikar and Jaipur on the east, Ajmer, and Pali on the south and Jodhpur on the west.[4] It is comprised of eight tehsils viz., Nagaur, Ladnun, Merta, Jayal, Didwana, Parwatsar, Nawa and Degana[5] (see Map. 1).

It was known by different names like *Nagaura, Nagapura, Nagapattana, Ahipura, Ahichhatarpura and Bhujanganagara*.[6] It is believed that it was originally ruled by Nagas from whom the name of the town is taken.[7] After them, it was ruled by the Chauhans and was included in *sapaldalaksha*.[8] In ancient times, the northern region of Jodhpur along with Bikaner was known as *jangaldesh* and later *sapaldalaksha*. The foundation of Nagaur is assigned to Rai Bisal (sent by last Chauhan ruler Prithviraj) according to report of Alexander Cunningham under Archaeological Survey of India.[9] After Chauhans, it came under the muslim rulers and under Iltutmash, it was a minting town as we find coins of the same ruler which bear the mint name of Nagaur.[10] It was a sarkar of suba Ajmer and consisted of thirty parganas during the great Mughal emperor-Akbar. The jagir of Nagaur, under the Great Akbar, was provided to Mirza Sharifuddin (his brother-in-law). Akbar himself visited it two times (in 1570 and 1572). Nagaur also served as copper coin minting town under the Great Akbar. In the early eighteenth century, this town was captured by the ruler of Jodhpur. Like Pali, it was another headquarter pargana of Marwar.

Map 1: Tehsil Map of Nagaur (Source: Internet).[11]

Since early medieval times, Nagaur was one of the prominent trading centres of Rajasthan. For trading purposes, it was considered as nodal centre of Rajasthan because traders and merchants were passing through Nagaur from one place to another. Due to its proximity to trade routes, trade and commerce flourished in Nagaur. It was situated on a route that ran from Delhi to Ahmadabad,[12] Sindh, Kabul, and Multan[13] to Patan and from Malwa to Bikaner or Rajghar.[14] While going through the *Ain*, many routes were passing through Nagaur like a route which connected Agra to Ahmedabad was going through Nagaur.[15] Northern states like Punjab and Bikaner were connected by Nagaur to the Deccan.[16] Following are the important internal and external trade routes passing through Nagaur:

(A) Internal Trade Routes[17] (See Map 2)

1.	Nagaur to Pugal	Nagaur-Bikaner-Pugal.
2.	Kota to Nagaur	Kota-Bundi-Deoli-Ajmer-Merta-Nagaur.
3.	Bikaner to Jaipur	Bikaner-Nagaur-Rupnagar-Jaipur.
4.	Bikaner to Jodhpur	Bikaner-Nagaur-Khiwasar-Jodhpur (Mandor).
5.	Bikaner to Pali	Bikaner-Nagaur-Jodhpur-Pali.
6.	Bikaner to Udaipur	Bikaner-Nagaur-Pali-Desuri-Udaipur.
7.	Rajghar to Pali	Rajghar-Churu-Nawalgarh-Didwana-Nagaur-Pali.
8.	Jaisalmer to Jaipur	Jaisalmer-Pokharan-Phalodi-Nagaur-Rupnagar-Jaipur.
9.	Jhunjhunu to Pali	Jhunjhunu-Fatehpur-Ladnun-Didwana-Nagaur-Pali.
10.	Ajmer to Anupgarh	Ajmer-Merta-Nagaur-Bikaner-Mahajan-Anupgarh.

(B) External Trade Routes[18] **(See Map 3)**

1.	Multan to Jodhpur	Multan-Bahawalpur-Pugal-Bikaner-Nagaur-Jodhpur.
2.	Jodhpur to Kashmir	Jodhpur-Nagaur-Hardesar-Nohar-Sirsa-Bhatinda-Amritsar-Kashmir.
3.	Bikaner to Deccan	Bikaner-Nagaur-Merta-Bundi-Kota-Jhalara Patan Ujain- Deccan.
4.	Delhi to Ahmadabad/	Narayana-Narhad-Reni-Nagaur-Ajmer-Delhi to Gujarat Ahmadabad/Gujarat.
5.	Agra to Ahmadabad	Agra-Nagaur-Ahmadabad/Gujarat.
6.	Ajmer to Ahmadabad	This route connected Nagaur to Ahmadabad.
7.	Nagaur to Ayodhya	Nagaur-Ajmer-Ayodhya.
8.	Ajmer to Jodhpur	Ajmer-Nagaur-Bikaner-Jodhpur.

From the view point of trade and commerce, these routes were very fruitful and beneficial for traders.

Map.2 (Drawn by Mr. Faiz Habib)

Note: All route maps in this paper are drawn by Mr. Faiz Habib, the senior most cartographer at Centre of Advanced Study, Department of History, A.M.U., Aligarh.

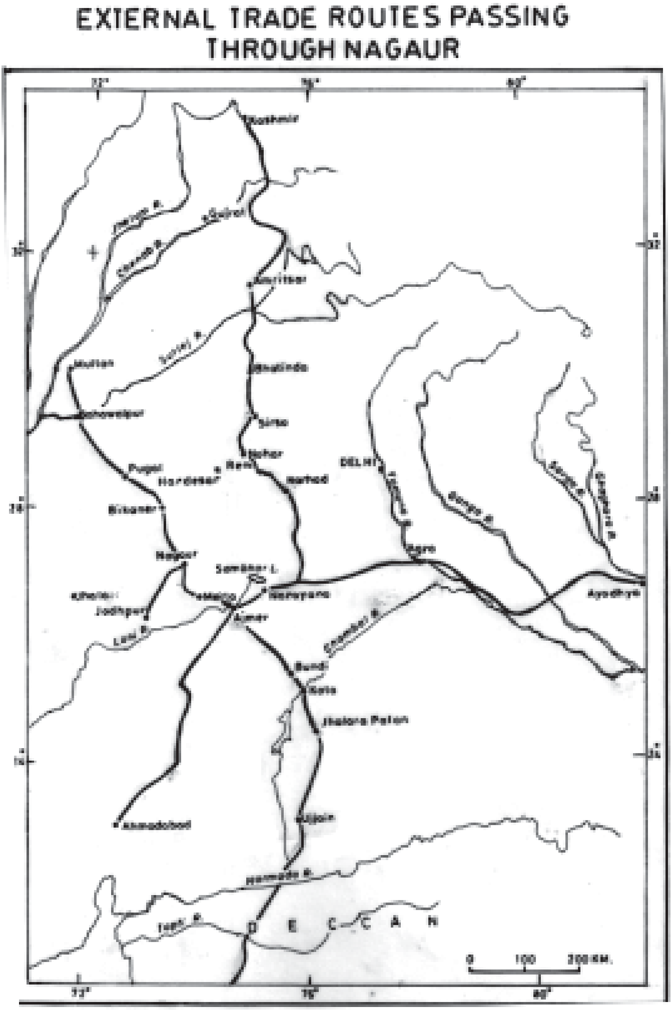

Map.3

For trade and commerce, good routes are required, so these routes helped in the growth of internal and external trade of Rajasthan. Nagaur flourished as a great trading mart and attracted a large number of traders and merchants, resulting in development of

mandis and markets. Nagaur was connected with many urban centres of Rajasthan and other neighbouring regions. For instance, in west it had commercial links with Multan and in north with Kashmir. Similarly, it was connected with Delhi-Agra in north-east and Gujarat, Malwa and Deccan in south. Both local and external traders were engaged in the internal and external trades of Nagaur. Nagaur exported and imported different kinds of articles. See table 1 and 2.

Table 1 : Export of various articles from Nagaur to other regions[19]

S.No.	Name of articles	Exported to
1.	Blankets	Jodhpur[20]
2.	Iron	Multan and Bikaner[21]
3.	Bullocks[22]	Multan and Sindh
4.	Silk	Nohar
5.	Wool	Nohar, Churu and Bikaner

Table 2 : Articles imported to Nagaur from different regions[23]

Name of articles	Imported from
Pashmina	Kashmir
Lead	Pali[24]
Dry fruits, dry ginger, woollen cloths, lac	Bikaner
Sindha salt	Bikaner

Various types of items were prepared at Nagaur like iron utensils, copper and brass utensils, ivory toys, etc. which were in great demand all over Rajputana.[25] Woollen and cotton cloths were produced in a good quantity in Nagaur.[26] It is a clear indication of

being a prominent trading centre (Nagaur) in the Jodhpur division of Rajasthan. We have reference of some important traders of Nagaur like Thakur Das Bhiwani, Akhai Ram, Shah Ram, Messrs Sahib Ray, Bhawni Das Meghani and Navneet Roy.[27]

Merta and Ladnun

Merta

It is said to be the commercial capital of western Rajasthan and was the second largest city after Jodhpur.[28] It was known by different names in ancient and medieval times like *medantaka, medatapura and medanipura.*[29] It is located at 117 kms north-east of Jodhpur and is currently a part of Nagaur district. We find the earliest reference of Merta in the Jodhpur inscription of Pratihara chieftain named Bauka (837 A.D.).[30] Nainsi places the foundation of the said town to 1458-59 A.D.[31] After capturing it in 1302, Alauddin Khalji put it under the viceroyship of Tajadi Ali.[32] The founder of Jodhpur named Rao Jodha distributed areas among his brothers and sons and Merta was given to Var Singh and Dudhaji.[33] It was occupied for some time by Sher Shah Suri and after his death, again came under the possession of Mal Deo of Jodhpur.[34] Mirza Sharifuddin, the brother-in-law of Akbar, attacked Malkot fort[35] of Merta in 1561 and afterwards it was given to Jaimal.[36]

It was the good example of composite culture as we find numerous religious and secular buildings here like mosques, jain and hindu temples, baoris, dargahs and talabs. Merta was an important urban centre and various articles were produced here like food grains, cotton, poppy, barley, indigo, etc[37]. The urban population of Marwar was mostly dependent on Merta as it was a leading producer of the food grains[38]. Raw cotton and cotton fabric were produced in huge quantity as noticed by Joseph Salbanke[39].

Ladnun

It was another important town and is located in the Nagaur district at 27°39´N and 74°24´E. It is located 30 kms north of Didwana, 225 kms north-west of Jaipur and 70 kms north-east of Nagaur respectively[40]. In earlier times, this town was located on route from Didwana to Hansi and Hisar-i Firuza[41]. This town had connections with Sultanate and Mughals as we find various inscriptions containing names of Delhi Sultans like Aladin Khiliji,

Firoz Shah Tughlaq, etc. and it was among the thirty mahals of Nagaur Sarkar under the Great Akbar[42]. This town had a fort, ancient jain and hindu temples, dargahs, bauris, etc. It speaks of the composite culture here. It was well known centre of the Jains. Wealthy merchants were operating here and it was known for the manufacture of gold[43]. It had trading connections with other regions as it was an important trading centre. For trading connections of Merta and Ladnun, see Map 4 and Map 5.

(A) **Internal Trade Routes of Merta and Ladnun[44]**

1.	Kota to Nagaur	Kota-Bundi-Deoli-Ajmer-Merta-Nagaur.
2.	Jodhpur to Kota	Jodhpur-Merta-Ajmer-Deoli-Bundi-Kota.
3.	Bikaner to Kota	Bikaner-Nagor-Merta-Kotra-Jahazpur-Bilata-Thun-Bundi-Kota.
4.	Jodhpur to Jaipur	Jodhpur-Merta-Parbatsar-Sambhar-Jaipur.
5.	Jodhpur to Kishangarh	Jodhpur-Merta-Kishangarh.
6.	Shahpura Banera (Mewar) to Bikaner	Shahpura-Merta-Nagor-Bikaner.
7.	Ajmer to Anupgarh	Ajmer-Merta-Nagor-Bikaner-Mahajan-Anupgarh.
8.	Jhunjhunu to Pali	Jhunjhunu-Fatehpur-Ladnu-Didwana-Nagor-Pali.

(B) **External Trade Routes of Merta and Ladnun[45]**

1.	Gwalior to Jodhpur	Gwalior-Karauli-Jaipur-Sambhar-Parbatsar-Merta-Jodhpur.
2.	Bikaner to Deccan	Bikaner-Nagor-Merta-Tatoti-Bundi-Kota-Jhalara Patan-Ujjain-Deccan.

3.	Shikarpur to Jaipur	Shikarpur-Jaisalmer-Jodhpur-Merta-Parbatsar-Rupnagar-Jaipur.
4.	Jodhpur to Delhi	Jodhpur-Merta-Ajmer-Mewat-Delhi.
5.	Agra to Mandu	Agra-Merta-Chittor-Ranthambore-Kota-Gagraun-Ujjain-Mandu.
6.	Delhi to Ahmedabad	Delhi-Bhiwani-Rajgarh-Churu-Ladnu-Nagor-Jodhpur-Jalor-Sirohi-Palanpur-Ahmedabad.
7.	Agra to Ahmedabad	Agra-Chatsu-Ladnu-Merta-Jalor-Ahmedabad.
8.	Multan to Jaipur	Multan-Lunkaransar-Bikaner-Jarrasar-Ladnu-Sambhar-Jaipur.

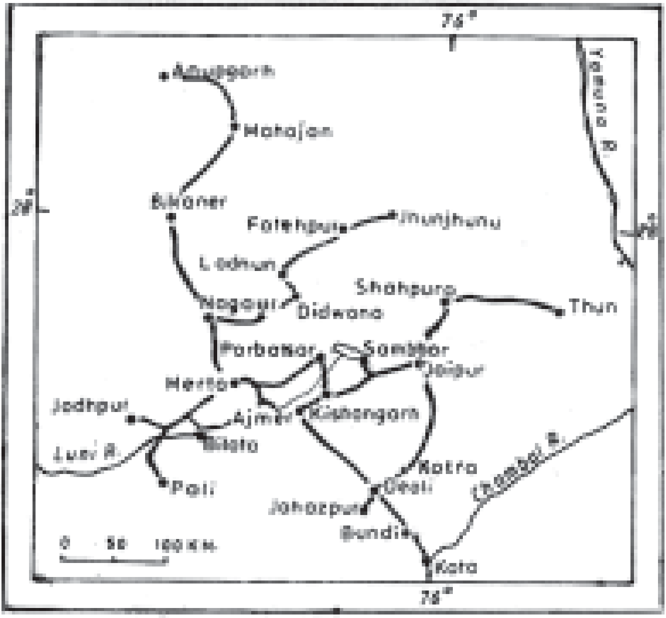

Map.5.7: Internal Trade Routes of Merta and Ladnun

Map.5.8: External Trade Routes of Merta and Ladnun

CONCLUSION

The current analysis finds that Nagaur, Merta, and Ladnun thrived and prospered throughout the time under consideration. With the many roads that travelled through these cities, they were linked to nearby cities and provinces. Good routes are necessary for trade and business; hence routes were very advantageous for the merchants. The economic sector flourished as a result of extensive commercial activity, which in turn stimulated urban expansion. Owing to their closeness to significant commercial routes, the aforementioned cities became hubs for merchants and traders. There, merchants from many regions assembled, traded goods, and established a major commercial hub. Many types of goods were produced and shipped to other parts of Rajasthan and beyond. Imported from various areas were a variety of products. In conclusion, we can say that the expansion and development of trade and commerce, the blooming of marketplaces, and the wealth of these cities were largely the result of trade routes, which acted as engines of economic and urban growth.

NOTES AND REFERENCES

1. K.C. Jain, *Ancient Cities and Towns of Rajasthan*, Motilal Banarasidas, Delhi, 1972, p. 242.
2. Ibid; M.H. Siddiqui, *Madhya Kaleen Nagaur ka Itihas* (Hindi), Maharaja Mansingh Pushtak Prakash, Mehrangarh, Jodhpur, 2001.
3. *Rajasthan District Gazetteers*, Nagaur, ed. K.K. Sehgal, Government of Rajathan, Jaipur, 1975, p. 1.
4. Ibid.
5. Ibid.
6. K.C. Jain, *Ancient Cities and Towns of Rajasthan*, pp. 242-243.
7. M.H. Siddiqui, *Madhya Kaleen Nagaur ka Itihas*, p. 3.
8. K.C. Jain, *Ancient Cities and Towns of Rajasthan*, p. 243; B.L. Gupta, *Trade and Commerce in Rajasthan* During the Eighteenth Century, Jaipur Pub. House, 1787, p. 8.
9. *Report of the tour in the Punjab and Rajputana in 1883-84*, A.S.I., by H.B.W. Garrick (under the superintendence of Gen. A. Cuningham, vol. XXIII, p. 50. See also, Sayid Sumbul Arif, 'Growth and Emergence of Urban Centres in Rajasthan between 13th to 17th Century A.D.', unpublished Ph.D. thesis, C.A.S., department of history, A.M.U., Aligarh, 2022.

10 M.H. Siddiqui, *Madhya Kaleen Nagaur ka Itihas*, p.18; Edward Thomas, *Chronicle of the Pathan Kings of Delhi*, London, 1871, p. 78.

11 For details, see https://www.mapsofindia.com/maps/rajasthan/tehsil/nagaur.html.

12 *Sanad Parwana Bahi*, no. 10, V.S. 1827/A.D. 1770, p. 15, f. a.

13 Ibid.

14. *Sanad Parwana Bahi*, Jodhpur, no. 33, V.S. 1842/A.D. 1785, p. 81, f. a; *Kagad Bahi*, no. 4, V.S. 1820/A.D. 1763; *Sawa Mandi Sadar Bahi*, no. 3, V.S. 1805/A.D. 1748; *Bahi*, no. 4, V.S. 1807/A.D. 1750; *Jagad Bahi*, no. 81, V.S. 1807/A.D. 1750.
15. Abul Fazl, *Ain-i-Akbari* (henceforth *Ain*) ed. H. Blochman, vol. I, Bib. Ind. Calcutta, 1867, cf. G. N. Sharma, *Social Life in Medieval Rajasthan (1500-1800)*, L.N. Agarwal, Agra, 1968, p. 323.
16. *Sanad Parwana Bahi*, no. 25, V.S. 1838/A.D. 1781, p. 238, ff. a-b.
17. *Sawa Mandi Sadar Bahi*, no. 11, V.S. 1822/A.D. 1765; *Sanad Parwana Bahi*, no. 21, V.S. 1835/A.D. 1778, p. 239; *Jagad Bahi*, no.

7, V.S. 1806/A.D. 1749; *Sanad Parwana Bahi*, no. 8, V.S. 1825/A.D. 1768; *Kagad Bahi*, no. 6, V.S. 1839/A.D. 1782; *Sanad Parwana Bahi*, no. 13, V.S. 1830/A.D. 1773, p. 58.

18 *Jagad Bahi*, no. 81, V.S. 1807/A.D. 1750; *Sanad Parwana Bahi*, no. 25, V.S. 1838/A.D. 1781, p. 77; Abul Fazl, *Akbarnama*, tr. H. Beveridge, vol. II, Asiatic Society, Calcutta, 1897-1921, pp. 372-373 and pp. 535-550.

19. *Zakat Bahi*, no. V.S. 1807/A.D. 1750; *Sawa Mandi Sadar Bahi*, no. 4, V.S. 1807/A.D. 1750; *Sawa Mandi Sadar Bahi*, no. 11, V.S. 1822/ A.D. 1765; *Sanad Parwana Bahi*, no. 13, V.S. 1830/A.D. 1773. See also, Jibraeil, *Economy and Demographic Profile of Urban Rajasthan*, Manohar, New Delhi, 2018, pp. 194-95; B.L. Gupta, *Trade and Commerce in Rajasthan*, pp. 113-14.

20. Iron goods, utensils of brass and copper and toys of ivory were also exported to Jodhpur from Nagaur.

21. Iron, lead, kori cloth, mica, indigo, chilly, zinc, coconuts, etc. were also exported to Bikaner from Nagaur.

22. *Sawa Mandi Sadar Bahi*, no. 4, V.S. 1807/A.D. 1750. We have reference of 30 bullocks being exported to Multan from Nagaur. These were in great demand in Multan, Sindh, and many areas of Rajputana.

23. Ibid; *Sanad Parwana Bahi*, no. 21, V.S. 1835/A.D. 1778, p. 285; *Sanad Parwana Bahi*, no. 25, V.S. 1838/A.D. 1781, p. 77; See also, Jibraeil, *Economy and Demographic Profile of Urban Rajasthan*, pp. 194-95; B.L. Gupta, *Trade and Commerce in Rajasthan*, pp. 113-14.

24. Iron and flax were also exported to Nagaur from Pali.

25. Muhnot Nainsi, *Marwar-ra-pargana-ri-Vigat c.1664* (henceforth *Vigat*), ed. N.S. Bhati, Rajasthan Prachyavidya Pratshthan, Jodhpur, 1968, vol. II, pp. 420-430.

26. Ibid., p. 424.

27. *Sanad Parwana Bahi*, Jodhpur, no. 21, V.S. 1835/A.D. 1778.

28. B.L. Bhadani, 'Economic Conditions in Pargana Merta', *PIHC*, vol. 36, 1975.

29. K.C. Jain, *Ancient Cities and Towns of Rajasthan*, pp. 177-78; *Epigraphia Indica*, vol. XVIII, A.S.I., New Delhi, Reprint 1983, p. 98.

30. Ibid.

31. *Vigat*, vol. I, p. 41.

32. K.C. Jain, *Ancient Cities and Towns of Rajasthan*, p. 177.
33. *Vigat*, vol.I, pp.44-45.
34. Hukum Singh Bhati, *Rajasthan ke Mertia Rathore*, Rajasthani Granthgar, Jodhpur, 1986, pp. 46-48.
35. *Malkot fort* is around two kms away from the town of Merta and it was constructed by Rao Maldeo in 1557-58.
36. Abul Fazl, *Akbarnama*, vol. II, pp. 247-250.
37. B.L. Bhadani, 'Economic Conditions in Pargnana Merta'.; Irfan Habib, *An Atlas of The Mughal Empire*, Sheet 6B; Peter Mundy, *The travels of Peter Mundy in Europe and Asia, 1608-67*, vol. II, ed., Sir Richard Carnac Temple, pp. 246-47; Joseph Salbancke, *Voyage: Journal in Purchas His Pilgrims*, vol. III, ed., Samuel Purchas, Maclehose, 1609, pp.83-86.
38. Ibid.
39. Joseph Salbanke, Voyage: *Journal in Purchas His Pilgrims*, vol. III, ed., Samuel Purchas, MacLehose, 1609, pp. 83-86.
40. Mehrdad and Natalie Shukhoohy, *Nagaur: Sultanate and Early Mughal History and Architecture of the district*, Royal Asiatic Society, London, 1993, p. 143.
41 Ibid.
42 Ibid; Z.A. Desai, *Published Muslim Inscriptions of Rajasthan*, Govt. of Rajasthan, Jaipur, 1971, pp. 98-101; *Ain*, vol. II, pp. 281-82.
43. *Imperial Gazetteer of India, Provincial Series, Rajputana*, Superintendent of Govt. Printing, Calcutta, 1908, pp. 198-99.
44. *Sanad Parwana Bahi*, Jodhpur, no. 19, V.S. 1834/A.D. 1777; *Sanad Parwana Bahi*, Jodhpur, no. 25, V.S. 1838/A.D. 1781; *Early Travels in India, 1583-1619*, ed. William Foster, New Delhi, rpt. 1985, pp. 170-171; G.N. Sharma, *Rajasthan Studies*, p. 163; Hukum Singh Bhati, *Rajasthan ke Mertia Rathore*, Rajasthani Granthagarh, Jodhpur, 1986, p. 210. See also B.L. Gupta, *Trade and Commerce in Rajasthan*, pp. 130-36.
45. Ibid.

Shabir Ahmad Punzoo

Ph.D. Scholar at CAS,

Department of History, AMU, Aligarh, India.

Email: shabirpunzoo99@gmail.com

❑ ❑ ❑

Analysing The Popularity of *Havelis* and *Jharokas* of Rajasthan

• **Dr. Sanjeev Kumar**

The modern-day architecture in India is said to be inspired from the historical periods. India's architecture is spread across a variety of structures giving rise to Hindu temples, South-Indian temples, Jain monuments, Indo-Islamic architecture, Rajput and more. Considering the application of Indian architectural genius, the grounds of Havelis and Jharokas are witnessed in the study. Accordingly, the study puts forward the notion of Rajasthan's popularity being incorporated in the architectural practice of Haveli system and Jharokas. The former structure is said to be an elaborate storied buildings that is connected to a common courtyard and the latter showcases a glimpse of glamorously designed windows. Thereby, the context analysis of the study is linked with identyfing the grounds of Rajasthan's famous Havelis and Jharokas.

Keywords: Indian Architecture, *Havelis*, *Jharokas*, Rajasthan, *Rajput* styles

Introduction

India's architecture resonates with cultural connotations, constructed as an emblem of each historical period. The world-renowned monuments and buildings of India have placed themselves on the map of architectural genius wherein the emblems contain socio-cultural resemblance as well as a futuristic glimpse into sustainability. In accordance, the rich heritage of India's architecture has put forward the popularity of North India which is deeply rooted in *Havelis* and *Jharokas* (Mishra & Kolay, 2019). The

northernmost part of India, especially Rajasthan and Gujarat has acquired their pride from the handicraft sectors, puppet shows, humongous forts and palaces. However, the heart of Rajasthan is placed on the invention of *Havelis* and *Jharokas* and in modern-day their application is vastly spread across the hotel industry and residential homes.

Speaking of the architectural marvel, *Havelis* otherwise known as mansions are witnessed as a source of relieving climatic conditions in India, however, *Jharokas* are viewed as small windows embarked in the Mughal eras (Kumhar *et al.* 2022). Following this, the engineering of Rajasthan's palaces and forts has grabbed global attention which induces a higher tourism rate in the country. Therefore, the study aims to investigate the grounds of *Havelis* and *Jharokas* and analyse their popularity in the present day. Furthermore, a brief overview of Indian architecture is given to highlight the base of the concerned emblems along with their style and structures.

Overview of Indian Architecture in relation to the *Rajput* structures

The roots of Indian architecture are entwined in its religious sanctums, flourished by historical developments and cultural association. According to the views of Soltani *et al.* (2022), the prehistoric phases of architecture began in 273 BCE and continued till the inception of the common times. Along with Buddhist monuments, India has showcased diversity through the craftsmanship of Hindu temples, Indo-Islamic structures, Mughal and *Rajput* architectures and many more. As per the views of Asher (2020), the historic mapping of Indian architecture can be dated back to the era of Buddhism, especially under the reign of Asoka. Accordingly, the creation of the *Sanchi Stupa*, monumental arches from the Shunga clan followed by rock-cut architecture such as Ajanta and Ellora caves. According to the opinions of Singh *et al.* (2019), *Rajput* architecture has been a direct influence of the Mughal period wherein the adoption of Mughal styles has been observed. During the 16th century, the intensification of *Rajput* styles is witnessed in amalgamation with Mughal's decorative and humongous structures. Considering this, the establishment of Gwalior Fort is seen which dates back to the 15th century.

Figure 1: Amber Fort founded by Alan Singh

Moreover, it can be ascertained that the majority of Rajasthan and Gujarat has been a result of the *Rajput* architecture such as Jaisalmer, Jodhpur, Bikaner, Udaipur and many more. In association, Gulati *et al*. (2019) highlight a similar notion; it is seen that the *Rajasthani* styles have influenced India's architectural landscape wherein *Havelis, Chhatris, Jalis, Jharokas* and *Bawdi* come to the forefront. Albeit the *Rajput* style is deeply inspired by Mughal characteristics, however, traces of Hindu features are equally visible in its creation of temples and exquisite palaces. As per the critical assessments of Kumhar *et al*. (2022), the beauty of *Rajasthani Havelis* lies in its grand decorations, large hallways, elegant gardens and others. On the same hand, the Haveli system is developed as a manner to tackle the geographical barriers of the place. In simple terms, the geographical location of Rajasthan falls under the dry and arid region wherein the natural flow of air is extensively vital. As argued by Bera (2020), the introduction of *Rajput Havelis* and *Jharokas* has resembled the cultural aspects as well as climatic needs. Hence, the foundation of Indian architecture is solidified through a series of monumental buildings and figures that highlights its diversity and distinctiveness.

Highlighting the popularity of *Havelis* and its systematic development in Rajasthan

The etymological derivation of Haveli is obtained from the Arabic origin; *Hawali* which emphasises on the pretext of private

space. As per the views of Dhar (2022), the Mughal era has been an inspiration for most architectural styles witnessed in India, especially in reference to the *Rajasthani* designs. The building of private spaces is classified under a series of factors such as social and cultural parameters, security, climatic conditions, courtyards and many more. In relation to historic times, both Mughal and *Rajput* rulers has been an ardent fan of large palaces that incorporates their families, hundreds of servants, animal farms and storage areas. According to the views of Choudhary *et al.* (2019), the construction of Haveli has enabled the rulers to show off their wealth and form coalition parties.

Figure 2: Chowk system in *Havelis*

Consequently, the popularity of Haveli can be noted to be a form of grandeur that increased the social status of rulers. Moreover, in the present-day as well, Haveli is witnessed to be a representative of social class and wealth. According to the opinions of Prasad *et al.* (2022), concerning the gender gap in earlier decades of history, *Havelis* have been utilised to demarcate between men and women through the construction of the *chowk system*. The predominant factor of the *chowk system* has been linked with offering privacy to men to discuss their private and worldly matters.

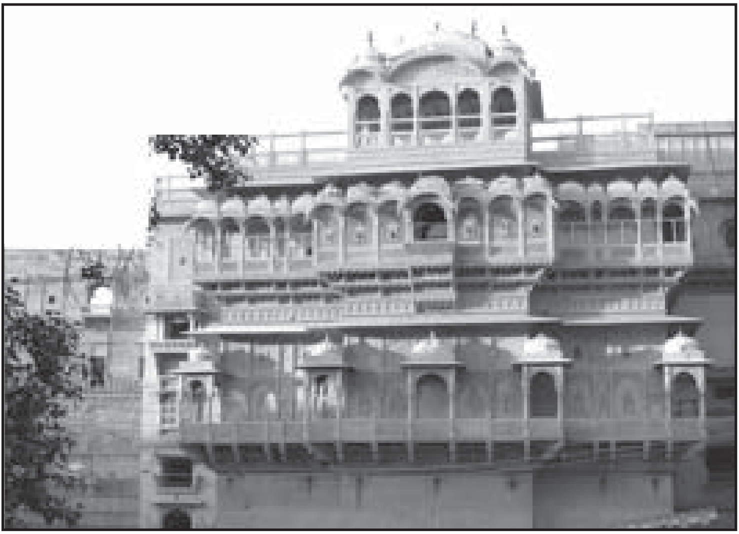

Figure 3: Patwon Ki Haveli

Following the studies of Shah (2022), the popular areas of attraction are associated with Jaisalmer; known as the city of palaces. The *Havelis* of Jaisalmer have the utmost importance in drawing a pool of tourists which in turn helps to incur high revenues for the Indian tourism sector.

Figure 4: Salim Singh ki Haveli

Furthermore, the most visited places are *Patwon Ki Haveli and Salim Singh ki Haveli* wherein the former is observed to be a cluster of five small *Havelis*. From the comments of Bera (2019), the materials used for these *Havelis* are yellow sandstone that helps in keeping the light intact. Therefore, the popularity of Haveli has remained intact in modern times that reflect the grandiose of *Rajput* rulers and the incorporation of Mughal and *Rajasthani* features.

Critical analysis of the architectural practice of *Jharokas* in Rajasthan

Tracing the origin of *Jharokas*, the term is extracted from jala gavaska which is understood as a glamorous designed window. The traditional designs of *Rajasthani* buildings and monuments evaluated the facets of geographical location. As per the views of Routh *et al.* (2022), the climate and construction design have an active correspondence in the majority of properties witnessed in Rajasthan. Based on this, the development of *Jharokas* has been a direct outcome of locational and climatic factors such as hot and dry. According to the views of Rathore *et al.* (2020), *Jharokas* is observed to be an integrated part of the *Havelis*. This is because *Jharokas* are built as small gateways or windows to see through and these are built on the upper floors of the Haveli.

Figure 5: Façade of Jharokha of Hawa *Mahal*

According to the opinions of Nathani *et al*. (2019), the importance of privacy and security is given immense importance in historic times to guard the ruler's family and aid. Concerning this, the role of *Jharokas* came to the forefront wherein the use of intricate *Jali* to cover the windows gave women the opportunity to witness the activities from a distance. Following the studies of Mishra & Kolay (2019), the application of *Jharokas* is duly noted to be a trait characteristic of providing privacy to women members of the *Rajput* and Mughal kingdoms. The architectural practice of *Jharokas* is viewed to be an essential aspect of constructing a facade that kept a barrier between women and the rest of the world. From the comments of Sinha (2019), the architecture of *Jharokas* can be ascertained as a form of purdah system, especially during the Mughal times. Furthermore, the world witnesses the famous Hawa *Mahal* situated in Jaipur is said to comprise 953 *Jharokas* which has been a gift of Emperor Akbar.

Assessing the implications of *Havelis* and *Jharokas* in modern-age design and architecture

Following the preceding discussion, it is seen that *Havelis* and *Jharokas* have become significant aspects of the *Rajasthani* culture and are ingrained in *Rajput* architecture. As per the views of Sahai (2021), the development of Haveli and *Jharokas* is said to have utility in modern-age architecture and design. This is because the creation of *Havelis* has emphasised the usage of large areas whereby the nexus is held by a common courtyard. In the majority of modern hotels, this structure is utilised to curate several storied buildings and hallways which are connected at an intersection that showcases grand fountain displays, entertainment areas and more. According to the views of Mishra (2019), the utility of *Jharokas* is said to be valuable in representing the culture of Rajasthan and giving a glimpse of prehistoric times.

Residential homes and hotels have inbuilt *Jharokas* to use for decorative purposes and give a cultural and ethnic touch (Swaranjali, 2019). As stated by Kaur *et al*. (2020), the implication of sustainability can also be witnessed through the Haveli system. This is because the designs are built in a manner that gives rise to the use of natural flow and directs the light into the rooms.

Figure 6: Hotels with *Jharokas*

Therefore, less usage of power and electricity can be witnessed which is a source of the Haveli architecture.

Conclusion

In conclusion, it can be said that Rajasthan's popularity is denoted by the marvellous creation of monumental arches. The establishment of *Havelis* and *Jharokas* holds immense value in the current society wherein facets of cultural roots and sustainable designing come to the forefront. Based on this, the ornately structured windows or the vastly spread palace with courtyards are witnessed to be the emblem of *Rajput* architecture.

References

Asher, C. B. (2020). Making Sense of Temples and Tirthas: *Rajput* Construction Under Mughal Rule. *The Medieval History Journal*, *23*(1), 9-49. Retrieved on 28th March 2023 from: https://journals.sagepub.com/doi/pdf/10.1177/0971945820905289

Bera, A. T. (2019). An Overview Of Vernacular Architecture In India. *Think India Journal*, *22*(14), 16386-16391. Retrieved on 28th March 2023 from: https://thinkindiaquarterly.org/index.php/think-india/article/view/17836

Bera, A. T. (2020). Glimpses of Indian Traditional Architecture. Retrieved on 28th March 2023 from: https://www.academia.edu/download/75789710/IRJET-V7I5807.pdf

Choudhary, S., Pipralia, S., & Kumar, N. (2019). Revisiting Architectural Heritage Towards a Sustainable Environment. *Advanced Science, Engineering and Medicine*, *11* (1-2), 44-48. Retrieved on 28th March 2023 from: https://www.ingentaconnect.com/contentone/asp/asem/2019/00000011/f0020001/art00010

Dhar, S. (2022). Udaipur as a Culinary Tourism Destination–An Exploration. *Research in Tourism and Hospitality Management*, 120. Retrieved on 28th March 2023 from: https://www.researchgate.net/profile/Yashwant-Rawal-2/publication/363269995_Research_in_Tourism_and_Hospitality_Management/links/6316a5961ddd4470213ac03f/Research-in-Tourism-and-Hospitality-Management.pdf#page=136

Gulati, R., Sehgal, V., Qamruddin, J., & Raushan, A. S. (2019). Architectural Spaces as Socio-Cultural Connectors: Lessons from the Vernacular Houses of Lucknow, India. *Journal of the International Society for the Study of Vernacular Settlements*, *6*(4), 30-48. Retrieved on 28th March 2023 from: http://isvshome.com/pdf/ISVS_6-4/ISVS-6.4.3-Ritu-Final.pdf

Kaur, G., Kaur, P., Ahuja, A., Singh, A., Saini, J., Agarwal, P., ... & Garg, S. (2020). Jaisalmer golden limestone: a heritage stone resource from the desert of Western India. *Geoheritage*, *12*, 1-16. Retrieved on 28th March 2023 from: https://link.springer.com/article/10.1007/s12371-020-00475-2

Kumhar, K., Kumar, R., & Maheshwari, S. (2022). *Havelis* and *Jharokas* of Rajasthan: An Architectural Amalgamation Story. *ECS Transactions*, *107*(1), 10885. Retrieved on 28th March 2023 from: https://iopscience.iop.org/article/10.1149/10701.10885ecst/meta

Mishra, S., & Kolay, S. (2019). Visual perception of the street façade of a historic town: case study of the walled city of Jaipur, India. In *Research into Design for a Connected World: Proceedings of ICoRD 2019 Volume 2* (pp. 377-389). Springer Singapore. Retrieved on 28th March 2023 from: https://link.springer.com/chapter/10.1007/978-981-13-5977-4_32

Mishra, V. K. (2019). DEVELOPMENT OF ARCHITECTURE DURING THE MUGHAL PERIOD IN INDIA. *JAMSHEDPUR REARCH*

REVIEW YEAR 7 Volume 1 Issue 32, 43. Retrieved on 28th March 2023 from: http://jamshedpurresearchreview.com/wp-content/uploads/2019/04/JRR-32.pdf#page=44

Nathani, A. N., Prakash, A. P., & Khan, A. M. R. (2019). A POTENTIAL SUSTAINABLE (STONE) TOURIST DESTINATION, BANDEBAMBLI. Retrieved on 28th March 2023 from: http://1.6.122.225:8080/xmlui/handle/123456789/337

Prasad, R., Tandon, R., Verma, A., Sharma, M., & Ajmera, N. (2022). Jaali a tool of sustainable architectural practice: Understanding the feasibility and usage. *Materials Today: Proceedings*, *60*, 513-525. Retrieved on 28th March 2023 from: https://www.sciencedirect.com/science/article/pii/S2214785322005089

Rathore, V. S., Kantamneni, J., Jamadar, A., Anupam, S., & Kachchap, D. (2020). Manifestations of traditional knowledge in water systems: The cases of the Kuchaman Fort and Rathi Haveli, Rajasthan. *Journal of Traditional Building, Architecture and Urbanism*, (1), 421-433. Retrieved on 28th March 2023 from: https://traditionalarchitecturejournal.com/index.php/home/article/view/368

Routh, R., Bhavsar, D., & Patel, R. (2022). Socio-Economic and Policy Impacts of Heritage Conservation: A Case of Deewanji ni Haveli, Ahmedabad. *International Research Journal on Advanced Science Hub*, *4*(1), 7-15. Retrieved on 28th March 2023 from: https://rspsciencehub.com/article_17424.html

Sahai, S. S. (2021). SUSTAINABILITY-A TAUGHT PROCESS OR A THOUGHT PROCESS. *Journal of Services Research*, *21*(2). Retrieved on 28th March 2023 from: https://search.ebscohost.com/login.aspx?direct=true&profile= ehost& scope= site&authtype=crawler&jrnl=09724702&AN= 155785360 &h= WaYI8TYabLZHfWoV9jB%2BTSdy Wp4z Ezd NWRq Wy8erOmBp8WNRK5CRGWMZzrFk1yhIOgrn5YLcHlSl5 RO06O JaDw% 3D%3D&crl=c

Singh, G., Kumar, M., Joshi, B., Kumar, S., & Shukla, A. K. (2019). Applicability of inspirations from nature and wisdom from vernacular architecture in synergy with AI for design of sustainable buildings. *International Journal of Recent Technology and Engineering (IJRTE)*, *8*(4), 971-977. Retrieved on 28th March 2023 from: https://www.researchgate.net/profile/

Gaurav-Singh-45/publication/337562281_Applicability_of_ inspirations_ from_ nature_and_ wisdom_ from_vernacular_ architecture_in_ synergy_with_ AI_for_design_ of_sustainable_ buildings/links/5dde462992851c83644b9e2a/Applicability-of-Inspirations-from-Nature-and- Wisdom-from-Vernacular-Architecture-in-Synergy-with-AI-for-Design-of-Sustainable-Buildings.pdf

Singh, M. (2019). Rajputana Structures: A Symbol of Climate Responsive Architecture. *Think India Journal*, *22*(34), 21-33. Retrieved on 28th March 2023 from: https://thinkindiaquarterly.org/index.php/think-india/article/view/18458

Sinha, K. (2019). Architectural Conservation as a Promoter of Cultural Identity. *International Journal of Advanced Research in Engineering and Technology*, *10*(5). Retrieved on 28th March 2023 from: https://papers.ssrn.com/sol3/papers.cfm?abstract_id=3527335

Soltani, M., Samanian, S., & Soltani, M. (2022). The Investigation of Features and Methods of Using "Tongborie" Decoration in Architectural Works of Safavid Iran and Mughal India. *The Monthly Scientific Journal of Bagh-e Nazar*, *18*(104), 17-28. Retrieved on 28th March 2023 from: http://www.bagh-sj.com/jufile?ar_sfile=1581780

Swaranjali, P. (2019). The architect inside out: Reading the barrel-vaulted ceiling of Balkrishna Doshi's studio–Sangath. In *Ceilings and Dreams* (pp. 222-233). Routledge. Retrieved on 28th March 2023 from: https://www.taylorfrancis.com/chapters/edit/10.4324/9781351065863-19/architect-inside-pallavi-swaranjali

Dr. Sanjeev Kumar
Assistant Professor, Department of History,
S.N. M.T. Govt. Girls P.G. College Jhunjhunu, Rajasthan,
Pandit Deendayal Upadhyaya Shekhawati University, Sikar (Rajasthan) India
sanjeev.mehul@gmail.com

❑ ❑ ❑

Revisiting Charans and Bhats of Rajasthan

• **Tripti Deo**

While constructing the history or historical trajectory of Rajasthan's politico-social, cultural and economic; we cannot miss referring to the literature that the charans and bhats have written over a period of time. It is to their credit that we get critical information of both the royalty and the layman. These castes have been pertinent in writing specifically about different groups, however there is always a confusion in what is specific about their identities and occupations. This leads to frequent overlaps and synonymous reference to charans and bhats together. At times, they are seen as two sides of the same coin. The aim of this paper is to clarify and contextualize various differences and also similarities in understanding the identities of charans and bhats of Rajasthan.

Vast generalizations are also made in usage of the term *bhat* with terms like bard, *barot* and *bhat* almost synonymously used everywhere. Apparently the two castes charans and bhats are mostly seen coterminous. Among the historical scholarship, as a matter of convenience the term Bhat is used as an umbrella term for most of the bardic communities in Rajasthan and Gujarat. This is primarily because of the similarities they share nevertheless there is a need to separate these two categories and look at the uniqueness of each, through exploring their social lives and the specific ways through which they contributed to the Rajput state. According to Prabhakar, 'before the beginning of the twelfth century the function of a poet, dramatist, eulogist, panegyric writer and those of a bard or a minstrel were regarded as allied and similar and that the same person could play any of these multifarious roles depending on the exigencies of the occasion. But later on, separate

bardic institution came into existence through a process of gradual evolution. The emergence of this institution seems to synchronize with the ramification of castes. It is in this wake of developments, that the two main classes of functionaries of the bardic institution, namely bhats and charans formed into independent castes.'[1]

Bhats were markedly a class of genealogists who were hereditary family bards. Derived from the word *bhatta* popularly formed from *bhatri*, meaning a nourisher or protector and figuratively applied to a mendicant and learned brahman. The *mardumshumari* Raj Marwar lists many theories of their origin, and as per one of them they are said to have been born from the union of a kshatriya man and a vaishya woman. Another tradition suggests, that their common ancestors were a kshatriya father and a brahman widow; while as per yet another account, they were offspring of a brahman father and a shudra mother. Elliot gives a mythological origin to the *bhats* by narrating a story 'that they were produced by Shiva from the drops of sweat on his eyebrows, to amuse Parvati but these men chose to sing praises of Shiva than Parvati. For this they were expelled from heaven and denounced to live a wandering life as wandering minstrels. The *bhats* of Marwar were divided into nine subgroups - Birmabhatt, Chandisa, Badva, Jagga, Sasni, Tori, Bona, Kedari, Maroo. All these subgroups as genealogists were dependent on patrons who belonged to different castes in Marwar. Broadly if one looks at the Bhats in Marwar, they were three major tribes - 1) the Birm Bhat 2) the Bahi-Bhat 3) the Rani-Munga Bhat. To briefly explain them, the Birm Bhat[2] claimed descent from *kavi*, one of the sons of Brahma. They are dominant in North-Western province and also Gujarat and occupied the same position as that of charans in Rajasthan. Much like brahmans, they claimed to be learned men who have produced some great works. Their customs were similar to brahmans; however, they ate flesh but abstained from having liquor. Widow remarriage (*nata*) was not permitted and they do not marry with Bahi Bhats. The Bahi Bhats on the other hand owe their origin to the Rajputs and are record keepers and genealogists of Rajputs (originally of the Parihar Rajputs). Their records are sworn by *(dheej bhaagti hain)* especially during the times of disputes on matters of adoption, marriage and property disputes.

Unlike the charans, the bhats had patrons from across

different castes. Malcolm highlighted that 'there are numerous Bhats in Hindustan, but Charuns are little if at all known'.[3] As genealogists, upon their visit to their patron's homes they were endowed with honour and respect by their patrons and often addressed as 'Raja' by their lower caste patrons. Often behaving high headedly, the bhats were known for throwing lot of tantrums at their patron's homes and at times even found it offensive if anyone referred to them as bhats. This arrogance of the bhats, supposedly led the Pushkarna brahmans to destroy their own *bahis* that the *bhats* possessed which had genealogical records of their families. Widow remarriage is permitted among these bhats and adoption could be done from the nearest relations. The third tribe of bhats were popularly known as the Rani-Munga Bhats who confined themselves to maintaining genealogies of Ranis and females of Rajput chiefs. Predominantly residing in Jodhpur, they catered only to the Ranis and did not attend to any other chiefs or castes.[4]

Everyone had his *bhat* or bard, whose major task was preservation of their genealogies and fulfilment of the most useful function of registering births and marriages.[5] Therefore unlike the charans who only served the Rajputs, the *bhats* catered to all castes including the charans as their patrons. Malcolm further stated 'that when the Rajputs migrated from the banks of Ganges to Rajputana, their Brahman priests did not accompany them in any numbers and hence the charan arose and supplied their place. They understood their rites of worship and culture particularly about their favourite deities Shiva and Parvati and also taught the Rajputs to read and write. One class became merchants and traders (Kacchela charans) and others were bards and genealogists of the Rajputs (Maru charans). All evidences show how the charans were a class of Rajput bards.'[6] He further highlighted the point that since the Bhats trace their origin from brahmans, they are more peaceful as against the charans who are more warlike because of their origin which is traced to the Rajput kshatriya status.[7]

All the Brahma Bhat or Biram Bhat of Rajasthan and Gujarat claimed their ancestry from the Brahmans. Enthoven highlighted about the enormous respect that is paid to the Gujarat Bhats and inviolability that is attached to them, to an extent that they are treated above Gujarat or Rajput brahmans. Historical evidence also

suggests that the bhats were brahmans. Moreover, Enthoven suggested that Chund Bardai was the *purohita* (priest) as well as the bard of Prithviraj Chauhan.'[8] He narrated the processes by which the brahmans gradually turned to becoming bhats. Associated with the Rajput chiefs, the brahmans spent most of their time in Rajput court or the battle ground, this made them gradually lose touch with their community and the brahman standard of purity, and they gradually adopted Rajput customs. The constant engagement with the Rajputs made them violate many strict practices and rules that a traditional brahman followed.[9]

Though there are thirteen endogamous[10] divisions of Bhats in Gujarat[11], the Brahma Bhats stood highest in the social scale. Some of them have also carefully kept the Brahmanical rules of social purity. They belonged to the Bhargava *gotra* and were further split into many divisions.[12] Distinguished from the Brahm Bhats or Biram Bhats, the Bhats of the lower castes were called Biraddhari Bhats. The Bairagi Bhats begged from the Bairagis and kept the genealogies of temple priests and their successors. Yet another class were the Dassondis or Jasundhis, who sang in honour of Devi and played musical instruments along with practising astrology. All these groups neither intermarried nor inter-dined, therefore it would be a misnomer to view bhat as a homogeneous community.[13] Although we have scarce information about the role and status of bhat women; Russell briefly wrote about them. He says like their men counterpart, 'the Bhat women were also bold, voluble and ready in retort. It's said that when a Bhat woman passes, a male caste-fellow on the road, it is the latter who raises a piece of cloth to his face till the woman is out of sight.'[14] The position and spaces that these bhat women shared with their men counterpart were of equality and respect, of course within the traditional set up of the medieval Rajasthani society.

The bhats easily adopted to various traditions and cultures of their diverse patrons, who were present all across the regions of Rajasthan and Gujarat. For instance, the dress itself varied of 'Bhats serving the Rajput chiefs who wore trousers, a rajput turban, a waistband with a dagger, and a short cotton coat with four chin plaits. On the other hand, the Rani Munga bhats, instead of a turban, wind a woman's robe round the head. The Sadhu and Atit Bhats dressed like Atit and Sadhu beggars.'[15] While writing

about the bhats and charans of Central India, Malcolm wrote that the charans wore large turbans, loose vest and trousers as compared to the bhats who chiefly from the Kathiawar wore a costume resembling the place they came from.[16] In this relationship of dependency, the bhat had to constantly re-invent himself as per the need and conditions of his patron, even adapt to the region and culture of his patron as it is this constant acclimatization that made the bhat acceptable and appreciated by his patrons. As mentioned earlier that every caste had a bhat as a family genealogist and to cater to this diversity, the bhats constantly oriented themselves to fit to the requirements of his patron.

Clearly as genealogists their *bahis* were important specially to get information on matters determining purity and impurity of the castes as polygamy was practised by his Rajput patrons. Moreover, although the Rajput chief followed the rule of primogeniture while deciding his heir to the throne; the property of the Rajput chief was divided among his sons, who received some entitlements. This nevertheless did not prevent the various property disputes that emerged after his death. It was the *bahis* of these bhats which were carefully maintained and updated with details of each and every family member of his patron and this came as a recourse in settling the disputes. Infact very often they were even referred by the *kachedi* for dispute resolution. The onus of protecting his *bahis* also lay with the bhat and charan according to Forbes. During their annual visits to their patron's house, a convoy comprising their sons, servants and guards also went with them (except for the women of the households who stayed at home) to face any untoward incident on the way. Moreover, the training and transmitting of this hereditary knowledge about the genealogies of their patrons, the bhat was constantly preparing his next generation in inheriting this invaluable property that was the knowledge of his patron's *bahis*.[17]

Shah and Shroff in their discussion on genealogists of Gujarat have further drawn our attention to the roles played by carans (charans) and bhat in the politico, socio-economic dynamics of the region. According to them, the bhats and charans of the region do not keep records, rather the lineage and genealogies of their patrons are recited orally through ballads of battles, warriors and kings. The suitable gestures and modulations of voice in singing of these ballads makes the experience ecstatic for their patrons. They also

motivated troops with their compositions and did not deter in defaming the enemy. They wrote long poems called *rasos* and especially the *duhas* and *git* are considered a speciality of bardic poetry. Considering that writing these compositions would inevitably decrease their impact on their patrons, the charans and bhats of Gujarat delivered their poetic constructions orally. Both the bhats and charans were considered professional storytellers.[18] Moreover according to them, the language of the poetic constructions of the charans and the bhats were different. Whereas, the charans composed their poetry in Dingal, the *bhats* in Gujarat composed in Braj Bhasa, and the *bhats* of Rajasthan composed their poetry in Pingal. The difference in traditions of *mata* worship was also highlighted; both bhats and charans were called Deviputras, with a variation that the bhats followed sanskritic mode and the charans non sanskritic mode. To elaborate this point, 'whereas "at the Sanskritic level", a *mata* worshipper looks upon the different *matas* as different manifestations of *Sakti* energy, which is the personification of the female principle in the creation of the universe and "at the non-Sanskritic level", the different *matas* are manifestations of a single *Mata*, the mother of all creation. The non-Sanskritic mode is considered unclean because it comprised practices of animal sacrifice and liquor consumption. Though the sanskritic mode also has unclean elements because of influence of the five m's namely *mamsa*(flesh), *matsya*(fish), *madya*(wine), *maithuna*(copulation) and *mudra* (mystical finger signs)'.[19] Primarily the dominance of Brahmabhatt in Gujarat who trace their origin to brahmans makes for the evident difference (sanskritic and non-sanskritic) in the mode of worship. We however don't find this difference in Rajasthan. As an extremely important castes both charans and bhats because of their sacral identity, were used as surety and guarantors of goods and deeds in Gujarat and Kathiawar. Moreover, the effective ritual suicidal practise of *tragu/traga/chandi* is associated with both these castes. No deed for the longest time was considered valid until countersigned by a Bhat. 'All security bonds taken by Colonel Walker from the chiefs of Kathiawar in 1807 were signed by Bhats and Charans.'[20]

The *mardumshumari* mentions an incident that highlights the extreme rivalries between the charans and bhats. Once in Mewar, while *tyag* was being distributed, there was an argument between charans and bhats. The Rana of Mewar had to intervene, who then

suggested that either the charans make bhats their *yachak* (client) or the bhats make charan their *yachak*. The charans called their bhat *yachak* from Marwar and asked them to announce in the Mewar court that they were *yachak* of the charans. The Rana on this acceptance of Marwar Bhats as the *yachak* of charans, gave charans *lakh pasao* and this is how the charans won in the argument with the bhats.[21] The rivalry and jealousy between the charans and bhats (especially the Brahma Bhats) over superior status is quite similar to that of the charans and brahmans as the state endowed these men with huge amount of revenue free land grants *(udak/ sasan/ dohli)* and also with gifts *(siropao/ lakh pasao/ crore pasao/arab pasao);* there always seemed to be competition over their statuses in the eyes of their Rajput patron. Moreover, the entitlement of *neg/tyag* which was demanded by charans and bhats was mostly the bone of contention. The clash between these communities is a common feature of the late medieval and early modern Rajasthan. The resemblance in their vocations as genealogists and poets made the relationship between the charans and bhats more tense and conflict ridden. There was a constant rivalry between the two communities and disputes related to their mutual position and superiority over one another.

The perennial dispute between the charans and bhats over their superior status is quite popular in the folk literature of the region. This argument can be expressed through this popular couplet composed by an anonymous charan:

> bhat ghat aur gadar, sab kahuke hoye,
> *charan to hai chatur, nar gadh patiya mein joye.*[22]

Bhat, barley broth and sheep belongs to everybody. But the charan is clever and only attaches himself to the owners of forts! Satirizing the Bhats, the charan says that they are mendicants of all castes whereas the charans only take from the Rajputs and are not dependent on anyone else.

The Bhat in reply would say:

> *kula chula baapro bhule prajapati ji por*
> *dina gadha charabato raato karto rodh.*

Oh! poor fellow, ‘kula’ or ‘Caran’ and ‘Chula or ‘hearth’, you have forgotten the door of the potter (because the charans originally begged their food from potters or Kumahars who were

called Prajapati); in the day you tend the flock of asses and at night you cut jokes.[23]

Snodgrass in his study on Bhats draws our attention to the category of Bhambi Bhats[24](serving the Bhambi caste) of Udaipur.[25] He differentiates between the charans who were the elite bards and his informants Bhambi Bhats (also call themselves as Katputhali Bhats) who were semi nomadic bardic entertainers of low status from Rajasthan. He sees them as a 'peripatetic service community' who are still practising their traditional roles of giving bardic services and rendering performances to their patrons and many new audiences (after Independence). Whereas the charans who by the post-colonial period almost abandoned their profession with the declining status of their Rajput patrons; these bhats found new patrons and audiences for their performances among the wealthy Rajasthani merchants and military officers in major Indian cities.[26] The supremacy of these castes because of the power of language and narrative that they constructed made them still relevant and above the kshatriyas and brahmans. The talent of these bards determined the social centrality of caste and especially the kings of Rajasthan. Snodgrass emphasizing the significance of his bhat informants highlighted their relevance and conditions in the post independent India. These bhats were in the modern period fabricating fictive histories and donning on themselves prestigious identities which formerly was the province of a very different group of people (here he meant the charans-the high-status genealogists who served only the royal lineages in the past). These fabricated bhats cleverly played with their language to praise and magnify the power of their patrons. This use of language, according to Snodgrass is 'far from diminishing bardic power, it rather magnifies it'.[27] Giving the background of privileges that charans and bhats enjoyed in the past where anyone could be established at the centre through linguistic performances- Be it Gods or any simple and humble person; he traced their gradual decline with the coming of Britishers that affected the patron-client relationship that bound the charans and bhats with their various patrons. He wrote that the 'real' bards seemed to have long gone but a variety of Rajasthani persons of different backgrounds continue to perform and make bardic recitations through using different trope and methods to keep their relevance in the market. Snodgrass writes that his informants 'have not only encroached on

the work previously performed by the elite bhats and charans (narration of epic poetry), rather they have taken advantage of new opportunities in post Independent India by appropriating these communities' actual titles, statuses and identities.'[28]

The charans functioned differently as compared to the bards of Rajasthan and other regions of India. The charans thought to themselves as a different class of people who did not emerge from or fit in the classic Brahmanical social order. Kamphorst places them as altogether an 'additional social category'.[29] Like the bhats; charans don't draw their origin from brahmanical status rather they locate themselves as beyond the traditional varna order which tended to standardize and limit the position and statuses of various castes in the society. The multifaceted occupational characteristics of charans further makes them different from the other bardic communities especially the bhats of Rajasthan and Gujarat

References

1. Manohar Prabhakar, *A Critical Study of Rajasthani Literature, (with exclusive reference to the contribution of caranas)*, (Jaipur, 1976), p. 11.
2. Birm bhat or BrahmBhat were predominant in Gujarat. Later in this chapter, we will be looking into the details of this category through works of R E Enthoven and Shroff and Shah.
3. John Malcolm, *A Memoir of Central India including Malwa and Adjoining Provinces,* Vol II, (London,1824), p. 132.
4. Report Mardumshumari Raj Marwar Census Report 1891, pp. 355-363.
5. R. V. Russell, Hiralal, *The Tribes of the Central Provinces of India*, Vol II, (London, 1916) p. 256.
6. Malcolm, *A Memoir of Central India,* Vol II, p. 133.
7. *Ibid.*, p. 132.
8. R. E. Enthoven, *Tribes and Castes of Bombay*, Vol I, (New Delhi, 1987), p. 124. According to him 'the office of a *purohita*, especially of such a distinguished and powerful sovereign as Prithviraja could not be conferred upon anyone but a Brahman. The Bard Chund must therefore, have been a Brahman'.
9. *Ibid.*, p. 125.
10. The Bhats like Charans married specifically within their own caste groups.

11. For the list of these Bhats, see Enthoven, *Tribes and Castes of Bombay*, Vol I, p. 126.
12. For the detailed list, see *Ibid*, p. 127.
13. Russell, Hiralal, *The Tribes of the Central Provinces of India*, Vol II, p. 253.
14. *Ibid.*, p. 258.
15. Enthoven, *Tribes and Castes of Bombay*, Vol I, p. 126.
16. Malcolm, *A Memoir of Central India*, Vol II, p. 139.
17. Forbes, *Rasmala*, translation by Bahura, p. 40.
18. A. M. Shah, R. G. Shroff, 'The Vahivanca Barots of Gujarat: A Caste of Genealogists and Mythographers' in Milton Singer (ed.) *Traditional India: Structure and Change*, (Jaipur, 1975), p. 42.
19. *Ibid.*, pp. 43-44.
20. Enthoven, *Tribes and Castes of Bombay*, Vol I, p. 130.
21. *Ibid.*, pp. 346.
22. Report Mardumshumari Raj Marwar Census Report 1891, p. 346.
23. Prabhakar, *A Critical Study of Rajasthani Literature*, p. 159 .
24. Bhambi Bhats - May be similar to the Charania Bhambi mentioned in Mardumshumari (p. 355) those who were excluded from the community because a charan is said to have touched a dead calf, which was generally the work of the Bhambis; thus, his descendants came to called as Charania Bhambis.
25. Jeffery G. Snodgrass, *Casting Kings: Bards and Indian Modernity*, (Delhi, 2006).
26. Jeffery G. Snodgrass, 'The Centre Cannot Hold: Tales of Hierarchy and Poetic Composition from Modern Rajasthan', *The Journal of the Royal Anthropological Institute*, Vol. 10, No. 2 (June 2004), p. 266.
27. *Ibid.*, p. 272.
28. *Ibid.*, p. 278.
29. Janet Kamphorst, *In the Praise of Death*, (Leiden, 2008) p. 258.

Dr. Tripti Deo
Assistant Professor
Department of History
Lakshmibai Colleg University of Delhi
M. 9818563580
triptideo@gmail.com

❑ ❑ ❑

Women's Education and Social Change in Colonial India

• Dr. Nirmala Shah

This research aims to analyses the impact of education on women during colonial period. This article examines the historical progression of women's education in India, a country with a long history of education. What obstacles exist for women's education to grow? How much social backing did they receive? Were there any disagreements about the best way to educate among national leaders? In what ways did women participate in the national movement? Some of these questions are explored in the present paper. A key theme of the paper is the transformative power of education in elevating women's social standing and allowing them to participate in public life.

Keywords: history of education, women's education, social norms, challenges in women's education, national movement

Introduction

> "Education, however, is the key to progress and unless Indian women are educated, they will not be able to enjoy their rights. The education of Indian women has been sadly neglected in the past. Though the percentage of literacy among women has increased from what it was thirty years ago, the disparity between boy's education and girl's education is still very great. The question arises whether girls have the same facilities for education as are provided for boys."
>
> —**Hansa Mehta**[1]

The culture of learning in India is well rooted. However, Indian women had no independent status of their own. They were under the control of men and relied on them for practically everything. As mothers, daughters, and sisters, they were shown honour and esteem, but they were not granted any real decision-making power. One of the most the obvious reason was that they

were educationally backward. As Virginia Woolf pointed out, “Imaginatively she is of the highest importance, practically she is completely insignificant. She pervades poetry from cover to cover. She is all but absent from history.”[2] In the book ‘History of British India’, James Mill stressed that ‘an important indicator of a society’s advancement could be the position of women and on this ground, India occupied a very low position’. Thus, during the 19th century, women’s education became a significant issue and attempts were made to enhance their education. Institutions of learning specifically for girls and women were subsequently established by the social reformers and British government.

The evidences suggest that India served as a center of education and knowledge dissemination. The ‘love for learning’ among Indians was acknowledged by many British officials. In 1891 F.W. Thomas noted:

> “Education is no exotic in India. There is no country where the love of learning had so early an origin or has exercised so lasting and powerful an influence. From the simple poets of the Vedic age to the Bengali philosopher of the present day there has been an uninterrupted succession of teachers and scholars. The immense literature which this long period has produced is thoroughly penetrated with the scholastic spirit; and the same spirit has left a deep impress on the social conditions of the people among whom that literature was produced.” .”[3]

In this context, this paper makes an effort to look into the relationship between women’s education and their social standing. Were there any significant strides made in women’s education at this time? To what extent women’s education was valued by society? What barriers did women face if they wanted to further their education? Social reformers and national leaders’ roles and the varying perspectives on them are also examined. Some women used their education to rise to positions of power at the national and regional levels, where they helped lead the fight for Indian independence. Some of these issues are discussed and analyzed in the paper.

Status of Women’s Education

The improvement in women’s social status is accompanied by the advance in their education. This aspect has been highlighted

from time to time. “The movement for improving women’s status all over the world has always emphasized education as the most significant instrument for changing women’s subjugated position in society.”[4] During and before the British colonial era, indigenous people had access to a robust educational system. Naik and Nurullah noted that education was primarily confined to those of Brahmin, higher caste, and privileged backgrounds. Formal education for girls was not provided in any systematic way. For instance, the survey of indigenous education conducted by British government in Bombay presidency from 1823-25 by Mountstuart, Governor of Bombay and in Bengal presidency by William Adam from 1835-38 revealed that girls did not had access to formal education and that common schools catered only to boys. However, there are instances of some home schools where household skills were taught to them.

Missionaries are credited with establishing the first institutions where girls could receive a formal education. Indian reformers eventually came to recognize the value of educating women and worked to establish schools specifically for girls. A few steps forward were taken at the outset, but progress was slow. Moreover, the British government in India did not accept any responsibility towards girls’ education till 1854. For example, in the province of Bombay in 1854, there were 2875 schools and other educational institutions for men with over one lakh pupils. However, there were only 65 girls’ schools under non-governmental management, with enrollment of only 3500 pupils.[5] In 1882, the Indian Education Commission conducted a thorough investigation into the issue of girls’ education and highlighted the lagging status of female education in India. It then goes on to examine the many facets of girls’ education and provide suggestions for advancing the cause. In 1902, the Education Department came up with a new strategy to expand access to education and create female educational institutions. Subsequently efforts were made to spread women education.

The progress became visible after the education system was handed over to Indian ministers in the provincial administration in 1921. Literacy rates for women rose from 0.2 percent in 1881 to 1.8 percent in 1921.The growth was seen mostly in primary schools. There were 12.24 lakh enrolled female students in 1921; however, out of thus only 26,000 were enrolled in secondary schools and less than a thousand in colleges.[6] By 1946–47, things

had improved somewhat, when the female literacy rose to 6.0 percent and total enrolment in educational institutions was 41.57 lakhs. Of these, 6 lakhs were in secondary schools and 23 thousand in colleges and universities.

Challenges to the Progress of Women's Education

There were several reasons which deprived women from education. Child marriage, in which a girl was married before she reaches puberty, was one of the contributing factors. Also, it was popularly believed that if a girl is taught to read and write, her husband would die soon after the marriage and she would become widow. According to Forbes, being a widow was a curse because of the oppressive traditions that a widow had to follow. Therefore, it was believed that a girl should pray for the long life of her husband rather than risking his death by pursuing education if she wanted to be happy.

In Rassundari Devi's autobiography, *Amar Jiban* (1876), she describes how women were forbidden to continue their education once they got married, even if their parents had encouraged them to get some education before marriage. Similarly, Rabindranath Tagore exposes the reality of traditional society in his short story *The Exercise Book*, which follows Uma, a young girl who is married off at the tender age of nine. She had to keep her desire to further her education a secret from the other women in her husband's family because doing so would have been seen as a terrible transgression. But when her husband found out, he ridiculed her and tore her books into pieces. It's worth noting that despite coming from Brahmin families, these young women were restricted from attending school and expected to follow societal norms.

Some social reformers, including Ram Mohan Roy, Vidyasagar, Phule, and others, advocated for girls' education, while others, including Balgangadhar Tilak and V.S. Chiplunkar, were opposed to it. It was Tilak's belief that being a good housewife and mother was the most important role for women to play. Besides, it was believed that education will prove to be a barrier to them carrying out this responsibility. Furthermore, Tilak stressed that exposure to English education would denationalize them. In 1884, when M.G. Ranade opened Poona's first all-girls high school, he fought against it, arguing that girls should be taught a curriculum different from that of boys. For

him, girls' education should focus on vernaculars, needlework, and sanitation instead of the subjects taught to boys like English, Mathematics, and Sciences. In addition to these, he highlighted on giving moral and religious instruction to them and argued that native women, rather than missionary women, should impart this knowledge including household skills.[7]

Despite these hindrances, criticism and harassment by society, there are examples of women like Anandibai Joshee and Ms. Anniee Jaganadhan who took to medical education fighting all these. In 1886, Anandibai became the first woman from India to earn a medical degree from a western institution. She did so from Women's Medical College in Philadelphia. Although, she contracted tuberculosis and died in 1887, so she was not able to pursue her career in it. Unfortunately, this misfortune eventually became a rallying cry for those who were already critical of women's education to voice their opinions even more strongly. This incident was also quoted to strengthen their claims and justify that women are weaker and they should only study what is meant for them according to the household work they do.

Role in the National Movement

Women's involvement in the national movement, which had its roots in the nineteenth century's social reform movement, picked up steam in the early twentieth century with the emergence of organized women's groups. This time period marked the first time that women led by national leaders actively participated in a nationwide resistance movement against colonialism. A slew of women's groups emerged during this time, including the All-India Muslim Ladies' Conference (Anjuman) in 1914, the Women's India Association (WIA) in 1917, the National Council of Women in India (NCWI) in 1925, and the All India Women's Conference (AIWC) in 1926. These argued that women's participation in a country's economy and government is crucial to the nation's development. The national movement saw the first significant participation of women in the nation's political life.

It was believed that women's participation in the national political struggle could only be achieved by challenging the patriarchal foundations of social institutions. Many women like Pandita Ramabai, Savitribai Phule and Anandi Gopal stood against the patriarchy and advocated women's education. Gandhi has been

referred to as the ‘parent of India’s women’s movement’ because of his self-feminization and feminization of Indian politics.[8] He played a key role in bringing women into the fold of the national movement. Gandhi said,

> “I am uncompromising in the matter of women’s rights. I have always had a passion to serve the womanhood. Ever since my arrival in India, the women have come to look upon me as one of themselves. I hold radical views about the emancipation of women from their fetters which they mistake for adornment. My experience has confirmed me in the view that the real advancement of women can only come by and through their own efforts.”[9]

Gandhiji’s insistence on women’s political participation was one of his most significant contributions to their emancipation. He believed that women should have the same opportunity as men to win swaraj for India. Subsequently, large number of women took part in India’s national movement. They were active in the Swadeshi movement, which included boycotting foreign goods, picketing liquor stores, and other activities. Women took part in huge numbers in the movements like non-cooperation movement and civil disobedience movement.

During the national movement, social and political reform went simultaneously. The need for woman to step out into the national mainstream was felt. Education played a crucial role in empowering women and give them the required confident. At the national level many women leaders like Sarojini Naidu, Vijaylaxmi Pandit, Kamaladevi Chattopadhyay and Mridula Sarabai emerged. Similarly at the provincial level leaders like Annie Mascarene and A.V. Kuttimaluamma in Kerala, Durgabai Deshmukh in Madras presidency, Rameshwari Nehru and Bi Amman in UP, Satyawati Devi and Subhadra Joshi in Delhi, Hansa Mehta and Usha Mehta in Bombay and several others.

It is quite fascinating to see how the contemporary writings[10] dealing with the issues of women’s backwardness argued for a shift in social norms to improve women’s position. Education was viewed as the vehicle to bring about the changes in the society. However, there was a gender gap in education, as evidenced by contemporary writings by and about women. But this gender gap was reduced due to the efforts by national leadership to improve access to education by establishing and funding schools where women and girls could

participate fully. Subsequently due to increased educational opportunities, women's status in society shifted dramatically and they began to participate in various arenas of public life.

References:

Dastur, Aloo J., and Usha H. Mehta, *Gandhi's Contribution to the Emancipation of Women*, London, 1993.

Department of Education, A Review of Education in Bombay Slate, 1855-1955, Bombay, 1958.

Indian Council of Social Science Research, Status of Women in India: A Synopsis of the Report of the National Committee on the Status of Women, Allied, New Delhi 1975.

Forbes, G, Education for Women, in Sumit Sarkar and Tanika Sarkar (eds.), *Women and Social Reform in Modern India*, Permanent Black, 2012.

John, Mary. E, (ed.). *Women's Studies in India: A Reader*, Penguin Books, New Delhi, 2008.

Kamat, A.R, *Women's Education and Social Change in India*, Social Scientist, Vol. 5, No. 1, Aug. 1976.

Kumar, Radha , *The History of Doing: an Illustrated account of Movements for Women's Rights and Feminism in India 1800-1990*, Zubaan, 1993.

Mehta, Hansa, *Indian Woman*, Butala & Company, Delhi, 1981.

Naik, J.P. and Nurullah, S, *Indigenous Education in India at the Beginning of the Nineteenth Century. A Student's History of Education in India 1800-1973*, Macmillan India Ltd., 2004.

Native Newspaper Report (selected issues from 1900-1915).

Rao, P.V, Women's Education and the Nationalist Response in Western India: Part I- Basic Education, *Indian Journal of Gender Studies*, Vol. 14, No. 2, 2007, pp. 307-316.

Rao, P.V, Women's Education and the Nationalist Response in Western India: Part II- Higher Education, *Indian Journal of Gender Studies*, Vol. 15, No. 1, 2008, pp. 141-148

Tagore, R, The Exercise Book (Chaudhuri, S, Trans.), in Sood,V; I. Raghunathan, H; Sanyal,M; Sengupta, D; Siddique,S & Verma, V.K. (eds.), *The Individual and Society*, Pearson Education, New Delhi, 2000.

Thomas, F.W., *The History and Prospects of British Education in India*, Cambridge: Deighton Bell and Co., London, 1891.

Towards Equality, Report of the Committee on the Status of Women in India, Ministry of Education and Social Welfare, New Delhi 1974.

Woolf, Virginia, *A Room of One's Own*, Penguine, London, 1945.

Footnotes

1. Hansa Mehta, *Indian Woman*, Butala & Company, Delhi, 1981, p.xi.
2. Virginia Woolf, *A Room of One's Own*, Penguine, London, 1945, p. 3.
3. F.W. Thomas, *The History and Prospects of British Education in India*, Deighton Bell and Co., London, 1891, p. 1.
4. Indian Council of Social Science Research, Status of Women in India: A Synopsis of the Report of the National Committee on the Status of Women, Allied, New Delhi 1975, p 88.
5. Department of Education, A Review of Education in Bombay Slate, 1855-1955, Bombay 1958, p 388.
6. Towards Equality, Report of the Committee on the Status of Women in India, Ministry of Education and Social Welfare, New Delhi 1974.
7. P.V. Rao, 'Women's Education and the Nationalist Response in Western India', Part I- Basic Education, *Indian Journal of Gender Studies*, Vol. 14, No. 2, 2007, pp. 307-316.
8. Radha Kumar, *The History of Doing: an Illustrated account of Movements for Women's Rights and Feminism in India 1800-1990*, Zubaan, 1993.
9. Cited in Aloo J. Dastur and Usha H. Mehta, *Gandhi's Contribution to the Emancipation of Women*, London, 1993, p. ix.
10. For example, the Native Newspaper Reports published during the colonial period from various parts of the country include writings on and by women.

Dr. Nirmala Shah
Assistant Prof.
Department of History
Shyama Prasad Mukherji College for Women University of Delhi
New Delhi
Email id: nirmala.shah10@gmail.com

❑ ❑ ❑

Unfolding Socio-Political Connotations by Adopting Gandhian Notion of Sarvodaya

Dr. Priya Bhalla • Dr. Pooja Sharma

In this era of globalization and rapidly rising consumerism, widening inequality and non-inclusivity are two conflicting outcomes. The unprecedented outburst of consumerism and economic growth has resulted in significant environmental degradation. Inclusivity, sustainability and climate change have emerged as the fundamental global challenges. The paper attempts to examine the significance of Gandhian thoughts in unfolding these global challenges. In particular, the constructive program designed by Gandhi was a comprehensive plan not just to uplift the condition of untouchables and women but to work towards reducing inequality, unemployment and illiteracy apart from manifesting communal harmony and unity. Essentially, the notion of Sarvodaya may be viewed as an egalitarian concept that originates from the self-transformation of individuals. The concept of Sarvodaya is the most democratic method involving a decentralized system. The paper incorporates all these dimensions and attempts to examine the present development model and finds the challenges being unfolded and addressed using the Gandhian concept of Sarvodaya.

Keywords : Socio-political, Gandhian thoughts, Sarvodaya, decentralized system

1. Introduction

The modern capitalist system is in a state of engrained despair and despondency with frequent episodes of fragility, uncertainty, instability and crisis. Incorporating altruistic elements into capitalism could be a step towards rectifying some of the disorders in this system. Gandhian thoughts on society, economy and environment offer some such elements, albeitthey may be too ideal and hence are

considered to beunviable. Nevertheless, it is important to study the most ideal system so that it provides a benchmark that serves as a comparison with other systems even though it is based on completely unrealistic assumption such as premise that all human beings will morally elevate themselves and follow truth and non-violence.

In particular, the Constructive Program designed by Mohandas Gandhi was a comprehensive plan not just to uplift the condition of untouchables and women but to work towards reducing inequality, unemployment and illiteracy apart from manifesting communal harmony and unity. The paper incorporates the social, and political connotations of*Sarvodaya* and attempts to examine the present development model tosee the challenges being unfolded and addressed using the Gandhian concept of Sarvodaya.

The notion of Sarvodaya originates from self-realization and consciousness that brings forth the perspective of our universal existence, an existence thatconnects human life to the whole universe and signifies our universal existence and implications. This key notion of Gandhian thoughts is sufficient to unfold all the associated challenges and failures of the present social and political system. Our human life or existence yields all sorts of imbalances on socio-economic and political fronts. However, the fundamentals of Sarvodaya can break through all the prevailing limitations. The paper attempts to deploy the philosophy of Sarvodaya to suggest ways to resolve the social and political challenges of contemporary times. The twin concepts of the trusteeship model and decentralized system of governance which constitute a critical aspect of Sarvodaya are the remarkable principles that offer the pathways for achieving a more egalitarian, equitable, peaceful, and inclusive state.

The study is organized as follows. Section 2 describes the concept and meaning of Sarvodaya followed by section 3 which describes the political connotation of Sarvodaya. Section 4 explains the social imperatives of Gandhian notion of Sarvodaya followed by the conclusion in the section 5.

2. The Gandhian notion of Sarvodaya

The genesis of the concept of Sarvodaya in Gandhi's life was when Mr. Henry Polak left him with Ruskin's book to read during the 24-hour journey he had to undertake from Johannesburg to Durban, "*Of these books, the one that brought about an instantaneous and practical transformation in my life was Unto This Last. I translated it later into Gujarati, entitling it Sarvodaya*

(the welfare of all)." (Gandhi, 1927:204).Sarvodaya is a term meaning *'Universal Uplift'* or *'Progress of All'*. The term was first coined by Gandhi as the title of his 1908 translation of John Ruskin's tract on political economy, *"Unto This Last"*, and Gandhi came to use the term for the ideal of his own political philosophy.

Essentially, the notion of *Sarvodaya* may be viewed as an egalitarian concept that originates from the self-transformation of individuals. The concept of *Sarvodaya* principally incorporates the trusteeship principle and economic, social and political inclusion and can be considered as the most democratic and decentralized system of functioning.Gandhi was deeply influenced by the concept, *"In his Gita commentaries, one can observe the strong influence of Gandhi's understanding of Ruskin's Unto This Last in the egalitarian inclusivity focus …"* (Allen, 2019:84).

Later many Gandhiansadopted the term such as the Indian nonviolence activist Vinoba Bhave, embraced the term for the social movement in post-independent India, which strove to ensure that self-determination and equality reached all the strata of Indian society.Kumarappa believes that Sarvodaya according to Gandhi represents an ideal social order. It's basis rests in all-embracing love. J. P. Chandra opines that by bringing about a countrywide decentralization of political and economic power, Sarvodaya provides an opportunity for the all-around development of the individual and society.Thus, Sarvodaya seeks the happiness of one and all. Hence it is superior to the utilitarian concept ofthe 'greatest happiness of the greatest number.'

The Sarvodaya society is based on equality and liberty. There is no room in it for unwholesome competition, exploitation and class hatred.Sarvodaya stands for the progress of all. All individuals should perform manuallabor and follow the ideal of non-possession. Then it will be possible to realize the goal of each according to his work and to each according to his needs.There will be no private property, which turns out to be the instrument of exploitation and the source of social distinctions and hatred. In the similar manner, the profit motive will disappear and rent and interest will be non-existent.In sum, Sarvodaya movement is based on simple values such as truth, non-violence and Self-denial.It is in essence a movement that makes a sincere and bold attempt to create the necessary atmosphere to bring together such individuals with unwavering faith in the welfare of all.

3. Sarvodaya: A political inclusion

The greater devolution of power and decentralizeddecision-makingis democratic, while centralized methods are more regimented with men at the top controlling those at the lower rung, which may not be conducive to democracy.As is a common knowledge, the Gandhian ideology encompasses the adoption of high principles such as truth, non-violence, and equality. It calls us to fight for inequality, injustice and poverty causing socio-economic elements.It ennobles us by creating a willingness to adopt voluntary poverty and exercise renunciation for the common good and welfare of all.In sum, it could enable us to tackle the social, economic and environmental disordersand activate conditions resulting indecentralization, better democracy and development.

A 'bottom to top' approach which involves all members of society is a desired outcome. Who will bring it about? Will it be apt to place the responsibility on the poor who are struggling to meet the daily needs of living. In this regard, A. K. Dasgupta points, "*The doctrine of democratic decentralization… is not an easy process. Who is it to bring it about? The possibility of a benign social order in which the so-called upper class would identify themselves with the masses has to be ruled out; we are too far away from the Gandhian Ideal of Trusteeship.*" (Patel, 2009:463). Further, Allen suggests that, "*In his democratic egalitarian formulations of such key concepts as swaraj (self-rule), swadeshi (aiming as much as possible for decentralized self-sufficient economies with concerns for one's community), and Sarvodaya, Gandhi maintains that there is no political democracy without economic democracy. There is no political democracy without a non-egoistic commitment to our interconnected relations of concern for the welfare of all beings.*" (Allen, 2019:12)

Another question that follows is how to bring about democratic decentralization. The answer to this is embedded in Gandhi's desire to uplift the villages with special emphasis on small scale industries, handicrafts, khadi and agriculture.All these will enable a shift towards decentralization. "*Khadi was a major foundation in Gandhi's work towards moral economics, a decentralized, bottom-up plan to overcome the materialism of Modern civilization in India.*" (Johnson, 2006:28). Accordingly, the closer we move towards decentralization the higher we move on the humanistic, moral, spiritual and cultural scale (Kumarappa,1951).

Gandhi worked towards eliminating corruption from public life. He understood that centralized system will bring in its wake unfair and corrupt practices. Due to this reason, "… *Gandhi urged the Congress to dissolve and to reflower into a Lok Sevak Sangh. The Sangh, peopled by former Congressmen and Women, would guide India's development from outside of government and work to bring about Swaraj on the crucial economic and social planes through implementation of the Constructive Programme."*(Murphy, 1991:48-49).

Unfortunately, the Gandhian ethos that prevailed during his times, could not continue for long and had to give way to a more unscrupulous mode of functioning,

"*Gandhi's assassination … not only abruptly ended the direct influence he could have continued to wield over men such as Nehru, Patel and Prasad...For had he remained active into the 1950s there was every possibility that he would have become an active opponent of the new Indian Raj…*" (Murphy, 1991:48-49).

In order to develop grassroots parliamentary democracy and participation of people in the political and development process, greater decentralization and devolution of power in the federal character to the lowest level of governmentsuch as the zilladistrict parishads and village panchayats has been a chief constituent of the constitutional framework of India. (Chandra et al, 2008).Finally, a decentralized system of functioning is the most democratic framework that empowers each individual to state their choices and renders a most efficient consensus-baseddecision-makingregime. A society that respects and regards the choices and wants of every individual is essentially more peaceful and devoid of unrest and conflicts. It is substantially more self-sustaining and independent in every aspect. And this brings us to the social aspect of the concept of Sarvodaya.

4. Sarvodaya: A social Inclusion

Essentially, the Constructive Program forms a blueprint of overall development of societythat includes in its ambit education, abolition of untouchability, upliftment of the poor, vulnerable and women, sanitation, Hindu Muslim unity, prompting khadi and charkha and creating model village republics.Emphasizing on the multi-faceted Gandhian plan of development,Kulkarni remarks, "*There is no sphere of human development, and also no aspect of*

what has now come to be recognized as 'social infrastructure'… which escaped Gandhi's scientific attention." (Kulkarni, 2012:95).Although this should not indicate that his plan was all successful[1]. But, these were all important areas in which substantial gaps existed. Presently, we confine our attention to three important aspects: Education, Empowerment of women and other oppressed sections and creation of self-sufficient model villages.

Education given by Britishers was more to rule than empower and embolden Indians. Gandhi who considered himself a disciple of Gokhaleassertedhis concern for educating the Indians, particularly the free and state provision of primary education."*Educating the people came to be regarded as part of Sarvodaya and was a distinctive feature of the Indian National movement under Gandhi's leadership*." (Dasgupta, 1996:135). Gandhian Reforms on Education were based on his higher aims from education as he rejected the English education in place of Ashrams. He recommended his basic education, *Nayi Talim*, that rested on principles and ideas such as austerity, body labour, self-supporting schools with training in crafts. Regrettably, these have not been taken well in the post-independent India and "*was felt by many to be an unrealistic and archaic Gandhian fad*" (Sarkar, 1983:357)

The role of women in Gandhi's movements as satyagrahis is formidable. This resulted in upliftment of women. "*Speaking to a group of women students in Lahore in July 1934, Gandhi remarked, 'when I was in South Africa, I had realised that if I did not serve the cause of women, all my work would remain unfinished.*" (Guha, 2013:534).Gandhi's *Daridranaryan* approach carries the message of inclusivity, equality, and justice with a special focus on the upliftment of the destitute. Gandhi's Talisman contains the path to elevate the poorest and weakest,"*Gandhi's personal example of identification with the oppressed combined with positive action to improve their condition remains to challenge the apathy of the comfortable and the inertness of the comfortless.*" (Johnson, 2006:356).

India may not be substantially ahead of western nations to be able to offer them lessons on growth, modernization, and technological upgradation, but India has a lot to offer when it comes to the village and rural living, khadi, and hand-made crafts that have a huge export demand."*Certainly, India can teach the West nothing about how cities should function. However, the West can teach India nothing about the Indian village…Let India live*

predominantly in its villages and rural areas as Gandhi wanted, and let it remain genuinely Indian" (Murphy, 1991:126). These miniature models of republics are means to realize not just the decentralization of industry but also power. To quote J. B. Kriplani"*He believed in decentralization, he did not believe only in the decentralization of industry, but also in the decentralization of power. He thought that democracy could work only in small units, so there should be vigorous local self-government. Every village should be like a semi-independent republic, you see*". (Watson and Tennyson, 1969:99).

Thus, the notion of Sarvodaya is phenomenally the most comprehensive and holistic development concept that endorses the universal connectivity of humankind and its existence. It is a philosophy that manifests development of the poor, oppressed and destitute, promotes universal love, the spirit and essence of co-existence with not only the living and non-living species but also the freedom from all possessions.

5. Conclusion

The paper examines the present development model and finds the challenges being unfolded and addressed using the Gandhian concept of Sarvodaya. Presently, the world is trapped under a vicious cycle of inequality, poverty, and injustice. Excessive production and consumerism have resulted in a huge divide in economy and ethics.The present disorder is likely to end in a complete crisis unless the people of this world adopt simple and frugal living methods that is not incompatible with the environment. Writing this and even contemplating this seems impossible to accomplish given the present-day consumerism and mass production, social tensions, and advanced technology that is based on economic and social violence.

It is demonstrated that the trusteeship model and notion of decentralization that constitute the essence of the concept of Sarvodaya can substantially rectify the impaired and imbalanced development process. The trusteeship model propagates non-possession and embodies the notion of collective ownership thereby endorsing and fortifying the most egalitarian welfare state that yields the most equitable and just social order. Similarly, the notion of a decentralized system of governance empowers each individual and values his wants and freedom. Such a system is a self-

sufficient and self-reliant, independent state that respects every human being by giving power through a democratic system.

References

Allen, D. (2019). Gandhi After 9/11 Creative Nonviolence and Sustainability, Oxford University Press, New Delhi

Chandra, B., M. Mukherjee and A. Mukherjee (2008), *India Since Independence*, Penguin Random House, India

Dasgupta, A.K. (1996). *Gandhi's Economic Thought,* Routledge Research, 1996, London

Dasgupta, A.K., in *The collected works of A.K. Dasgupta Essays in Planning and Public Policy,* ed. by A. Patel (2009) Oxford University Press, New Delhi

Gandhi, M.K. (1927), *An Autobiography or The Story of my experiments with truth*, Navjivan Trust, Ahmedabad, India

Guha, R. (2013). *Gandhi Before India*, Penguin Books, India

Johnson, R.L. (2006), Gandhi's Experiments with the Truth: Essential Writings By and About Mahatma Gandhi, Lexington Books, Maryland

Kulkarni, S. (2012) *Music of the Spinning wheel,* Amaryllis, New Delhi India

Kumarappa, J.C. (1951), Gandhian Economic Thought, A.B. Sarva Seva Sangh Prakashan

Sarkar, S. (1983) Modern India, 1885-1947, 1983, Macmillan India Limited

Watson, F. and H. Tennyson (1969). *Talking of Gandhi*, British Broadcasting Corporation, London

[1]Sarkar critiques, "*No definite statistics seem available about the impact of the charkha drive, but handloom cloth production did go up fairly sharply between 1920 and 1923. The Khilafat alliance made Hindu-Muslim unity a powerful, though temporary fact. Progress regarding untouchability was much less marked, though Gandhi deserves all credit for bringing the issue to the forefront of national politics for the very first time.*" (Sarkar 1983:208-209).

Dr. Priya Bhalla
Associate Professor (Economics)
Motilal Nehru College (E)

Dr. Pooja Sharma
Associate Professor (Economics)
Daulat Ram College

❑ ❑ ❑

Child-Friendly Police System in Rajasthan : An Insight From Gandhian Perspective

Dr. Shaizy Ahmed • Mr. Praveen Singh

Mahatma Gandhi was a great philosopher and visionary. One can find his roots of wisdom in almost every field. Policing is one such field where Gandhian philosophy is making drastic changes in the approach of police personnel. Although, Gandhiji has not written much about policing, as he himself promoted self-rule instead of policing to control people. However, what he defines about an ideal police system is enough to make a change in the policing system of India and especially in the field of child policing. This paper is an attempt to understand the implications of Gandhian perspective on child and Child-Friendly Policing. It further identifies the changes that Child Friendly Police System may adopt to ensure its maximum utilization. The study is centered in Rajasthan and is based on descriptive research design where data from secondary sources has been used. Few suggestions in the best interest of children and to locate the best practices of Child-Friendly Policing were also highlighted.

Keywords: Policing, Gandhian Perspective and Child Friendly Police System.

"If we are ever to have real peace in this world we shall have to begin with the children".

—**Mohandas K. Gandhi**

1. Introduction

The roots of Gandhian philosophy were found in the socio-cultural traditions, personal experiences of Gandhi about the Indian value system and social structure. Gandhi's insight of an 'Ideal Society" deals with respecting human beings and their basic rights[1].

Respecting human rights of every individual in the society is an ideal situation in which a positive environment for the optimum development of human values, growth and development of mankind is to be created[2]. Gandhi was a 'Mahatma' in its true sense as he had a vision to see every problem with its upright and most easiest solution. During his entire life he discussed and commented on many social issues. He is worried about every age group and every sections of the society including children, youth, women, dalits, farmers etc. For children, he had a special affection and love as reflected in his letters written to his family members and his expressions on other platforms. To him, children in their actual sense practice truth and non-violence; and if one is looking for salvation, he needs to become a child again[3].

What is unique in Gandhian approach is the fact that it is developed through personal experiences and a deep understanding of human behaviour. Gandhi was of the view that the future of any country depends on the value structure and system its people offer to their future generation i.e. children. He acknowledges the role of home environment in character building of a child. Hence, the role of parents and other stakeholders becomes important in providing care and protection to the children. In view of Gandhiji, the child represents country's future. If childhood is in fear, stress and disorder; the future of the country will also be in the state of disorder. In contrast, if childhood is full of respect, dignity, human (child) rights and learning opportunities, then the future of nation will also be bright and strong[4]. These words are like a precious jewels, if found in order. However, the stark reality is somewhat different.

There are lots of incidence reported everyday of maltreatment and abuse against children either by their own family members or by their relatives, neighbours, school teachers and other agencies etc. As per National Crime Record Bureau data, the total number of crime against children is reported as 1,41,764; 1,48,090 and 1,28,531 in years 2018, 2019 and 2020 respectively; whereas, actual child population is reported to be 4441.5 (in Lakhs) in 2011. The Rate of Total Crime against Children was 28.9 per cent and Chargesheeting Rate was 65.6 per cent in year 2020[5] as per NCRB data in 2020. Similarly in Rajasthan, Total Crime against Children was reported to be 5,150; 7,385 and 6,580 in years 2018, 2019, and 2020 respectively; whereas, actual Children Population was 281.4 (in Lakhs) in 2011. Rate of Total Crime against Children is 23.4 per cent in 2020 and Chargesheeting Rate in the same year

was 58.1 per cent[6]. The above data indicates that both crime rate and charge sheeting rate is significant in Rajasthan. However, it is still less as compared to the national average.

Besides data, all the leading and local newspapers of our country are daily flashed with one or more incidences of violence against children. These kinds of incidences are real alarms for the society. If government machineries are found to be negligent in dealing with such acts of violence against children, then it will definitely lead to turmoil like situation in the society where the entire system of brotherhood, fraternity, equality, justice may collapse.

The prime responsibility is of the welfare state to ensure peace and protect human rights of every citizens. Hence, police is one of the important stakeholders in this regard but what is found in actual is that after listening the word 'police' in India; a negative image comes in the minds of civilians. For children, it is even difficult to accept. To curb this problem, police institutions have started working on the concept of community policing to build their positive image among the people. For children also the concept of child policing is being introduced. The present work is a judicious attempt to understand the functioning of these police stations and try to relate it with Gandhian ideology. Hence, the following research questions have emerged: Does Gandhian perspective has any relevance over the policing system of our country? Is Child Friendly Police System approach is somewhere linked with Gandhian Approach to policing? How can we best utilize Child Friendly Police System approach in the best interest of children? To answer these questions, following research objectives are framed:

2. Objectives of the Study

1. To discuss Gandhian perspective in relation to Policing and Child welfare.
2. To study the relationship between Gandhian perspective and adoption of Child Friendly Police System in India.
3. To highlight the factors affecting Child Friendly Policing in India.
4. To suggest practices that may improve the functionality of existing child friendly police systems.

3. Methodology

The present research is descriptive in nature. Various

secondary sources including research journals, newspapers, periodicals, government reports etc. are used for data collection and review. The data was then analysed critically to draw conclusions.

4. Gandhian Perspective on Child Welfare and Policing

Gandhian identity as social reformer, activist and great leader has initiated many reforms that actually helped Indian Society in reshaping its orthodox beliefs and practices. He ever emphasized the society to adopt two basic principles e.g. *'Sarvodaya'* and '*Satyagraha*'[7].These are nothing but the weapons to promote social justice and equality. His book 'Experiments with Truth' projected him as a scientifically curious and a self-evaluative person[8]. At mass level, he started many social movements like '*Dandi March', 'Namak Andolan', 'Boycott of Western Goods etc*. for mobilizing people[9] [10] [11]. All these movements helps in indigenization of community engagement practices and keeping people at Centre.

Gandhian ideology is more concerned with reconstruction of society based on the principles of truth and non-violence, love for all, developing harmonious relations with each other, welfare of all and service to others[12] [13]. Gandhiji also forwarded eighteen point constructive programme including "*Communal Unity, Removal of Untouchability, Prohibition, Khadi, Village Industries, Village Sanitation, New or Basic Education, Adult Education, Women, Education Health and Hygiene, Provisional Languages, National Language, Economic Equality, Kisans, Labour, Adivasis and Students as major tenets*." This programme provides a representation of social order among people[14]. Hardly, there is any social area where Gandhiji's vision has not reached. Since, the paper is aimed at examining relationship between Gandhian perspective and Child Friendly Police System along with Gandhian perspective of Child Welfare. Gandhian view on policing and child welfare is also considered.

Gandhiji always looks for overall development of children. He raised the voice against the social evil of child marriage predominant in Indian society. Gandhiji was also a victim of child marriage and remorse all the way through his life for accomplishing married at a premature age. Gandhiji are of the view that premature age marriages were disadvantageous for children as the both physical as well as mental capacities have not been developed to handle the pressures and responsibilities of married life. It also affects the health of a

child[15]. He also emphasised that Quality Education to be given during the foundation years of a child's life and to the young children instead of engaging them in household activities. It further helps in character building of child as well as nation.

As a proponent of self-reliance; Gandhiji requested parents to help their children in becoming self-reliant and earn an honest livelihood. He also explained the importance of adopting non-violent method to train children. In one of his interaction with a school teacher regarding being non-violent to children. He clearly responded to highlight the significance of nonviolence *"I am quite clear that you must not inflict corporal punishment on your children or pupils. You can punish yourself, if you like and are qualified, in order to melt your children's or pupils' hearts. The non-violent method invariably succeeded"* (Harijan, 13-7-1940; CWMG, vol.72) [16].

In context of policing, Gandhiji is of the view that police force is essential for every state for protecting and preserving the non-violence in the society[17]. He quoted in 'Harijan', (1-9-40, p. 265):

"Nevertheless, I have conceded that even in a non-violent State a police force may be necessary......I have not the courage to declare that we can carry on without police force as I have in respect of any army. Of course, I can and do envisage a State where the police will not be necessary. But whether we shall succeed in realizing it, the future alone will show. The police of my conception will, however, be of a wholly different pattern from the present-day force. Its ranks will be composed of believers in non-violence. They will be servants, not masters of the people. The people will instinctively render them any help, and through mutual co-operation they will easily deal with the ever-decreasing disturbances. The police force will have some kind of arms, but they will be rarely used, if at all. In fact the police men will be reformers. Their police work will be confined primarily to robbers and dacoits."

Hence, Gandhiji wish to replace 'Police' with 'Peace Volunteers'. He emphasized that the police has to treat public and every individuals like friends. So the public respect the police and comes to them for any problematic situation. But instead of approaching police at the time of a problematic situation, the public fears from the police[18] [19]. Gandhiji believes that crime and delinquency is like a social disease; thus, criminals and other law-breaking individuals should be given the appropriate correctional,

reformative, social and behavioural change treatment instead of giving them punishment, because punishment doesn't give them any positive push for coming out from this criminal intend and behaviour[20 21].

Gandhiji was of the view that 'violence' is a multi-dimensional phenomenon and is not limited to physical abuse. In case of child; exploitation, oppression and treatment with humiliation should also be counted as an act of violence and that is very much present in every society. In words of Gandhiji, the other forms of violence against children constitutes *"poverty, lack of education, child labour, malnutrition, exclusion on the basis of caste or race, and trafficking…..as compared with the bodily violence, physical abuse or corporal punishment"*[22]. The significance of this can be understood in the light of recent death of a nine year old Dalit boy in a private school of Surana village located in Jalore district of Rajasthan. The child was beaten by a school teacher merely for drinking water from his pot and later the child died during treatment in hospital[23]. Although, the investigation is still in process but the child has lost his live. In this case, even the FIR remained unregistered for continuous Twenty Three days by the police officials in spite of efforts made by the family of the victim[24]. This case is much highlighted now in media, but, there are many more cases which remains unreported. This is therefore a high time to realize that crime against children may no longer persist.

5. Relating Gandhian Perspective with Child Friendly Policing

As compared with the other countries of the world, India is on the top in terms of Children population. Along with that our country is also treated as a young nation, which have great edge on demographic dividend in terms of manpower and resources in the country. For taking into consideration, the major percentage of children in the population of country, government must have to make special provision and arrangement for catering the needs of the largest section of the population who can't vote and also can't raise voice for themselves. Indisputably, the Government (Central and State) is doing its best by setting up many schemes and policies for children. 'NEP-2020', 'Vatsalya Schemes', 'Shakti Scheme', 'Poshan Scheme', ICDS, mid-day meal scheme, immunization,

scholarships are all good examples of best practices for catering the needs of the children and setting the agenda of child welfare on higher priority. In addition, initiating Child Friendly Systems and making structural changes in the traditional setup of policing is also a great move for children in need of protection and care. Similarly, there are many laws which are enacted and amended by the government for the welfare of children. Juvenile Justice (Care and Protection of Children) Act, 2015 (amendments in 2021); POCSO ACT, 2012 (amendments in 2022) Child Labour Act (amendments in 2021), Child Labour (Prohibition and Regulation) Amendment Act, 2016; The Prohibition of Child Marriage Act, 2006 (The Prohibition of Child Marriage Amendment Bill, 2021) etc. and many more acts are all-inclusive legislations for protecting the children from social evils of the society. These all acts, policies and programmes launched by the Central as well as State governments for creating a safe environment for children where they can feel protected and also independent to enjoy their basic rights and freedoms and can build their future as bright as the sunshine. In these safe places and environments provide proper trainings, build the capacities of all involved stakeholders more so that they can became child friendly and sensitive to the needs of children and children can also share their feeling and problems freely with these functionaries and operational systems. System.

Presently, there are plenty of initiatives e.g. Community Policing (CP), Child-Friendly Police Systems (CFPS), Community-Liasioning Groups (CLGs), Police Mitra (PM), Child Welfare Police Officers (CWPOs), Suraksha Sakhi (SS), and Student-Police Cadet (SPC) Scheme etc. which are majorly influenced by the philosophy of Gandhiji [25] [26] [27] as per Rajasthan Police, Kerala Police and Save the Children. Child Friendly Police Station (CFPSs) is another important landmark in this regard. Child-Friendly Police units have been created in every Police Station and the police staff of these police stations are being trained to handle the cases of children with friendly gestures and actions. These police personnel are making changes in their behaviour and attitudes. Police is also trying to make attractive ambience and special room in Child friendly Police Thanas for the children through chart papers toys, games and colourful walls, so that children who cam there after the rescue operation or for going there for registering complaints and their problems, may find the place a friendly place with positive environment, so that children can share there feeling with the police

in a free manner. Police department is also trying hard to build proper infrastructure for child friendly policing, and proper enforcement of the laws and policies enacted for child welfare.

To ensure this, due infrastructural changes were also made in various police stations. In continuation, colourful rooms with cartoons painted on the walls of the police stations were designed and specially trained policeman in civil uniform and one lady staff is deputed to handle the cases of children. Child-Friendly Systems provide an environment where a child can share their feelings easily and approach the police for help without any fears. The term ‘Child Friendly’ therefore implies the availability of place or a structure in place, decent verbal communication, easily availability, accessibility and approachability of Child Welfare Police Officers, excellence mediation and involvement of the concerned authority, proper follow-up and handling of events, trials, easy access to legal help and aid and respect of the needs and requirements of children[28]. In words of Deputy Commissioner of Police, Shri Rohidas Pawar *“Children get scared when they come to the police station. Hence, such an area is created where policemen are also wearing civil cloths to help these juveniles adjust well to the environment.”* Undoubtedly, this is a nice initiative to create a culture of child friendly environment. Dahiya in his study also reported that during trails, investigations, reporting complaint and informing about the problems faced by the children etc. children have to frequently visit the police stations. These children are not necessarily the criminals; they may also be the victims of crime and other social malfunctioning like child marriage, child labour, communal riots etc. The positive environment and treatment which they receive in the police stations, the friendly discussion and sharing the things with police personnel, the pictures, artworks, photos, posters on walls of the police stations and the toys they saw in police station are helping these children for developing faith and trust on the police personnel. This further, leads to relaxing these children and giving them home like environment. Thus, the transformation and enhancement of existing infrastructure in a beautiful manner will definitely support in reducing the gap and fear between the child and the police and develop a feeling of trust and faith among both the partners[29]. Similarly, the handling of rescued children from child labour, child marriage through running proper rescue

operations is a very subtle and sensitive process and requires exceptional and distinct skills to deal with such situations as well as with the children while helping them out from these kind of circumstances.

Various stakeholders have now realized the importance of police being friendly to the society for its maximum utilization. In India, Kerala was the first state who has taken lead in establishing child friendly police systems. As of 2021 data, One hundred and ten (110 in number) police stations were transformed and converted into the Child Friendly Police Stations where children are being treated within a protective and friendly environment in Kerala[30]. It is really a great move towards child welfare. Same is initiated in Rajasthan. Rajasthan police made efforts in this direction and established its first Child-Friendly Police Station in Dholpur district with a facility of colourful room, trained and sensitised police staff for handling the cases of children. Formerly this police station, which is transformed into child friendly, known as *'Sadar Police Station'*, but now is is recognised as the *'Bal Maitri Adarsh Police Station'*. Sooner it will be equipped with video games[31]. This child friendly police station is first of its kind underneath the joint initiative of the Rajasthan State Commission for Protection of Child Rights (RSCPCR) and the police campaign of *'Ek Kadam Bachpan Ki Aur'*[32]. Similarly, the first Child Friendly Police Station in Jaipur district was established in Shastri Nagar police station as TAABAR[33]. Following that, many more have started their functioning in Rajasthan.

Such initiatives are helpful in reducing the fear amongst the children about the police. Children are feeling more comfortable to approach police. It is common practice in many of the police stations that the rescued child is first taken to the child-friendly place developed especially for them and then with the help of counsellor, the policemen tries to establish a conversation with the child and later record his/her statements. Furthermore, presence of female police officer and child welfare police officer of that particular area is also being ensured in most of the cases. All these steps are in line with what has been presumed by Gandhiji about an ideal police serving as 'friends' not as 'bodyguards'. This further verifies that Gandhian philosophy has inspired child friendly policing system to a great extent and that is needed as well.

6. A way forward

Away from rosy picture, the stark reality is that in India; most of the police stations are not developed as child friendly police stations yet. Many untrained policemen are still using abusive language in front of children and which is often ignored. Children are still beaten in many of the police stations during investigations. These are all malpractices that need to be addressed to make child friendly system functional and progressive. In fact, the entire Child Protection System needs to be strengthened to save children from any kind of abuse and exploitation.

In this regard, Himachal Model of supporting the children legally by appointing child protection officers may also be adopted by other states. In addition, rooms for children as suggested by BPR&D in every police station should be taken up on priority[34] as per BPR&D in 2018. This could further be given a home like touch where a child may feel comfortable enough to share his /her views and open up their voices.

There is a need to build capacity of the individuals and police personnel based on Gandhian values and belief system. People need to learn the importance of Satya, Ahimsa, Brotherhood and Fraternity. Rajasthan is a state which had initiated "Gandhi Nideshalay" and "Mahatma Gandhi Institute of Governance and Social Science" to inculcate Gandhian values among the children and the young people. This may further lead in reduction of crime against children and will create a progressive environment for all.

However, it requires more rigorous awareness generation and sensitization campaigns to bring "change of heart" in common man. Since change in people's value system, attitudes, skills and knowledge will further leads to the internalization of the issues of child protection, child development, child participation and child survival. Hence, need is to adopt an inclusive approach where participation of all the designated and concerned functionaries can be ensured. Child-Friendly Police Systems may work on the theme of 'best interest of children' irrespective of all hardships. Taking care of the children should be the 'shared responsibility' of everyone in the society and should be practiced at all levels. If successful, this model will definitely help our children grow in a healthy and successful environment.

7. Conclusion

Gandhiji has been referred to as a practical idealist, an experimental social practitioner and a spiritual philosopher with high ethical standards. His own commitment and dedication to service and justice makes him an exceptional role model for the police professionals. The new initiatives and structural changes within the police system are largely influenced by the values and ethics of ‘Gandhian Thought’ process which promotes value creation and establishment of a just society. It also emphasizes on the role of peace volunteers and strengthening the functioning and mechanism of Child Friendly Police System. However, the initiative of Child Friendly Police System needs to be strengthened further with more funds and infrastructure along with dedicated manpower. Treating every child with dignity is their basic right and must be ensured.

8. Disclosure Statement

The authors would like to thanks Dr. Vijender Singh Sidhu, Member-Rajasthan State Commission for Protection of Child Rights (RSCPCR) for their support and valuable inputs. The authors acknowledge that there is no disagreement and conflict of interest about the publication of this research paper on the theme of “Child-Friendly Police System in Rajasthan: An Insight from Gandhian Perspective”.

References

1. K S Bharathi, *The Social Philosophy of Mahatma Gandhi* (Concept Publishers, New Delhi), 1991.
2. K L Mashruwala, “*Gandhi: Vichar Dohan*”, (Sasta Sahitya Mandal, New Delhi), 2001.
3. Navajivan, *Become A Child*, Mahatma Gandhi Collected Works Vol. 48: (21 November, 1929 - 2 April, 1930) pp. 19-20. Compiled by: Gandhi Sevagram Ashram. Wardha: 442102. INDIA. Retrieved from https://www.gandhiashramsevagram.org/gandhi-literature/mahatma-gandhi-collected-works-volume-48.pdf on 21/08/2022 at 15:29 IST.
4. R K Prabhu, and U R Rao, “*The Mind of Mahatma Gandhi*”, (Navajeevan, Ahmedabad), 1987.
5. https://www.ncrb.gov.in/sites/default/files/CII%202020%20Volume%201.pdf Retrieved on 14/09/2022 at 13:47 IST.

6. Ibid.
7. K D Gangrade, *Gandhian Approach to Development and Social Work,* (Concept Publishing Company, New Delhi), 2005.
8. M K Gandhi, *The Voice of Truth, (*Editor: Shriman Narayan. ISBN: 81-7229-008-X Published by: Shantilal H. Shah, Navajivan Trust, Ahemadabad-380014 India). Printed by: N. M. Kothari at Rang Bharati, Todi Estate, Sun Mill Compound, Lower Parel, Bombay-400013 India, 1959.
9. K D Gangrade, *Gandhian Approach to Development and Social Work,* (Concept Publishing Company, New Delhi), 2005.
10. K S Bharathi, *The Social Philosophy of Mahatma Gandhi* (Concept Publishers, New Delhi), 1991.
11. Pyarelal, "*Gandhian Techniques in the Modern World"*, (Navajeevan. Ahmedabad), 1969.
12. B N Ganguli, *Gandhi's Social Philosophy*, (Vikas publishing house, New Delhi), 1973.
13. Ramashray Ray, "Self & Society: A Study in Gandhian Thought", *Sage Publication, New Delhi,* 1985.
14. K D Gangrade, *Constructive Programmes*, (Gandhi Smriti and Danshan Samiti, New Delhi), 2001.
15. Himajyoti Doley, "Relevance of Mahatma Gandhi's Ideas on Women Empowerment", *International Journal of Scientific & Technology Research*, Volume: 9. Issue: 04 (April 2020), pp. 1541 – 1545. ISSN: 2277-8616. 2020. www.ijstr.org retrieved from https://www.ijstr.org/final-print/apr2020/Relevance-Of-Mahatma-Gandhis-Ideas-On-Women-Empowerment.pdf on 19-08-2022 at 18:13 IST.
16. Harijan, "*Gandhi's Views on Children and Youth*", Mahatma Gandhi Collected Works (Vol. 72: 13 July), 1940. Compiled by: Gandhi Sevagram Ashram. Wardha: 442102. INDIA. Retrieved from https://www.gandhiashramsevagram.org/gandhi-literature/mahatma-gandhi-collected-works-volume-72.pdf on 23/08/2022 at 18:29 IST.
17. R B Singh, "Gandhian Approach to Development Planning", *Concept Publishing Co.,* New Delhi, 2006.
18. Hindustan Times, "*Gandhi is the Inspiration for The Cops*", 1973. Retrieved from https://www.hindustantimes.com/art-and-culture/gandhi-is-the-inspiration-for-this-cop-s-canvas/story-8KIbpvsLIVGEtk1uNXwVwO.html on 18.06.2022 at 23:43 IST.

19. https://mgkvp.ac.in/Uploads/Lectures/32/2076.pdf Retrieved on 19/08/2022 at 16:27 IST.

20. M K Gandhi, *The Voice of Truth*, *(*Editor: Shriman Narayan. ISBN: 81-7229-008-X Published by: Shantilal H. Shah, Navajivan Trust, Ahemadabad-380014 India). Printed by: N. M. Kothari at Rang Bharati, Todi Estate, Sun Mill Compound, Lower Parel, Bombay-400013 India, 1959.

21. *Gandhi's Views on Children and Youth*. Retrieved from https://egyankosh.ac.in/bitstream/123456789/33712/1/Unit-11.pdf on 22-08-2022 at 13:07 IST.

22. Rekha, Wazir, "Gandhi and Children: From Carriers of Deficits to Agents of Change" in the *Symposium on Gandhi's Values in the 21st Century*, Organized by: Global Human Rights Defense (www.ghrd.org) on 2 October 2009. The Hague, The Netherlands. Retrieved from International Child Development Initiatives. www.icdi.nl on 18/06/2022 at 16:39 IST.

23. PTI, *Entire country is in pain by the death of student in Jalore: Gehlot*, 18 August, 2022 02:04 pm IST. Retrieved from https://theprint.in/india/entire-country-is-in-pain-by-the-death-of-student-in-jalore-gehlot-2/1088018/ on 18/08/2022 at 16:51 IST.

24. India Today, *Jalore Dalit student death: Human rights panel seeks report from Rajasthan Govt.* August 17, 2022 10:55 IST. Retrieved from https://www.indiatoday.in/india/rajasthan/story/rajasthan-jalore-dalit-student-death-human-rights-commission-1988904-2022-08-17 on 18/08/2022 at 16:47 IST.

25. Rajasthan Police, *Community Policing*. 2022. Retrieved from https://www.police.rajasthan.gov.in/DistrictCLGMembers.aspx on 27th June, 2022 at 09:40:10 AM.

26. Kerala Police, *Child Friendly Police Stations (CFPS)*, 2021. Retrieved from https://keralapolice.gov.in/page/child-friendly-police-stations-cfps on 24th July, 2022 at 11:40:10 AM.

27. https://www.savethechildren.in/news/how-india-s-police-stations-can-be-made-child-friendl/ Retrieved on 24th October, 2022 at 17:40:10 PM.

28. NCPCR, *Guidelines for Establishment of Child Friendly Police Stations*, 2017, Retrieved from https://www.childlineindia.org/pdf/Guidelines-for-Establishment-of-Child-Friendly-Police-Stations.pdf on 24th July, 2022 at 12:25 IST.

29. Aaryaman Dahiya, "Pune city gets 10th child-friendly police

station at Range Hills", Published on Jun 08, 2022 12:32 AM IST. Retrieved from https://www.hindustantimes.com/cities/pune-news/pune-city-gets-10th-child-friendly-police-station-at-range-hills-101654628526096.html on 24th July, 2022 at 12:34 IST.

30. Kerala Police, *Child Friendly Police Stations (CFPS)*, 2021. Retrieved from https://keralapolice.gov.in/page/child-friendly-police-stations-cfps on 24th July, 2022 at 11:40:10 AM.

31. Tabeenah Anjum, "Rajasthan gets its first child-friendly police station", *Deccan Herald News Service*, *Jaipur*, 03rd April, 2018, 18:14 IST. Retrieved from https://www.deccanherald.com/content/668234/rajasthan-gets-its-first-child.html on 24th July, 2022 at 12:54 IST.

32. Ibid.

33. TAABAR, *Child Friendly Police Station: Shastri Nagar Jaipur North*, 2020. Retrieved fromhttps://taabar.org/child-friendly-police-station/#:~:text=TAABAR%20 initiated% 20a%20 child% 20friendly, police%20station%20in%20this%20regard on 24.07.2022 at 21:48 IST.

34. Bureau of Police Research & Development, *"National Police Mission on People Friendly Police Station Micro Mission: 05"*, 2018, Retrieved from https://bprd.nic.in/WriteReadData/userfiles/file/201808160350402786762 People Friendly Report senttostates.pdf on 28-8-2022 at 13:01 IST.

Dr. Shaizy Ahmed
Assistant Professor
Department of Social Work, Central University of Rajasthan
Kishangarh, Ajmer Rajasthan
Email Id: sahmed_sw@curaj.ac.in.

Mr. Praveen Singh
Research Scholar
Social Work, Banasthali Vidyapeeth Niwai, Rajasthan
Email Id: praveen.singh934@gmail.com;
Phone No. : +91-7073252901.

❑ ❑ ❑

Understanding Media Portrayal of Immigrants

• **Biswajit Mohanty**

The first hate crime against Sikh immigrants in America happened in 1907in a seaside timber town in Washington that came to be known as the Bellingham Riots or pogrom. At the time, America suffered from an economic meltdown, and the anti-American sentiment was ascending. Hundreds of Sikh men had traveled from India to toil in the lumber mills and paid the price. Five hundred white men, many of whom were local Asiatic Exclusion League members, descended on Sikhs and other South Asians, routing them from the bunkhouses where they roomed and chasing them into the streets. Within hours, the entire Sikh population of Bellingham had fled—some in the train, others in boats. Many Sikhs were physically battered.

Many Sikh survivors remember this event and draw a parallel to the current attacks on Sikhs in America. Immigrants are demonized. Lost jobs were fuelling while working-class despair and resentment were up. Hate crimes were reported to be up. “Get out of my country” , is the general comment labelled at the people with the turban. The cab drivers are beaten severely, shooting of Sikhs have also been reported very recently. You may call it a mistaken identity. But it is a term that should be used with utmost caution as a mistaken identity means that there is a target. The Sikhs in America are campaigning to inform American society of their identity.

The following questions ensue. Why is the number of attacks on immigrants growing? What factors are responsible for them? The political economy factor tells that the scarcity of resources is one of the factors for the hate crime. Maybe but how does it enter into people’s psyche?

Some may talk about the cultural differences that bring about suspicion and preservation of one's culture is the reason for a hate crime. However, this has become a nationwide phenomenon where people rarely meet each community.

How identity of the "other" is created? What is the significant factor that ties up the entire nation?

My argument is that in a mediatized and mediated world, the visual media plays an essential role in constructing identity, constructing the other, and finally paving the way for exclusion in the society.

Literature review

The recent refugee crisis in Europe has prompted scholars to undertake empirical studies using new methods to understand people's attitudes to minorities in general and refugees and immigrants in particular.

Some countries have developed a consensus on supporting immigrants and in other countries, there is a sharp division among citizens on receiving them in their countries. Reviewing other literature, Heath et al, have concluded that citizen's close contact with immigrants' increases sympathy and support for them. Those citizens who feel deprived and with strong nationalist sentiments have shown high degree of opposition compared to the "universalist individuals" who show more positive attitudes toward immigrants.

They have also highlighted that apart from the individual perception, there are studies carried out on country-specific attitudes to immigrants. Given the contextual variables of the size of the migrant population, immigration policies, and media influence on citizens, the attitude of the countries varies: countries with more supportive policies tend to be more positive in comparison to those where media's negative coverage on the size of refugees' presence in the country. The authors conclude that the socio-cultural subjectivities and processes and feeling of relative deprivation in terms of resource deprivation are determinants of individual's anti-immigrant response to refugee and immigrant questions. They also conclude that the national context of attitude formation also matters, which are dependent on "normative signals" from different actors in the country regarding immigration.

Ford and Mellon (2019), in a cross-national survey of Europe suggest that the media messages, governmental policies, and political campaigns affect people's perception about the immigrants entering the country.

There are other studies on media representation of refugees, especially those from minority communities and immigrants. Boomgaarden and Vliegenthart (2009), for instance, have highlighted the role of media as an "external" shocker and "contextual variable", in addition to the social and economic shocks, by overpitching the (un)foreseen impact of immigrants on social fabric, economy and politics. According to the authors, the media plays the "contextual role" in influencing the public opinion about immigrants. The general findings that draw from their data analysis are, first, evaluative news on migrants has a strong linkage on immigrant problem perception in that people are less inclined to the issue of immigrants if the news coverage is positive about them; second, the visibility of immigrant actors in the news did affect the mood of citizens negatively i.e. less number of people viewed immigration as a problematic issue; third, and most important finding is that the news's evaluative content rather than the visibility of immigrant actors plays a critical role in influencing citizens' perception.

The fourth and essential point is that the visibility of migrants plays a "parasocial contact", akin to social contact with the immigrants, which decreases anti-immigrant sentiments;

The report by Berry, Garcia-Blanco, and Moore (2015) for the UNHCR had the following major findings on the study conducted in EU countries on the media representation of refugees in the European Union.

1. First, the study found that the Swedish press reporting is more favorable towards refugees and has advocated a liberal-humanitarian EU asylum and refugee policy.
2. In the United Kingdom, despite progressive newspapers with sympathetic news coverage on refugees, like the Guardian and Daily Mirror, the right-wing newspapers are hostile to the refugees that negatively frames them refugees. England exhibited the most polarised coverage of the refugee issue.
3. The critical factor shaping the coverage of the study highlighted

the inadequacy of the European Union's response to the crisis. However, there was an acknowledgment among people as the key institution in solving the refugee crisis.

4. Political contestation is crucial for influencing media coverage of refugees in different newspapers within the states. Fifth, local logic is decisive in shaping the reporting in the newspaper and media. For instance, in Sweden, where social democracy is very strong, the extreme right is balanced out by alternative political sources in countering them.

In an exciting study on the attitude of citizens toward migration Rustenbach (2010) has analyzed the multiple sources of negative attitudes toward Immigrants. The author has tested theories of inter-community interaction – cultural marginality theory, human capital theory, political affiliation theory, societal attachment, neighborhood safety, contact theory, foreign direct investment theory, and economic competition – that guides immigrants/refugees and the citizens' relationship. The author that the pro-immigration attitude is positive among those who are more educated or have high human capital and the nature of political orientation that is among "left-leaning" nations.

Joris and De Cock (2019) delve into the "why" of the negative attitude by examining the impact of framing in the media. They argue that the negative framing of refugees continuously results in an anti-refugee framework. They further state that the minor frames lack the power to counter the dominant frame as people refuse to believe the minor frame leading to cultivating a negative attitude to immigrants.

Why do people trust Media: towards a tentative theory?

The media has become an essential trust agent in modern society because of the lack of "ontological security," as in the modern world, "circumstances of co-presence" are absent. According to Giddens (1990), an "abstract system" in the modern world operates through "symbolic tokens" or specialized systems (Giddens, 1990, P 80). The day-to-day activities in modern society is marked by "civil inattention" that enables citizens to trust "disembedded mechanisms" which is "rooted in the unconsciousness". The face-to-face interaction of traditional society is replaced by "relational networks and mechanisms,"

which are mediated by experts and their technical expertise. Thus, Giddens concludes that trust in the symbolic authority becomes significant as it provides relational networks from a distance and abstract tokens of expertise. The attachment to news media is determined by "schedules, genres and narratives" (Silverstone, 2003: P 15) that "articulates anxiety and security along with the creation of the trust." (Mohanty, 2020: P 103).

The individual's trust in media gets transformed into a more extensive network of relations through the operation of the "public sphere". The public sphere is a critical intermediary domain between the state and civil society, where critical and rational debates take shape through the universality of reflective arguments. It is a space where communication occurs without coercion through the public use of reason. The public sphere acts as a "public body", where the mass media acquires significance in transmitting reasoned and rational arguments to the public. According to Habermas, television is one medium that not only transmits information but also establishes spheres of influence. (Habermas et al. 1974, P 49) Media becomes independent of state control and provides a platform for the citizens to engage in free debates and discussions. One characteristic of citizenship is free to access to media to express their views bereft of fear and intimidation.

Identity formation is a complex process dependent on political, economic, and historical trajectories. In a mediatized world, media becomes the storehouse of ethnic representation and helps construct and reinforce self and community identity through various psychological and symbolic processes. One of the processes is the characterization of ethnic minorities that happens through news media. Selective media exposure helps form a racial and ethnic identity in the following processes.

First, persons who uphold the centrality of ethnic identity develop the concept of self. Second, try to advance their ethnic identity by selecting news channels that portray their identity more positively.

In other words, media exposure and representation of ethnic groups through mediated and non-mediated processes can solidify ethnic or any social identity over time. Stereotypic media portrayals

of ethnic minorities percolate into larger cultural practices and become the sources of judgment (Behm-Morawitz, 2020). The problematic portrayal of ethnic groups not only disempowers the minorities but also scripts a psychological model that enables the majority group to form a negative mental image of the minority groups, refugees, and non-state persons. The resultant effect is that ethnic minorities and refugees face problems in their everyday life-world systems.

In a digitized and media-mediated world, people trust visual media for information. Nearly half of the global population trusts media for information, according to the Edelman Trust Barometer Global Report 2019. The CSDS-Lokniti National Election Survey shows that almost 55% of people trust news on television, which is 2% less than the trust level in reading news in the newspaper.

The media, especially the visual media, plays two essential roles in the mediatized world.

1. Media has the power to orchestrate the participation of viewers by 'abrogating' distance between the viewers and the event happening out 'there'.It thereby democratizes participation and constructs a community of viewers that brings about 'mediatisation of modern culture', a shared experience and a collective memory' (Tsaliki, 1998, p. 347). The collective memory formation through symbols and meanings brings diverse groups together to achieve the status of an 'imagined community' (Anderson, 2006).
2. The second important function is building trust and dependency among the viewers through the capacity to manage 'indeterminate complexities' (Luhmann, 1979, p. 8).

The media has become an essential agent of trust in modern society because of the lack of 'ontological security' and 'circumstances of co-presence (Giddens, 1990). According to Giddens (1990), an 'abstract system' in the modern world operates through 'symbolic tokens' or specialized systems. The day-to-day activities in modern society are marked by 'civil inattention' that enables citizens to trust 'disembedded mechanisms', which is rooted in unconsciousness. The face-to-face interaction of traditional society is replaced by 'relational networks and mechanisms', mediated by experts and their technical expertise.

Thus, Giddens concludes that trust in the symbolic authority becomes significant as it provides relational networks from a distance and abstract tokens of expertise.

The attachment to news media is determined by 'schedules, genres and narratives' (Silverstone, 2003: p. 15) that 'articulate anxiety and security along with the creation of trust' (Mohanty, 2020: p. 103). The individual's trust in media transforms into a more extensive network of relations through the operation of the 'public sphere' (Habermas, 1986). The public sphere is a critical intermediary domain between the state and civil society, where critical and rational debates take shape through the universality of reflective arguments. It is a space where communication occurs without coercion through the public use of reason. The public sphere acts as a 'public body', where the mass media acquires the significance in transmitting reasoned and rational arguments to the public. Television, according to Habermas, is one of the mediums that not only transmits information but also establishes spheres of influence (Habermas et al., 1974, p. 49).

Media becomes independent of state control and provides a platform for the citizens to engage in free debates and discussions. One condition for citizenship in modern times is the right to media access to express views, bereft of fear and intimidation. As a genre, news standardizes narrative and follows a presentation pattern, which requires demands from the audience and their preferences (Ignatief, 1998). As a part of the public sphere, the audience contextualizes their issue and forms national and international collectives. The 'ventriloquist' newsreader constructs 'us' versus 'them', thus framing issues within an 'institutional discourse' through micro and macro-level processes (vanDjik, 1988, p. 81). Thus, the news involves standardization of narrative and pattern of presentation according to the audience's demands, what they like to listen to, and like to watch. As an imagined community, the viewers through news construct their national or international collective identity. It constructs the 'we' versus 'them' narrative through the 'ventriloquist' newsreader. Through the circuitous route, the news channels become the authority (Ignatief, 1998, p. 71).

As a genre news standardises narrative and follows a pattern of presentation, which requires demands from the audience and their preferences; audience, as a part of the public sphere,

contextualise their issue and forms national and international collectives. The "ventriloquist" news reader constructs "us" versus "them," thus framing issues within an "institutional discourse" through micro and macro-level processes. (vanDjik, 1988, P 81) The news thus involves a kind of standardization of narrative and pattern of presenting according to the audience's demands, what they like to listen and watch. As an "imagined community, " the viewers construct their national or international collective identity through the news. Through the circuitous route, the news channels become the authority (Ignatief, 1998, p. 71). Thus we find the politics of media production and consumption, where news becomes a practice and vehicle for tangible lived experience and construction of social reality (Fowler, 1991).

Thus, we find media production and consumption politics, where news becomes a practice and vehicle for reflecting tangible lived experience and construction of social reality (Fowler, 1991). Construction of social reality by media can take the secular or religious turn depending upon political and ideological consensus at play in the domestic, regional, or international sphere.

Conclusion

It can be concluded from the above that the dominant value of the nation-state determines how immigrants are treated in a country. The media institutionalises discrimination by representing refugees or immigrants stereotypically. The public sips these acts against the immigrants, however, the media cannot go further in their activities, and it can only server the interest of the ruling elite so long as people do not protest against it. Hence, people's agency is required for changing the dominant value system in a society for the safety of the immigrants.

Biswajit Mohanty
Associate Professor
Department of Political Science
Deshbandhu College
University of Delhi

❑ ❑ ❑

Reforming Teacher's Role toward Competency Based learning

• **Reena Sheerin A Sangma**

• **Dr. Saru Joshi**

Competency based learning is one key element in any learning environment. It allows students' progress through learning objectives as they demonstrate mastery of content at their own pace. To gain insights into what is competent-Based Learning and what facilitators do in the classroom, the present study analyses the teaching behaviors in the form of instructional skill and pedagogical innovation. The study was conducted in Garo Hills District of Meghalaya. It was normalcy seen that shifting professional practice through a participatory process will require significant shifts at multiple levels: individual, team, school, community, district and state. The study was qualitative in nature. The objectives of the study were i) To study the 21st century Instructional skills and pedagogical innovation. ii) To help Teachers and students in engaging themselves in Competency based learning. The research questions for the study were: i) what are the 21stInstructional skills and pedagogical Innovation? ii) Why Competency Based Learning? The samples were selected randomly using 10 teachers from urban school and 10 from rural school and 20 students randomly. The data were collected from the primary sources like ii) Journals iii) Books.iii) field visits. Results shows that teachers were found to use competency-based learning as important and need to meet the 21st century skills and suggested that there must be reforms in the system of education.

Keywords : *Competency based learning,teaching occupation, reforming professional practiced. Learning environment.*

1. Introduction

In this rapidly changing world, the demand for a new set of competencies is growing at an alarming rate, labeling it as 21st century skills with an emphasis on intrapersonal skills. Competency Based Learning is a set of skills, abilities and knowledge that help students to perform task individually. It focuses on outcome not on journey allowing students to control their own pace not on confining on rigid learning processes. According to Casey, K, 2018, In 2011, innovators and leaders came together to develop a working definition of high-quality competency-based education. These competency-based educations are: demonstrated mastery, explicit, measurable, transferable learning objectives that empower students. Differentiated support based on individual learning needs and Learning outcomes emphasize competencies that include application and creation of knowledge, along with the development of important skills and dispositions. Teacher's professionalism and school restructuring are the major watch words used to describe efforts to reform teaching and schooling.(Hammond, L 1990) improve education by recruiting, preparing, and retaining competent teachers and by better utilizing their knowledge and skills to reshape their career. It is often envisioned broader roles not only on the part of teachers but there is a greater role on the students part as well.

2. Conceptual Framework CBL

Competency-Based-Education (CBE) has widely cited as an educational framework for designing educational programs that reflect four critical features: a focus on outcomes, an emphasis on abilities, a reduction of emphasis on time based training, and promotion of learner centredness. (Gruppen,*et.al*., 2016). Each of these has implications and challenges in ground reality of teaching communities in Garo Hills. A high level of individualization is feasible but carries with it significant costs at multiple levels: individual, team, school, community, district and state. Therefore, this study will highlight ways to innovate, adapt and imbibe better skills to transform to improve education system as a whole.

3. Theoretical framework CBL

There has been an increasing development on organizations to adhere to more rigorous guideline development approaches. This

study is relied on Dreyfus model to guideline methodology training for better understanding of the knowledge, skills and expertise. Stuart and Dreyfus presented the Dreyfus model of skill acquisition. It is the model of how learners acquire skills through formal instruction and practicing, used in the field of education. The main focus of the present study is based on five distinct stages i,e novice, competence, proficiency ,expertise and mastery. In a manner Richards in 2001 adheres to learning revolution by intense competitions and advocating useful and meaningful information that is relevant to the decision-making and policy development contexts.Competency-based education as given by Arevalo is an educational design model of teaching/training/instruction and assessment/evaluation process based on ideal student competency that are expected. It is a learning approach to education that focuses on the student's demonstration of established learning outcomes as pivotal to the learning process.

4 Literature Review

One of the teachers' roles is to embrace the uncertainty that comes with stepping out of their comfort zones, committing to working collaboratively with colleagues, and sharing our learning to benefit all (Katherine Casey (2018). Voorhees (2001) provided single competency that can be used in many different ways. Competencies within different contexts require different bundles of skills and knowledge. It is this bundling and unbundling that drives competency-based initiatives among postsecondary entities. The challenge is to determine which competencies can be bundled together to provide different types of learners with the optimal combination of skills and knowledge needed to perform a specific task. There are also major differences among teacher's with certification and teachers without certification. In the qualitative study (Goh, 2009), facilitators with certification revealed initial uncertainty over how they were evaluated, and attributed their later success in achieving certification to a commitment to personal reflection, peer feedback, and guided practice. Further in (Goh, 2014) revealed three themes influencing the quality of teaching and learning in the classroom: [1] questioning techniques of facilitators; [2] timeliness of facilitator response; and [3] facilitator awareness of unique learning goals and situations.

Competencies can provide a viable alternative to traditional courses and a vehicle for rigorous assessment. A high level of individualization is feasible but carries with it significant costs and makes intentional community building essential. Most significantly, abandoning a time-based framework is a difficult innovation to implement that is predicated on time-based education. Provides a framework for designing educational programmes that reflect on certain aspects: a focus on outcomes, an emphasis on abilities, a reduction of emphasis on time based training, and promotion of learner centeredness. (Gruppen, L., 2016). While studying the competencies of the modern teacher (Nessipbayeva (O)found that the effective classroom management, maximizing efficiency, maintaining discipline and morale, promoting teamwork, planning, communicating, focusing on results, evaluating progress, and making constant adjustments leads to reform and improve the competency practice. Johnstone, S and Soares, L (2014) Provided the degree reflects robust and valid competencies, Students are able to learn at a variable pace and are supported in their learning, Effective learning resources are available any time and are reusable, and assessments as a models that are secure and reliable and can fit into existing campus structure. Competency based Learning has been elaborated as per National Education Policy 2020 aiming to developed competencies among the students NEP 2020 has recommended that education should enable students to transfer knowledge in real life situation, learning how to learn away from rote learning, The facilitators needs to develop skills and competencies in an integrated manner, undergo training to adopt pedagogy and assessment to be based on learning outcomes.

5. Objective:

(i) To Study the 21st century Instructional skills and pedagogical innovation.

(ii) To help Teachers towards reformation in Competency based learning.

6. Research Questions:

(i) What are the 21stInstructional skills and pedagogical Innovation?

(ii) Why Competency Based Learning?

7. Method:

QualitativeAnalysis Methods

Samples: The samples were 10 teachers from urban school and 10 from Rural schools.

Sampling Techniques; Simple Random sampling

Data Collection: The data were collected from the secondary sources like ii) Journals iii) Books and Primary sources

Tools Used: Interview Schedule

8. Findings

The findings of the study were shown in the table based on interviews taken from 20 teachers:

Table: 1. (Urban)

Teachers from urban school

Sl No	Year of experience	Instructional skills and pedagogy used.	Challenges.
1	4	Management, efficiency, discipline and morale, promoting teamwork, planning, communic-ng, focusing onresults, evaluating progress, and making constant adjustments	Need more of experiential learning and govetsupport. Required more training programme. Need more of problem solving skills. More equitable engagement of students in productive tasks
2	7		
3	7		
4	5		
5	9		
6	2		
7	6		
8	5		
9	5		
10	7		

Teachers from rural school

Sl No	Year of experience	Instructional skills and pedagogy used.	Challenges.
1	9	Classroom Management, mostly lecture method, Planing and focusing on output,focusing onresults, evaluating progress, and making constant adjustments	Knowledge needs to be widespread as most rural schools suffer in this area of reforms, Training programme and individual teacher effort is required.
2	8		
3	8		
4	4		
5	7		
6	6		
7	8		
8	5		
9	7		
10	6		

9. Result and discussions :

Objective I #The findings from the trained teacher's data collected from urban setting interprets that facilitators have a high level of critical awareness about themselves and their learning environment, and are discerning in their ability to apply sound judgment in the classroom when interacting with their learners.

Ideally, Teachers demonstrate the following competencies:

(1) Effective classroom management, maximizing efficiency, maintaining discipline and morale, promoting teamwork, planning, communicating, focusing on results, evaluating progress, and making constant adjustments. The strategies should be used to promote positive relationships, cooperation, and purposeful accomplishment, organizing, managing time, and activities should ensure the active and equitable engagement of students in productive tasks.

(2) Effective teaching practices, representing differing viewpoints, theories, "ways of knowing" and methods of inquiry in the teaching of subject matter concepts. Multiple teaching and learning strategies should help engage students inactive learning opportunities that promote the development of critical thinking, problem solving, and performance capabilities while helping them

assume responsibility for identifying and using learning resources.

(3) Effective assessment, incorporating formal tests; responses to quizzes; evaluation of classroom assignments, student performances and projects, and standardized achievement tests to understand what students have learned. Assessment strategies should be developed

(4) Knowledge in Technology, Knowledge of how and when to use current educational technology, as well as the most appropriate type and level of technology to maximize student learning.

Student skills

The encompassing and all inclusive goals for educational systems and lifelong learning can enable us to identify and evaluate the range of competencies for teachers in 21st century. As an educator we need to understand the following skills:

- Ability to think and solve problems, logically thinking.
- Knowing own direction and making personal changes
- Team work, team discussions for alternatives in teaching and learning.
- Information and Research- understanding graphs-taking notes on a text- writing surveys- reporting information
- Organizing, planning and managing time- setting personal goals.

Objective ii) # To help Teachers towards reformation in Competency based learning from traditional way to competence-based learning with special reference to Garo Hills Meghalaya.

Pedagogical innovations

One of the most drastic qualities in educational arena is Educational Innovations which are fundamental in changing students' learning experiences. Like in other states many Institutions in Garo Hills also have already entrained with educational reforms that aim to change system of education. Expectations that such innovations can be supported by incorporating ICT (Information and Communication Technologies) into the learning and teaching process still needs to be widespread as most rural schools suffers in this area of reforms. The reformation in the field of education with more

progressive methods, and new training technologies are regular spheres of innovation. As recommended in National Education Policy 2020 the learning process needs to be away from rote learning to learning how to learn by: a) a shift in the focus of assessment, b) assessment to be used for optimizing teaching learning process, c) mathematics and mathematical thinking, data science, artificial intelligence, machine learning to be used, learning outcome- based examination and teacher training to focus on CBE.

The pedagogical Training and experience on Competency based Education is another important component for the competent teacher as new knowledge results into innovations leading to new theoretical approaches and practical technologies for achieving optimal results. Innovation in teaching and learning demands the change of educational paradigms.

10. Conclusion and Suggestions:

The reforms in how potential students view their abilities — especially issues connected to convenience—should pave ways to most institutions to examine their current offerings. It is, however, found that there exists a large gap between intentions and actions especially in rural areas. One of the most promising way is training of teachers to design competency-based education; practice was the most important explanation for the differences. Teachers' confidence can be built by adding training with video-based process-oriented worked about the applicability of the design methods. Consequently, a mixed strategy, consisting of product-oriented and process oriented seems a promising way to support secondary education teachers in their struggle to become instructional designers of competency-based education. It will help our nation to move closer to our social ideals of equity and opportunity. Teachers should undergo training to apply an instructional systems design methodology. After training the teachers will be better performer in learning tasks for competency Based Learning.

References:

Ainoutdinova,I,*et.al*, (1994) New roles and competencies of teachers in the ict-mediated learning environment of Russian universities DOI: 10.17853/1994-5639-2022-1-191-221 pp

Casey, K (2018) Moving Toward Mastery: Growing, Developing and Sustaining Educators for Competency-Based Education 1934 Old Gallows Road, Suite 350 Vienna, VA 22182 888.95.NACOL (888.956.2265) ph. 703.752.6216 / fx. 703.752.6201 www.inacol.org info@inacol.org. pp 1-90.

Goh,K., (2014)What Good Teachers Do to Promote Effective Student Learning in a Problem-Based Learning Environment Republic Polytechnic, Singapore Australian Journal of Educational & Developmental Psychology. Vol 14, 2014, pp. 159-166

Gruppen, L.,(2016) Competency-based education: programme design and challenges to implementation Medical Education 2016: 50: 532–539 doi:10.1111/medu.12977 www.mededuc.com discuss.

Hoogveld, A. W. M., Paas, F., Jochems, W. M. G. (2005). Training higher education teachers for instructional design of competency-based education: Product-oriented versus process oriented worked examples. Teaching and Teacher Education,http://www.elsevier.com/wps/find/journaldescription.cws_home/224/description#description © 2005 Elsevier 21, 287-297.

Johnstone, S and Soares, L (2-14) Principles for Developing Competency-Based Education Programs https://doi.org/10.1080/00091383.2014.896705 Pages 12-19

National Education Policy 2020. Ministry of Human resource Development Government of India https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_Final_English_0.pdf

Nessipbayeva, O (the competencies of the modern teacher, Candidate of Pedagogical SciencesDocent at Suleyman Demirel University Almaty, Kazakhstan Olga_Nessip@mail.ru pp 148-154

Richard A. Voorhees (2001) Competency-Based Learning Models: A Necessary Future new directions for institutional research, no. 110, Summer 2001 © John Wiley & Sons, Inc.pp 5-13.

Reena Sheerin A Sangma
Research Scholar
Department of Education University of Science and Technology Meghalaya

Dr. Saru Joshi
Associate Professor,
Department of School of Education University of Science and Technology Meghalaya

❑ ❑ ❑

Colonial Improvement Versus Cultural Anxiety : Introduction of Piped Water Supply in Kanpur (UP), 1894

• **Saumya Gupta**

Domestic piped water supply is as important an issue today, as it was in colonial times, as is obvious from the government scheme of the Har GharJal mission. For long potable piped has been seen as a wonderful gift of colonial modernity in India. However,there is a whole history of contestations between notions of colonial science and improvement and the Indian scepticism towards it. The ambivalent reception of the supply of piped water highlights a paradoxical situation where in the major cities of the United Provinces, the supply of water generated intense anxieties within the indigenous society, especially concerning the indigenous notions of purity and pollution.The paper explores the history of this tension by looking at debates from Kanpur (UP) when piped water was first introduced in the last decade of the nineteenth century.

Colonial Improvement versus Cultural Anxiety: Introduction of Piped Water Supply in Kanpur (UP), 1894

The supply of piped water is seen as one of the most uncontested gifts of modernity to Indian cities, though one that is under-studied. Throughout the late nineteenth century, the colonial medical bureaucracy designatedcontaminated water from open wells as one of the primary sources of chronic diseases like cholera. The supply of piped and clean water was valorised as a major component of the aggressive 'improvement' of Indian cities in the late nineteenth century, specifically to combat disease.

Most of the scholarly works on colonial science and medicine refer to the supply of piped filtered water as an aside in a general

story of disease and sanitation. Throughout the late nineteenth century,the colonial medical bureaucracy delineated contaminated water as one of the primary sources of chronic diseases, especially cholera. The supply of piped and clean water was one of the major components of the evangelical ‘improvement’ of Indian cities in the late nineteenth century. As technologies of mass filtration became available, attempts were made in many cities to provide piped and filtered water to combat disease. Filtered piped water was supplied first in provincial capitals like Bombay (1859) and Calcutta (1870), followed by the major cities of the United Provinces in the last decade of the nineteenth century.

Most of the timethese were incremental projects and their supply was first offered tothe European areas, rather than the Indian towns thatcontinued to depend upon local sources of water, primarily wells. Waterfrom the river was used when it was proximate to the urban habitat – usually for bathing purposes; but even in cities on the riverbank, well water - by virtue of constant and close availability - supplied most of the everyday needs of people.

While medical science and the linking of diseases like cholera with contaminated water consumption provided the primary pull factors for the introduction of a filtered supply of water, the developing sanitary science, with its condemnation of well water, provided the push factor. No supply of filtered piped water would be successful if it was not accompanied by changes in the pattern of water consumption. Thus piped filtered water was not just an uncontested gift of modernity, one of those advances of modern science that weregood-naturedly bestowed by the British, and ungrudgingly accepted by Indians. Both imparting and acceptance of municipal technology – by virtue of the fact that it concerned the daily and intimate- has to be seen along with its social and cultural contexts. I seek to open up the curious faceoff that resulted from the interaction of colonial science with Indian society, highlighting the contradictory motivations for and ambivalent reception of the supply of piped water in important cities in the late nineteenthcentury in the United Provinces (present UP), especially focusing on Kanpur. It would also strive to understand the paradoxical situation that in the major cities of the United Provinces, the supply ofpiped filtered water coincided with the worst cholera epidemic.[1]

In the United Provinces, large-scale urban remodelling had taken place in the aftermath of the Revolt of 1857. Urban centres

like Lucknow, Allahabad, Agra, Banaras and Kanpur were the sites for putting in place the bricks and mortar of colonial governmentality.[2]As Gyan Prakash has noted, “over the next several decades... the operation of the colonial state became deeply enmeshed in a network of technological apparatuses, institutions and practices.”[3]Though the railways, uniform postage and the electric telegraph formed the primary “engines of social improvement, which the sagacity and science of recent times had previously given to Western nations,” sanitary science and public waterworks became the main drivers of colonial intervention by the turn of the century. The general features of the waterworks schemes were similar in all towns and largely were modelled on the “gravitation scheme” that had been extensively promoted in England from the mid-19th century.[4]Water was pumped at a selected position above the city from the contributing river to settling tanks, from where it passed into filter beds, and ultimately, into a clear water reservoir. Here, the second set of engines distributed the water in the city through pipes and stand-posts.[5]

Since late 1880s, the cities of Agra, Allahabad, Benares, Kanpur, and Lucknow successively undertook extensive schemes of water-works based on the above model. Piped filtered water was first distributed in Agra in December, 1890, in Allahabad in March, 1891, in Benares in November, 1892, and in Kanpur and Lucknow in 1894. I am going to concentrate on Kanpur in this paper, partly because it was one of the early municipalities in NWP, along with Banaras, to link waterworks with the drainage and sewerage infrastructure, and all of these to the condition of the river itself. Further, Kanpur was a relatively new industrial town relatively less fettered by concerns of antiquity and religiosity that Banaras or Allahabad had to deal with.

Kanpur was part of the territory ceded by Awadh to the British East India Company in 1801. It became a district and an important commercial town in the next 50 years, by virtue of its excellent location on the Ganga. Though one of the most violent centres of the 1857 Revolt and devastated by the British vengeance, with the coming of the railways and the setting up of the British-owned cotton mills the town quickly became a hub for import and export trade in the decades following the Revolt. The presence of a big army cantonment in the city had already given a fillip to the growth of the tanneries. Leather, cotton and woollen industries propelled Kanpur into the centre of the industrial economy of the Raj. It became a

premier industrial city of North India and was usually the first site of many of the modernistic experiments in the North-West Provinces.

The supply of piped and filter water started in Kanpur in March 1894.[6] During that year five gallons of water per head of the population were supplied daily. During 1895, a total of 429,689,695 gallons were supplied, equal to 8.41 gallons per head.[7] The new waterworks were designed by Mr. A. J. Hughes, a member of the Institute of Civil Engineers, who was at the time on the engineering staff of the provincial government.[8] The supply of water was taken from a point near the old Magazine Ghat on the Ganga, where the river was judged comparatively free from impurities discharged into it. The filtering station was at Benajhabar, almost three miles away. Twenty-sixmiles of piping and two hundred standposts were provided for the citywide distribution of water. *The Pioneer* reported that the new stand posts became "the feature and landmarks...of the city."[9] It must be conceded, that this was one rare public work which was not only designed and executed within four years, it also managed a saving one and a half lakh rupees on the estimated cost, as the total expenditure on the waterworks only came to Rs. 14 lakhs, as against the estimated Rs. 16 lakhs![10] This compares favourably with the very different trajectory of the Delhi water supply scheme, which took more than twenty years from the planning to the execution stage.[11]

The inhabitants of Kanpur were not too sanguine about this gift bestowed upon them by the colonial state. It was found out that people continued to prefer the wells and river as their primary source of potable water. A governmental inquiry into water consumption habits of people of Kanpur, Banaras, Allahabad and Mirzapur revealed that "Ganges water is largely used [for drinking purposes], except during the rains." The inquiry also found Ganges water to be "purer and better than Jumna water," though the latter was chemically freer from organic matter.[12] To encourage the use of piped water the Lieutenant Governor of NWP, Sir Anthony MacDonnell suggested "filling up all kaccha and imperfect wells in…[these] areas," a suggestion that was ultimately not carried out.[13] Colonial improvements had to be necessarily accompanied by changes in the patternsof consumption. Thus it was not just enough to provide clean water, there was an insistence on the exclusive use of clean water if the sanitary idea was to succeed. Colonial improvements were premised upon "improving" the people, as much as the environment.[14]

There was quite a prosaic reason for the continued use of well water: the supply of filtered water was irregular, and not available when desired. Water was supplied for 2-4 hours a day in the month following the inauguration of the pipeline; thereafter, even when supply was increased to 7-8 hours a day during the summer months of May and June 1894, it was not used for potable purposes. The intermittent supply "tend[ed] to maintain the prejudice and in disappointment at not being able to draw water at all times when wanted; even the lower classes doubtless prefer to go to an ordinary well where the supply is constant and available at all hours."[15]Indeed the ready availability of well water, and its taste was underlined in Akbar Allahabadi's rhetorical question, "what need is there for the tap, when there is a well in the house?"[16]

The prejudice against the use of piped water, though prevalent in most Indian cities, was quite hostile and "unusually strong in Kanpur."[17]People refused to use piped water for drinking and cooking, on the ground that water that came through a closed channel, such as a pipe, would be unwholesome.[18] The pipes were perceived as both contaminating and contaminated. As the water pipes were "before being laid, deposited on the roadside in filthy drains,...and being thus polluted, three months must elapse before any orthodox Hindu or strict Muslim could use the water without compunction."[19]The water supplied was "actually offensive and had an odour from the above cause." This smell was exacerbated due to "the composition in which the pipes are dipped to prevent corrosion and rust." Further, public stand posts were also problematic on the ground of caste and religion: "the presence of low caste people at the stand posts in the main street was not encouraged."[20]It was no wonder that this piped filtered water – chemically pure, but olfactorily and visually impure – was deemed ritually contaminating by the indigenous population of Kanpur.

These huge waterworks and drainage schemes were funded by indirect taxation on the people of the city, mainly through the introduction of octroi or by pledging municipal revenues for government loans, usually both. In this manner, though no water cess was specifically imposed, it was the urban populace who paid for these modern scientific improvements. The cost of maintenance was some 68,000 annually, partly defrayed by meter rents and the sale of water, the latter yielding some Rs. 30,000 per annum.[21]The waterworks were viewed as "expensive and unnecessary" by the local population. They were by no means, a 'gift' of the colonial

state. Indeed in the eyes of the indigenous city dwellers, they converted a “previously free commodity into a priced one.”[22]

The ‘native’ press articulated concern and trepidation with piped water. The process of chemical purification itself was suspect. For example, the water supplied in Allahabad in December 1898 was quoted as being, “red as blood...[due to] some powder used with a view to purify it.”[23]Fears of “religion in danger” were expressed in the ‘native’ press on a regular basis. Even the ill health prevailing in the cities was laid at the door of the expensive and unnecessary water works, which had “done more harm than good... The streets and lanes are to be found covered with dirty mud owning to waste water at standposts; air is surcharged with vapour, and much sickness prevails on account of dampness.”[24]Thus there was “no doubt about the fact that the piped municipal supply [was] not in general used for drinking,”despite all the financial and scientific troubles taken.[25]Thus unlike the experience of Calcutta, Bombay and Madras, where “cholera deaths dropped dramatically,”[26]in Kanpur the introduction of piped water supplycoincided with one of the highest rates of cholera mortality in the city in a decade.

It remained for the caustic gaze of Akbar Allahabadi to pinpoint the problem with these obvious signs of progress. As Shamsur Rahman Faruqi notes, Allahabadi’s rejection of filtered water supply was not a rejection of modernity, but a protest against “the signs of enslavement and the destruction of Indian cultural values and lifestyles that such enslavement guaranteed above the putative guarantee of progress and improvement in the quality of life.”While the comforts of piped water supply were enjoyed only by a few elites, the majority of the population was encumbered with “water tax, and muck, and stagnating puddles and pollution accompanying piped water.” Akbar Allahabadi saw the “disappearance of wells, and the desuetude of the river as a source of water for day to day consumption as an undesirable sequel of the establishment of water works in the cities.”[27]

What we encounter here is a different cultural understanding of purity and pollution. For colonial sanitarians and engineers, pure water meant uncontaminated water. Water from the wells was condemned by the sanitary and medical establishment as contaminated due to the wells being open or with porous sides, many times adjacent to sewage pits and drains, and for being used both for bathing and drinking purposes. Chemical analysis of well water

found it unfit for human use and oftenlabelled it poisonous during some months. Moreover, in the flat alluvial plains of the central UP, there were few natural outlets for drainage except by recourse to the rivers. Even the modern drainage network designed for cities like Kanpur and Banaras discharged the city sewage into the river. River water thus was damned for being full of sand, decayed animal and vegetable matter *and* city sewage. In fact the Sanitary Commissioner of NWP, G. Hutcheson was uncompromisingly against the discharge of sewage into the Ganges, but he was overruled. Hutcheson noted that public opinion all over the world was against the pollution of rivers by crude sewage, and reiterated the dangers of diseases like cholera, enteric fever, dysentery, and diarrhoea: there was ample evidence, he said, that water contaminated by sewage, even when greatly diluted, was injurious to health.[28]

For Indians, purity was understood socially and culturally. While the Ganga was sacred to the Hindus, the faith in its healing waters cut across religious divides. There were local stories about how the Mughal Emperors especially Akbar and Jahangir, and even Warren Hastings, only used to drink Ganga water.In fact, in the memorable words of Akbar Allahabadi it was the drinking of piped water that led to stomach problems:

> Obliged to drink water from the tap; and to read texts set in type;
>
> suffering from flux and conjunctivitis; help, Oh Good King Edward, help![29]

In this religio-social paradigm, the scientifically uncontaminated water could not match the sacred waters of Ganga that were capable of cleansing both physical and moral impurities. Moreover, there was the added danger of losing the "intimate connect" with the whole moral economy of the river, where ghats were used for both sacred and everyday activities. Further,as the Sanitary Commissioner Hutcheson well understood, no amount of filtered water-supply would help prevent disease, as "it was incumbent upon [the Hindus] to drink a mouthful of [Ganga] water, as part of their religious ceremony." In fact, Hutcheson had objected to contamination of the river from sewage discharge precisely in view of the sacred nature of the river, and asked the government of India to resist undertaking a retrograde sanitary measure that also had serious cultural implications, as the Ganges "will retain its sacred character probably for centuries to come and will always be one of the main sources of

the supply of potable water for a very large urban and riparian population."[30]

Much to the chagrin of the municipality and the Sanitary Commissioner, even the army establishment at Kanpur refused municipal water supply, preferring the cantonment wells to water taken from a contaminated river. It thought the scientific methods of mass filtration advocated by the municipality were far-fetched and implausible. What supported the army establishment's stand was the fact that in 1894 of the nine hundreddeaths from cholera in the city, only 51 deaths were recorded from the cantonment areas. Thus, the municipal areas of Kanpur city that had been provided with the newly initiated piped water supply were the ones struck with cholera, rather than the cantonment areas which had refused the municipal water supply and depended on wells as before.[31]

The army establishment was certain that the much-touted water pipes that were contiguous to the drainage network, and passed under the low-class Indian colonies, would definitely be susceptible to leakage and contamination. Even when it was certified that "a sample of water taken from the standpipe of the [Kanpur] Municipal Water Works, was perfectly clear, lustrous, palatable and free from smell or taste," the cantonment authorities of Kanpur remained unconvinced about the purity of the municipal water.[32]As long as sewage was discharged into the river, and as long as the intake for piped water was close to Indian habitations, the army preferred to use the old wells in the cantonments. Instead, they drew up an elaborate plan to 'remove' low-class Indian areas adjacent to the cantonment, believing distance from, and/or demolition of the unsanitary habitations of Indians wasa more certain means of ensuring healthy living in the colony than investments in the modern water supply system.

However, this politics of water and its pollution understated the contamination carried out by the discharge of tannery wastes into the river. Whereas the dirty and unhygienic practices of riverbank habitats and settlements, the 'native' habits of disposing of their dead in the city etc are commented upon in the official sanitary records, there is little comment on the pollution caused by the discharge of industrial waste in the river, more so in a city like Kanpur. Indian opinion knew this, for as the *AlmoraAkhbar* noted, in Kanpur the place "where the foul and dirty water of the

tanneries ...is drained, the waters of the river turn red like blood and an intolerable stench emanates, and therefore people bathing in the river at that time take to their heals as fast as they can."[33]It was a sewage expert from London, Mr. W. Santo Crimp, who underlined the fact that the major pollutant of the river in Kanpur was not town sewage, but tannery waste - one of the most difficult pollutants to treat scientifically.[34]Thus contamination of water – and the threat of disease associated with it - was not only to be laid at the doors of the poor, the indigent and the colonized; the rich and the colonizers were equally, if not more responsible.

To conclude, the story of water supply in colonial urban areas like Kanpurreinforces the premise that a social history of scientific modernity can only "acquire meaning and expression locally".[35] We have a curious situation where the claims of science were themselves suspect in the colony. A close look at the experience of filtered water supply in Kanpur makes it clear that the sanitary discourse of the colonial urban order was primarily one of race and class with the medical priorities of the colonial state tilted towards the health of its European subjects and the army. Since disease and infection do not recognize boundaries of race and class, there was a heavy investment in sanitary and medical improvements undertaken by the colonial state. Many of the scientific improvements introduced in India were directly related to the army, its requirements and the state of its health.Further, while it took some time before the cultural prejudice of Indians against municipal water supply broke down, the bias against Indians and their supposed unsanitary habits and habitats was so deep-rooted that at least in Kanpur, the colonial army establishment was willing to forego a modern water supply system, put in place by its own government. Medical and sanitary interventionism thus was not stalled only by the prejudices of the colonized, but also due to resistance by sections of the colonizers themselves. An attempt to understand the interaction of colonial science with Indian society in its minutiae, at the level of specificity, uncovers a more nuanced social history of science and modernity.

Footnotes

1. The highest quinquennial average of cholera mortality was between 1892-96, recorded at 443,890. *Report of the Health Survey and Development Committee*, 1946, vol. 1, p.111, cited in

David Arnold, *Colonizing the Body: State Medicine and Epidemic Diseases in Nineteenth Century India*, p 164

2. It should be noted that these were large urban centres, and together comprised 16 per cent of the urban population of the province. The population per acre of these cities were many times over that of urban centres like London and Liverpool; for example, it was 187 per acre in Kanpur city, as against 56 in London and 113 in Liverpool in the 1890s.
3. Gyan Prakash, *Another Reason*, p 161
4. John Broich, "Engineering the Empire: British Water Supply Systems and Colonial Societies, 1850-1900," *Journal of British Studies*, Vol. 46, No. 2 April 2007, pp 346-365.
5. Auckland Colvin and Henry L. Wells, "Municipal and Village Water Supply and Sanitation in the North- West Provinces and Oudh, *The Journal of the Society of Arts*, Volume 41, No. 2164 (May 1894), pp 515- 546
6. Municipal Department, United Provinces, 1904, File 267 D, UPSA: Completion of Cawnpore Waterworks
7. Annual Report of the Sanitary Commissioner with the Government of India, 1895, with Appendices and Returns of Sickness and Mortality among European Troops, Native Troops, And Prisoners, in India, for the Year. Calcutta:Office Of The Superintendent of Government Printing, India.1896, p.172
8. In fact, the Lieutenant- Governor of NWP, Sir Auckland Colvin credited Mr. Hughes, with the sole credit of preparing and executing of the great water works of the province. Along with Baldwin Latham Hughes was also instrumental in planning the extensive drainage works of Kanpur.
9. *The Pioneer*, 20 March 1894
10. W. Parry, *Completion Report on the Kanpur Waterworks*, Thompson Civil Engineering College Press, Roorkee, 1904.
11. Awadhendra Sharan, *In the City, Out of Place: Nuisance, Pollution and Dwelling in Delhi, c. 1850 – 2000*, OUP, Delhi, 2014, p 37. See also Jyoti Hosagrahar, *Indigenous Modernities: Negotiating Architecture and Urbanism*, Routledge, London and New York, 2005, pp 95-100, and Michael Mann, 'Delhi's Belly. On the Management of Water, Sewage and Excreta in a Changing Urban Environment during the Nineteenth Century,' *Studies in History*, 23:1, n.s, (2007), pp.1-31.

12. Home Sanitary Proceedings, April 1893, Nos. 17-25, NAI.
13. Municipal Department, NWP&O, File 71B, UPSA.
14. David Scott, “Colonial Governmentality,” in *Social Text*, No 43, Autumn 1995, p 191-200.
15. Military Department Proceedings A, January 1895, No. 320, NAI: Cantonment Water Supply- Note on Cholera with Special Reference to the New Water-Supply, by Surgeon. Lieut. Col. G. Hutcheson, dated 1 August 1894.
16. *yeh mauz e faizhaitehzeeb ki yauskatoofanhai; kuanmau-joodhaighar me to phirpaani ka nalkaisa*, Akbar Allahabadi, *Kulliayat*, Vol III, p 13. To encourage the use of piped water the LG of NWP, Sir Anthony MacDonnell suggested “filling up all kaccha and imperfect wells in [these] areas,” Municipal Department, NWP&O, File 71B, UPSA.
17. Municipal Department, NWP&O, 1894, File No 341B, UPSA.
18. J. W. Madeley, ‘Town Water Supply in India,’ *Journal of the Royal Society of Arts* , Vol. 77, No. 3966 1928, pp. 27-47
19. Military Department Proceedings –A, January, No. 320, 1895, NAI: Note on Cholera with Special Reference to the New Water-Supply, from, Surgeon Lt-Colonel, G. Hutcheson, Sanitary Commissioner, NWP&O, dated 1 August, 1894.
20. Municipal Department, NWP&O, File 71 B, No. 1348, UPSA: Report on the Sanitary Condition of Cawnpore by Surgeon-Major S. J. Thomson, DPH, Officiating Sanitary Commissioner, NWP&O, 28 November 1895.
21. Neville, H. R. *Cawnpore: A Gazetteer*, Vol. XIX of the District Gazetteers of the United Provinces of Agra and Oudh, Government Press, Allahabad, United Provinces, 1909, p 273
22. A similar point is noted in relation to the introduction of water supply in Istanbul. See Noyan Dinckal ‘Reluctant Modernization: The Cultural Dynamics of Water Supply in Istanbul, 1885-1950,’ *Technology and Culture*, Vol. 49, No. 3, Water (July 2008), pp. 675-700.
23. *Prayag Samachar*, 2 December 1898, Selections from Vernacular Newspapers.
24. *Anis-i- Hind*, 25th January 1899, Selections from Vernacular Newspapers.
25. Military Department Proceedings–A, January, 1895, No. 320, NAI.
26. David Arnold, *Colonizing the Body*, p 167

27. Shamsur Rahman Faruqi, 'The Power Politics of Culture: Akbar Ilahabadi and the Changing Order of Things,' Fourteenth Zakir Husain Memorial Lecture, Zakir Husain College, New Delhi, January 2002. This talk was published in *Think India*, 6,1 (Jan.-Mar 2003).
28. Home Sanitary Proceedings, April 1893, Nos. 17-25, NAI: Memorandum on the Sewage Pollution of Rivers, with Special Reference to the Rivers of the North-Western Provinces by G. Hutcheson, Sanitary Commissioner, NWP&O
29. *paanipeena pada hai pipe ka; harfpadna pada hai type ka; pet chaltahai, aankhaayihai; shah Edward ki duhaihai*, AkbarIllahabadi, *Kulliyat*, Vol. I, Allahabad, Asrar-e Karimi Press, 1936, p. 239, cited in Faruqi, 'The Power Politics of Culture,' p. 15.
30. Memorandum on the Sewage Pollution of Rivers, with Special Reference to the Rivers of the North-Western Provinces by G. Hutcheson, Sanitary Commissioner, NWP&O
31. Military Department, Cantonments, B Nos. 328-334, 1900, NAI
32. Military Works Proceedings, September 1899, No. 308-343, NAI: Cantonment Water Supply.
33. *AlmoraAkhbar*, 21 January, 1899, Selections from Vernacular Newspapers
34. Municipal Department Proceedings January 1902, File 71B, No 3, NWP&O, UPSA: *Report on Main Drainage Scheme* by W. Santo Crimp.
35. Noyan Dinckal, "Reluctant Modernization: The Cultural Dynamics of Water Supply in Istanbul, 1885-1950," *Technology and Culture*, Volume 49, Number 3, July 2008, pp 675-700

Saumya Gupta
Associate Professor
Janki Devi Memorial College
University of Delhi & Fellow,
Nehru Memorial Museum and Library, New Delhi

❑ ❑ ❑

Demobilisation of Soldiers of the Indian Army after World WarII

• Dr. Narender Yadav

The Indian Army rose from 0.2 million to over 2.6 million during the Second World War. Such a huge Army was neither required nor could be afforded during peacetime. Over 2 million Indian soldiers were thus demobilised after the War. This Paper addresses the demobilisation process and investigates the problems of the men who suffered demobilisation. The paper is based on some rare sources including originalunit diaries of world war, Army Orders and Instructions, Military Reports, Fauji Akhbars, etc.

Keywords : Indian Army, World War, Demobilisation, Manpower, Resettlement

Introduction

Before the outbreak of World War-II in 1939, the strength of the Indian Army was merely two hundred thousand. It swelled to 2.6 million by 1945 when the War ended. Over two million Indians were recruited into the Army during the War. After the ceasefire in 1945, the maintenance of such a large army posed a grave problem, as India, could neither afford it economically nor had any need for it during the peacetime. In the circumstances, it was decided to demobilize large number of manpower to reduce its strength to peacetime requirement. But it was a difficult issue. For countries that had resorted to conscription during the War, demobilization was easy as the conscripts could rejoin their earlier vocation. But the Indian Army, being a voluntary force, men generally joined it for soldiering being a respected profession, and to earn a livelihood. They had no assured job in civil departments to fall back upon.

Further, the men who had joined the military service during the War were all young[1],and required some source of livelihood. This Paper seeks to explore the demobilisation process and the response of the soldiers effected by it.

Demobilisation

Demobilisation is the process by which the strength of the armed forces raised to meet the needs of war or emergency, is reduced to the establishment required for its peacetime commitment. The process can also be defined as re-mobilization for peace. During the World War II, the issue of demobilisation was considered as early as August 1941. The Defence Department (India) had then asked the British Government about the details of the organization set up for the purpose.[2] A Demobilisation Section was, therefore, established in September 1941 and a Reconstruction Section, later named as Resettlement Section, was added to it in July 1942. Later, the Section was re-designated as the Directorate of Demobilisation and Reconstruction.

Towards the end of 1943 when the tide of war began to turn in favour of the Allies, a detailed plan for Demobilisation and Post War Resettlement was visualised. Under the new dispensation, the Demobilisation Directorate was separated and was brought under the newly created Man Power Planning Directorate in the Adjutant General's Branch in mid-1944. The Directorate then started preparing rules and regulations for the demobilisation of troops.[3]

The demobilisation could, however, be undertaken only after ascertaining the quantum of force to be required after the War. To this end, a Committee was appointed in November 1944 under the chairmanship of Lt Gen H.B.D. Willcox which submitted its report in October 1945.[4] Meanwhile, the War Committee (India) also deliberated over the post-war size and composition of the Indian Army in consultation with the Chief of Staff as well as the Willcox Committee.[5] It concluded that the Army could not be demobilized soon after the cessation of hostilities as some forces would be required for post-war occupation while some others would take time to return from overseas. The Indian Army, therefore, could be demobilized in a phased manner only.

To this end Service Selection Boards were constituted to interview the Indian Emergency Commissioned Officers (henceforth

IECO) who aspired to seek a regular commission. These Boards were directed to visit various military stations, including those outside India, for recommending officers for permanent commissions.[6] The units considered ‘not required’ in the post-War Army were to be disbanded while those identified for retention were to be reconstituted with a fresh intake of men. As the process of demobilisation was likely to take time between six months to one year, it was considered that the recruits undergoing training at various centres could be demobilised immediately.[7] In fact, the War Department on cessation of hostilities with Japan, had proposed to the Viceroy that demobilisation of such recruits, estimated to be around 120,000 could commence on 1 October 1945 and be completed within a month. It was also suggested that the Demobilisation of personnel other than recruits could commence on 15 November 1945 and be completed by the end of May 1946.[8] The proposals were accepted and authorities started planning accordingly.

As stated earlier, the IECOs were interviewed by Service Selection Boards for regular commission but a large number of them could not qualify. In the circumstances, a Pre-selection Officers’ Training School was opened at Dalhousie to train the IECOs who could not make the grade for the regular commission to provide them another opportunity to prove their fitness before the Selection Board.[9]

Meanwhile, on 4 October 1945, Demobilisation of Indian Army Plan 287 provided for the release of 1,592,000 Indian personnel in a phased manner - 831,000 during the first six months, 459,000 during the next six months, and 302,000 during the subsequent six months.[10] Later, the target for demobilisation was fixed at 850,000 men by 31 July 1946[11], though only 830,000 men could be demobilized by this date.[12] Between the Japanese surrender on 15 August 1945 and the end of December 1946, a total of 12,52,765 personnel of the Indian Army, Navy, and Air Force were demobilized. These included 17,842 from the Navy and 12,953 from the Air Force. A total of 4,069 Indian Army units were disbanded and 53 units of the Indian State Forces disembodied to their respective States.[13] The strength of the regular Indian Army, including the Women Auxiliary Corps (India), as on 1 July 1945 was 20,49,203 and it melted down to 3,99,302 by 1 July 1947

consequent to demobilisation.[14] The strength of the Indian Navy came down from 37,863 to 15,001 men during the same period.[15] The Indian Army was reduced by some 74,000 men per month, as an average, during this period. The animal stock with the Armed Forces was also demobilized and by May 1946, more than 70,000 animals had been demobilized.[16]

In the Indian Air Force (IAF), the demobilisation of officers, particularly the pilots remained far less as the Government decided to maintain ten squadrons strong Air Force in peacetime as well. The Commander-in-Chief in reply to a question in the Council of State in April 1946 stated, "of the 1384 Indian officers of the R.I.A.F., 955 have signified their desire to serve on and it is the intention to retain as many of these as possess the requisite qualifications and can be fitted into the final post-war establishment".[17]

Rules for the release of officers and men of the Indian Army were based on the Regulations for 'Release from Army- 1945' prepared for the release of British soldiers in the United Kingdom.[18] These were altered to suit Indian conditions indeed.[19] Soldiers to be released were briefly divided into three categories as follows:

Class A personnel – Those who were surplus to requirement;

Class B personnel – Those who were to undertake specified employment of national importance;

Class C personnel – Those who sought release on compassionate grounds.

To begin with, the recruits at training establishments who had put in more than six months of service were released with prescribed benefits while those with less than six months of service were simply discharged. The men placed in the low medical category, the men above fifty years of age, and married women (from the Women Auxiliary Corps) were also released immediately. Others were offered the option to go home or defer their service till the time there was a requirement or serve as a regular in the Army. Pre-War soldiers who had become eligible for the pension were pensioned off. Those who had not earned pensions but were found unsuitable for Army service were transferred to the reserve. The idea was to retain a young, contented, efficient, and well-balanced post-war Army.

Many NCOs and VCOs granted acting promotion or Emergency Commission during the War had to revert to their previous rank.[20]Many of them, preferred to go out rather than to serve in a lower rank.[21] There were some cases where a few soldiers were discharged by mistake, they were called back to service again.[22]

It is notable that the system of demobilisation followed after the First World War was somewhat different. The demobilisation was then carried out by the disbandment of complete units by the respective Commanding Officers. But after the Second World War, the responsibility of demobilisation was assigned to regimental/ demobilisation centres.

The soldiers to be demobilized were classified as deferred, regular, or demobilized, keeping in view their wish, the requirement of the service, and the criteria laid down.[23] Units and formations were asked to prepare their release rolls. The service of the soldiers who wanted deferment could be extended by six months to two years subject to the requirement.[24] In the event more men than required were willing to serve, the authorities adopted the age and service criteria for elimination. In some cases, class/caste factors also played a role.[25]

Within a year after the end of the war emergency on 1 April 1946, most of the surplus soldiers had been demobilized. Units posted in India that were not required to become a part of the peacetime Army, were disbanded and their men were sent to the Demobilisation Centre. The units which came back from overseas duty, if not required for peacetime Army, were also disbanded and the men were sent to the Demobilisation Centres. However, men of the disbanded units, who desired to serve, if found suitable, were posted to their respective regimental centres, other battalions, or arms, depending on the requirement indeed.

Care was taken that the Demobilisation Centres did not become congested and left sufficient space for the incoming flow of men for pre-release training and subsequent release.[26]Still, these centres had to take many challenges. To illustrate, Garhwal Regiment's Demobilisation Centre initially released 25 men per day. This rate increased to 40 men per day in 1946. A total of 177 officers, 6352 Other Ranks, 535 non-combatants, and 16 boys were demobilized by the Garhwal Regimental Centre.[27] In some

cases mismanagement due to loads of work during demobilisation led to serious consequences. A case in point is that of the Royal Indian Navy where demobilisation issues contributed to the factors of the disturbances of February 1946.[28]

The authorities had to tackle many more issues as India could not follow a uniform pattern of demobilisation like the United Kingdom.[29] Different regiments and services were asked to demobilize men from different castes, classes, and regions in different proportions and this indeed posed a grave problem.[30] In some cases, due to operational and other requirements a person or a group had to be retained. Occasionally the wish of the soldier also deserved sympathetic consideration. However, the requirement of service and suitability of the person remained the principal considerations.

On demobilisation, the benefits of service were paid to soldiers in cash. Ironically, many soldiers were robbed, pick-pocketed, or tricked out during their homeward journey.[31]The soldiers were, therefore, instructed to be careful. The Air Force even brought out an Order in this regard[32]Still, many men got cheated and reached home without a penny.[33]

The administrative machinery was overburdened with the work and this adversely affected the massive exercise of demobilisation. Sometimes soldiers hospitalized due to war injuries or general illness were demobilized directly from hospitals. In some casessoldiers who were interned for crime but were hospitalized due to some illness were released by the hospitals with demobilisation benefits although a court martial had disqualified them for such benefits. There were also cases when prisoners of war were repatriated and demobilized. Some missing soldiers who had been declared dead reappeared. Such issues posed challenges in demobilisation process and also delays in sanctioning pension benefits.[34]

There were numerous cases of discrepancies in pension. This led to many petitions from demobilized soldiers which the administrative machinery found difficult to handle. The Government, therefore, through an Ordinance, constituted a 'Pension Appeal Tribunal' with powers to tackle such cases.[35] However, cases about pension continued to be reported in issues of *Fauji Akhbars* for years.[36]

Conclusion

The demobilisation created many problems for the affected but, good or bad, it was an exercise that had to be conducted. Some soldiers wanted to go home soon while others had the apprehension of losing their jobs. The gigantic problem of demobilisation and rehabilitation after the end of the War caught the then Government in a vortex. Though efforts had been initiated to tackle the situation as early as 1941, the dimensions of the issue could then be hardly visualised. The authorities did their best to tackle the problem and to a large extent succeeded in their exercise, but the issue of resettlement of the demobilised soldiers lingered on for years.

References

1. The age criteria for recruitment were different for various corps and services and it was further relaxed or screwed depending upon the requirement and intensity of the War. The age criteria were 17 to 30 years for fighting arms like the Infantry and Armoured Corps, 18 to 45 years for technical Corps, 13 ½ to 17 years for different boy's entry, 18 to 32 years for Emergency Commissioned Officers, etc. Monograph by Adjutant General Branch, *Recruitment for the Defence Services in India*, Appendix W.
2. Summary for the Committee of Council for the Week Ending 28 August 1941, Defence Co-ordination Department, p. 80.
3. *Demobilisation of the Indian Army*, a monograph prepared by Adjutant General Branch after the War, Year n.d., printed, pp. 1-2.
4. *Reorganisation of the Army and Air Forces in India*, the report of the committee chaired by Lt Gen H.B.D. Willcox (henceforth Willcox Committee Report), (New Delhi, Government of India Press, 1945).
5. *Demobilisation Plan*, File No. 601/10605/H, vol. I, p. 91, National Archives of India (NAI).
6. 'Regular Commissions in the Indian Army', *Special Indian Army Order*, No.22, 1945.
7. Letter of the Adjutant General addressed to C.G.S., Q.M.G. & M.G.O., No. u.o. 47063/Demob, 29 March 1944, in *Resettlement Policy*, NAI.
8. *Demobilisation Plan*, File No. 601/1065/H, p. 358, NAI; Also see 'Demobilisation of Indian Army', *The Times of India*, 18 September 1945, p. 1.

9. 'Pre-Cadet College Results', *Fauji Akhbar*, 3 July 1945, p. 12; Also see 'Regular Commission' in *Journal of the Indian Armed Forces Review*, vol. 1, no. 2, February 1947. This Journal was published by the Directorate of Personal Relations, Defence Department.
10. *Demobilisation Plan*, p. 358; Also see 'Demobilisation of Indian Army', *Times of India*, 18 September 1945, p. 1.
11. 'Demobilisation', *Fauji Akhbar,* 2 October 1945, p.3; Also see 'Demobilisation from Services', *Fuaji Akhbar*, 13 July 1946, p. 11.
12. 'Demobilisation', *Fuaji Akhbar*, 14 September 1946, p. 11.
13. 'Over 830,000 Demobilised', *Fauji Akhbar*, 14 September 1946, p. 15.
14. *Statistical Review of Personnel Army of India*, vol. IV, p. 59. This figure, however, does not include commissioned officer ranks.
15. Ibid.
16. 'Army Animals Demobilised', *Fauji Akhbar*, 1 June 1946, p. 15.
17. 'Indian Air Force to be Strengthened', *The Times of India*, 19 April 1946, p. 1. Also see Council of States Debates, 18 April 1946.
18. *Regulations for Release from the Army - 1945* (London, His Majesty's Stationary Office, 1945).
19. *Release Regulations: Indian Army and Women's Services - India* (Simla, Manager: Government of India Press, 1945).
20. 'Release of VCOs and EICOs who were Commissioned from VCOs or Ranks', *Special Indian Army Order*, No. 140 of 1945; 'Demob News and Notes from G.H.Q.', *Fauji Akhbar*, 30 October 1945, p. 5.
21. Maj Gen Gurbachan Singh Sandhu, *The Indian Armour*, New Delhi, Vision Books, 1987, p. 245.
22. 'Irregular Release', *Indian Army Order*, No. 375 of 1946.
23. *Release Regulations: Indian Army and Women's Services*, *India*, paras. 50-58.
24. 'Deferment Scheme for Indian and British Armies', *Fauji Akhbar*, 24 July 1945, p. 6.
25. *Intelligence Report*, *1945*, File No. Misc/4142/H, NAI.
26. 'Demob News and Notes from G.H.Q.', *Fauji Akhbar*, 30 September 1945, p. 5.

27. Lt. Gen Sir Ralph B. Deedes, *The Royal Garhwal Rifles, Vol II, 1923-1947,* New Delhi, Army Press,1962, p. 178.

28. *Report of the R.I.N. Commission of Enquiry,* para 691 (5), NAI; Also see 'RIN Demobilisation Procedure Criticised' in *The Times of India*, 10 May 1946, p. 3.

29. In the U.K. conscription was adopted. Men in most cases wanted to go home immediately after the armistice. A uniform pattern of demobilisation, therefore, worked well there.

30. 'Demobilisation of the Indian Army' in *Fauji Akhbar*, 23 April 1946, p. 7.

31. *Demobilisation of the Indian Army,* p. 11.

32. 'Investments in Post War Schemes', *Air Force Order (India),* No. 272 of 1945.

33. *Demobilisation of the Indian Army,* p. 11.

34. 'Resettlement-Preparation and Disposal of employment Index Card', *Indian Army Order,* No. 244 of 1946.

35. 'Pensions Appeal Tribunals', Ordinance No. XLVI of 1945. This Ordinance was also published in the annexure to the Pension Appeal Tribunal, in *Indian Army Orders,* No. 2534 of 1945 &*Air Force Order (India),* No. 244 of 1946.

36. A number of cases can be seen in various issues of *Fauji Akhbar* in 1947 and also there after, where soldiers raised their queries and expected some expert to help them out.

Dr. Narender Yadav

Works As Deputy Director

In History Division Ministry of Defence

The views expressed here are his own.

❑ ❑ ❑

Family Environment and Mental Health : A Correlational study on Married And Unmarried Working women

• Dr. Megha Arya

Mental health can be defined as the ability to make adequate social and emotional adjustments to the environment, on the plane of reality. Therefore, the present study attempted to investigate the mental health of married and unmarried working women in relation to family environment. The study also aimed to see the difference between married and unmarried working women on mental health and family environment.The sample was comprised of 120 women of Bikaner which comprised 60 married working women and 60 unmarried working women by purposive sampling method. Two measures were selected for collection of data- Family Environment Scale by Harpreet Bhatia & N. K. Chadha and Mental Health Inventory (M.H.I.) by Dr. Jagdish and A.K. Srivastav. Hypotheses of the present study revealed a significant relationship between mental health and family environment among married and unmarried working women (r= -.062, p<.01). Also the mean value of married working women (101.80) came out to be higher than unmarried working women (90.49) with regard to mental health and differ significantly. Therefore, marital status has significant impact on the mental health of working women. The study also concluded that cohesiveness and expressiveness in family lead to the good psychological or mental health whereas conflicting family environment had negative impact.

Key Words: *Mental health, Family environment, Married and Unmarried working women, Work-life balance*

Introduction

Women constitute almost fifty percent of the human resource of the country. The constitution of India guarantees formal equality to all its citizens. The directive principles have been formulated to attain justice, liberty and equality for men as well as women. Several legal measures have been introduced in order to improve the position of women. These are all laudable steps taken by the government to wipe out the ravages of hundreds of years of effacement of women by our society and therefore over recent decades, there has been an enormous increase in the number of women entering the work market. Over recent decades, there has been an enormous increase in the number of women entering the work market.

However, it appears that society still views women as the primary care takers of children and other family members. In Indian culture, women are expected to be more family oriented. They are supposed to put family over ambitions. Such sacrifices can often lead to emotional turmoil, frustration, depression and poor mental health. They are required to play a significant-role in house-hold activities of their families. Their lives are more family-centered than those of men. The happiness of a family to a great extent depends upon them.

Therefore, women bear dual responsibility if they are in the workforce, one in family and other at job. The inability to discharge duties equally and efficiently, can lead to development of tense feelings. And as a result, many women are now faced with juggling the role of mother, partner, and daughter as well as, employee.Dwelling of continuous tension can lead to creation of stress which in turn may affect their mental health status.

In a population of 1.33 billion in India, women constitute 48.1% of the population (CIA, 2020). When it comes to the labor workforce, women account 19.9% of the total workforce (World Bank Group, 2020). India’s low labor force participation rate for women is due in part to restrictive cultural norms regarding women’s work, the gender wage gap, an increase in time spent for women continuing their education, and a lack of safety policies and flexible work offerings (Rathor, 2020). Rural women are leaving India’s workforce at a faster rate than urban women (Kamdar,

2020). The time has come when women must come out of her home and take her post in public life.

Mental health

Korchin (1976) believes that the concept of psychological health must focus on the ideal state, i.e. emphasis on the “positive well-being” ratherthan on disease, statistical orconformity criteria.

According to a W.H.O. expert committee on mental health “Mental health implies the capacity in an individual to form harmonious relations with others, to participate in or contribute constructively to change in his social and physical environment, and fully realize his potentialities”

Traits of Mental Health. Mental health like physical health is also a condition. And this condition can be recognized by its characteristics features. Roughly speaking a mentally healthy individual would exhibit the following symptoms.

Self-evaluation. A mentally healthy individual capable of evaluating himself properly is aware of his limitation. He easily accepts his faults and makes efforts to get himself rid of them. He introspects so that, he may analyze his problems, prejudices, difficulties etc. and reduces them to a minimum.

Adjustability.It has been painted out earlier also that one special characteristics of a mentally healthy individual is that he adjusts to a new situation with least delay and disturbance. He makes the fullest possible use of existing opportunities and adjusts to every new situation that presents itself. This does not mean that he is a rolling stone that gathers no moss, but has his own ideas, notions, opinions, and deals patiently with every novel circumstance, without fear, disturbance, anxiety, complaint or desire to avoid them. He is aware of the fact that change is the principle of life, he is ever prepared for change and always finds some suitable mode of adjustment.

Maturity.**M**aturity is another sign of mentally healthy individual.The mature mind is constantly engaged in increasing his fund of knowledge, behaves responsibly, expresses his thoughts

and feelings with clarity and is prepared to sympathize with others feeling and view points. Mature individual behaves like a balanced, cultured and sensible adult in all matters.

Regular Life.Habits are an important element in marinating mental health. Forming proper habits in matters of food, clothing and the normal routine of daily life leads to becoming systematic and regulated individual, which in the long run, economizes upon energy and time. Healthy persons perform most of the common functions of life with quick assurance and show of neutrality, without any bother and fuss. Their life is a model of regularity, balance and measured calculation.

Absence of Extremism.Aristotle believed that the ideal man lacks excess in any and every direction and the principle that excess of anything is bad is a golden rule as far as mental health is concerned. Whateverthe instinct, if it is allowed to dominate an individual, it will bring him to harm and endanger his mental health. Hence, in orderto maintain mental health, one's life should be integrated, interests should be wide and the personality balanced extremism is no well wishes of mental health.

Satisfactory Social Adjustment.A healthy individual maintains good adjustment with social situations, and is engaged in some or the other project intended to benefit society. And this is because in modern society the proper development of everyone's personality can take place only it there is mutual cooperation. The graterthe balance of these social relationships and the greater simplicity the better will be the individual's mental health.

Satisfaction from Chief Occupation. For mental health it is essential that everyone should find satisfaction from his chief occupation, his vocation. Money is the result of work but if one works only for it, that much time is obviously a waste. If the work interests an individual, it will yield more money, but the same time, a proper illustration of time will bring an increasein his pleasure and happiness. In fact, if one works for interest, and maintains it even in the event of a loss in trade or at least the pain ofloss is considerably lessened. Health is always, in a given context, dependent upon existing condition, which are themselves related to the changes taking place in the environment.

Family Environment

Home environment reflects the prevailing attitudes and values of the individuals within them. An environment may be destructive and pathogenic. In much the same sense that we receive a genetic inheritance, we also receive a socio cultural inheritance. The sub groups within a general socio-cultural environment, such as family, sex, age, social class, occupational and religious groups, foster beliefs and normal roles that their members learn to adopt. Each of us participates in the socio-cultural environment in a unique way and as a consequence of this differential participation no two of us grow up in the same way. Thus the socio-cultural environment is a source of differences in personality development.

The home or family is a person's primary environment from the time he is born, until theday he dies while it may change over the years owing to marriage, death, divorce, birth of newmembers and other circumstances, the family unit and the pattern of living that meets the needsof its members remains relatively constant. family environment influences a person's development by influencing the person's pattern of behaviour and his characteristic adjustment to: life. It plays the fundamental role in providing psycho-social supplies, necessary for optimal development and functioning. It the family environment &conducive,; the person will react to problems and frustration in a calm manner arid to people in a tolerant and happy manner.

Dimensions of Family Environment. Moos described ten dimensions of family environment, given as follows:

Cohesion. The extent to which family members are concerned and committed to the family and are helpful and supportive of each other

Expressiveness. The extent to which family members are allowed and encouraged to act openly and to express their feelings directly.

Conflict. The extent to which open expression of anger and aggression and generally conflictual interaction are characteristic of the family.

Independence. Emphasis on autonomy and family members doing things on their own. It measures the extent to which family

members are encouraged to be assertive, self-sufficient, to make their own decisions and to think out for themselves.

Achievement Orientation. It measures the amount of emphasis on academic arid competitive concerns. It measures the extent to which different type of activities are cast into an achievement oriented or competitive frame-work.

Intellectual Cultural Orientation. This dimension reflects the degree to which a family is concerned with a variety of intellectual and cultural activities. It includes the extent to which a family is concerned about political, social, intellectual and cultural activities.

Active Recreational Orientation. It measures the extent to which the family participates actively in various kinds or recreational and supporting activities.

Moral Religious Emphasis. This scale is concerned with the extent to which the family actively discusses and emphasizes ethical and religious issues and values.

Organisation. It measures how important Order and organization is in the family in terms of structuring the family activities financial planning, and explicitness and clarity in regard to family rules and responsibilities.

Control. Control assesses the extent to which the family is organised in a hierarchical manner, the rigidity of family rules and procedures and the extent to which family members order each other around.

Work and the family

The pressure of life at the high occupational levels may mean the man has little time to devote to his family. In either case the work self differs from the family self. This is particularly true where the wife has adequate funds of her own to allow her some independence.

To the middle-class white-collar man, the situation is often different. The family may observe the strains of his failure or try to share in his victories, but with little real success.

Forthe worker, the manager, orthe professional man there is a total environment. To put it simply, the total environment for the individual consists of “problems in the office and the factory” and

"problems where we live." Automation, technological changes, world conditions-all impinge upon the individual, often creating a climate of uncertainty. Invention has a way of opening up opportunities for some and denying them to others; perhaps we should remember, along with Thoreau: "The mass of men lead lives of quite desperation."

Review of related literature

Abdullah et al., (2021) conducted a study on work-family conflict among married working women. The results indicated significant variation in age and family type of respondents with respect to work family conflict.

Chandel et. al. (2019) conducted a qualitative study on Body Image, Mental Health and Quality of Life of Married Working Women in India. The aim was to analyze how dual responsibility on married working women adversely effects them and creates stress that effects the body image, mental health as well as quality of life of these women. Findings of the study showed that a married working woman in India tends to face a lot of challenges in her life and this affects her mental health, deteriorates body image and reduces her quality of life. Also thata married working women in our country goes through a lot of stress because of the never ending struggle of balancing work life and personal life.

Tej (2018) conducted a studyin Nepal to study the struggle to balance both sets of life its serious implications on the health of women workers in our society which is a traditional one and where women are still supposed to have greater family responsibilities. The findings of this study may be of great use as it helps to explores the ways and means by which female workers can be enabled to maintain proper balance between the two sets of their lives.

Mahmoud et. al. (2017) study's aim was to estimate the impact of work on the mental health status of working women. The results showed abnormal health status was statistically significant with participant age, residence, marital status, husband's education, family size, family income, number of school-going children, and government financial support. As regards work-related factors, night shift, odd working hours, personal relation

with colleagues, and presence of conflict constituted significantly affected the mental health status of working women.

Parmar (2014) in a study named Mental health and marital adjustment among working and Non working women shows that there is a significant difference between working and non working women in mental health and marital adjustment.

Kumar (2015) studied the marital adjustment and family environment among working and non-working women. To find out the results descriptive statistics and t-test was used which indicates that two groups i.e. working and non-working differ significantly with marital adjustment as well as with family environment. The t ratio comes out to be 3.724 and 5.727 among working and non-working with respect to marital adjustment and family environment respectively.

Research methodology

The aim of this study was to study the relationship between mental health of working married and unmarried women in relation to family environment.

Objectives :

- To study the significant relationship between mental health and family environment among married and unmarried working women.
- To compare the family environment among married and unmarried working women.
- To compare the married and unmarried working women on their Mental health.

Hypotheses

- There would be nosignificant relationship between mental health and family environment ofmarried and unmarried working women.
- There would be no significant difference betweenmarried and unmarried working women on their family environment.
- There would be a significant difference betweenmarried and unmarried working women on their mental health.

Sample and Sampling Technique

- The sample comprised 120 women of Bikaner which comprised of 60 married working women and 60 unmarried working women by purposive sampling method.

Research Design

Correlation

Measures

Family Environment Scale by Harpreet Bhatia & N. K. Chadha. Family Environment Scale (FES) Employed by Harpreet Bhatia and N.K. Chadha (1993) is based on the family environment scale by Moos (1974). This scaleincludes 69 items. Scoring of the positive items on the five point scale i.e. Strongly Agree, Agree, Neutral, Disagree, Strongly Disagree is 5,4,3,2,1, for positive items and 1,2,3,4,5 for negative items respectively.Split- half reliability was found to be 0.95 for the scale. Both face and contents validity was found to be highly valid.

Mental Health Inventory (M.H.I.) by Dr. Jagdish and A.K. Srivastav. Mental Health inventory (MHI) developed and standardized by Dr. Jagdish and A.K. Srivastav has been designed to measure mental health (Positive) of normal individuals.It measures six dimensions namely positive self-evaluation, perception of reality, integration of personality, autonomy, and group oriented attitude and environmental mastery. This scale consists of 54 statements with four alternative answers like always, most of times, some times and never, rated on four point scale. Out of 54 statements 23 are positive and 31 statements are negative. For positive statements the scoring is 4, 3, 2, and 1 and for negative statements it is in the reverse order. The score ranges between 54 to 216. High scores on mental health inventory indicates better mental health and vice versa. Reliability of the test is found 0.862 and 0.916 respectively when reliable. Construct validity was found to be 0.54.

Statistical Techniques

- Descriptive Statistics – Mean, SD
- Correlation

Result

Table 1 ***Showing relationship (Correlation Coefficient Values) between mental health and family environment among married and unmarried working women (N=120)***

Correlations		
Variables	Family Environment	Mental Health
Family Environment	1	–.062**

***significant at 0.01*

The Table 1. reveals a significant relationship between mental health and family environment among married and unmarried working women (r= -.062 ,p<.01).

Table 2. ***Mean, S.D. and 't' ratio between married and unmarried working women computed on the basis of their scores of family environment (N =120)***

Group Statistics							
	Marital Status	N	Mean	Std. Deviation	Std. Error Mean	t-value	p-value
Family Environment	Married	60	54.29	10.822	1.613	.681	.498
	Unmarried	60	52.73	10.857	1.619		

The mean values of married working women (54.29) higher than unmarried working women (52.73) with regard to family environment but do not differ significantly.

Table 3. ***Mean, S.D. and 't' ratio between married and unmarried working women computed on the basis of their scores of mental health (N =120)***

Group Statistics							
	Marital Status	N	Mean	Std. Deviation	Std. Error Mean	t-value	p-value
Mental Health	Married	60	101.80	19.747	2.944	2.892	.005*
	Unmarried	60	90.49	17.274	2.575		

*significant at 0.05

The mean values of married working women (101.80) higher than unmarried working women (90.49) with regard to mental health and differ significantly. Hence, the null hypothesis is rejected and alternative hypothesis accepted. Above, show thatthere is significantly difference in married and unmarried working women on their mental health.

Discussion

The results are discussed to show how these findings are concurrent with some of the empirical studies already conducted in the field.

The first hypothesis was related to the relationship between Family environment and mental health.And the results go in line with the study done by Punam and Kumar (2014) on the relationship between family environment, and well-being of adolescent girls.Results revealed that the mental well-being of adolescent girls was significantly correlated with various dimensions of the family environment.

It is also supported by a study on family environment and adolescent mental health done by Sathyabama and Eljo (2014). It showed that there was a significant positive relationship between the family environment and mental health of adolescent girls.

Similar results were found in a study conducted by Tajpreet and Maheshwari, which showed that poorer family functioning was significantly associated with lower levels of adolescent life satisfaction and psychological well-being.

The hypothesis stating that there will be a significant difference in the mental health of married and unmarried women is supported by a study by Gupta and taneja (2020) whichrevealed that there exists a significant difference in the mental health of married and unmarried women.

Another study by Kotar (2014) showed a significant difference between the mental health of married and unmarried women.

References

Abdullah, N.-A., Adenan, N. F. binti, &Zaiedy, N. S. I. M. (2021). Relationship between Work-Family Conflict, Organizational Commitment and Welfare in The Workplace among Working Women. *International Journal of Academic Research in Business and Social Sciences*, 11(3), 154-168.

AllamNegm, N., Abo Salem, M., &Salama, A. (2017). Mental health among working women in Tala District, Menoufia Governorate. *Menoufia Medical Journal*, *30*(1), 57. https://doi.org/10.4103/1110-2098.211518

Alpesh B. Kotar. (2014). Mental Health among Married and Unmarried Women. *International Journal of Indian Psychology, 1* (3). DOI: 10.25215/0103.012, DIP: 18.01.012/20140103

Bhatia, H. & Chadha, N. K. (1993). Manual for family environment scale. Lucknow: Ankur Psychological Agency.

Chandel, P.K., &Shekhawat, J. (2019). Body Image, Mental Health and Quality of Life of Married Working Women in India..International Journal of Innovative Technology and Exploring Engineering (IJITEE),8(7).

Jagdish and Srivastava, A.K. (1996). Manual of Mental Health Inventory. ManovaigyanikParikshanSansthan, Vranasi, pp. 1-9

Maheshwari, S., &Tajpreet, K. (2015). Relationship of emotional intelligence with self- esteem among adolescents. *Indian Journal of Psychiatric Nursing*, *10*(1), 18. https://doi.org/10.4103/2231-1505.240278

Nepali, T. N. P. (2018). Balancing Work Life and Family Life: Problems and Remedies. *Pravaha*, *24*(1), 217–232. https://doi.org/10.3126/pravaha.v24i1.20240

Punam, B.D.,& Kumar,M.(2014). Relationship between family environment and wellbeing: A study of adolescents. *Int J Inform Futuristic Res*,29,271-6.

Sathyabama, B., &JerydaGnanajaneEljo, J. (2014). Family environment and mental health of adolescent girls.. *IOSR Journal of Humanities and Social Science*, *19*(8), 01–04. https://doi.org/10.9790/0837-19850104

Sonalba G. Parmar. (2014). Mental Health and Marital Adjustment among Working and Non Working Women. *International Journal of Indian Psychology*, *1* (4). DOI: 10.25215/0104.008, DIP: 18.01.008/20140104

Taneja, N., Gupta, S., Kapoor, S., & Kumar, A. (2020). Comparison of mental health status of

married and unmarried girls of late adolescent age in an urban slum of Delhi. *Indian Journal of*

Community Medicine, *45*(2), 145. https://doi.org/10.4103/ijcm.ijcm_204_19

Vibha A. Dave. (2015).Marital Adjustment in Working and NonWorking Women. *Indian Journal of Research*, *4*(5).

Dr. Megha Arya

Assistant Professor

Department of Psychology, IIS (Deemed to Be) University, Jaipur, Rajasthan

❑❑❑

Rural Women Artisans, Entrepreneurial Challengesand Coping-up with Digital Technology in Thar Desert of Western Rajasthan

• Dr. Jaya Kritika Ojha

• Dr. Debendra Nath Dash

The harsh-living scenarios coupled with no-literacy and zero opportunities, the COVID-19 pandemic has increased the burden on desert women. The income generating activities for them have been affected immensely. The hardships of women artisans engaged in micro businesses, traditional art and craft; non-farm activities have increased manifold in the last two years since the pandemic unfolded across the country. Such impact has not only created problems for the internal and external business environment but also in a larger psychosocial context. The producers and stakeholders, mostly women artisans, are facing social challenges, now exponentially higher. UNDP (2021) reports that during pandemic women workers have lost jobs at higher rates compared to men. Studies report that in India women are far less likely to regain a job than men. The study aims to understand the socio-economic constraints, the livelihood practices, the entrepreneurial challenges faced by the women artisans; also, to understand their risk mitigation and coping mechanisms. The paper adopts a qualitative approach to fulfil the objectives of the study and the explanatory sequential design was followed. A three-staged sampling was deployed for collecting the relevant data through focused group discussions, in-depth interviews and caselets with the participants (women artisans of thar desert). The paper follows the 'Coolie's Framework' by Datta, Kandarpa, and Mahajan (2014), which is an adaptation of Michael Porter's Diamond model. It was considered to explore the internal and external contexts of rural

businesses with reference to the pandemic. Also deployed the Basix Framework to assess the responses and coping mechanisms of the poor producer to shocks. The study reflects on the challenges which were observed for the rural business are cash flow issues, increased expenses to maintain hygiene, reduction in the production scale due to social distancing norms etc. comprising the internal challenges, however the external challenges are fall in demand, lack of raw materials, existing competitions etc. The challenges for individual artisan are purely unique such as they are facing the existing geographical and environmental challenges, social challenges, economic challenges and health-environmental related challenges. Having such challenges, they are still managing with their learning experiences and adopting digital technologies as alternative strategies to maintain the momentum.

Keywords: Women Artisans, Entrepreneurial Challenges, Coping Strategies, Digital Technology, Thar Desert, Western Rajasthan

Introduction

Desert has a very diverse ecosystem with geo-cultural variations which establish together the 'desert identity' of people, processes and local systems, be it social, economic and political.Agriculture production is limited in the region and the non-farm activities like embroidery, weaving, other handicraft works substitute the income of rural communities for their livelihoods.Desert region of Rajasthan has a high population of non-farm producers and women artisans, whoare usually engaged in embroidery activities for income generation.The word artisan is being understood as the 'culturally embedded material production' (Sennett, 2008). The artisanal and other non-farm activities constitute a major component of livelihood choices in developing communities and societies. Artisanal enterprises have traditionally been associated with locale and geography (Brown, 2015). The small-scale rural economic activities are widely known as the engine of rural development (Seedhouse et al., 2016; Newbery et al., 2013; Igwe et al., 2018). The rural micro and small enterprises are emerging as the prominent and important ventures supporting rural economic activities in communities. The artisanal non-farm based income generating activities are prevalent in rural economies

(Lyee and Cowling, 2015; Apostolopoulos et al., 2018; Muhammad et al., 2017; Koyana and Mason, 2017).

There are many constraints which exist in the rural settings as far as women producers are concerned in order to empower women financially and/or socially. Socio-cultural factors affect women in many ways. Illiteracy, lack of entrepreneurial-managerialskills and non-involvement in decision making further disempowers them. Also, lack of required institutional support, no financial- technical support and patriarchal social arrangements and climatically difficult terrains aggravate the hardships for women to work efficiently. Shastri and Sinha (2010) states, that, “all conditions for exploiting entrepreneurial opportunities such as education, experience and energy may exist, but the social, cultural and environmental constraints especially in developing economies, may hinder the women artisan or an entrepreneur”.

The income generating activities have been affected immensely for women artisans in desert region of rajasthan. The micro businesses are struggling as COVID has hit them hard. Rural enterprises in the Thar Desert are struggling to cope up with the internal business environment alongside facing an external economic environment.The repeated lockdowns, supply chain disruptions, and market inactivity made it almost impossible for rural women artisans to sell their produce in the market and earn their living. Such impact has not only created problems for the business environment but also in larger context the psychosocial implications are equally prominent. The producers and stakeholders, mostly women artisans are facing social challenges, now exponentially higher.

Chatterjee (2021) states that the abled actors of society such as government, big businesses, MNCs, TNCs and society at large must come forward and contribute to ensure that the marginal workers and poor artisans get fair returns of their work. They also should be able to access health care, benefit from social protection schemes like insurance and pension. In different parts of the country the women artisans have been mobilized and organized by community based organizations (CBOs). Few examples of CBOs are Dastkar Andhra, Dastkar Delhi and SEWA (Puri, 2006; Mathur; 2006). According to Shekar and Mansoor (2021), the informal workers are struggling amidst the pandemic crisis and there is a

greater chance that post crisis the burden will only increase on the ‘fragile’ sector. Nanavaty (2020) suggests that it becomes very important that the focus should be informal workers’ livelihoods, its rehabilitation, building their resilience, and mobilising the artisans and workers into micro enterprises. It is essential to reorient the supply chains and handholding must be ensured to artisans to help them adapt digital technologies.

Role of a Development Agency

The development agencies play an important role in handholding the local rural artisans. In this specific context it has been Urmul. Urmulis a development organisation working with the entrepreneurs, local rural producers, farmers and traditional women craft artisans in the Thar Desert since the year 1987.Urmul has been handholding the desert artisans since then, organising local producers and artisan women in groups, training them in entrepreneurial skills and on market dynamics through continuous skill development programmes. The organisation extends support in identifying potential markets for their produce and help creating market linkages for them. This initiative that was visualized for creating and enhancing sustainable livelihoods in the drought prone areas of western Rajasthan has now proven itself as a brand in the global market. Earlier local producers with support of Urmul used to market their products globally but the pandemic posed a great threat to their work and its survival.According to Urmul (2020), “the major impact of pandemic on desert producers has been the rise in unemployment, this, in addition to the existing age-old problems of water scarcity and extreme climatic conditions has resulted into a situation of frustration and despair. The survival of the rural community in Thar Desert has come under threat”.

The objectives of the study are :

- To understand the economic, psycho-social, and ecological constraints, the livelihood practices, the entrepreneurial challenges faced by the women artisans or producers and the rural enterprises.
- To study the risk mitigation and coping up mechanisms of the women artisans and external stakeholders.

- To explore the possibilities of digital interventions to address the challenges faced by women artisans in desert region.

Methodology and Conceptual Framework

The qualitative approach was followed for the study. The data was gathered through online in-depth interviews with team members of development agency Urmuland focused group discussions with 57women artisans.The study covered villages spread across Bikaner, Jodhpur and Jaisalmer districts of western Rajasthan. The Michael Porter's Diamond Model was considered to explore the internal and external contexts of rural women artisan' supported businesses with reference to the pandemic. It includes-factor conditions, demand conditions, related and supporting sectors/ industries and the firm strategy, structure, competition/ rivalry.

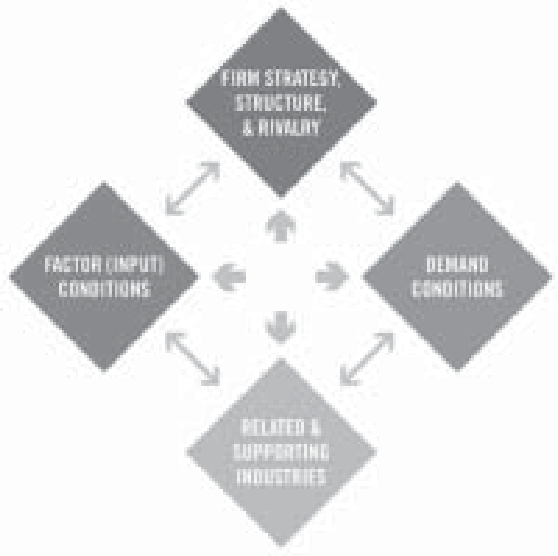

Fig : 1 Michael Porter's Diamond Model

Source : https://www.isc.hbs.edu/competitiveness-economic-development/ frameworks-and-key-concepts/ Pages/the-diamond-model.aspx

In order to understand the responses and coping mechanisms of the poor producer to shocks, the Basix framework was adopted.Risks are the consequences or effects of adverse events

called shocks and are mediated by the vulnerability of a producer or enterprise.Risks can be Idiosyncratic or/and Systemic.

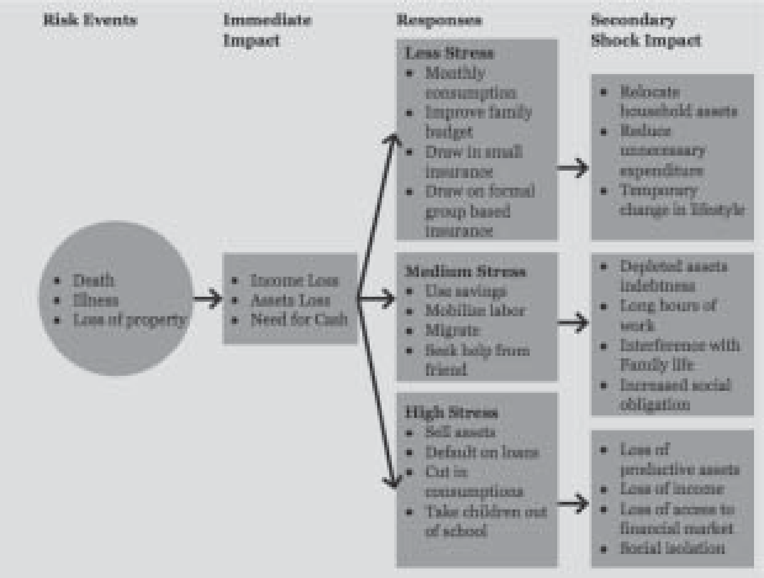

Fig : 2 The Basix framework to assess the responses and coping mechanisms of poor producers to shocks

Source : Datta, Kandarpa, and Mahajan (2014), ILRT, Basix

The Findings and Analysis

Based on the two frameworks, findings are as follows:

A. Factor and Demand conditions of business during pandemic

The rural handicraft businesses for women artisans have been seriously affected post COVID.Covid changed the core business approaches of even major brands, leading towards consolidation rather than spreading the work in unorganised value chains.In the first lockdown, the women artisans in the region were impacted less since they already had orders in the pipeline. However, once those orders finished, they could not buy any raw material or receive any orders due to lockdowns. The problem started after the first lockdown. Offline market sales dropped which led to a domino effect. Brands which were already operating in the online space,

even their number of orders reduced. For a market which had been struggling and facing challenges by machine made products and other external factors, covid came as the final blow.

Currently the biggest challenges faced by women artisans or women artisan collectives are :

- increased raw material and production prices and reduced sales. This has led to squeezing the operational margin of the crafts, leading to the work becoming unviable.
- the cash flow issues
- increased expenses to maintain hygiene
- reduction in the scale due to fall in demand

B. Managing needs and sources of income (Related and supporting sectors)

The women artisans, in search of livelihoods, are shifting to other areas to work such as local construction labour work, MNREGA work and engaging in agricultural labour. The women artisans who do not have many options are also shifting to agriculture labour or simply waiting for the artisanal work to start again.Husbands of many artisans lost their jobs in the cities and have shifted to per day manual labour to survive. Everything coming together, they are able to survive but not growing. As they mention, 'the situation is worrisome'.

As Rangu Bai, an artisan with Urmul Desert Crafts says, *"This is the longest I have seen, slowdown in work. I miss being involved in my work like earlier. I hope the COVID-19 pandemic dies soon and I can do more work."*

C. Plans to improve the situation in the future (Firm strategy, structure, competition)

As a risk mitigation factor, the future-plan is to open more direct fronts for the women artisans. It is important that the options remain open for the communities to take appropriate decisions for themselves and their livelihoods. Urmul Desert Crafts is working on two fronts to support artisan groups. In B2B segment, they have started raising orders for each women artisan's group and have started involving artisan groups in the marketing meetings. This has helped them learn and gain more confidence in marketing their

products on bigger platforms. In B2C, the organization is making a products' collection of all the artisans' groups and opening the platform for individual artisans who would want to launch their own shops. In this the marketing teams of Urmul will provide design, procurement, photography, promotional, operational, and legal support to the artisans. This may open more options for the artisans and would distribute the pressure of raising work from a single collective to multiple artisans and collectives.

The clusters/artisans who have survived the lockdowns, have recalibrated their efforts. In terms of raw material, the volumes of single purchases have reduced. Businesses or people are not blocking too much money in one go. In terms of products, there have been major changes in product lines,like stitching artisans shifted to masks (daily need product lines) instead of apparels (luxury purchases).For sales, the shift has occurred in terms of marketplace. Most groups have shifted from offline shops or exhibition models to online markets.

D. Digital Technology, Artisans and Coping-up

COVID-19 increased both the idiosyncratic and systemic risks and shocks for the rural producers, local enterprises, and micro and small businesses.Women artisans are now slowly joining mobile based training sessions, some are using YouTube videos to learn new designs. To avoid the gathering every village has one coordinator to supply raw materials which are provided by Urmul. Their offline sales have come down but sales through online medium are picking up due to the support from the organization, however, the income has not increased as compared to the past. The movement of products are very slow at the retail level, so they are focusing on online markets.They have adapted to new digital ways of communication which may take some time to improve their sales or to get orders. Meanwhile, they are looking at their available resources to address their need and earn, for example they are using camel milk and animal-based resources to support their earning.

Despite facing massive challenges, the women artisans and their micro-business are still managing with their learning experiences and adopting sustainable strategies to maintain the momentum. One of the key ingredients is the acceptance of

challenges and the second being cautious on reworking on business strategies to claim the market space even in challenging times. The artisans have learned that their locations are very far from the centres of resources and facilities, specially medical and market. The distances seemed to be unending like those in the olden times in desert. The desert diversities in pandemic threatened the existence of life and living.

In a UNDP report, Rasheed (2021) argues that the priority should be to create and expand the economic opportunities to vulnerable, marginalized and underprivileged women artisans and workers. It should include digital skilling activities to enhance digital know-how, familiarity with digital tools, apps and platforms. Digital literacy among women workers would enhance the likelihood to get included in the digital ecosystem. Digital platforms to access finance, online markets will enable women workers to expand their work and livelihood opportunities in the challenging times. Hiriyur and Chettri (2020) suggests that in order to make the digital ecosystem inclusive it is important to enable digital asset ownership among women. Digital literacy efforts for women must be on the priority and be accelerated. Another aspect is to create better internet hubs or data extensions points so that more women can become participants of the digital economy including digital marketing.Santosh Bai from Gokul village of Bikaner district narrates, "*I have a mobile and mobile helped me a lot in my embroidery work during Covid. I do wish to expand my work on digital platforms too.*"

Way Forward

Creating and re-establishing robust business networks at different levels would be essential to create a collaborative value base for micro and small businesses involving women artisans. The skills enhancement-training programmes would be required to create capabilities among artisans to efficiently use the digital technology for their work and to expand business. Chatterjee (2021) suggests, "with the right decentralized approach, re-building from the local upwards, better future can be built for women artisans, their families and their enterprises". There is a felt need to rework on existing processes and systems, explore new strategies, support women artisans and women entrepreneurs with much

needed digital training and capacity building, provide them digital tools and handholding to explore ways to gain collaborations, convergence, financial and technical resources to build robust digital ecosystem for women artisans led micro businesses.

Also, there is a need to accept the diversity and difficult situation of people, life and living of the remotest habitations of the desert. Also, there is a need for advocacy on the behalf of the marginalisedwomen artisans whose voices remain unheard by the power-centres, policymakers, and markets. A collective effort is needed to address the socio-economic challenges of difficult desert so that the women artisans can sustain their livelihoods while aspiring to reach to global markets in times to come. The support from external organisations, techno-managerial interventions, convergence, appropriate digital technologies,strategies, and context specific policies can be focused to support women artisans, micro entrepreneurs, and producers to increase the scale of the efforts during and beyond pandemic.

Acknowledgement : *We would like to acknowledge and thank Mahatma Gandhi National Council of Rural Education (MGNCRE) for supporting this work with a minor research project titled'Digital Ecosystem for Rural Women Artisans of Thar Desert'.*

References :

Apostolopoulos, N., Newbery, R., and Gkartzios, M. 2018. "Social enterprise and community resilience: Examining a Greek response to turbulent times". *Journal of Rural Studies*, 70, 215-224.

Brown, J. 2015. "*Making It Local: what does this mean in the context of contemporary craft?*" Arts and Crafts Council, England. http://www.craftscouncil.org.uk/content/files/Crafts_Council_Local_Report_Web_SinglePages.pdf

Chatterjee, M. 2021. "Covid has devastated India's self-employed women."https://www.weforum.org/agenda/2021/06/women-in-indias-informal-economy-are-bearing-the-brunt-of-covid/

Hiriyur, S.M. and Chettri, N. 2020. "*Women's Cooperatives & COVID-19.* SEWA Cooperative Federation." https://www.researchgate.net/profile/Salonie-Hiriyur/publication/345500401_Women's_Cooperatives_COVID-19_Learnings_and_the_Way_Forward/links/5fa7e278458515157bf70661/Womens-Cooperatives-COVID-19-Learnings-and-the-Way-Forward.pdf

Igwe, P. A., Onjewu, A. E. and Nwibo, S. U. 2018. "Entrepreneurship and SMEs' productivity challenges in sub-Saharan Africa". In: *African entrepreneurship:challenges and opportunities for doing business*, Palgrave Macmillan.

Koyana, S. and Mason, R. B. 2017. "Rural entrepreneurship & transformation: the role of leadership". *International J. of Entrepreneurial Behavior& Research,* 23(5), 734- 751.

Lyee, N. and Cowling, M. 2015. *"Do rural firms perceive different problems? Geography, sorting, and barriers to growth in UK SMEs."* Environment and Planning C:Government and Policy, 33(1), 25-42.

Mahajan, V., Dutta, S., and Kandrapa, R. 2014.*A Resource Book for Livelihood Promotion*, Basix. https://ilrtindia.org/downloads/ 4.%20 Shocks, %20 Vulnerability, %20 Risks%20 and % 20Coping % 20Strategies.pdf

Maps of India.n.d. https://www.mapsofindia.com/

Mathur, N. 2006. "Rehwa: Maheshwari Handloom Weavers."*Economic and Political Weekly* Vol. 41, Issue No. 31.

Muhammad, N., McElwee, G. and Dana, LP. 2017. "Barriers to the development and progress of entrepreneurship in rural Pakistan". *International Journal of Entrepreneurial Behavior & Research*, 23(2), 279-295.

Nanavaty, R. 2020. "Pandemic and Future of Work: Rehabilitating Informal Workers Livelihoods Post Pandemic."*Ind. J. Labour Econ*. 63, 151–155.https://doi.org/10.1007/s41027-020-00271-0

Newbery, R., Sauer, J., Gorton, M., Phillipson, J., and Atterton, J. 2013. "Determinants of the performance of business associations in rural settlements in the United Kingdom: an analysis of members' satisfaction and willingness-to-pay for association survival." *Environment and Planning A,* 45 (4).

Puri, A. 2006. "Innovative Marketing". *Economic and Political Weekly*, Vol. 41, No. 31.

Rasheed, N. 2021. "How Digital Literacy Can Bring in More Women to The Workforce." UNDP.https://www.in.undp.org/content/india/en/home/blog/How_Digital_ Literacy_How_ Digital_ Literacy_ Can_Bring_in_More_Women_to_The_ Work forcean_ Bring_ in_More_Women_to_The_Workforce.html

Seedhouse A, Johnson R., and Newbery R. 2016. "Potholes and pitfalls:

The impact of rural transport on female entrepreneurs in Nigeria." *Journal of Transport Geography*, 54.

Sennet, R. 2008. *The Craftsman*. London: Allen Lane.

Shastri, R. K. and Sinha, A. 2010. "The socio-cultural and economic effect on the development of women entrepreneurs."*Asian J. of Business Management*, 2(2).

Shekar , C. and Mansoor, K. 2021. "COVID-19: Lockdown Impact on Informal Sector in India." University Practice Connect, Azim Premji University. https://practiceconnect. azimpremji-university.edu.in/covid-19-lockdown-impact-on-informal-sector-in-india/

Urmul Trust. 2020. "A situational assessment narrative of impact of covid-19 lockdown among the desert communities of western Rajasthan."https://drive.google.com/file/d/1nvj7BoOsid PirjsojcEHc9qKhL2UujoQ/view?fbclid =IwAR0FjUAHZy K2v MKyYbZ E10erk11t1wGbD9ofhkmCPTQ6 ApK3WU Cqm1Uy28o

Urmul. 2021. "Towards controlling a Pandemic."https://www.urmul.org/towards-controlling-a-pandemic/

Dr. Jaya Kritika Ojha

Assistant Professor, Department of Society Technology Interface, School of Social Sciences, Central University of Rajasthan

Email: jaya.kritika@curaj.ac.in

Dr. Debendra Nath Dash

Assistant Director (Research & Networking), Mahatma Gandhi National Council of Rural Education, MOE, GOI, Hyderabad

Email: drdndash.ncri@gmail.com

❑❑❑

Human as Divine in Amish Tripathi's Shiva Trilogy

• Sunayana Pandey

Mythology has always been a great source of interest and fascination among the writers across the globe and Indian mythology is not an exception to it. The paper aims at re-visiting and re-interpreting traditional myths through an alternative perspective of humanization of the Divine. Amish in his Shiva Trilogy have chosen a multi-faceted God; the God of gods- Shiva for his story to point out the fact "A man becomes Mahadev when he fights for good. A Mahadev is not born as one from womb; He is forged in the heat of battle, when he wages a war to destroy evil". Protagonist Shiva has been depicted with all human limitations; even then rising to the status of God through his good deeds and karma. An ordinary man remains trapped in catering to the needs of his body, mind and ego, which leads to shielding of his innate divinity and making one a pathetic figure. Only inward journey with analytical introspection can bring inner-alignment and sanctification, transforming one into an authentic human being. Thus, through Shiva Trilogy, the author very implicitly makes a point that everyone has potential God in him/her and can achieve the stature of God by imbibing virtues in life.

Keywords*: *Dharma, Divinity, Karma, Mahadev, Mythology.

Indian mythology with a rich source of narratives has always been a field of research among writers across the globe but classical authors always wrote on Indian gods with their larger than life image but attempts have also been made by Indian writers, humanizing the gods. Amish Tripathi is one such writer who humanizes the Divine in his work. Divinity is not something inborn; one can acquire divinity through good deeds as Shiva does, which

made him attain the stature of Mahadev. Amish makes use of mythology to project the national cultural heritage and values. In an interview, Amish says, "that India is one of the few countries or perhaps the only country in the world where three thousand to five thousand myths are still alive today. We have a living mythology, unlike Greek or Egyptian mythology for instance. It is because of modernizing and localizing our myths again and again; the best example is Ramayana which has so many versions with different interpretations" (Krishnakumar, 2011). According to Amish, "the stories of our gods have constantly evolved, retaining the best of the old, but adding in the attractiveness of the new, thus keeping our myths relevant, ever-contemporary and alive"(Paul, 2017). He admits, "I also follow Swami Vivekananda's brilliant and wise words: that we Indians accept all religions to be true. Therefore I respect all interpretations of the Divine, from all faiths" (Das, 2015). "The main purpose of story-telling is to convey some philosophy through stories" (Mukhopadhyay, 2017); "which you can apply in your life" (Benu, 2017). Amish accepts, "I find mythology to be one of the best sources of philosophy. Putting emphasis on philosophy than mythology, he accepts, "that today reinvention of myths is more popular, that is what I have done; I have simply reinvented" (Pillai & Khandekar, 2014).

According to M.H. Abrams (1912-2015) - an American literary critic:

> Myth is one story in mythology, a system of hereditary stories which were once believed to be true by a particular cultural group, and which served to explain (in terms of the intentions and actions of deities and other supernatural beings) why the world is as it is and things happen as they do, to provide a rationale for social customs and observances and to establish the sanctions for the rules by which people conduct their lives (Abrams, 2009, p. 230).

The beauty of our mythology is that there are so many interpretations and often contradictory ones. Often historical figures are given attributes, values and ideals that place them above the realm of ordinary people. As a result, these historical figures lose their human-stature and acquire a mythological status that

serves to make their actions beyond the realm of human scrutiny. Amish Tripathi in *Shiva Trilogy* demytholizes (demytholization means the removal of mythological elements from something, especially from religious writings) and humanizes major mythological characters associated with Vedic culture. He depicts his personages as ideal, brave, intelligent human beings i.e., legends instead of delineating them as deities or supernatural beings. "Applying the tool of hermeneutics is a new practice in mythology; which is done very well by assuming the possibility of another interpretation with a new perspective. In order to do this, it is necessary to accept that truth is a dynamic concept and not a static one. Once it is established as static concept, the ideology formulates and hegemonic practices automatically erupt" (Kangude, 2017, p.129). In Amish Tripathi's work *The Oath of the Vayuputra*, this point is highlighted by the conversation between Anandmayi and Parvateshwar: "There is your truth and there is my truth. As for the universal truth, it does not exist" (OV 196). In an interview, Amish mentions various theories on gods namely *Nirgun or Nirakar* gods, *Sagun or Aakar* gods, like Lord Vishnu, Lord Shiva etc, *Avatar* gods like Lord Ram, Lord Krishna and fourth form, when a man or woman becomes a God or s/he discovers the God within him like Gautam Buddha who was clearly a historical man. "The concept of a man becoming a God is not unknown; It has been around for centuries and I am not doing anything new" (Krishnakumar, 2011). While in his another interview, Amish accepts, "I find this fourth concept inspiring since it means that all of us have God within us, and it is up to us to discover the God within" (Das, 2015).

Amish questions the notion of God, within and outside the skeleton of accepted religious customs and set of beliefs. According to Amish, "A man becomes a Mahadev when he fights for good. A Mahadev is not born as one from his mother's womb; He is forged in the heat of battle, when he wages a war to destroy Evil" (IM 346).[1] Over the centuries, large number of travellers, conquerors, merchants and scholars came to our land and questioned about the reality of existence of such a great man like Shiva. They assumed him a mythical God, existing only in the realm of human imagination. With the lapse of time, it became our received wisdom. Amish says, "But what if we are wrong? What if

Lord Shiva was not a figment of a rich imagination, but a person of flesh and blood? Like you and me a man who rose to become God-like because of his *karma*. That is the premise of *Shiva Trilogy* which interprets the rich mythological heritage of ancient India blending fiction with historical facts" (IM XV). Amish, thus takes a legendry man of 1900 BC and constructs him an Indian mythical God, Shiva. Amish's philosophy of becoming God is in consonance with Advaita Philosophy propounded by Adi Shankaracharya saying *Aham Brahmasmi* describing the unity of the Atman (individual self or soul) with Brahma (the Absolute), which typically translates as "I am Brahma" or less literally as "I am divine". It reflects the ultimate goal of yoga- union with the higher self. (Advaita Ashrama, 2011, p.267)

Amish visualizes the journey of Shiva as an uncouth tribal leader of Gunas from the bank of Mansarovar lake to Mount Kailash in Tibet in *Shiva Trilogy*. This journey of Shiva

can broadly be divided into three categories i.e., he as an ideal human being, as a leader and a person with qualities of an ordinary man. Shiva devotes his whole life in loving and serving others, with purity of mind, heart, intellect and soul; he was truly beautiful from inside with unalloyed consciousness and holistic vision of life, doing all for the right reason throughout his life.

Shiva as an ideal human being

Shiva is a staunch believer of non-violence. When Nandi, captain of Meluhan army offers him proposal to move to Meluha, he accepts the proposal after consultation with his Gunas. For this act few persons call him coward while others call him escapist but the core concept behind this migration is to avoid recurring pointless war with Pakratis causing killing of innocent Gunas again and again; It shows him a follower of non-violence. Similarly, before attacking Swadweep, he suggests for sending a diplomatic mission to Swadweep by saying, "Listen to me, Parvateshwar said Shiva politely, if I have learnt one thing from the pointless battles of my land; it is that war should be the last resort. If there is an alternative available, what is the harm in saving some young soldiers' life, a mother would bless us for it" (IM 113). Shiva is a tradition breaker also. Once Shiva, the chief of the Gunas asks his close-friend Bhadra, "Why do not you counsel me? We are still the

same friends who never made a move without consulting each other. Bhadra smiled "No we are not. You are the chief now. The tribe lives and dies by your decisions. Only the chief's wisdom is supreme amongst the Gunas. That is our tradition." Shiva raises his eyes in exasperation. "Some traditions are meant to be broken" (IM 27). At another occasion Shiva says "I remember hearing that laws are not important. What is important is justice. If the purpose of justice is saved by breaking a law, then break it" (The Secret of the Nagas 238). Shiva's belief in ethics and higher moral values is also reflected through various incidents. At one time, one important issue was about Parvateshwar, whether to free him or to kill him or to prison him; Shiva orders for the release of Parvateshwar, as in his opinion he is a patriot, and is performing his *dharma* by fighting for his mother country.

To acknowledge mistake and apologize for wrongs done without any purpose makes one of the major virtues of Shiva. Shiva's conversation with his son Ganesh can be mentioned, "My son, whispered Shiva "I misjudged you" Ganesh's eye moistened, "Forgive me" said Shiva, "No baba", exclaimed Ganesh, embarrased."How can you ask me for forgiveness? You are my Father" (OV 51). Similarly, during conversation between Shiva and Parsuram, Shiva feels that unknowingly he had hurt the feelings of Parsuram; he earnestly begs forgiveness from Parsuram. Actually, ego prevents one from accepting one's mistake; when ego dies, a noble man is generated. Intellectual humility makes one a better person. Shiva is also habitual of practicing forgiveness, as he believes that, 'To err is human, to forgive divine'. It is thus clear that Shiva gives more weightage to his relations than his ego.

Shiva also shows great concern about his tribe. Once, when he was recognized as Neelkanth and was shifted to gubernatorial residence, he enquires about facilities to his tribe. Chenardhwaj, the governor of Kashmir assures him to provide all resources and facilities to his tribe people. Shiva remains equally worried for the well-being of others. When Kartik was of seven days, Daksha comes with a gift for his grandson of enough Somras powder to last until Kartik's eighteenth birthday. Shiva objects this on the ground that it will deprive common people of Meluha from blessings of Somras. Here, Shiva keeps interests of public above his son.

Throughout *Shiva Trilogy*, we find Shiva's gesture of folded hands and head bowed while meeting any other person, showing his nature of recognizing and celebrating the same soul in another. Shiva respects and reveres divinity in all beings. Actually, he acknowledges value in diversity and synergy in difference. Once, Vasudev Pandit Gopal was introducing Shiva to sage Bhrigu by praising Bhrigu on the ground of his position in the society, without mentioning qualities of Bhrigu; Shiva answers to Gopal by saying, "You must respect a man, not his position" (OV 166). Shiva also possesses a lot of respect for women in general and for Sati in particular. When Ganesh and Kartik proceed to attack Ayodhya, Ganesh touches his father's feet to seek his blessings; Shiva says, "My blessings are not as potent as those that emerge from your mother's heart. But I know that you will make me proud" (OV 216). Here, Shiva's faith in mother *Shakti* (Durga, mother of divine power) is clearly observed. Shiva confesses that Sati is auspicious to him, "I know that for as long as you are with me, you will always keep me centered on the right path" (OV 209). The first sign of gentleness is humility. By adopting humility in life, we find world embracing us and raising us to a great height. Humility shows that soul has overcome ego. Shiva is full of humility. When Ayurvati, the greatest doctor of Meluha uses word 'Lord' for Shiva, he politely objects the word 'Lord' for him by saying "I am still the same uncouth immigrant you met a few days back" (IM 31). Also, when Ayurvati touches the feet of Shiva in deep regard, he says "Do not embrace me by touching my feet" (IM 32). Ayurvati then feels that he is certainly a man worthy of being the Neelkanth.

In all humdrum of life, Shiva never forgets that he is a father also, shouldering great responsibilities. He gives the reflection of his inner tender feelings and concern for safety of his children, depicting his fine art of parenting. Shiva is also friend of friends. He is fast-friend of Brahaspati and Veerbhadra. On Brahaspati's death, first time he loses his temper and control on his words. Humanity and compassion are major ingredients of a noble person. Compassion is said to be a source of happiness and bedrock of fraternity. In Shiva's personality, it is reflected when he insists that his injuries should be given medical attention only after every soldier has been attended. Similarly, Shiva in spite of being highly injured, wants to walk with caravan taking ashes of martyrs to

Devagiri. Shiva also behaves as a passionate lover. When Shiva sees Sati for the first time in Lord Brahma's temple, he leaves no chance to see Sati again and again; he falls in love but Shiva's love for Sati is divine. Shiva watches Sati from behind the hedge, while Sati is dancing; thus Shiva acting as teen-age lover. After dance, when Sati leaves the place, Shiva whispers, "Holy lake, help me get her. I will not ask for anything else from you ever again" (IM 92). On Sati's death, Shiva's pain and grief is worth mentioning; when Sati's dead body is in icy chamber, he does not move from there for 24 hours. He sits there just holding Sati's body, without eating and speaking. He utters, "We will only find peace now when we meet Sati again. He weeps loudly saying, she is waiting for me" (OV 542). "Take me with you Sati, there is nothing left for me to do. I am alone" (OV 549). Shiva in Mansarovar, even after 30 years of Sati's death still whispers "I miss you" (OV 552). We also find Shiva a consummate dancer in *Shiva Trilogy*, although his physique is muscular, yet flexible enough to depict all emotions (*bhav*). In the start of the dance Shiva performs Natraj pose, the pose of the Lord of the dance to allign his energy to the universal energy so that the dance emerges on its own. Later, he conveys different emotions of joy, lust, anger, pain, etc. Dance Guruji is wonderstruck on seeing Shiva's performance. "It has been my life's honour to see you dance" says Guruji (IM 82). Above all qualities of Shiva, comes his role as environmental conservator; he fights against Somras production which he considers as a great Evil causing depletion of Saraswati and pollution of river water, responsible for plague and deformity in Nagas.

Shiva as a leader

Let us now visualize whether Shiva fits well or not in the frame of leadership. The habit of taking unanimous decision either by participation or through democratic leadership is in his nature from the very beginning; when Shiva takes unanimous decision with Gunas to move to Meluha. Shiva is a man who does not want follower; he rather believes in side by side walker. Once, his close friend Veerbhadra says to Shiva, "I will follow you anywhere". Shiva replies, "do not follow, walk beside me" (IM 181). In *Shiva Trilogy*, we find Shiva fighting against elites in favour of oppressed and the downtrodden. Kartik asks, "Why have both emperors allied against Shiva?" Ganesh replies, "He is against elite, who are

addicted to benefits. Shiva is fighting for the oppressed" (OV 41). In fact, Shiva is so devoted to the cause of eradication of Evil i.e., Somras, that he sacrifices even the life of his wife. Most significant property of a leader is that he should be rational i.e., he should give fair treatment to all irrespective of their status. This form of Shiva becomes visible when he insists on scrapping *vikarma* system for all, Shiva says "I want the entire *vikarma* law scrapped. Nobody will be a *vikarma* from now on. Bad fate can strike anyone. It is ridiculous to blame their past lives for it" (IM 282). Shiva is blessed with the quality of vigilance, far-sightedness and intelligence. During expedition to catch Parsuram, only he realizes that they are being watched by the spies and hence changes his strategy accordingly. Similarly, he appoints Nandi to follow Bhagirath in Kashi, predicting attack on him. His suspicion comes true and he succeeds in saving the life of Bhagirath. Shiva's character is also embellished with clarity of vision and analytical power leading to judgmental decision. After having heard the arguments of Bhagirath, Sati and Parvateshwar, he comes to the conclusion that Bhrigu is the most probable mastermind conspirator. Shiva exhibits his power of observation while observing architecture of different temples as well as his curiosity to see idols and even his interest in interpretation of dress of idols. Although Meluha is a foreign country for Shiva but once accepting it as his own country, he leaves no stone unturned to improve the fate of the nation. During conversation with Sati about war tactics he says, "We cannot afford to lose, the fate of the nation is at stake" (OV 117). It shows his deep concern for his nation Meluha. He uses all his emotions creatively for the well-being of the nation. In *Shiva Trilogy*, Shiva also shows a great passion for hard work. Once, Shiva reaches Kashi and finds a big crowd to welcome him; he comments, "It is unnecessary. They should not take a break from their work to welcome me. If they really do want to honour me, they should work even harder at their jobs" (OV 199). Shiva proves himself a good orator, communicator and motivator. Suryavanshi army was outnumbered on a vast scale to Chandravanshi army; before the start of war, Shiva delivers an impressive speech in front of Suryavanshi army which fills them with a stream of enthusiasm and courage. Similarly, he is also well-versed in warfare tactics in swordsmanship, in archery, in horse riding and acting as master archer during the launching of three Pashupatiastras.

Shiva with qualities of an ordinary man

Despite having so many virtues of an ideal man and a leader, Shiva depicts all the qualities of an ordinary man also. Before whole heartedly indulging in the task of identifying real Evil of the society, he reflects doubt on his potential on so many occasions. "What can I do that you smart people cannot?"(IM 32).Before war with Chandravanshis, he says, "I do not really understand how one man like me can make a difference? I am no miracle worker, I cannot snap my fingers and cause bolts of lightning to descend on the Chandravanshis" (IM 118). When he is compared with Lord Rama, he says, "How can this fool even compare me to Ram. The Maryada Purshotam, the ideal man?" (IM 179). Shiva also shows the element of confusion in his nature. After senseless killing of thousands of Chandravanshis in war, he thinks whether he made a terrible mistake by considering Chandravanshis as Evil and taking the side of Suryavanshis. During Shiva's visit to Vishnu temple and in his conversation with Vasudev Pandit, he confesses that he is unable to come to a decision and thus has come to seek the advice of Vasudev Pandit. Similarly, Shiva finds himself unable to identify real Evil. "What kind of a Mahadev am I? Why am I required? How am I to destroy Evil, if I do not know what the Evil is?" (IM 397). We also find Shiva in quick and fearsome temper exactly like Mahadev, the God of anger, who burnt Kamdev to ashes. He always tries his best to control his anger, remembering his uncle Manobhu's words, "Anger is your enemy. Control it, control it" (OV 201). After the burning of Mount Mandar and seeing Nagas there, he shouts, "The same bastard who attacked Sati in Meru, the same Naga who attacked in our return from Mandar. The very bloody, same son of a bitch" (IM 312). Here, Shiva uses a very rough language of an uncouth ordinary man as rage boils in his heart. Similarly, when Shiva reaches Devagiri, he enquires for Sati, "Do not test my patience, where is Sati?"(OV 485). Likewise, when he comes to know that Sati has died, he becomes furious, "I will burn down this entire world" (OV 504). With all stress and pressure in Shiva's life, it becomes very plausible to lose his cool in certain critical circumstances. Thus, Amish succeeds in presenting Shiva as an ordinary man without any spiritual sense to foresee the upcoming events or identify original Evil.

Discussion and conclusion

Thus, *Shiva Trilogy*, which is a fantasy re-imagined, humanizes the Indian deities such as Shiva, Parvati, Ganesh, Kartik, Nandi etc. by attributing the human features to them. The central point is that how gods were human beings ages ago, and it is not the figment of imagination but their *Karmas* and deeds that they achieved the status of divinity. The protagonist Shiva has all human weaknesses and limitations; despite this he rises to the status of divinity. As a matter of fact, an ordinary human being is like a caged animal, tethered to the past, slave to habits and longings, victim of societal conditioning, trapped into catering to the needs of body, mind and ego; all these lead to shielding of innate divinity, making one a pathetic figure throughout life. At this stage, inward journey with an intelligent and analytical introspection is needed which help in the process of inner-alignment and sanctification, transforming one into an authentic human being. One rises above insignificant and mundane issues rejecting the philosophy of "self comes first" and starts loving and serving others. It is rightly said that everyone has a higher self within, which is a vast storehouse of positive energy; what is needed is to give a chance to the higher self to contribute best to the society.

Robin Shrma- the CEO of Sharma Leadership Internatioal and well renowned global trainer says :

A good philosophy makes life worthwhile. It is very rightly said, when we choose to work on a great mission, all our thoughts break their bonds; our minds transcend limitations, our consciousness expands in every direction, and we find ourselves in a new, great and wonderful world. We discover our self to be a greater person by far than we ever demanded our self to be.(Sharma, 2015, p. 216).

Each one of us is potentially divine but divinity is in disguise. What is needed, is to give time and space to sprout the potential and thereby awakening the *Shakti* from inside, which is of infinite possibilities; only then latent potential can be exploited to the maximum for the betterment of the self as well as society. It means that the essence of life is to live life fully with a motto of service to others. It is a fact that one can find a deeper self and unison with the Divine through losing a superficial self. One realizes that s/he is not a tiny drop in the ocean but is vast and Immortal Ocean itself.

What is needed is to reject one's false smallness and recognize one's real vastness, through honest look and evolution of consciousness and realization of one's true being. For this, highest ideal of self-illumination and service to others has to be imbibed in life.

Thus, through Shiva Trilogy, Amish re-defines Lord Shiva as an ordinary person devoid of supernatural powers and depicting different shades of human weaknesses in his ways, attitude, thoughts and actions. In his journey to eradicate Evil from the system, he struggles his level best and explores his inner potential which raises him to the level of God. In this way, Amish through his work has narrated age-old myths and philosophies in a very modern context and has left a lesson for new generation, that everyone has potential to become Mahadev through good *karma* and deeds.

References

Primary Source:

Tripathi, A. (2010). *The Immortals Of Meluha*.New Delhi. Westland Publications Ltd.

Tripathi, A. (2011). *The Secret of Nagas* .New Delhi Westland Publications Ltd.

Tripathi, A. (2013). *The Oath of Vayuputras*.New Delhi Westland Publications Ltd.

Tripathi, A. (2017). *Immortal India : Young country , timeless civilization*. New Delhi Westland Publications Ltd.

Secondary Source:

Abrams, M.H. (2009). *A hand book of literary terms*.New Delhi; Cengage Learning.

Advaita Ashrama (2012). *Teachings of Sri Ramakrishna*. Kolkata.

Benu, P. (2017, March 29) . I don't believe in Left-wing and Right-wing Ideologies, I'm just proud of Indian Culture. Edex Live.

Das, A. (2015, July 11) . I find nothing wrong in being called a "Hindu' writer but I dislike the implicit assumption in that terminology. Swarajaya Magazine.

Kangude, L. (2017). A critical study of representation of history in the oath of the Vayuputras. *The Expression : An International; Multidisciplinary e-Journal* , *3*(3), pp. 124-130

(www.expressionjournal.com> downloads. Accessed 18 Oct. 2017). (ISSN: 2395-4132 –E)

Krishnakumar, A. (2011, August 5). Shiva in a New Light. Spark.

Kusugal, S.Kavita. (2015). Deconstructing the myth in Amish Tripathi's Shiva Triology A review. *Journal of Innovative Research and Solutions (JIRAS), 1*(1), pp. 33-44

(print ISSN: 2320-1932/Online ISSN : 2348-3636)

Mukhopadhyay, A. (2017 October 3). Immortal India.Fair Observer.

Pattanaik, D. (2003) . *Indian mythology : Tales , symbols and rituals from the heart of sub continent.* Sonepat, Haryana : Replica Press.

Paul, S. (2017, September 26). The Banker–turned–writer making mythology cool again. The Better India.

Pillai, L. and Khandekar, S. (2014, February 05) .The Man and the Myth.DNA Shadow Editorial Board.

Raghunathan, S. (2019, November 15). It was Poosalar who built the ultimate temple. The Times of India.

Sharma, R. (2017). *Who will cry when you die*? Mumbai : Jayco Publishing House.

Srinivasan, M. (2015, JANUARY 03). My Women Characters are Strong. The Hindu Interview

Author's Biography

Sunayana Pandey is pursuing her Ph.D. from Maharaja Ganga Singh University, Bikaner

(A State University) on topic "Re-visiting the Indian Mega–narratives: A Study of the Works of Amish Tripathi. She has cleared State level eligibility Test of 6 States for Assistant Professor. She has also cleared NET two times for the same. She has presented four research papers in national seminars and international conferences.

Sunayana Pandey

Dept. of English

Govt. Dungar College, Bikaner

(NAAC Grade- A , 3 consecutive times)

Affiliated to Maharaja Ganga Singh University, Bikaner (Rajasthan)

❑❑❑

A comparative Study on Administrative Behaviour among Male and Female Institutional Heads

• Narendra Singh Rana
Prof. Vandana Goswami • Dr Meena Sirola

The present study is an attempt to compare the administrative behaviour among male and female institutional heads. The study revealed that the three dimensions of administrative behaviour of self-financed teacher education institutions i.e. planning, organization and decision making are similar in male as well as female institutional heads. Female heads in self-financed teacher education institutions were found to be better in the dimension of communication than the male head of institutions. There is no significant difference between the male and female heads of self-financed teacher education institutions in the administrative behaviour dimensions of planning, organization and decision-making. There is a significant difference between male and female heads of self-financed teacher education institutions in the communication dimension of administrative behaviour. Female heads of the institution were found to be better at communication than male heads of the institution.

Keywords : administrative behaviour, self-financed teacher education institutions, institutional heads.

Introduction

An institutional head of teacher education institutions is the captain of a ship. He is also described as the solar orb around whom all the teacher educators' planets revolve. An institutional head is an individual of great head and heart, character and integrity as he/she has to perform a large number of academic, organizational, and administrative duties and responsibilities. An

educational institutional head is the main force behind the running of the institution smoothly and in the right direction. He/she is the key figure who guides, motivates, and leads everyone in school and helps them to coordinate among themselves. An institutional head must have the ability, experience, originality and imagination. He/she should be flexible and adaptable in his/her roles and duties.

An institutional head devotes most of the professional time to developing strategies and techniques for planning, coordinating and controlling the organisation's different functions. The administrative behaviour of an institutional head can be defined as his/her mode of action in making available human and material resources and in making the purpose of the institutions more effective.

Halpin(1966) defines administrative behaviour as one that includes in it the leadership act of any particular person who happens to be the administrator at the time and also the leadership act initiated by group members. Operationally administrative behaviour is defined as the behaviour of an officially designated leader that is the behaviour of teacher education institutions heads is considered as administrative behaviour.

Several research studies have been conducted on administrative behaviour, including karabasanagoydra, A.V.(2011), who investigated the administrative behaviour of heads of schools. The study revealed that the type of management strongly impacts the teacher's perception of the headmaster's administrative behaviour.

Pathak, P(2013) studied teacher empowerment and the academic climate of schools in reference to the administrative behaviour of school heads. It was observed that teacher empowerment and administrative behaviour of school heads were higher in government schools.

Kakati Karabi(2017) studied the administrative behaviour of principals and their relation to college climate. The study declared that 65% of principals have high decision-making power, and effective communication skills and thus have high administrative behaviour in their administration.

Swargiary Jagat (2020) studied the administrative behaviour of secondary school principals in relation to organizational climate. The study revealed that the government secondary school principals' administrative behaviour was better than private secondary schools.

In light of the above research, it can be said that studies on the administrative behaviour of the principals/school heads have only been conducted while the heads of teacher education institutions have still been found to be neglected. Hence the investigator has been to work in the respected area. Moreover, as compared to male institutional heads, female institutional heads bear dual responsibilities of professional and household responsibilities, thus the administrative behaviour may vary according to gender.

Some questions that arise in the mind of the researcher include, is there any difference in the administrative behaviour of the male and female institutional heads of the self-financed teacher education institutions? Whether there is any difference in the various dimensions of the administrative behaviour of institutional heads of self-financed teacher education institutions with respect to gender? With these questions in mind, the researcher has framed the problem statement.

Objectives of the Study:

1. To compare the administrative behaviour of the male and female institutional heads.
2. To compare dimension-wise administrative behaviour of institutional heads.

Hypotheses:

1. There is no significant difference in the administrative behaviour of institutional heads with respect to gender.
2. There is no significant difference in dimension-wise administrative behaviour of institutional heads with respect to gender.

Research design

For the present study survey method was undertaken. The population of the study includes all the heads of self-financed teacher education institutions in the state of Uttarakhand. In sample 60 self-financed teacher education institutions were randomly selected. The administrative behaviour scale for the heads of teacher education institutions was constructed by the researcher. The scale measured four dimensions of administrative behaviour namely, planning, organizing, communication and decision-making.

Limitations of the study

The present study was limited only to self-financed teacher education institutions. The study was restricted to teacher education institutions of Uttarakhand state.

Analysis and interpretation

Hypothesis 1: There is no significant difference in the administrative behaviour of the institutional heads with respect to gender.

Table 1.1 : Administrative behaviour of the institutional heads with respect to gender.

Category	Dependent variables	Gender	N	Mean	SD	t-value	Level of significance
Self-financed teacher education institutional heads	Administrative behaviour	Male	30	33.98	3.487	1.088	Not significant
		Female	30	32.94	3.631		

In above table 1.1; it was observed that the administrative behaviour of the institutional heads' t-value is 1.088, and the significance level at the 0.05 level is 1.672, hence it is not statistically significant.The mean and SD of the administrative behaviour of male institutional heads is 33.98 and 3.487 respectively. While on the other hand the female institutional heads' administrative behaviour mean and SD is 32.94 and 3.631 respectively. The t-value is 1.088 which is given in Table 1.1. Hence no gender-related variations is observed in the administrative behaviour of institutional heads of self-financed teacher education institutions.

Thus hypothesis 1; "There is no significant difference in the administrative behaviour of the institutional heads with respect to gender" is accepted. There is no difference in the administrative behaviour of male and female institutional heads. Regardless of the gender of the institutional heads, they know how to balance all their roles and work hard to make sure that they are doing everything that is best for the institution and all involved with it.

Hypothesis 2:- There is no significant difference in dimension-wise administrative behaviour of institutional heads with respect to gender.

Table 1.2 Dimension-wise administrative behaviour of institutional heads with respect to gender.

In above table 1.2; the mean and SD of male institutional heads' administrative behaviour on the dimension of planning is 30.9 and 2.487, while of the female institutional heads, it is 29.9 and 3.01. The t-value for the same is 1.4028 which is statistically not significant.

Dimensions	Gender	N	Mean	SD	t-value	Level of significance
Planning	Male	30	30.9	2.487	1.4028	Not significant
	Female	30	29.9	3.01		
Organizing	Male	30	31.9	4.4	1.1179	Not significant
	Female	30	30.7	3.9		
Communi-cation	Male	30	30.62	2.5	4.56.3	significant
	Female	30	35.2	4.9		
Decision making	Male	30	32.3	3.42	0.642	Not significant
	Female	30	31.7	3.8		

Hence the hypothesis; "there is no significant difference in the planning dimension of administrative behaviour of the institutional heads with respect to gender" is accepted. Regardless of the gender of the institutional heads of self-financed teacher education institutions, the behaviour of the heads of institutions depicts the planning of all kinds of activities in time for the success of the institution. Planning includes plans for new projects, developmental programmes and the improvement of the institutional programmes and plans.

The mean and SD of the male institutional heads' administrative behaviour on the dimension of organizing is 31.9 and 4.4, while of the female institutional heads, it is 30.7 and 3.9 respectively. The t-value for the same is 1.1179 which is statistically not significant.

Hence the hypothesis; “there is no significant difference in the organizing dimension of administrative behaviour of the institutional heads with respect to gender” is accepted. Regardless of the gender of the institutional heads of self-financed teacher education institutions, the behaviour of the heads of institutions depicts the organization of the institutional plant, which includes the procurement of adequate furniture and equipment, making pretty repairs, organization of laboratories, library, sanitation etc. It also includes the organization of the instructional work, construction of curriculum, work distribution among staff, construction of timetable etc. The organizing of various activities also relies on the responsibility of institutional heads such as sports, parent-teacher associations, community outreach activities etc.

The mean and SD of the male institutional heads’ administrative behaviour on the dimension of communication is 30.62 and 2.5, while of the female institutional heads, it is 35.2 and 4.9 respectively. The t-value for the same is 4.5603 which is statistically significant. Hence the hypothesis; “there is no significant difference in the communication dimension of administrative behaviour of the institutional heads with respect to gender”, the hypothesis is rejected. The female institutional heads have pleasing and clear voices and they speak directly and concisely. They listen patiently. They have a better flow of dyadic communication than their male counterparts/male institutional heads.

The mean and SD of male institutional heads’ administrative behaviour on the dimension of decision-making is 32.3 and 3.42 respectively, while the mean and SD of female institutional heads’ administrative behaviour on the dimensions of decision-making are 31.7 and 3.8. The t-value for the same is 0.642 which is statistically not significant. Hence the hypothesis; “there is no significant difference in the decision-making dimension of administrative behaviour of the institutional heads with respect to gender” is accepted. Regardless of the gender of the institutional heads, they used decision-making in all the activities from the beginning of the session to the end like the admission of students, the appointment of teachers, preparation of college calendar, provision of teaching, clerical and menial staff, distribution of work teaching and administrative, finalizing the college time table, purchase of necessary equipment, books and supplies, formation of new classes etc.

Result

Male institutional heads and female institutional heads of self-financed teacher education institutions' administrative behaviour are at par in the dimension of planning, organization and decision-making. While in the communication dimension of administrative behaviour, the female institutional heads were better than the male institutional heads.

Conclusion

It was found from the present study that although the female institutional heads bear dual responsibilities of the professional and household, there is no difference in administrative behaviour when compared with male institutional heads of self-financed teacher education institutions. Moreover, it is been observed that the female institutional heads showed better communication than the male institutional heads. Females tend to be more communicative with all the stakeholders of the education and also an expert in group dynamics.

References

- Thirunavukkarasu, A.(2000). Administrative behaviour of heads of schools in Chennai and Kanchipuram districts. Retrieved from https://shodhganga.inflibnet.ac.in/handle/10603/255124
- Aggarwal, J.J.(1975). *Educational research an introduction* (2nded). New Delhi: Arya Book Depot.
- Buch, M.B. (1988–92). *Fifth survey of research in education*. New Delhi: NCERT.
- Buch, M.B. (1983–88). *Fourth survey of research in education*. New Delhi: NCERT.
- Buch, M.B. (1972–78). *Second survey of research in education*. New Delhi: NCERT.
- Buch, M.B. (1978–83). *Third survey of research in education*. New Delhi: NCERT.
- Das, M.(1983). *A study of the administrative behaviour of secondary school principals in relation to selected school variables* [PhD Thesis in Education], MSU Baroda.
- Dhulia, U. (1989). A study of the Role of Administrative style, Teachers job satisfaction and student Institutional perception in

determining the nature of school climate, Ph.D. In Education, *Garwal*.

- Guildford, J.P. (1956). *Fundamental statistics in psychology and education*. New York.
- Karabi, K.(2017). A study on the administrative behaviour of college principals and its relation to college climate. Retrieved from https://shodhganga.inflibnet.ac.in/handle/10603/214733
- Kaul, L. (2001). *'Methodology of Educational Research', third revised, enlarged and reprinted Edition.* New Delhi: Vikas Publications.
- Kerlinger, F.N.(1973). *Foundation of behavioural research; New York; Rite Hart and Winston, P-41*.
- Mangal, S.K.(2006). *Advanced educational psychology, prentice hall of India, New Delhi*.
- Newman, K., & Newman, L.(1981). *Educational psychology*. New Delhi: Mohi Publications.
- Pathak, P.(2013). Study of Teacher Empowerment and Academic Climate of Schools in Reference to Administrative Behavior of School Heads. Retrieved from https://shodhganga.inflibnet.ac.in/handle/10603/143326
- Singh, S.(2004). Job stress job satisfaction and attitude towards administration as correlates of administrative behaviour of educational administrators. Retrieved from https://shodhganga.inflibnet.ac.in/handle/10603/80838
- Walter, B.(1969). *Education researches an introduction*. New York: McGraw-Hill Book, Co., Procter & Gamble 4.
- William, G.C.(1950). *Sampling techniques. Bombay; Asian Publish House, P-109*.

Narendra Singh Rana
Research Scholar
Department of Education
Banasthali Vidyapith
Rajasthan

Prof. Vandana Goswami
Dean
Faculty of Education
Banasthali Vidyapith
Rajasthan

Dr. Meena Sirola
Associate Professor
Department of Education
Banasthali Vidyapith
Rajasthan

Teacher Leadership for Enhancing Quality Education

Ibakordor Tiewsoh • Rihunlang Rymbai

Education is one of the most happening processes in a society. However, the presentsocietyin which we are living is full of trails and difficulties.There is an essentialrequirement for a leader who have wisdom and dedications to ensure that transformation exist in the society as a whole. In this context, the paperfocus on the role of teachers as leaders in the educational setting to enlighten the future of the society through education.Quality of education implies a high value of education which one can achieve to meet the requirements of what they are striving for. Teacher Leadership has an important role to develop and improve the education system in a state. Teacher leadership plays a significant part to contribute to the quality of education. Hence, to enhance the quality of education, it is important to determine the leadership of a teacher.

Keywords : Teacher leadership, Quality Education

Introduction

'Education is one of the most happening processes in a society. However, the presentsocietyin which we are living isfull of trails and difficulties which also affect education. The world as a whole try to solve the different problems and hardships encountered from time to time. Problems arise from different aspects in a society-from personal issues to family issues, economic status, livelihood, and from localities to national and international problems. With the fast-pacing development and evolution, yet why have we not been able to resolved the issues, including the difficulties faced in education arena? Indeed, the time is ever right to resolve these problems one after the other.

Somecredible answers to the problems maylie on the type of leadership that a country, a society or an organization set up for its individuals. There is an essentialrequirement for a leader who have wisdom and dedications to ensure that effective and positive transformation exist in the society as a whole. In the educational context, the role of teacher as leader greatly enlightens the future of the society through education.And since education has an important role to play for its impact on excellence and quality, teachers are the torch bearers who can do the job. When there are problems that needs to be tackled, and one does not know how to solve them, teachers may approach the problems through their problem-solving skills. Basically, education as a sector of society have its own issues and these needsto be address thoroughly for the overall improvement of the students, the society and the nation as a whole with the help of the teacher leaders. The result of this, is that quality in education is ensured for positive outcomes.

Quality Education

Quality, in one way refers to eminencestanding and reputation.According to Webster's Student Dictionary, it is a "*degree of excellence*" (Landau, 2000).Quality Management (TQM) can be defined as a systematic management approach tolong-term success through customer satisfaction by achieving the commitment of allmembers of the organization to participate in continuous improvement efforts (Deming,1986; Juran, 1999; Sfakianaki, et. al., 2018). There is a need for analysis on the different aspects which influence quality, even in the field of education. Human resource, which are the teacher leaders, are of vital importance for the running of quality. To be educated does not only mean to high academic achievement and brilliance. Education is an element is bringing out the best in individuals and help individuals to appreciate the overall beauty of the universe, to respect mankind, and strive for excellence. as one. Quality education does not exist in a vacuum (UNESCO, 2004). It needs to consider the important factors such as political, social, economic, historical, cultural and geographical diversities that exists within and between nations.Quality of education implies a high value of education which one can achieve to meet the requirements of what they are striving for.It is an asset with huge value which left an imprint in one's lifetime. It endows an individual to achieve their

passions and potentialities successfully. It is because of the quality of education, which helps individual to think logically before reaching to any final decision. It cultivates positive behavior and consequences. Furthermore, it will help individual to grow and develop human values and ethics which is acceptable to the society and be productive. Self-confidence and personality of the students will be developed through educationalquality (Nagoba &Mantri, 2015).Prosperity of the family, society, nation and the universe is determined by the quality of education in which one's receives in their life.Quality education will always be value based and fix the present and future needs (Nagoba &Mantri, 2015). Thus, the main focus is the role of teacher leadership in enhancing quality education so as to generate successful and efficient leaderswho will brighten the society and for the generations to come.

Teacher Leadership:

Teachers arealready leaders in their profession (Bond, 2015). He/she is not only the one who would teach about knowledge and information that is required to fulfill the requirement of the educational setting, but touches the entire aspect of existence.Teacher leadership is described as a process of influencing others (Schott, et. al., 2020).Teacher leadership is not only meant for teacher with assigned designation in their educational setting but it is intended to all who play the role to teach and try to bring out student (Harris 2003).Teacher leadership begins as soon as one's enters into a teaching profession(Lieberman & Miller, 2005). Teachers are the one who will identify the problems encountered by their students and make a way out of it to overcome successfully (Moore, Latimer & Villate, 2016).Teacher leadership is not "*just being a great classroom teacher*"(Snyder, 2015), it is much more than that.Teacher leadership stands in the sense that every teacher play theirpart to guide and lead their students to somewhere which is unknown to them.The success of the future is in the hands of the teacher who leads the students efficiently (Mansor et al., 2018).Teacher will always be on the level that is superior to the other fellows and need to make sure that the other side is following him/her. Teachers have an important roleto influence the future and extend their hands for the well-being of the world as one. Synder (2015) says that to change the world to be a better place, there is no other thing than imparting a child by his/her

teacher inside the classroom. Because of the continuous desirable change in the scenario, the concept of teacher leadership becomes more and more important to fetch the effectiveness of the students and the education system as a whole(Mansor et al., 2018). Teacher leadership stands on the principle of influence and level of interaction and not based on the strict power or authority (Liljenberg, 2016).Leadership of a teacher is like a magnetic effect which can drag their followers absolutely either to goodness or evilness.It is typically aware that students will follow their teachers no matter what;therefore it is very important forteachers to be vigilant in every words they utter as well as their habits and action they expose towards them (Baba, 1998).

Teacher Leadership and quality education

Teacher Leadership has an important role to develop and improve the education system.Frost (2003) reflected the work of Katzenmeyer and Moller (2001) which states on"Teacher leadership: its time has come".Teacher's part is to lead the child with the content of the textbook and more beyond its context. Despites of every tendency that quality education might be brought through introduction of technologies, good basic training and many more, teachers are expecting to promote education to the citizens, promote social integration, fight for poverty, prevent violence and so on so forth (UNESCO, 2004).Voices of a teacher always has resonated melody in the lifetime of a students. It is very important that these voices must have valuesto shape and mould the overall being of a student. In this sense, teacher leadershipbecomes more important to consider for quality education. Moreover, quality education can only be delivered by quality teachers (Bond, 2015) who are interested to visualize the future of the students. Indeed, teaching as a profession require teachers to be well-versed with the subject matter but more importantly, endless dedication and enthusiasm from the side of a teacher is needed throughout the entire career, otherwise, nothing will be embedded to the mind-set of the students. Teacher leadership is reflected through different activities carried on by teacher to break down all the barriers which might hinder the student's pathway and maintaining relationships in order to make sure that there is effectiveness in the outcomes and educational experiences of the students (York-Barr & Duke, 2004). It is necessary to keep in mind that abundant knowledge without

possessing any quality remains hanging in the middle of nowhere. In the present day, teacher are demanded to have great qualities which goes beyond their expertise (Institute for Educational Leadership, 2001).The quality of teacher is one of the most important factors which are responsible for the outcomes of the students (Poekert, Alexandrou & Shannon 2016). We might say that quality of a teacher will be realized when teacher displays the qualities of leadership sincerely towards their students, colleagues and education system as a whole. It is in this line, that Yildirim and Ozen (2018) stated that is high time to increase the quality of education through teacher leadership. The emphasis is also that quality management applications havebeen applied in areas with no direct competition but an urge for self-improvement (Sfakianaki, et. al., 2018). Thus, good teacher leadership is not only for peripheral application but also for self-application. The research inference of Schott, et. al. (2020) is that not only teachers themselves seemto benefit from teacher leadership, but also the employing school, students, and even actors beyond school level, such as parents andprofessional networks.

Qualities of teacher leadership

The pivot of quality education lies on the leadership sense and skills of a teacher. A teacher without a sensation of being a leader cannot display any good qualities towards their students.Teacher leaders needs to have a clear responsibility that leadership is a supreme task that has been shoulder to every teacher (Hamzah, Noor, & Yusof, 2016) without the influence of external factors. Therefore, teacher leadership plays a significant part to contribute to the quality of education. The following are the characteristics of teacher leadership which can ensure the presence of educational quality in a system.

i. ***Personal growth*–**Primarily,the quality of education is through a teacher who continuously grows and develops their personality from time to time. Personal capacity is to do with teachers' professional knowledge, personal attributes and clarity of purpose (Frost, 2003).A teacher needs to update themself with his/her abilities and knowledge (Poekert, Alexandrou & Shannon, 2016) to enable to adjust and regulate the continuous changing situation.

ii. ***Professional behaviours–***Teacher as a leader possess the code and ethics of being a great teacherwhich is acceptable by his/her students, colleagues, authorities and other stakeholders. Commitment to professional values is significant (Frost, 2003). The quality of education cannot be delivered if teacher performs poor professional behaviours.Parlar, Cansoy and Kilinc (2017) stated that quality education can be improved through professional behaviours of a teacher. Indeed, teachers need to be conscious of their professional behaviours and understanding themselves as being in the forefront to lead studentsand nurturing life.

iii. ***Relationships–***Interpersonal capacity is to do with teachers' participation or involvement and the development of skills in building and maintaining professional relationships (Frost and Durrant, 2002b; Frost, 2003). Building relationshipis another factor which enlightens students and ensures quality education. Rapport of a teacher makes students to be affectionate towards them and this will help students to be truthful and straightforward. On the other hand, relationships will support teacher to identify the individual differences and needs which required to be fulfilled by teachers in order to gain the efficiency of the student outcomes. In this line relationship is important to build the quality of education.

iv. ***Learning facilitator–***To boost the quality of education, it isnecessary that teachers treat themselvesas learning facilitators.In the process of learning, teachers need to be aware about learning atmosphere of the students, create it and help them to visualise their goal as well as to work in achieving their set target or goals.Therefore, in order todevelop the learning capabilities of the students, teacher must actively involve in helping students with learning methodology, project-based learning,and classroom techniques and so on so forth (Prakash,2016). A teacher being a learning facilitator will contribute to students' overall achievement effectively.

v. ***Being a role model-*** To be a role model is not a simple task, but a teacher has to be. A teacher has the power to influence the overall personalities of their students. The behaviour of a student will figure the character and guidance of a teacher.

Therefore to ensure that there is quality education and students achieve their educational goals and targets, it is very important that a teacher mind their behaviour and substantiate with the positive conducts. Bashir, Bajwa, and Rana (2014) found out in their study that teachers as a role model inspires and motivates students to acquire more and more, set their efforts of capabilities to ensure their attainments to a higher level. Moreover, the guidance of teachermight turn a student to an essential instrument of the society or a weapon of destruction under (Manju, 2018). The reason is because a teacher is a role model to their students.

Different role play by teacher leaders

Teacher leaders has different role to play in different areas.Students from different family background with different characteristics, culture, beliefs and principles come together for the purpose of educational achievement. Therefore, a teacher leader plays a very important part to guide and adjust to all individual needs and differences and ensure that everyone gain the same quality of education. In an educational setting, teacher leaders play the role of an administrator, counselor, coordinators of different branches and committees, etc.

***Administrator* :** In an educational institution, the administrators started as teachers. They gradually move upward from their position toadministrators. The effectiveness of an educational institution is influence by the administrator. A teacher leader as an administrator takes all the initiatives and strategies to manage and run the institution effectively. Wardani, et.al. (2020) described that the role of a teacher as an administrator cannot be avoided. He/She is the one who are up-to-date in implementation of rule and strategy to achieve effectiveness in their students (Wardani, et.al. 2020). Being an administrator, a teacher leader has to exercise all the skills and talents, knowledge and all capabilities to smoothly function all the necessities for ensuring the top quality of education deliver to the students.

***Counsellor* :** Teacher leaders play an important role to guide and help students in moving towards academic as well as personal development. They are the one who can deal directly with the problems of the student. Students need more career guidance and opportunities to move on in their future. Positive thoughts, having

confidence, development of personality, improvement of behaviour are the qualities that students gathered from a teacher (Singh & Nisha, 2020). Therefore, we can say that teacher leader is a main pivot in defining the personality of a student.

Coordinator : A coordinator is a person who hold different programs and activities in the government, organisation as well as in the educational setting. In an educational setting, a teacher leader also plays a role as coordinator in ensuring the well-being of the students. Different programs such as NSS, NCC, academic activities, co-curricular activities, discipline cell, etc., are hold and host by teacher leaders with different responsibilities.

Coach : Teacher leader as a coach plays an important role to help and improve the life of students. They are the one who target a child to reach his/her goal effectively. Hence, as a coach, he/she is the one who will help students set and target their goals to achieve in his/her career or lifetime. Further, teacher leaders instil in the students with different skills to move on amidst of various situations and challenges encounter in the journey of life.

Conclusion :

A teacher leader as an important personality, plays an important role to shape and mould the entire education system and society as a whole. A teacheris considered to be the most appreciated and respected person who lookup with positivity and have a good reputation in the society (Murati, 2015). With best quality inputs of the teacherleaders and roles played with responsibility contributes to the effectiveness of the education system as a whole.As a result, teacher leadership carry out the valuable content to exercise for the quality education to be received by student and in turn add to the society as one.

It can be said that the quality education will cover and focus on the entire aspects of the individuals in educational settings. It influencesthe social well-being, the emotional and intellectual well-being of an individuals. Hence, to enhance the quality of education, it is important to determine the leadership of a teacher.

Reference :

Baba, S. S. (1998).Knowledge without practice is meaningless. (pp. 261-279). Prasanthi Nilayam. Retrieved from https://www.sssbpt.info/ssspeaks/volume31/sss31-29.pdf

Bashir, S., Bajwa, M., and Rana, S. (2014). Teacher as a role model and its impact on the life of female students, *International Journal of Research – GRANTHAALAYAH, 1*(1), 9-20. DOI: https://doi.org/10.29121/granthaalayah.v1.i1.2014.3081

Bond, N. (Ed.). (2015). *The power of teacher leaders: Their roles, influence, and impact*. New York, NY: Routledge.

Frost, D. (2003). Teacher leadership: towards a research agenda. Paper presented within the symposium:'Leadership for Learning: the Cambridge Network'. Retrieved from http://www.teacherleadership.org.uk/uploads/2/5/4/7/25475274/frost_-_icsei_2003.pdf.

Frost, D. and Durrant, J. (2002b) Teachers as Leaders: Exploring the Impact ofTeacher-Led Development Work, in School Leadership and Management, 22(2) pp 143-161

Katzenmeyer, M. & Moller, G. (2001). Awakening the Sleeping Giant: Helping TeachersDevelop as Leaders, second edition. Thousand Oaks, CA: Corwin Press.

Harris, A. (2003). Teacher Leadership as Distributed Leadership: Heresy, fantasy or possibility? *School Leadership & Management*, *23*(3), 313-324. DOI: 10.1080/1363243032000112801

Liljenberg, M. (2016). Teacher leadership modes and practices in a Swedish context – a case study, School Leadership & Management, 36:1, 21-40, DOI: 10.1080/13632434.2016.1160209

Manju, G. (2018). Teachers are the role models to students. *International Journal of Creative Research Thoughts*, *6*(1), 1522-1528. Retrieved from https://ijcrt.org/download.php?file=IJCRT1705216.pdf

Mansor, M., Yusof, H., Yusof, R., Norwani, N. M., Jalil, N. A., Yuet, F. K. C., … Musa, K. (2018). Teacher leadership factors and teacher leadership model based on the six guiding principles. *International Journal of Academic Research in Progressive Education and Development*, *7*(4), 468–487. DOI: 10.6007/IJARPED/v7-i4/5383

Moore, H. L., Latimer R. M. & Villate, V. M. (2016). The Essence of Teacher Leadership: A Phenomenological Inquiry of Professional Growth. *International Journal of Teacher Leadership*, 7(1).Retrieved from https://files.eric.ed.gov/fulltext/EJ1137503.pdf

Murati, R. (2015). The role of the teacher in the educational process. The Online Journal of New Horizons in Education, 5(2), 75-78.

Retrieved from http://www.tojned.net/journals/tojned/articles/v05i02/v05i02-09.pdf

Nagoba, B. S. & Mantri, S. B. (2015). Role of Teachers in Quality Enhancement in Higher Education. *Journal of Krishna Institute of Medical Sciences University*, *4*(1), 177-182. Retrieved from https://www.researchgate.net/publication 282928863_Role_of_Teachers_in_Quality _Enhancement _in_Higher_Education/citation/download

Parlar, H., Cansoy, R., &Kýlýnç, A. Ç. (2017). Examining the Relationship between Teacher Leadership Culture and Teacher Professionalism: Quantitative Study. *Journal of Education and Training Studies*, *5*(8), 13-25. Retrieved from https://doi.org/10.11114/jets.v5i8.2499

Poekert, P., Alexandrou, A., & Shannon, D., (2016). How teachers become leaders: an internationally validated theoretical model of teacher leadership development. *Research in Post-Compulsory Education*, *21*(4), 307-329. Retrieved from http://dx.doi.org/10.1080/13596748.2016.1226559

Prakash J. (2016). Teachers role as facilitator in learning. *Scholarly Research Journal for Humanity Science and Language*, *3*(17), 3903-3905. Retrieved from http://oaji.net/articles/2016/1201-1476521024.pdf

Quality education for all young people (2004). 47th International Conference on education of UNESCO Geneva, 8-12. Retrieved from http://www.ibe.unesco.org/fileadmin/user_upload/archive/Publications/free_publications/educ_qualite_angl.pdf

Schott, C., van Roekel, H., Tummers, L. G. (2020). Teacher leadership: A systematic review, methodological quality assessment and conceptual framework.Educational Research Review, 31. https://doi.org/10.1016/j.edurev.2020.100352

Sfakianaki, E., Matsiori, A., Giannias, D. A., &Sevdali, I.(2018). Educational leadership and total qualitymanagement: investigating teacherleadership styles. Int. J. Management in Education, 12(4).

Wardani, A. D., Gunawan, I., Kusumaningrum, D. E., Benty, D. D. N., Sumarsono, R. B., Nurabadi, A., Handayani, L., Ubaidillah, E., Maulina, S. (2020). How Teachers Optimize the Role of Classroom Administration in Learning*? Advances in Social Science,*

Education and Humanities Research, 501. 422-426. DOI: 10.2991/assehr.k.201204.082

Yildirim, R & Ozen, H. (2018). Evaluation of Teachers within the Scope of Leadership Roles (Demirci Sample). International Journal of Progressive Education, 14(6), 83-98. DOI: 10.29329/ijpe.2018.179.7 Retrieved from https://files.eric.ed.gov/fulltext/EJ1201822.pdf

York-Barr, J. & Duke, K. (2004). What Do We Know About Teacher Leadership? Findings From Two Decades of Scholarship. *Review of Educational Research, 74*(3), 255-316. https://doi.org/10.3102%2F00346543074003255

Ibakordor Tiewsoh
Ph.D. Research Scholar,
Department of Education,
North-Eastern Hill University, SHILLONG
Meghalaya (India)

Rihunlang Rymbai
Assistant Professor,
Department of Education,
North-Eastern Hill University, SHILLONG-793022
Meghalaya (India)

❑ ❑ ❑

Women and Chronic Illness : Looking Illness Through A Gender Lens

• **Kumaresh Skandan Kashyap**
• **Paridhi Bansal**

The major variables that are there in this study are women and chronic conditions.Since the time we started our journey as humansillness was a part of ourexistence. Earlier the incidence of disease was still less than today's number majorly due to the unfavorable environment we are living in.

Chronic conditions are those conditions where the disease or health irregularity lasts for a big-time and mostly till the patient is living. They can be diabetes,thyroid, reoccurring cancer, Parkinson's, etc. Disease knocks on the door without any biases. Anybody who is in the path of the tornado can be taken away by it. Chronic diseases impact kids, youth, old age people or to be more general both men and women. change the course of your life at any. The present study seeks to see how diseases impact women specifically. Women are assigned the names of goddessesfor a reason as our society believes that they can tackle anything and everything but this is the society itself that has taken away her basic rights simply by stating a mother can't fall sick. When the man in the house is ill we do everything possible to take care of the person or even in the case of kids or old age people but when it comes to women we often hide our ignorance of the fact that women have the strength to endure everything. This paper is an effort to highlight the issues that crop up for a woman who falls into the trap of chronic conditions and tries to think of measures that can be taken.

More than crores of Indian women are battling one more disease and the number keeps on rising every year. The paper solely focuses on how social conditioning can affect the management of diseases mainly in women.

Keywords: Chronic Diseases, Role Changes, Society, Stigma, Women.

Introduction

The first question that comes to mind when we talk about diseases is what is a disease?

The disease is basically " illness or sickness characterized by specific signs or symptoms." Disease can be of two types: Acute which is like the flu that doesn't believe in sticking around for long but and chronic are the ones that accompany us forever in our life cycles.Acute diseases are diseases that are short-lived like a cold whereas chronic diseases are diseases that live for a long time and mostly stay with us till we die. Chronic diseases may or may not be life-taking in nature which depends upon their complexity and how early the person got diagnosed and also the available health services with them. With treatment or not they have the power to disrupt one's entire life considering their symptoms.

Now,

What is a chronic disease? According to U.S. National Centre for Health Statistics " Chronic Diseases are diseases that persist fora long time. These are diseases that cannot be cured completely by medicines or prevented by vaccination. Illness is something we all have experienced in one form or other in our lives or in the lives of our near and dear ones. In the last two years, terms like **HEALTH, DISEASES, and ILLNESS**have become a household affair. We discussed it day and night. We saw ourselves getting ill and our families too. We saw the helplessness that comes with a disease whether it attacks us or our families. We have seen the fear of losing our lives and the lives of our family members very closely. Deep down we know it is more or less the flu that will pass but still, it created havoc in our lives emotionally, psychologically, or socially.So, one can wonder what will happen if we get stuck with a disease for years. How vulnerable it can make one and affect their life or the life of their near ones. Illness always comes uninvited and can happen to anyone irrespective of age or sex.This article focusses onthe women section of the society who are stuck with long-term diseases.

Women represent a major section of our society. They cover a huge population both globally and at the country level. Diseases

are rising day by day and are not sparing anybody. A huge population of women is suffering from one disease or other. At India's level crores of women are chronically ill. A major reason behind this is also our lifestyle and increased stress due to the growing division of labor. Social determinants are always present and contribute to disease spikes. According to WORLD HEALTH ORGANISATION, chronic diseases are expected to rise by a huge percentage by the year 2030 globally.

Women and society

Women are the pillars of our societies and our homes. Since childhood, we remember our moms taking care of us when we get sick but we hardly remember days when she was down and took leave from the household chores as women back then and still today are not taught to put themselves first. STEREOTYPES are common in Indian society. Gender stereotyping is one such concept. Women and men have been taught things that are expected to be followed under any condition. Women's role is to care for and nurture the family and this made women ignore their health or anything that is hurting them physically or emotionally for a long time.

Women's day celebrated on 8th March had the theme **choose to challenge**. It asked the women to challenge any inequality they face at any front or in any sphere of their lives. WHO raised a campaign called **RIGHT TO HEALTH** for women as women are mostly ignored. They are not aware of their health which makes them more prone to diseases and unequal health treatment.

Research Question

The article aims to examine the social challenges that are associated with chronic illness when it comes to women.

Review of literatura

1. **Berger, Peter L. and Thomas Luckmann. (1967**). Their book "THE SOCIAL CONSTRUCTION OF REALITY" highlighted the way we present ourselves is deeply influenced by the outside experiences. The author says that everything we think, assume or perceive is actually guided by our belief system. When it comes to illness culture and our personality both play an important role. The arrival of long term diseases may restrict certain people to their homes and make them live

a more private life. With the coming of new changes, various aspects of illness are now visible. For eg., Earlier accepting that you have tuberculosis or aids was a very serious announcement due to the views of people attached to such diseases while today a little change can be observed due to cultural changes around us. The way we perceive illness of ourselves is basically on the foundations laid by society.

2. **Millen and walker (2000) in their study on** "OVERCOMING THE STIGMA OF CHRONIC ILLNESS: STRATEGIES FOR NORMALIZATION OF A 'SPOILED IDENTITY'." highlighted the view of society in shaping illness. They highlighted how people still look down upon people with illnesses even in the case of non-communicable diseases. A person has to go through immense pain from inside and outside. People's rejection is very tough to handle and makes the people more isolated and depressed. They are dependent on others and feel vulnerable all the time. The impact of illness on their identity and self-concept is profound.

SOCIAL CHALLENGES FACED BY WOMEN

Men and women are designated with two roles in society that isproductive labour and reproductive labor. Productive labor is the labor that is done by going out and earnwhile doing household chores or nurturing families is the reproductive labor.

Our society has always given high weightage to the former one over the latter one.

Women starting from the civilization have been asked to take a backseat. They have been assigned the role to be submissive always which can be seen in the illness too where the women hardly express her pain to anyone or undergo any mal treatment out of guilt of not serving the family. Women often identify their roles like the one who looks aftereverything inthe family but when they get ill they find themselves in a fix. The new role is very different from the older role where the family couldn't run without them. The new role is too difficult to handle and causes a lot of women to feel guilty or go into depression. Role changes are often accompanied by diseases. Role in the family and the society both gets affected. With the progress of diseases, many new changes

are observed in the body that is visible which makes a patient self-conscious and which prevents them further to interact and going out which results in social isolation. After the diagnosis, most people too distance themselves from the patient which limits their participation further.

Women indirectly play the role of major decision-makers in the family. Though the direct control of decisions is by men but yet women often influence small to big decisions in the family. But after illness, her role is subsided not out of purpose but it is what diseases does. This makes the woman more questionable about her existence.

Changing roles and the feeling of not being productive for the family and the society often make many patients commit suicide or harm themselves. **Emile Durkheim in his theory of suicide** said about egoistic suicide where one attaches huge importance to self and low integration causse suicide to occur which can be seen here too.

SELF CONCEPTis formed after the interaction with people outside. Like **LOOKING GLASS SELF by COOLEY** says we form our opinion of ourselves as per the opinions shaped by others us. This causes conflict in personalities which makes one realize that they are no more required to n society. When we see a patient in public we shift all our attention to them causing them to become conscious of their body and disease. The patients attach very little importance to themselves or themselves due to this.

LABELLING THEORY by BECKER says society puts labelson the people which makes them behave in certainways. Societies makepatientsrealize that they are different and have got no role to play which further deepens the issues for the patient.

Coming to family and marriage we know they are the most important social institutions. They shape our entire life.

But after illness, it is seen patients usually lose their hold over both. In marriage due to lack of communication or physical intimacy and various other reasons, many husbands drift away from their wives emotionally. Many cases of even divorce have been seen after partners' illness which is more when it comes to women. **MALINOWSKI** said that Marriage is the fountainhead of our society so one can wonder how high values we assign to marriage and when the relationship breaks or the bond lessens what impact it may cause on a woman.

Children consider the opinions of ill parents not valuable or even see them as a potential burden which makes the patient go into an identity crisis. Many newspaper reports and reports by NGOs have reported children and spouses leaving their dear ones to old age homes or even streets. A report in 2015 told a story about a son throwing his mother suffering of dementia from a roof. Are the lives so cheap?

Also, it is commonly seen that many women patients face both verbal n physical abuse which is also a result of a burden on the caregivers. But caregiving and abuse cannot go hand in hand. Caring for someone doesn't entitle you to abuse them. The major role here should be played by the NGOs or social groups to connect such people with diseases and their families. Effective counseling is very much needed which we totally lack.

When it comes to jobs many patients including women face difficulties at the office. Many times a patient who can still continue to work is asked to take voluntary retirement or made to work on areas that are not his expertise which causes more strain. Many times due to extreme physical difficulties many females who worked throughout have to leave their jobs which makes them more isolated. In this case, it is not the fault of society but yet how society showcases the disease is wrong in its aspect. Better laws at the individual levels are needed so that no patients shall be exploited due to their illness.

Stigma theory by GOFFMAN is the most important theory when it comes to illness we never let the patient normalize we raise questions on their existence before them only, and we talk about mercy killing without even asking what they even want. We avoid eating with them even in the cases of uncommunicable diseases. What is lacking is awareness. One can imagine if we start spreading awareness about such things how society may undo its outlook towards the patients making their lives easier.

Gender is one such perspective. It is seen in many families that when the son catches some sort of disease it becomes the duty of women to serve but when the daughter-in-law gets sick many members start questioning her about the disease. Verbal abuse by in-laws is also visible when they consider the daughter in law nothing more than a burden to their son. We still believe in caring for a man if he gets a disease but not the other way round. Also,

many people/males are advised to leave the partner and start a new life which is mostly in the case of women falling sick.

Conclusion

It is evident from the above findings that chronic illness is indeed an issue especially when we talk about social challenges faced by women. We rely on the physical aspects of diseases so much that we ignore other aspects. More research on the concerned topic is needed. The challenges given by illness to the women are numerous from changed body images that made a person more into themselves, changed the perception of society towards the patient, loss of balance between work and personal life, Job loss, declining quality of relations, abuse, decreased social participation, etc. were common things observed. Though, some positives were also seen such as strengthening of bonds in the family and the relationship with the spouse or more empathy by certain members of the society and groups but still the negative outweighed the positives. Thus, it is needed to make a social model which works on the aspects that are usually ignored.

Suggestions

- Media should be utilized properly to spread information about the rising chronic diseases. The role of media shall be effectively utilized to make people aware of the symptoms, causes, and prevention of fatal chronic diseases.
- Health literacy campaigns should not solely focus on hygiene but also on various noncommunicable diseases prevalent to reduce the stigma attached to various diseases.
- Watsapp, Facebook, etc. shall be utilized more to spread information as most people are connected through these mediums today. **Dementiakaraoke.com** is a new feature started to make the lives of dementia patients easy and to make them remember important details. These are the things we need at the moment.
- Healthcare should be strengthened and women should be given health allowances irrespective of their income groups.
- Euthenics should be the base of all programs.
- Better research is the need of the hour where the best is given to the patient may it be the medicines or the infrastructure.

- Disease management programs shall be activated to help the patients in their illness. This is getting common in other countries nowadays but in India, we still are lacking. Counseling of the patient is very much needed for them to recover.
- Women who are ill-treated because of illness shall be supported by the govt. as well as the NGOs.
- Women's role shall be increased by the formation of official groups which have members with common issues to reduce social isolation.
- Workplace laws and rights should be kept under check to stop exploitation at any place.

References

- Berger,P. and Luckmann,T. (1967). "The Social Construction of Reality" Anchor Publishers, London.
- Millen and Walker (2000) "Overcoming the stigma of chronic illness: Strategies for normalization of a 'spoiled identity." Health Sociology Review. Researchgate.net.
- About Chronic Diseases. Retrieved on Oct 21,2021 from https://www.cdc.gov/chronicdisease/about/index.htm
- Preventing Chronic Diseases A Vital Investment. Retrieved on Oct 30,2021 from https://www.who.int/chp/chronic_disease_report/full_report.pdf?ua=1
- Social Determinants of Health. Retrieved on Oct 30,2021 from https://www.coursera.org/
- Medical Definitionof chronic disease. Retrieved on act 10,2021 from https://www.medicinenet.com/chronic_disease/definition.htm

PARIDHI BANSAL is a recipient of Indian Council of Social Science Research Doctoral Fellowship.

Her article is largely an outcome of her doctoral work sponsored by ICSSR. However, the responsibility for the facts stated, opinions expressed and the conclusions drawn is entirely that of the author.

Paridhi Bansal

Research Scholar, Dept. of Sociology,

Barkatullah University, Bhopal,India.

paridhibansal1111@gmail.com

❑ ❑ ❑

Knowledge Regarding Pros and Cons of Organic Food Among Women Consumers of Patna Sadar

Shubham Sinha • Anju Srivastava

In the present scenario of growing environmental and agricultural pollution probably one of the wisest steps in the food sector is to switch over to organic foods. Organic foods typically are not processed using irradiation, industrial solvents, or synthetic food additives.Every organic food consumer should be aware with the various trends of organic food products and should be able to choose the right food, as per the saying "You are What You Eat". Organic foods are seeming to be more healthy option and also eco-friendly. The way our food is grown or raised, will affect our mental and emotional health, as well as the environment. Consumers prefer organically produced food because of various reasons such as health, environment, and animal welfare. There is need for increased efforts in creating awareness of the advantages and disadvantages of organic foods.For the purpose of this study, 100 women consumershave been selected and data has been collected through interview schedule method. The study aims at assessing the knowledge regarding advantages and disadvantages of organic food among women consumers of Patna Sadar.

Key Words : organic food, women consumers, advantages and disadvantages

Introduction

An organic food is that which is raised, grown, stored and processed without the use of synthetically produced chemicals or fertilizers, herbicides, insecticides or any other pesticides. By organic farming, organic food is produced. Organic farming means all kinds

of agricultural products are produced organically. For the convenience of planning balanced diet in order to meet daily Recommended Dietary Allowances (RDA) of each individual, foods have been classified into different food groups, suggested by ICMR known as ‘Basic Four’: (1) Cereals, Millets and Pulses, (2) Milk and Animal products, (3) Vegetables and Fruits and (4) Oils, Fats and Nuts. Organic food is available among ‘Basic Four’ food groups in the Food pyramid which is meant for use by the general healthy population as a guide for the amount and types of foods to be included in the daily diet.Organic foods are full of more nutrients. Vegetables that are grown quickly, because of their being packed with fertilizers, don’t have a lot of time to develop key nutrients. A farming soil free of chemicals and commercial fertilizers provide a more favourable environment for quality crops and vegetables.Organic food has a better taste than traditionally farmed foods.

Certification of Organic Products:

Certified organic products are those which have been produced, stored, processed, handled and marketed in accordance with precise standards and certified as “Organic” by a certification body. Once conformity with organic standards has been verified by a certification body, the product is afforded a Label. This label will differ depending on the certification body but can be taken as an assurance that the essential elements constituting an “organic” product have been met from the farm to the market.

To qualify as certified organic, following criteria should be met:

- Ensure a cultivation record which proves total non-contamination from any non-organic material.
- Be free of chemical fertilizers for three years.
- Be free of herbicides/ pesticides for three years.
- Seed must not be from genetically modified sources.
- Include a buffer zone between organic plants and non-organic plants.

There has been a lot of research related to organic food, some of which are as follows:

Aydogdu, M. H. & Kaya, F. (2020) suggested that organic food and organic product market needs sufficient knowledge in

respect of availability, variety, labelling and high price problems etc.Organic products campaigns and awareness program on a regular basis will help its consumer to understand significance of organic food products.

Bhattarai, K. (2019) reported that consumers are ready to pay more for organic vegetables as they are more concerned regarding their health issues and want to avoid different vegetable borne diseases. There is a necessity for sufficient supply of organic vegetables.

Darga, A. &Pendli, A. (2019) reported that there is a tremendous change in the last few years in the awareness of the consumers regarding organic food. The various products are available in the organic food market which helps consumer to know different types of organicproducts.

Gopalakrishnan, R. (2019) reported that organic food products have various advantages. Organic foods have more beneficial nutrients such as antioxidants which is good for human health. Organic food is often fresher and taste better than non-organic food. Shelf life of organic food is quite limited.

Karimikonda, H. (2020) stated that consumer need more information regarding organic food market. Organic food products are not easily available and are high priced. Consumer are ready to pay as they are more conscious regarding their health and environment but middle and low-income family find it difficult to afford organic food products.

Prasad, K. (2021) reported that organic foods have additional useful nutrients such as antioxidants than conventionally grown products as well as a variety of benefits and nutritional value for human, soil and environmental health.

Vijith, H. (2020) stated that in the present scenario people are moving towards organic food because of change in their lifestyle. Organic foods are seeming to be more healthy option andalso eco-friendly. There is need to understand the customer attitude and purchasing behaviour towards organic food.

Research Objective

- To assessthe knowledge regarding advantages of organic food among women consumers of Patna Sadar.

- To assessthe knowledge regarding disadvantages of organic food among women consumers of Patna Sadar.

Research Method

For the purpose of this study, 100 women consumers of organic food were selected. Data for the study in the present research were collected by interview schedule method.

Results and Discussion

The present research was conducted in order to understand various advantages and disadvantages of organic food. The information obtained from this study and their analysis is as follows:

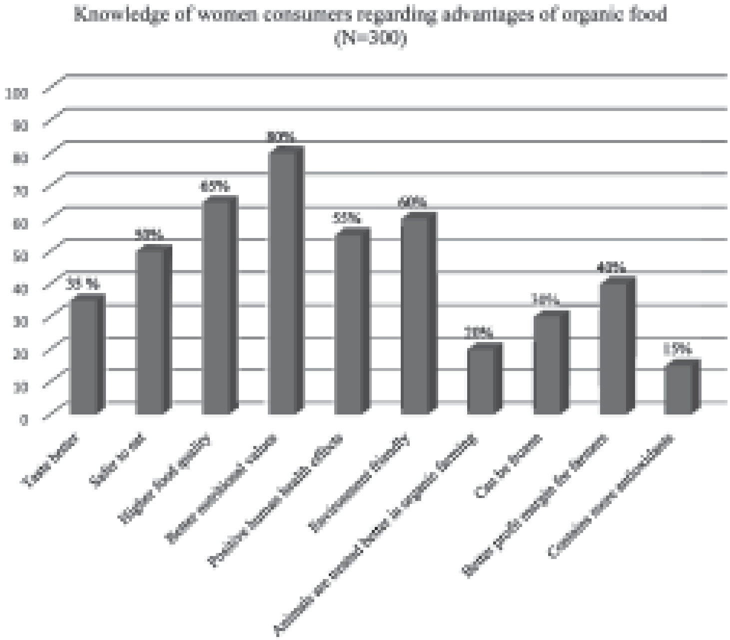

Figure 1: Knowledge of women consumers regarding advantages of organic food

Figure 1 reveals the knowledge of women consumers regarding advantages of organic food. The various advantages of organic food were least known by women consumers of Patna Sadar. Organic food products have various advantages and have

more beneficial nutrients such as antioxidants which is good for human health. **Gopalakrishnan, R. (2019)** stated in his article that organic food is often fresher. Fresh food taste better. Organic food is usually fresher because it doesn't contain preservatives that make it last longer.Organically raised animals are not given antibiotics, growth hormones, or fed animal by-products**.**

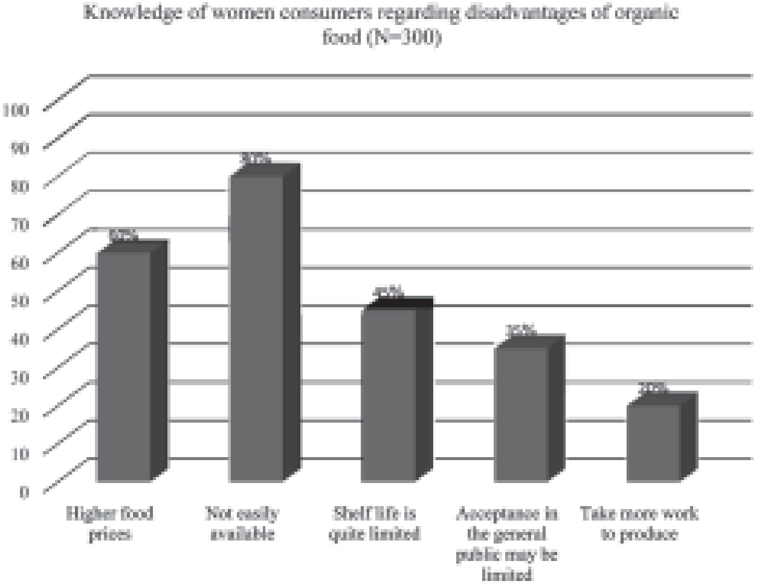

Figure 2: Knowledge of women consumers regarding disadvantages of organic food

Figure 2depicts the knowledge of women consumers regarding disadvantages of organic food. The higher cost of organic food directly affects its consumption and also it is not easily available at nearby stores. **Karimikonda, H. (2020)** stated in his article that a lot of problems are faced by respondents while purchasing the organic products in the market as awareness of organic food item is very low as compared to conventional food items. Government needs to advertise at a large scale for increasing the consumption of organic food among consumers.

Conclusion

- There were various advantages of organic food among which better nutritional values was known by 80% of women consumers

followed by higher food quality and environment friendly, and positive human health effect of organic food.

- There were various disadvantages of organic food among which 80% of women consumers found difficulty as organic food is not easily available followed by higher food prices and limited shelf life of organic food.

To sum up, 45% of women consumers were known regarding different advantages of organic food while 48% of women consumers were aware regarding various disadvantages of organic food. So, this data reveals that women consumers have minimal knowledge regarding organic food which directly affects its consumption.

References

Aydogdu, M., H. & Kaya, F. (2020). Factors affecting consumers' consumption of organic foods: A case study in GAP-Sanhurfa in Turkey.*Journal of Agricultural Science and Technology*, *22*(2), 347-359.

Bhattarai, K. (2019). Consumers' Willingness to Pay for Organic Vegetables: Empirical Evidence from Nepal. *Economics and Sociology, 12*(3), 132-146. doi:10.14254/2071-789X.2019/12-3/9

Darga, A. &Pendli, A. (2019). A Market Study of Organic Food and Products Available in Hyderabad City, India.*International Journal of Current Microbiology and Applied Sciences*, *8*(6), 274-279.https://doi.org/10.20546/ijcmas.2019.806.031

Gopalakrishnan, R. (2019). Advantages and Nutritional Value of Organic Food on Human Health. *International Journal of Trend in Scientific Research and Development*, *3*(4), 242-245.URL: https:/ /www.ijtsrd.c om/papers/ijtsrd23 661.pdf.

Karimikonda, H. (2020). A Study on Consumer Awareness of Organic Food Products and Practices with Reference to Select Organic Stores in Hyderabad City.*SSRG International Journal of Economics and Management Studies*, *7*(4), 1-5. doi.org/10.14445/ 23939125/IJEMS-V7I4P101

Prasad, K. (2021). Advantages and Nutritional Importance of Organic Agriculture Produces Food on Human, Soil and Environmental Health in Modern Lifestyle for Sustainable Development.*Aditum Journal of Clinical and Biomedical Research*, *1*(2), 309-313. DOI:http;//doi.org/04.2021/1.1006.

Srilakshmi, B. (2020). *Food Science* (7th ed.). New Age International Publishers.

Vijith, H. (2020). Customer's Attitude, Preference and Buying Behavior towards Organic Food using Fishbein Multi-Attribute Model. *International Journal of Recent Technology and Engineering, 9* (1), 1598-1602.DOI:10.35940/ijrte.A2430.059120

Shubham Sinha
Research Scholar
Home Science
Patna University, Patna

Prof. (Dr) Anju Srivastava
PG Department of Home Science
Patna University, Patna

❑ ❑ ❑

फार्म 4 (नियम 8)

1.	प्रकाशक स्थान	: श्रीडूँगरगढ़ (बीकानेर) राजस्थान
2.	प्रकाशन अवधि	: अर्द्धवार्षिक
3.	मुद्रक का नाम	: महर्षि प्रिण्टर्स, श्रीडूँगरगढ़ (बीकानेर)
	क्या भारतीय नागरिक है	: हाँ
4.	प्रकाशक का नाम	: महावीर प्रसाद माली
	क्या भारत का नागरिक है	: हाँ
	पता	: मरूभूमि शोध संस्थान श्रीडूँगरगढ़ (बीकानेर) राज.
5.	सम्पादक का नाम	: प्रो. बी. एल. भादानी
	क्या भारत का नागरिक है	: हाँ
	राष्ट्रीयता	: भारतीय
	पता	: रागंड़ी चौक, बीकानेर (राज.)
6.	उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों	: कोई नहीं

मैं महावीर प्रसाद माली एतद्द्वारा घोषणा करता हूं कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिया गया विवरण सत्य हैं।

महावीर प्रसाद माली
प्रकाशक के हस्ताक्षर

Recent Trend of Cross-Region Marriages: A Special Reference to Haryana and Uttar Pradesh

• **Ashish Kumar**

The unfavourable gender ratio is a subject of concern in today's developing Asian countries. In India, the states of Haryana and Uttar Pradesh face similar challenges as a result of their social backwardness, honour killing, patriarchy, and female-feticides. As previously indicated, these behaviours are to blame for the lack of marriageable girls and the marriage crisis. As a result of these worries, the states have seen a considerable influx of cross-regional women, as well as a number of surplus bachelors relocating for cross-regional weddings.This article examines the reality of cross-region brides, as well as how these weddings harm the social fabric of the aforementioned states.

Keywords: Patriarchy, skewed sex ratio, bride-shortage, marriage-squeeze, marriage migration.

Introduction

In most countries, marriage is the fundamental social unit. The institution of marriage may be traced from prehistoric times to the beginning of organised communal life, and it's worth can be judged by its presence in every known culture, formed gradually in different civilizations and epochs. Marriage is seen as a sacred relationship in India, and it is an important institution for the continuation of a family lineage (Husain, 1976). It is thought that everyone must return their ancestor's tremendous debt by marrying and having a son (Chowdhary, 2007). Haryana and Uttar Pradesh are particularly hard hit by the problem, which is caused by a major drop in the number of females and a scarcity of brides in several

north Indian states. Both states have well-connected borders, with highways and trains connecting them.Furthermore, marriage relationships between farming castes such as the Jat, Ahir, Gujar, and Brahmans of Haryana and Uttar Pradesh are common.

The two major cultural influences in India that shape societal attitudes toward women are Aaryan and Dravidian. The majority of Dravidian families embrace conscientious marriage. In the Dravidian culture, daughters are treated similarly to sons in terms of food and medical care, and adult women have a higher standing within the household; also, women's literacy rates are far higher in the south than in the north. At the same time, marriage connections among Aryans in the north are based on hypergamy or exogamy, which allows for the promotion of dowry.

The prevalence of patriarchy, honour killing, female-feticides, misogyny, and a crime against women in the states of Haryana and Uttar Pradesh reveals their social backwardness.A substantial portion of the population of Haryana and Uttar Pradesh lives in villages, where the family head arranges matrimonial alliances by following established marriage norms and making inquiries about a family's family name or caste. Marriage is also not permitted between the father, mother, and paternal grandmother's three gotras (Yudhvir, 2014). However, a new trend of children picking their own life partners is gaining traction (Allendorf& Pandian, 2016).

Inter-caste marriages are not permitted under the authority of caste hierarchies, which is considered a violation of marriage laws and is punishable (Yudhvir, 2014). Local inter-caste weddings are purposefully overlooked while inter-caste marriages from other states are commonly accepted by violating these regulations among several upper castes of Haryana and Uttar Pradesh to prolong their lineage (Kukreja, 2017). However, India's unbalanced sex ratio, as well as areas like Haryana and Uttar Pradesh, represent a direct danger to marriage as a social institution.

As the child sex ratio deteriorates and girls become scarcer, the number of men increases (Doshi, 2008; Rodrigues et al., 1995). In women, the risk of forced sex increased, as did men's experiences of paid sex and sexually transmitted diseases (S.T.D.) (Pallikadavath et al., 2005). In this context, demographic opportunity theory (Guttentag, 1983) proposes that when men are

plentiful, young women have a better chance of meeting their ideal life partner, whereas men are unable to marry. The trend of cross-region marriage is quickly spreading in northern Indian states like Haryana and Uttar Pradesh as a solution to this problem.

Theoretical Consideration

In this paper, I used sociological concepts such as multiple patriarchy theory (John, 2005), caste endogamy, mobility variables, reference group, and demographic theory. Gender segregation, patriarchy, caste endogamy, and gotra exogamy all influence the sex ratio, resulting in a shortage of girls, bride shortages, marriage squeeze, and surplus bachelors (Mishra, 2013). According to Herbert Hayman's reference group theory, every member compares his or her group to other groups and strives to enhance his or her social status in order to gain more social recognition. A person's relationship with a group is never in sync (Hyman, 1942).That is why the trend of marrying or giving daughters away from their family, as well as the reasons for their alienation from their family, encourage cross-region marriages. In the establishment of long-distance marriage arrangements, both the pull and push elements of migration theory work. The parents desire to marry their daughter to a richer family in order for their daughter to have a brighter future, as they cannot afford the dowry cost in the local marriage market (Kaur, 2014). When a member of the group is not expected to behave in a certain way, it causes role conflict and social isolation for that individual.Furthermore, due to societal pressure to confirm to gotra closes of marriage, the family that circumscribes to these closes of an is excluded and fields are secluded, resulting in her marriage outside the borders of gotras (Kukreja, 2017)

Social Setting of Haryana and Uttar Pradesh

The subject of the diminishing sex ratio in the north Indian regions was studied by a number of demographers and sociologists. The issue of 'missing women,' according to demographers, is attributable to a decline of fertility, and sociologists examine how daughters are viewed as dispensable due to a son's desire. Sex-selective abortion, a recent technological advancement, also supports the concept of 'son preference.' Gender inequality results in lopsided sex ratios and unjust treatment

of women (Chowdhry, 2004). Furthermore, due to their feudal and patriarchal nature of society, the dominant caste groups in the agricultural belts of Haryana and Uttar Pradesh have a history of skewed sex ratios.

The scarcity of girls has resulted in a marital crisis. In this light, the study of (Bhat, 1999) also shows that there is a lack of females in Haryana and Uttar Pradesh states. As early as 1911, 7% of men between the ages of 45 and 54 remained unmarried throughout their lives, but the ratio in South Indian states is just 3%. According to the 2001 Census data, 10-15% of men aged 25 to 49 remained unmarried, and local media stated that on average, 50 men from each village remained bachelors across Haryana's 7,000 villages (Shetty, 2015).

In north India, son preferences coexist with a large share of single males (B. Gupta, 2014). Haryana and Uttar Pradesh were ranked among the top four bride-buying states by the United Nations due to their poor treatment of women (Shetty, 2015). In Haryana and Uttar Pradesh, the parents of bachelors remained tense because no one was willing to marry their daughters for their unmarried son's wedding. As a result, men in these states opt for cross-region marriages as a backup plan. As a result, in the past decade, these states have become a hotspot for brides from other Indian states.

Haryana and Uttar Pradesh's sex composition

The number of females per thousand males is known as the sex ratio. In some nations, the number of females per thousand males is used as a metric. The sex ratio is the most important demographic characteristic of a population since it impacts the material position, workforce, migratory trend, population growth, and socioeconomic link. It is a crucial demographic statistic for determining the degree of equality between men and women in a society at any particular period. In addition, the sex ratio is likely to be a social event. In practice, however, the country's sex ratio has always been unfavourable to women (Madan & Breuning, 2014).

Graph 1. Key statistics of skewed sex ratio of Haryana, Uttar Pradesh, and India as per 1901 & 2011 Indian Census.

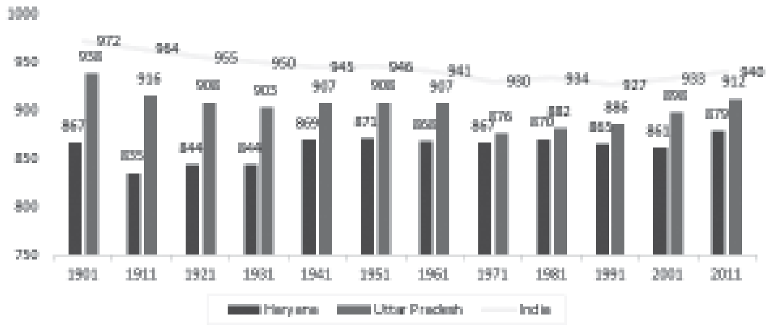

Source: Office of the Registrar General and Census Commissioner, India.

In comparison to Russia, Japan, the United States of America, Brazil, Indonesia, and Nigeria, India's sex ratio is substantially lower (Gender Composition of India, 2011). In addition, India has a lower sex ratio than its neighbours Myanmar, Sri Lanka, Nepal, Bangladesh, and Pakistan (Ibid).

Child Sex Ratio

It is defined as the number of women per thousand males in the human population aged 0 to 6 years; it is also an important demographic indicator that indicates the level of inequalities between the sexes during the early stages of life, which has a negative impact on the number of girls available at marriage age (S. Agnihotri, 1996).

Graph 2. Key statistics of child sex ratio (0-6 years) of Haryana, Uttar Pradesh, and India.

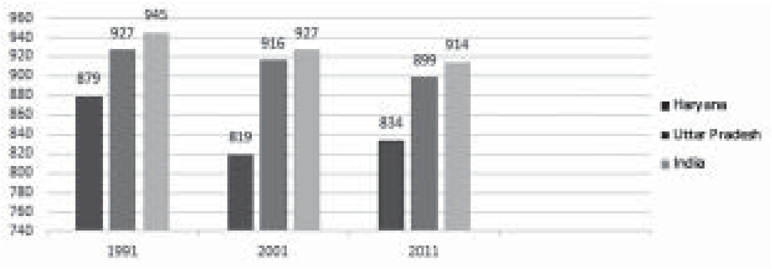

Sources: Indian Census (1991, 2001, 2011).

Haryana, at 834 digits in the 2011 census, has the lowest child sex ratio. In 2011, it had a 65-digit lower child sex ratio than Uttar Pradesh. Furthermore, Haryana's child sex ratio showed a significant fall of 60 digits in 2001 compared to a previous decade and just a minor increase of 15 digits in 2011. Even in Uttar Pradesh, the child sex ratio dropped 11 digits from the previous decade in 2001, and then dropped 15 digits again in 2011. Uttar Pradesh's position is alarming, as the state's child-to-adult ratio is extremely unstable. The child sex ratio in Haryana, on the other hand, has increased slightly, whilst the child sex ratio across India has decreased dramatically between 1961 (976), 1991 (945), and 2011. (914). After all, the high maternal mortality rate and widespread female feticide contribute to the lowering child sex ratio.

Table 1.1 District-wise child sex ratio (0-6 years) Haryana & Uttar Pradesh statistics.

State	District	C.S.R. 2001	C.S.R. 2001	State	District	C.S.R. 2001	C.S.R. 2001
Haryana	Jhajjar	801	774	Uttar Pradesh	Bagpat	850	837
Haryana	Mahender-garh	818	778	Uttar Pradesh	Jhansi	886	859
Haryana	Rewari	811	784	Uttar Pradesh	Hardoi	914	863
Haryana	Sonipat	788	790	Uttar Pradesh	Morad-abad	912	909

Source: Haryana and Uttar Pradesh District Census Handbook (2001-2011) Indian Census.

The lowest child sex ratio districts in Haryana and Uttar Pradesh are shown in Table 1.1, with a rapid decrease in child sex ratio from 2001 to 2011. Sonipat had the lowest child sex ratio (788) among Haryana's four districts in 2001, and district Jhajjar had the lowest childsex ratio (774) in 2011. Baghpat has the lowest child sex ratio among Uttar Pradesh districts, with 850 digits in 2001 and 837 digits in 2011, the lowest ratio of that year. Furthermore, the child sex ratio in district Jhansi was 886 in 2001 and 859 in 2011, indicating that the poor childsex ratio is wreaking havoc on both state's districts.

Crimes Against Women

Based on this table, these are the major crimes committed against women in India. The researcher will further analyse the significant crime committed against women in Haryana and Uttar Pradesh.

Table 1.2 Key statistics on the nature of the crime against women in India

Sr. No.	Nature of Crimes	2014-2015	2017-2018	2018-2019
1.	Police Apathy against Women	6775	1896	2734
2.	Right to live with Dignity	6421	5770	6792
3.	Outraging the modesty of Women	2659	967	939
4.	Dowry Harassment/ Cruelty to Married Women	1338	2371	2584
5.	Property Disputes	1327	NA	NA
6.	Rape	1041	NA	NA
7.	Dowry Harassment/Dowry Death	975	NA	NA
8.	Violence Against Women	911	1787	1636
9.	Complaint by In-Laws	863	NA	NA
10.	Attempt to Rape	709	NA	NA
11.	Right to Exercise Choice in Marriage	NA	403	369
12.	Cyber-crimes against Women	NA	339	402
13.	Bigamy/Polygamy	NA	167	160
14.	Stalking/Voyeurism	NA	149	142
15.	Sexual Harassment including Sexual Harassment at Workplace	NA	666	750
	Total	30106	13942	19279

Source: NCW (2014-15, 2017-18, 2018-19) reports.

Table 1.2 displays the types of crimes committed against women in India, with the right to live in dignity and police indifference charges against women ranking first in 2014-15, 2017-

18, and 2018-19. Outraging women's modesty, dowry harassment/ cruelty to married women, assets disputes and dowry demise, violence against women, acquiescence by in-laws, sexual harassment, including sexual harassment at work, and attempt to rape complaints registered in the national commission for women's (N.C.W.) report for 2014-15, 2017-18, and 2018-19 are also serious issues.Furthermore, the right to choose a life partner for marriage, cyber-crimes against women, bigamy/polygamy, and stalking/ voyeurism complaints reported in the national commission for women (N.C.W.) reports for 2014-15, 2017-18, and 2018-19 are near the bottom of the list of complaints. As a result, this table concludes that various sorts of crimes against women are reported in which the formal body's involvement is critical, but their failure is demonstrated in the table above. Women's oppression and inequality do not appear to be limited to economic prosperity or education.

Table 1.3 Key statistics of registered cases of crime against the woman of Uttar Pradesh and

Sr. No.	State	Complaint (2014-15)	State	Complaint (2017-18)	State	Complaint (2018-19)
1.	Uttar Pradesh	19385	Uttar Pradesh	8454	Uttar Pradesh	11287
2.	Delhi	3619	Delhi	1664	Delhi	1733
3.	Haryana	1720	Haryana	901	Haryana	1181
4.	Rajasthan	1473	Rajasthan	661	Bihar	754
5.	Madhya Pradesh	1086	Bihar	559	Rajasthan	733
6.	Bihar	775	Madhya Pradesh	442	Maha-rashtra	591
7.	Maharash-tra	758	Maha-rashtra	433	Madhya Pradesh	533
8.	Uttara-khand	530	Karna-taka	307	West Bengal	323
9.	Punjab	403	West Bengal	268	Karna-taka	271
10.	Jharkhand	357	Uttara-khand	253	Uttara-khand	267
	Total	30106	Total	13942	Total	19279

Source: National Commission for Women (2014-15, 2017-18, 2018-19) reports.

In the years 2014-15, 13,942 (2017-18), and 19,279 (2018-19), the National Commission for Women received 30,106 (2014-15), 13,942 (2017-18), and 19,279 (2018-19) complaints of crimes against women via its online platform. It's appalling that in National Commission for Women reports from 2014-15 to 2018-19, Uttar Pradesh remained on top in terms of complaints received, while Haryana remained in third place. Only Uttar Pradesh was responsible for 19,385 complaints out of 30,106 in 2014-15, 8454 complaints out of 13942 in 2017-18, and 11289 complaints out of 19279 in 2018-19.

In addition, Haryana received 1720 complaints out of 30,106 in 2014-15, 901 out of 13,942 in 2017-18, and 1181 out of 19,279 complaints in 2018-19. In all of these reports, both of these nations were ranked first for crimes against women. The overall number of grievances received from both states exceeds the national total. As a result of the preceding debate, it can be concluded that women's situations are the worst in these states, and women's safety is a major worry.

Different Types of Discrimination of women in Haryana and Uttar Pradesh

Also, we've seen that the developing gender discrimination sub-themes in these two states will look at five of the six primary kinds of gender discrimination. The social structure of most Indian states, including Haryana and Uttar Pradesh, is patriarchal. In Haryana and Uttar Pradesh, men are thought to be superior to women and have authority over them. Because of widely available prenatal diagnostic procedures and the expansion of ultrasound enterprises in these areas, children are socialised in patriarchal beliefs and gender segregation even before birth. The segregation and division of children's upbringing based on gender begins at a young age and has a profound impact on their personality and attitudes.Femininity is imposed on females, and society moulds their fate by asking them to help with meal preparation, laundry, and lodging (Beauvoir, 2015).

By placing women on a lesser rung of humanity, patriarchy maintains and demonstrates itself. This kind of inequality is the result of patriarchy, which continuously places women second. According to Frederick Engels, the rise of private property led to

patriarchy. He couldn't see why private property should have resulted in masculine domination. Patriarchy, according to Lerner (1986), could have developed in a multitude of places. The patriarchy is the world's dominating axis around which women's lives are subjugated and controlled, showing itself in a wide range of industries, regions, and professions (Rifkin, 1980).

In Haryana and Uttar Pradesh's low- and high-income families, sons are preferred in a male-centric society, whereas daughters are considered as a liability and do not receive equal attention (Census of India 2011). Parents see their daughters as a societal burden rather than a financial cost, and they are anxious that their unmarried children would bring shame to the family by engaging in inappropriate behaviour. As a result, the parents arrange their weddings in advance (Sharma, 2016).

Despite the fact that once they married, they were excluded from the family's economic, social, and political activities. As a result of patriarchal pressure, they also face domestic violence. As a result, there are few opportunities for women from distant places to get equal treatment in their families without infringing their human rights, especially when local brides do not receive the same treatment.In contrast, various studies done in Haryana and Uttar Pradesh aimed to focus on current trends of cross-region weddings, which emphasised popular reactions and views toward brides marrying outside of their local ties.

Gender Discrimination and Cross-Region Marriages

Cross-Regional discrimination and gender discrimination according to statistical statistics, a skewed sex ratio exists in both Haryana and Uttar Pradesh, which is a major factor in cross-region marriage. The scarcity of brides causes a marriage squeeze, reinforcing Karewa, a forced levirate marriage practiced in Haryana and Uttar Pradesh's agrarian castes. In many instances, widow remarriage is socially acceptable, and these unions result in severe violence against women. The goal is to maintain the land in the family (Chowdhry, 1994). Fraternal polyandry (sharing wife with a brother) has, on the other hand, been practiced in the agrarian castes of Punjab, Haryana, and Uttar Pradesh in the past and present to avoid further agricultural land partition. Economic considerations and family size balance were also factors in such marriages (M. Das Gupta, 1995) and (Jeffery & Jeffery, 1997).

Furthermore, Hindus and Muslims desire to marry their daughters at a young age because postponing marriage is seen as a betrayal to their brotherhood. Several studies show that because to the preponderance of girls in the family, girls involved in cross-region weddings marry at a young age and out-marry girls in the brides' demanding regions. When they are seen as a financial burden on the family, 'out-marrying' is seen as a way to balance family finances (Kaur, 2004).After their daughters marry, very few parents keep in touch with them. These girls are not commonly treated in marital destinations (Yudhvir, 2014), are seen as a threat to the family, and are kept under constant surveillance (Dyson & Moore, 1983).

Cross-Region Marriage: The Pull and Push Factor

Marriage is an important demographical factor for internal mobility because women have to follow their companion. The tradition of gotra exogamy for marriage forces a large number of females to relocate from one village to another while remaining within their socialgroup (Kainth, G.S., 2009). However, the marital mobility of cross-region brides from various parts of India towards northern states of India, where the sex ratio is mainly responsible for bride scarcity and attracts economically destitute parents for the marriage of their daughters, acts as a pull component in migration theory.On the other hand, when parents are unable to meet their daughters', dowry demands in the local marriage market or are living in extreme poverty, their daughters' 'out-marrying' acts as a driving force in marital mobility (Kaur 2004).

The recent cross-region marriage cases in Haryana and Uttar Pradesh varied in terms of region, language, caste, religion, and financial condition of the bridegroom's family. Haryana is one of India's most opulent states, with high-cost land, 100 percent village power, village connectivity by metal highways, and concrete buildings with complete kitchens. The economic development of Uttar Pradesh, on the other hand, can be understood by dividing it into two primary zones: west and east. The state of Uttar Pradesh in the west is far more developed than the state in the east.

Parents would rather entrust their daughter to a prosperous state than to a less prosperous state. As a result, scholars such as (Ahlawat, 2016), (Kaur, 2016), (Kukreja, 2018), (Mishra, 2011),

and (Singh &Dangi, 2011) highlight bride imports in Haryana from a variety of states, including Uttar Pradesh, Bihar, West Bengal, Assam, Tripura, Odisha, Jharkhand, Andhra Pradesh, Tamil Nadu, and Kerala, among others. The desire to climb the social ladder compels families to provide their daughters for marriage. Those households with a surplus of girls, in particular, are sometimes stymied by cultural constraints, and dowry demands in the local marriage market become a driving force for their daughter's marriage to a distant location.

Brides import in Uttar Pradesh (North, West, and Central UP) is confined to a few regions such as Bihar, West Bengal, Jharkhand, Assam, and Bangladesh, according to numerous research (Blanchet, 2005), (Kaur, 2012), and Chaudhry & Mohan, 2011). Brides from wealthy states are uncommon in its communities. Two Bengali brides who had married in Uttar Pradesh and returned to Bengal in an instant spoke about their experiences and indicated that they would rather beg in Bengal than return to Uttar Pradesh (Blanchet, 2005).When the opportunity arises, these families leave no stone unturned in their efforts to place their daughters in a prosperous family. However, the dubious role of the mediator enters the picture, luring the parents with false hopes and dreams of their daughters leading a prosperous life. Promises are made with the parents of such brides by presenting the groom family in a better light, and the lives of numerous innocent girls become increasingly bitter.

Major Problem of Cross-Region Marriages

Various studies on cross-region marriages have been undertaken in Haryana and Uttar Pradesh, with results indicating tremendous development in cross-region marriages and brides imported from far-flung places. These brides are subjected to a great deal of violence and have no support from their biological families. Their lives are completely dependent on the kindness of their in-laws, and they receive no help from any formal or informal agency. Wife sharing is frequent in these marriages, and mothers-in-law encourage these women to sleep with their bachelor sons (Ahlawat, 2016).When a family cannot afford a separate wife for each son who is socially over-aged, a 'purchased woman' is forced to satisfy her husband's brother's sexual desires without her

consent (Ahlawat, 2016). Some of the male participants express their opinions by saying*"InkeKePaatGhiseSain,"* which means they share their wives with their bachelor brothers to avoid additional land distribution. These unhappy brides are treated inhumanely since they do not understand the local language, culture, or customs of the marriage destination. In the first year of their marriage, they are utilised as fodder for the guys' erotic demands (Yudhvir, 2014).

Migrant brides in Haryana and Uttar Pradesh must adapt to the host culture due to the lack of syncretic culture. With an ethnocentric approach, their cultural customs and beliefs are dismissed. Their husbands and other family members force them to learn the native language of the marital place without their consent. They must undergo the rigorous process of resocialization in order to adapt to the host culture. Here, the odds of preparing native foods, celebrating local festivals, and wearing traditional attire are little to none. They must deal with psychological stress and acclimatise to a new environment.

(a) Caste Ostracism in Cross-Region Marriage

Girls from various states engage the cross-region marriage market for a variety ofreasons, including extreme poverty, unnatural death of parents, overage, inability to afford a dowry, and familial preponderance of girls (Constable, 2003). When a girl from a low-income family and lower caste marries into a higher caste family from a well-to-do state like Haryana or Western Uttar Pradesh, her social status increases over time. When females get older and lose their feminine appearance, they are no longer in demand in the marriage market and are forced to pay large dowry rates (Blanchet, 2005; Kodoth, 2008).The term "feminine looks"utilised in the study shows a patriarchal view of young women that is socially created based on physical aspects of the human body (Beauvoir, 2015).

Brides were brought from the eastern parts of India without a dowry in cross-region weddings in Uttar Pradesh's Badaun district. These cross-region weddings were also referred to as "inter-religious" and "inter-caste" unions (Chaudhry & Mohan, 2011). In another study, researchers collected responses from 75 Rohtak cross-region brides and identified marriage squeeze as a female

shortfall in Haryana, which contributes to caste endogamy practices in Haryana. She discovered caste injustice when brides marrying into upper-caste families experience caste ostracism in their married lives. Their caste is strategically concealed, and localinter-caste marriages are tactically forbidden (Kukreja, 2018).

In another study, the majority of 54 cross-region brides from 226 villages in Orissa came from lower castes. The brides came from various castes, regions, nationalities, and religions. They were discovered to be subjected to caste-based discrimination and oppression as a result of their dark, complicated complexion (Kurkreja, 2013). People make comments about skin colour to mark the distinction attribute lower caste rank dark coloured cross-region brides, according to a study conducted in Barampur village of Baghpat district in western Uttar Pradesh (Chaudhry, 2019). Light skin, on the other hand, serves as social capital for women, which can be used to guarantee favourable life results (Kukreja, 2021).

(b) Long Distance Conjugal Relations

In a long-distance marriage, the groom bears the cost of the wedding rituals, which can range from 15,000 to 50,000. The groom's family also covers the costs of travel, bridesmaids' gowns, and mediator fees, which are kept a secret by both parties to prevent legal complications. Local weddings are usually held within a 15-120 km radius. However, shifting attitudes about bride selection, education, occupation, and the dropping sex ratio have all contributed to the expansion of geographical limits for marriage. After crossing interstate and national borders, the distance in long-distance marriages remained under 800-1300 kilometers (Blanchet, 2005).

Many brides from West Bengal and Bangladesh are brought to Haryana and Uttar Pradesh, where they are known as Bengali brides. Bangladeshi brides are referred to as transnational brides. Their ethnicities, religions, eating habits, and accents are all very similar. These ladies must fight for survival under foreign cultural settings at their marriage destination, and their migration is considered permanent because it crosses regional, linguistic, and religious boundaries (Chaudhry & Mohan, 2011; Kaur, 2004). Due

to their foreign citizenship, Bangladeshi brides' experiences differ from those of other long-distance brides, and in such circumstances, husband and wife are unable to meet before the wedding (Kaur, 2012).There are cultural contrasts in Haryana and Uttar Pradesh, with women choosing cultural commonalities over cross-region marriages.

(c) Impact on the social fabric of Haryana and Uttar Pradesh

Both Haryana and Uttar Pradesh's social fabric were heavily influenced by cross-region marriages by putting an end to the long-standing tradition of 'caste endogamy.' Now, these matrimonial partnerships are now becoming a "hope" for local inter-caste weddings, and they pose "a concern" about the purity of upper castes, when caste endogamy regulations are broken by themselves in order to maintain their family chain. The results of these marriages change the next generation by losing their purity, which had been preserved for a long time but is now mixed with the lower castes and has become impure. Many villagers stated that after a certain period of time, we will no longer require Bihari labour for farming because many Bihari will be born as a result of these efforts.

When one family brings purchased women from other states, the relationship among the ruling caste changes on a grass-roots level. Many families lose contact with their brotherhood as a result of a boycott of marriage invitations, and no one shares hookah with men and their families who bring wives from neighbouring states. It doesn't end there; the grooms' parents are filled with guilt about the purchase of women from lower social classes, and they are embarrassed in front of their brethren. Many respondents revealed all of these stories with the researcher during his doctoral research fieldwork in Haryana's Jhajjar district.

Conclusion

The tradition of certain caste groups, such as the Rajput's, Ahir's, Brahmins, Jat's, and Gujar's, of marrying within their own caste group in order to maintain their social rank. A strong culture of violence also results in a lopsided sex ratio, which leads to cross-region marriages in western Uttar Pradesh and Haryana.

When the murder rate was plotted against the sex ratio in a district of Uttar Pradesh, it was discovered that the district with the highest sex ratio had the lowest murder rate, while the district with the lowest sex ratio had the highest murder rate.

Cross-region weddings have been adopted in Haryana and Uttar Pradesh, and these marriages are reducing caste barriers by establishing conjugal links between upper and lower castes. The emergence of these weddings has resulted in a large number of cross-region brides in Haryana and Uttar Pradesh communities. Due to their use in the fields, their demand in agricultural households is great, and their job is not confined to domestic activities. In the receiving country, they will be subjected to caste discrimination and colorism. They were humiliated in Haryana by being labelled as 'Biharan' or Chinese, a term associated with unreliable goods and so untrustworthy.

The majority of these brides' information is not documented in official documents, and despite a huge number of marriages resulting to migration in north Indian states, we still lack precise figures. They are not easily accepted in society, which forces them to fight for existence and makes them feel as though they are in a distant nation named 'Videsh' in their home tongue. In the early stages of their marriage, they experience greater violence than regional brides, and they overlook economic, social, and political participation in daily life. They receive minimal help from their native area during difficult times due to the distance, and they have no way out of these situations.

The acceptance of cross-region marriages as an alternative marriage by Haryana and Uttar Pradesh's varied households has had a significant impact on the social fabric of these states. Families' relationships are shifting at the village and kinship levels. Long-distance marriages are opposed by the elderly, who feel that our local breed will become impure and that the tie of our social fraternity is eroding every day. It has had a significant impact on ethnocentric societal ideals and has aided in the acceptance of different cultural practices in society.

Acknowledgments

On November 2, 2019, at Government Post Graduate College

Chamba, Himachal Pradesh, an original draught of this essay was presented at a national conference on 'Culture Development and Society' in front of the Sociological Society of Himachal Pradesh.

Endnotes

1. In the Haryana region's local language, GaamGavahand refers to a hamlet or a collection of villages that are part of alliances based on the same gotra or have a same ancestor.
2. An intermediary 'Dalal' is a person who deals in the sale and purchase of products and assets, as well as the verb to arrange something between two or more people, such as a transaction, agreement, or the like (Cambridge Advanced Learner's Dictionary 2008).
3. Levirate is a Nilgiris Hills ritual in which a widow marries her husband's younger brother.

References :

Ahlawat, N. & K. R. (2016). *The dark side of marriage squeeze: Violence against cross-region brides in Haryana. Too many men, too few women: Mapping the adverse consequences of imbalanced sex ratio in India and China* (Ravinder Kaur, Ed.; 1st ed.).

Beauvoir, D. S., (2015). *The Second Sex* (Vol. 1). Vintage Classic.

Bhat, P. M., &Halli. S. S. (1999). Demography of bride price and dowry: Causes and consequences of the Indian marriage squeeze. *Population Studies*, *53*(2), 129–148.

Blanchet, T. (2005). Bangladeshi Girls Sold as Wives in North India. *Indian Journal of Gender Studies*, *12*(3). https://doi.org/10.1177/097152150501200207

Chaudhry, S. (2019). 'Flexible' caste boundaries: cross-regional marriage as mixed marriage in rural north India. *Contemporary South Asia*, *27*(2). https://doi.org/10.1080/09584935.2018.1536694

Chaudhry, S., & Mohan, T. D. (2011). Of marriage and migration: Bengali and Bihari brides in a U.P. village. *Indian Journal of Gender Studies*, *18*(3). https://doi.org/10.1177/097152151101800302

Chowdhry, P. (1994). *The Veiled Women.* (1st ed.). Oxford University Press Delhi.

Chowdhry, P. (2004). *The Veiled Women.* (2nd ed.). Oxford University Press.

Constable, N. (2003). *Romance on a Global Stage: Pen Pals, Virtual Ethnography, and "Mail-order" Marriage* (1st ed.). University of California Press.

Doshi, S. R., & G. B. (2008). "Women in India: The context and impact of HIV/AIDS." *Journal of HuamanBehaviour in the Social Environment*, *17*(3–4), 413–442.

Dyson, T., & Moore, M. (1983). On kinship structure, female autonomy, and demographic behavior in India. *Population & Development Review*, *9*(1). https://doi.org/10.2307/1972894

Gender Composition of India. (2011).

Gupta, B. (2014). Where have all the brides gone? Son preference and marriage in India over the twentieth century. *Economic History Review*, *67*(1). https://doi.org/10.1111/1468-0289.12011

Gupta, M. das. (1995). Fertility decline in Punjab, India: Parallels with historical Europe*. *Population Studies*, *49*(3). https://doi.org/10.1080/0032472031000148786

Guttentag, M., & S. P. F. (1983). Too many women? The sex ratio questions. *Sage Publication*.

Hyman, H. H. (1942). The psychology of status. In *Archives of Psychology* (Vol. 269).

Kainth, G.S. (2009), "Push and Pull Factors of Migration: A Case of Brick Kiln Industry of Punjab State", Asia-Pacific Journal of Social Sciences, 1, 82-116.

Kaur, R. (2016). *Too many men, too few women: Social consequences of Gender Imbalance in India and China* (R. Kaur, Ed.; 1st ed.). Orient Black Swan.

Kukreja, R. (2018). An Unwanted Weed: Children of Cross-region Unions Confront Intergenerational Stigma of Caste, Ethnicity, and Religion. *Journal of Intercultural Studies*, *39*(4). https://doi.org/10.1080/07256868.2018.1484345

Kurkreja, R., & K. P. (2013). *Tied in a Knot: Cross-region marriage in Haryana and Rajasthan. The implication for gender rights and gender relations.* Tamarind Tree Films Kingston.

Madan, K., &Breuning, M. H. (2014). Impact of prenatal technologies on the sex ratio in India: An overview. In *Genetics in Medicine* (Vol.

16, Issue 6). https://doi.org/10.1038/gim.2013.172

Misra, R. (2011). Social Consequences of Declining Sex Ratio. *The Indian Economic Journal*, *59*(2). https://doi.org/10.1177/0019466220110209

Pallikadavath, S., Garda, L., Apte, H., Freedman, J., & Stones, R. W. (2005). HIV/AIDS in rural India: Context and health care needs. *Journal of Biosocial Science*, *37*(5). https://doi.org/10.1017/S0021932004006893

Rifkin, J. (1980). Toward a Theory of Law and Patriarchy. *Harvard Women's Law Journal*, *3*, 83.

Rodrigues, J. J., Mehendale, S. M., Shepherd, M. E., Divekar, A. D., Gangakhedkar, R. R., Quinn, T. C., Paranjape, R. S., Risbud, A. R., Brookmeyer, R. S., Gadkari, D. A., & al., et. (1995). Risk factors for HIV infection in people attending clinics for sexually transmitted diseases in India. *BMJ*, *311*.

S. Agnihotri. (1996). Juvenile Sex Ratios in India a Disaggregated Analysis. *Economic and Political Weekly*, *31*(52), 3369–3382.

Sharma, S. (2016). *The status of Muslim women in Medieval India* (1st ed., Vol. 1). Sage.

Singh, K., & Dangi, S. (2011). Married Migrant Women in Haryana: A Pilot Study. *Journal of Psychosocial Research*, *6*(2).

Yudhvir. (2014). Across Region Marriages and Changing Social Relation in Rural Haryana. *Maharishi Dayanand University, Research Journal (Arts)*, *10*, 137–142.

Ashish Kumar
Ph.D. Research Scholar
Central University of Haryana's
Department of Sociology in Mahendargarh, India, &
ICSSR Doctoral Fellow in NEW DELHI, *India*

❑ ❑ ❑

Application of Water Poverty Index At Local Level : A Case Study of Delhi

• Dr. Kiran Dabas

Water scarcity is now a major hindrance to socio-economic development and a menace to the standard of living in increasing regions of the world. Delhi is also growing quickly due to migration and urbanization. In this context, it is crucial to adopt a comprehensive and realistic perspective on the water difficulties experienced by people of Delhi in order to create laws and design policies that promote the wise usage water resources and strengthen the water system of city. By developing and using the Water Poverty Index, this study assesses the level of water shortage across municipal wards in Delhi. WPI takes into account both the actual availability of water and the accessibility of that resource to its users. The index's objective is to provide a single composite number that is essential in prioritizing efforts on water issues. The index evaluates the sensitivity or risk associated with water scarcity in Delhi and based on four key factors: resource, capacity, access and environment. The index is developed as a comprehensive instrument to evaluate the water problem at the household and community levels. It is developed to help decision-makers to identify the most pressing need for actions in the water sector.

Key words: Water Resource, Poverty, Index, Environment, Accessibility, Capacity.

1. Introduction:

Water is regarded as the elixir of life, yet over exploitation of this vital resource and inefficient water usage across sectors as a

result of poor policies have resulted in worldwide water shortages. The world's water crisis is one of the century's biggest issues, according to the World Economic Forum (2019). Although water is among the most severely diminished resources, it nevertheless has a significant role in alleviating poverty in developing countries (UNESCO-WWAP,2006).Water may be a key to unlocking the production of resources for livelihood and poverty will be decreased by more effectively allocating it (Sullivan and Meigh,2003). Just 62% of the population of world currently has more advanced sanitation infrastructure, and only 87% of people have access to drinking water from improved sources (WHO,2008). Thus, efforts to manage water resources are focused on achieving fundamental Sustainable development goals like universal access to basic sanitation and clean water (UN,2010).

Water concerns are regional, interdependent and almost entirely reliant upon interactions between people and their socio-technical environments (Alexander et al.,2010).The management of water resources has been made more difficult by the growth in population, social development, and environmental change (Kojiri,2008). When assessing water resources, putting too much focus on one aspect while disregarding others risks obscuring the regions that require special attention.

By various aspects, the relationship between water and poverty is strongly connected. Water for employment generation and production, water for health, sanitation and hygiene, gender parity, water rights and entitlements for the impoverished and sustainable environmental management are acknowledged as five key components (Rijsberman,2003). Poverty is both a cause and an effect of the availability of water (Abrams,1999). Lack of social security, the loss of an already meager income due to illness, and the inability to provide work in a productive manner are all consequences of water scarcity, which is hindering attempts to reduce poverty (Barker et al.,2000). Yet, the capacity to manage, utilize and preserve environmental integrity are equally crucial for reducing poverty as is the availability and accessibility to clean water. When there is a water shortage, a society with a poor social adaptation ability will find itself in what Turton (1999) has termed "water poverty." Sen (1999) said that one of the primary reason of poverty is a lack of access to water.

However, it is very challenging to explain the several aspects of water resources (physical, socio-economic, environmental and institutional) in a concise manner. It has been discovered that using an index makes it possible to convey the various dimensions in a manner that is simple to comprehend, and the Water Poverty Index (WPI) has shown to be a useful tool in this regard (Sullivan,2001; Mlote et al.,2002). According to Lawrence et al.(2002) and Sullivan(2002), availability of resource, accessibility, capacity, utilization and environment are the five components that make up the WPI, each represented by a single numerical value. As a result, it can serve as an interdisciplinary monitoring tool to precisely convey the water condition in various areas through each individual value or in the form of each component. The notion of water poverty has been interpreted for this purpose through a variety of projects that have been put in place at various scales, and a lot of effort has been done in developing the WPI. Many articles have extensively studied this composite index (Molle & Mollinga,2003; Rijsberman, 2006; Foguet & Garriga,2011; Manandhar et al.,2011).

The WPI that is being proposed in this study draws influence from Sullivan (2002) and Sullivan et al (2003). The form of the Water Poverty Index suggested in this study is largely the same, with the goal of realizing an integrated analysis of resource availability, ecological dimension and socio-economic characteristics of water poverty. The main goal of the WPI is to give water managers a tool for holistically assessing the water condition in various regions. A tool like this would make it possible to compare communities, which would facilitate transparency and collaborative decision-making. The tool may also be used to track advancement over time if it is designed in a fashion that produces time series data. It is preferable to use a composite index to meet the complexities of water management. The concept behind the composite index methodology is that a mixture of important factors may offer a more thorough understanding of a given scenario than can a single one. In this manner, sub variables of 4 main components like resource, access, capacity and the environment are gathered and added to provide a total WPI value.

2. Objective of the study:

The current study's effort was made with the following goals:

(1) to develop an effective integrated index to assess water poverty.

(2) to employ the Water Poverty Index to identify areas where water scarcity is an issue.

3. Study Area:

Delhi has an area of 1483 sq. km., of which 525 sq. km. are completely developed metropolitan area. The area has a flat surface with occasional outcrops of the Aravali highlands. Delhi averages 600 mm of rainfall annually, with 80% of that falling during the three monsoon months of July and August. Delhi's population was 16. 7 million in 2011. The city, which is located on the Yamuna's bank, receives 86% of its surface water from the Yamuna, Bhakhara storage and the Ganga. Over 1150 million meters ^{3}of water is obtainable from surface water sources, including the Yamuna, Ganga, and Bhakhara reservoir. Over 290 million meters^3 of groundwater is made available each year. The city in question needs 3326 million liters of water per day, however it only receives around 2035 MLD only. Delhi now needs 1080 million gallons of drinkable water per day due to its large population. Almost 20% of the population still lacks access to piped water. Uneven supply is another issue that has to be addressed. (Figure 1).

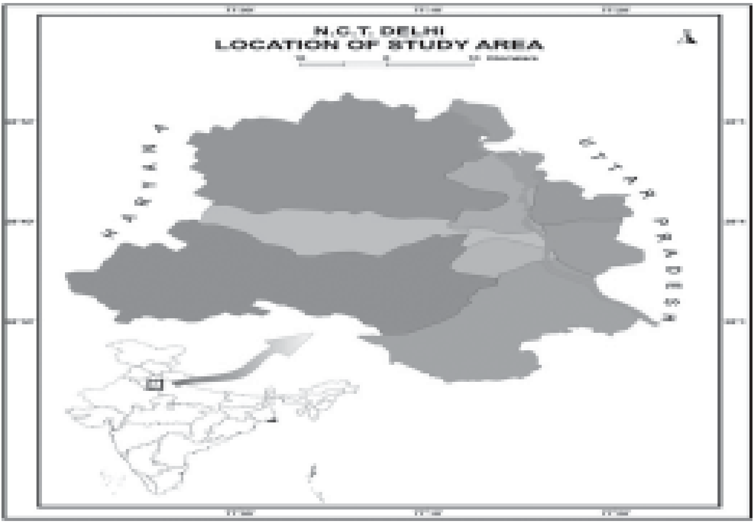

Source: Census of India, 2011.

Figure 1: Location of Study Area

4. Research Methodology and Data sources:

The present study was accomplished using the data produced by the field survey. Data for the study was acquired from 5 sample municipal wards in Delhi. The survey was conducted in Karol Bagh, Paschim Vihar, Lajpat Nagar, Vasant Vihar and Deoli. There were 250 households surveyed in all, and 50 were randomly picked up from each selected location. To gather the primary data, a structured questionnaire and field observation method were employed. The data collected includes information on a wide range of topics, including water sources, institutional issues, demographic data, time spent collecting water. The collected data was then examined and represented using the appropriate statistical methods.

5. Result and Discussion:

5.1. Brief description of WPI components and assigned weight

The WPI structure used in this study has four components. The following provides a detailed overview of their conceptual definition, computation and normalization.

(1) **Resources**. The physical or actual availability of water resources is covered by the resource component. A larger values for this component denotes better water conditions. (For example, appropriate water supplies that vary infrequently and vice versa).

(2) **Capacity**-A group of socioeconomic variables that can demonstrate how well individuals can provide and manage water make up the capacity component. Due of simplicity and reliability of metric, the average per-capita expenditure is used to calculate economic capacity. A larger values of this indicator suggests more economic capacity to acquire regular access to clean water, utilize water resources and technology regularly and manage stresses connected to water management.

(3) **Access**- The inability to obtain pure water will eventually translate into wasted time spent getting water, which might be used for productive tasks. Ownership of a water resource corresponds to the level of human access to water. Thus The proposed Index uses ownership of a water source (be it a tap, tube well or a hand pump) to represent access to resources, and non-ownership or use of a shared water source denotes challenges or less accessibility to water resources.

(4) Environment- The environment component dealt with a variety of environmental variables affecting the provision and handling of water. The proposed index uses water quality (the water's appropriateness for drinking) as an indicator.

5.2 Assigned weight to the components

Components	Applied Weight
1. Resource	4 (Good water availability i.e. almost 24x7) 3 (Acceptable water availability for 6-8 Hours/day 2 (Poor water availability for 4-6 hours/day 1 (Very poor water availability for less than 4 hours/day
2. Access	2 Private ownership of any water source 1 Common ownership
3. Capacity	2 Cost incurred for only one source of water 1 Cost incurred for more than one source of water
4. Environment	4 Good quality of water 3 Acceptable quality of water 2 Poor quality of water 1 Poorest quality of water

The weights of the four indicators range from 4 to 12 on a scale. The total weight of 12 assigned to the indicators are regarded as representing the optimum water condition while the total weight of 4 allotted to the indicators are considered to indicate the potential level of water poverty. For a specific purpose, the weighted average score of four components—1) Resource, 2) Access, 3) Capacity, and 4) Environment —build up the Water Poverty Index score. The entire weights of 12 of all

indicators must be divided by the total sum of the indicators. The data will be normalized producing a WPI value between 0 and 1. A lower WPI value indicates the greatest water scarcity situations, whereas a higher WSI value suggests a reduced amount of water poverty.

5.3 WPI Values for Municipal Wards

Table 1 summarizes the water poverty index scores for the sample municipal wards according to the outcomes of the field study, with the highest value listed first.

Table 1 : WPI Scores for the Sample Municipal Wards

Sr. No.	Ward	Water Avail-ability	Owner-Ship	Water Quality	Cost	Total	WSI
1.	Paschim Vihar	04	02	03	02	11.0	0.9
2.	Lajpat Nagar	03	02	03	02	10.0	0.8
3.	Karol Bagh	02	02	03	02	9.0	0.7
4.	Vasant Vihar	02	02	02	01	7.0	0.6
5.	Deoli	01	02	01	01	5.0	0.4

Source : Primary Survey

On the WPI, Paschim Vihar ward ranked top overall by taking into account the overall values of the various indicators and the WPI ratings, so fortunate enough not to encounter any water scarcity. Lajpat Nagar is positioned second in the WPI hierarchy. Having internal supply connections with satisfactory water quality, the overall WPI rating of 0.8 indicates that Lajpat Nagar did not have a water poverty problem. The aggregate score of 07 indicates that there was no water crisis issue in Karol Bagh ward. Due to poor score of resource availability, quality and cost indicator, with a score of 0.6 does not represent a happy water scenario in Vasant Vihar. Deoli ward has extremely inadequate availability and supply of water. It has the lowest ranking in urban areas with a WPI score of 04. In this aspect, it is the ward that performs the worst. The lack of water in this ward significantly restricts people's everyday activities.

5.4 WPI Matrix

The WPI Matrix is used in Figure 2 to show the differences between the sample municipal wards.

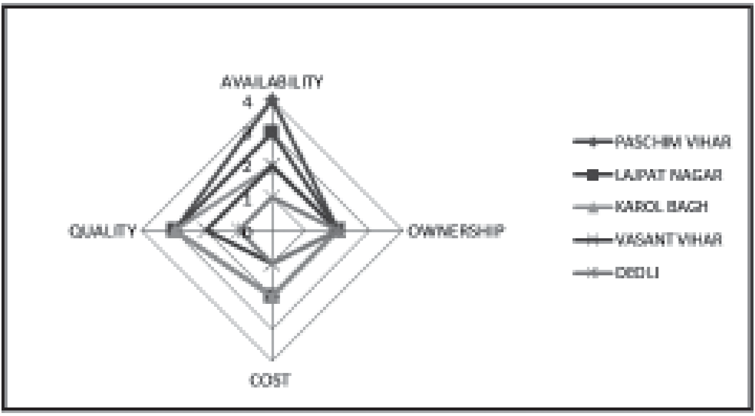

Source: Primary Survey

Figure 2 : WPI Matrix for Municipal wards

The indicator's scores, which identify the shortcomings and strengths in each area, are displayed in the quadrate diagram. The greatest resource component score, for instance, is clearly seen in Paschim Vihar, whereas the ecological impact of water usages in the Deoli samples appears to be extremely severe, as shown by scoring low on the quality axis. The access component ratings are practically identical across the board, however access alone cannot qualify as "no water poor." Households in Deoli and Vasant Vihar must buy water to meet their demands. Thus, households must carry an additional burden. Deoli region is where things are worse, thus there is an urgent need to focus there.

6. Conclusion:

Water is a resource that is increasingly becoming limited and the existing pattern of increasing supplies and overusing what is left of it, is fundamentally unsustainable since water resources per person are depleting very fast. Delhi is approaching towards a serious water crisis due to large-scale migration and urbanization. As a result, institutional and governance reforms are urgently needed to manage urban water. A Water Poverty Index has been

developed as part of the current study to assess the relative severity of water scarcity in Delhi's municipal wards. The resource, access, capability, and environment are the four key components of the WPI that this study used to develop it. These components are essential for understanding water poverty. By shedding some light on the various water-related problems that different municipal wards was facing, the findings may help policymakers to make decisions for improving the water situation in Delhi.

References:

Abrams L (1999) The African Water Page: an experiment in knowledge transfer. Water Int 24(2):140–146

Alexander KS, Moglia M, Miller C (2010) Water needs assessment: learning to deal with scale, subjectivity and high stakes. J Hydrol 388:251–257

Barker R, van Koppen B, Shah T (2000) A global perspective on water scarcity and poverty: achievements and challenges for water resources management. International Water Management Institute (IWMI), Colombo, Srilanka

Gine R, Foguet P (2009) Enhancing sector data management to target the water poor, water sanitation and hygiene: sustainable development and multisectoral approaches, 34th WEDC International Conference, Addis Ababa, Ethiopia, 2009

Kojiri T (2008) Importance and necessity of integrated river basin management. Phys Chem Earth 33:278–283

Lawrence P, Meigh J, Sullivan C (2002) The Water Poverty Index: an International Comparison, Keele Economics Research Papers, Keele University, Keele, Staffordshire, UK peagent

Manandhar S, Vogt DS, Perret SR, Kazama F (2011) Adapting cropping systems to climate change in Nepal: a cross regional study of farmers' perception and practices. Reg Environ Chang 11(2):335–348

Mlote SDM, Sullivan C, Meigh J (2002) Water Poverty Index: a tool for integrated water management. 3rd WaterNet/Warfsa Symposium "Water Demand Management for Sustainable Development", Dar es Salaam

Molle, F. & Mollinga, P. (2003). Water poverty indicators: conceptual problems and policy issues. Water Policy 5(5), 529–544.

Pérez-Foguet, A. & Giné Garriga, R. (2011). Analyzing water poverty in basins. Water Resources Management 25(14), 3595–3612.

Rijsberman F (2003) Can development of water resources reduces poverty? Water Policy 5:399–412

Sen A (1999) Development as freedom. Anchor Books, A Division of Random House, Inc., New York

Sullivan C, Meigh J (2006) Application of the Water Poverty Index at different scales: A cautionary tale. Water International 31(3):412–426

Sullivan CA (2002) Calculating a water poverty index. World Dev 30(7):1195–1210

Turton AR (1999) Water scarcity and social adaptive capacity: towards an understanding of the social dynamics of managing water scarcity in developing countries. MEWREW Occasional Paper No. 9, University of London, School of Oriental and African Studies (SOAS), Water Issues Study Group

United Nations (UN) (2010) The Millennium Development Goals Report 2010, New York

United Nations Educational, Scientific and Cultural Organization (UNESCO)-WWAP (2006) Water a shared responsibility, The United Nations world water development report 2. UNESCO/ Berghahn Books, Paris/ New York

WHO (2008) UN—water global annual assessment of sanitation and drinking-water: 2008 pilot report testing a new reporting approach. WHO, Switzerland

World Economic Forum, 2019,Global Risk Report,(14th edition) ISBN: 978-1-944835-15-16 ,http://www3.weforum.org/docs/WEF_Global_Risks_Report_2019.pdf

Organization (UNESCO)-WWAP (2006) Water a shared responsibility, The United Nations world water development report 2. UNESCO/ Berghahn Books, Paris/ New York

WHO (2008) UN—water global annual assessment of sanitation and drinking-water: 2008 pilot report testing a new reporting approach. WHO, Switzerland

World Economic Forum, 2019,Global Risk Report,(14th edition) ISBN: 978-1-944835-15-16 ,http://www3.weforum.org/docs/WEF_Global_Risks_Report_2019.pdf

Dr. Kiran Dabas

Department of Geography,

Swami Shraddhanand College, University of Delhi

Email: kiran.dabas@rediffmail.com

❑ ❑ ❑

Role of Social Media in Education

• Dr. Mohd Tariq Mir
Dr. Mehraj ud din Mir • Showkat Ahmad Lone

The use of social media has increased dramatically in recent years.It is not only used by working people but there is also a significant increase in the use of social media by students or the education society. The social media platform is altering the way education is delivered. The use of social media sites such as Google, Wikipedia, Facebook, Instagram, YouTube, and WhatsApp has had a positive impact on the educational system. Universities and educational institutions are known to increase the use of social media marketing to promote their courses and attract students.Educators are becoming more aware of the potential educational benefits of social media. Almost everyone with internet access is involved in some form of social interaction via available social media. Social media platforms are now offering a variety of services to their users. This paper attempts to explain the usefulness of social media in education.

Keywords : *Social-Media, Social Media Role, Education.*

Introduction

The term "education" is derived from two Latin words: "Educare" and "Educatum." Educare is a Latin word that means "to train and shape." The act of teaching is referred to as Educatum. Education can be defined as a deliberate, conscious or unconscious, psychological, sociological, scientific, and philosophical process that promotes the full development of the individual as well as the maximum development of society in order for both to enjoy maximum happiness and prosperity. It is a never-ending process of acquiring experiences that leads to the development of an individual's personality.

The term "social media" means a group of websites and applications that allow users to create and share content for engaging social media.It is not limited to simply posting vacation photos on the internet. It is a computer-mediated interactive technology that allows people to share a variety of ideas, career interests, information, and other forms of expression through global networks and visible communities.Over the years, it has gained credibility as a reliable source of information. It is a platform through which organisations can interact with their target audiences.

The internet's introduction in the 1990s ushered in significant changes in the world of communication, it leads to the creation of social networking sites.The creation of these websites has revolutionized communication and is celebrating achievements in areas ranging from education to entertainment.Two-thirds (2/3) of the world's Internet population use social networking sites that act as communication and connectivity tools, the internet's evolution has resulted in its use as the best medium of communication. Social media refers to these social networking websites (Boyd and Ellison, 2007).

Social media as a category of online discourse has developed rapidly, allowing people to create, share, bookmark and chat online at unprecedented speed (Jha and Bhardwaj, 2012).This filled the communication gap that existed when people had to rely solely on traditional communication methods such as letters and telephones to stay in touch with friends and family.Communication today can be as simple as stopping by a neighbour's house to pass on information or as complex as using social media.From the environment, politics, technology tothe entertainment industry, social media is rapidly changing public discourse and setting trends and agendas (Asur and Huberman, 2010).

"Social networks have become deeply embedded in modern culture." People have integrated these networks into their daily lives by using tools such as Facebook, Twitter, LinkedIn, online gaming environments, and others. Children become more peer-based as a result of social networking. Young people are eager to learn from their peers on the internet. They interact with one another and provide feedback to one another. They are more motivated to learn from one another than from adults. Adults and teachers are no

longer the only sources of information. It connects children more than ever before. It is easier for children to make friends with people from all over the world, most of whom they would never meet if technological advances had not been made. According to Professor Larry Rosen, teens are developing the ability to show virtual empathy for those in distress.As a result, social media applications allow users to communicate and interact with each other and create, edit and share new forms of text, visual and audio content.Social media apps are perceived to be open rather than closed, bottom-up rather than top-down.

The rise of social media in recent years has altered how most end users interact with the internet. The concept of social media is based on how people know and interact with one another. It empowers people to share, making the world more open and connected. Social networking has a significant impact on our lives because it aids in virtually every aspect of life, including politics, economics, and education.

Every day, billions of video clips are viewed on YouTube. Users upload video content every hour. More than 90% of college students use social networking sitesdaily. People have integrated these networks into their daily lives by using tools such as Facebook, Twitter, LinkedIn, online gaming environments, and others. Social media is not only used by professionals and elders, but it is also widely used by students in educational settings. Some people can't even write their names and can only recognise him by his picture, while others have full internet access and constantly check their Smartphones for status updates. Students typically used social media for a variety of reasons, including study and entertainment, because social media provides any data you want very easily and quickly within a fraction of a second. The use of social media varies from person to person, as it has both positive and negative effects on society, specifically on students. Social media has become a major distraction for students, causing their overall performance to suffer, particularly those who check their Facebook and Twitter while studying.

They are extremely busy accessing several sites other than the educational site for long periods, which hurts their mind, causes numerous health issues, and creates a schism in the family. Students who attempt to multitask by checking social media sites

while studying perform poorly academically. Distractions such as YouTube, Facebook, and Twitter significantly reduce their ability to concentrate on the task at hand.

Social media and Education: A Connection

Social media has influenced all aspects of life, whether they are social, political, economic, or educational. In educational settings, this media improves learning opportunities for students while also providing a larger platform for students to interact with teachers 24 hours a day, seven days a week. The Indian government is taking steps to launch its educational social network, demonstrating the importance and influence of social media in the field of education. The Ministry of Information and Technology of the Government of Rajasthan plans to launch an educational social network similar to Facebook for learning.This site will include all of the standard features of social networking (photos, games), but it will be primarily focused on educational collaboration, with topic experts jumping in to answer questions raised by users. Kirkpatrick (2011).

Literature Review

Social media cannot be understood without first defining Web 2.0: a term that describes a new way for end-users to interact with the World Wide Web, a location where content is constantly altered by all operators in a sharing and collaborative manner (Kaplan and Haenlein 2010).

Social media is becoming increasingly important as a platform for social interaction, communication, and marketing. Individuals, groups, and institutions are rapidly changing their preferences for how they learn, communicate, collaborate, and participate in society, as evidenced by the rapid rise of social media across society. The immediacy of interaction, from a simple response to a tweet on Twitter to a well-researched and presented blog post, demonstrates how deeply Web 2.0 design precepts and principles are influencing daily life around the world today (O'Reilly, 2006).

Social media is a platform that allows users to interact with their social graph, other users, and the web by allowing them to participate in, comment on, and create content as a way of

communicating with themand the general public using content formats such as text, video, photographs, audio, PDF, and PowerPoint. (According to Cohen, 2011). Social media can be defined as the tools, services, and communication that enable peers with similar interests to connect with one another.

The use of social media in the learning process is on the rise, and it is likely to have implications for educational practice and provision, particularly in terms of connecting with students or colleagues, accessing news, and appearing on their walls. (Social Media Management, Patel, 2016). Rather than individualised instruction, learning that is based on principles of collective exploration, play, and innovation (Thomas, 2011). This fact can be used in the classroom to make learning more valuable.

Facebook is one of the social media sites. Facebook is a social media platform that allows people to communicate with their friends, family, and coworkers more effectively. 2005 (Zuckerburg). Facebook is now used to connect educators and students, providing schedules, news, and other information. The idea of using social media as a learning tool has made its way into the corporate world. While educators may have been hesitant to use Facebook as a medium for learning and teaching because it is a social networking site, lecturers and students can ask questions and responses about the lesson and post photos or related sources with hyperlinks without disrupting the flow of work in the classroom. As a result, everyone is on the same page and there are fewer interruptions (Matteson, 2011).

As a fantastic learning tool, the teacher can use Facebook for a class project, to improve communication, and to engage students in ways that aren't always possible in a face-to-face classroom setting. Strengthening communication between students and student-to-teacher to keep current information flowing through the class is an excellent way to ensure students are more engaged in the learning experience in the classroom. (Author, 2009).

Students become more familiar with computers and other electronic devices as a result of spending so much time working with new technologies. Students will develop skills that will help them throughout their lives as a result of the increased focus on technology in education and business. 2011 (Dunn).

Using Facebook as a learning tool at the university is less expensive than Moodle. All faculties praised the high quality and unique type of engagement with students on Facebook, as well as the visual resources that enabled a new way of knowing and learning. (Hocoy, 2013)

However, many students rely on the availability of information on social media in particular and the internet in general to provide answers. This results in a decreased focus on learning and retaining information, as well as students who attempt to multi-task, such as checking social media sites while studying, showing lower academic performance. Distractions such as YouTube, StumbleUpon, Facebook, and Twitter significantly reduce their ability to concentrate on the task at hand (Dunn, 2011). Furthermore, students who spend more time on social media and less time socialising in person have a lower ability to communicate effectively in person.

The need for more structure, including a syllabus with clear learning objectives and guidelines for participation and assignments, as well as weekly discussion topics, assignments, or projects, is a recurring theme in student feedback. Students appeared to be unaccustomed to the freedom afforded by the lack of a syllabus (Hocoy, 2013). Furthermore, the faculty is having difficulty loading students' posts as well as the linked blogs and web pages (Mali. Alaa. S. M and Syed Hasan, 2013). Furthermore, the benefit of Facebook is that it provides a familiar environment for students and lecturers, and Facebook's design encourages social interchange between participants, thus, a collaboration between students participating in the activity increases. Educators or educators can also use this opportunity to teach students how to use Facebook and other social networking sites responsibly (VanDoorn& Eklund, 2013).

Statement of the Problem

Today, social media is the most important source of information, and the extent to which students are using social media cannot be overstated. Students have been observed to devote more time and attention to social media than to their studies, and they will be unable to pass their exams if they do not learn (Osharive, 2015).Maya (2015) discovered that media consumption

is linked to poor academic performance, low self-esteem, and a lack of interest in college-related careers. Academic excellence is important in a person's life, whether it is in the family, at social gatherings, at work, in a school, or among peers.Academic excellence is valued worldwide because it plays an important role in an individual's life in terms of success and respect.As a result, many students are concerned about how they can improve their grades (Kyoshaba, 2009).Social media has also been shown to have an impact on students' English usage in several studies. They use shorthand to communicate with their friends and are accustomed to making the same mistakes on exams (Obi, Bulus, Adamu, Salaat, 2012).Social networking sites are now used by students at all levels, particularly those at the tertiary level (SNSs). As a result, the goal of this research is to find out how engaged University of Gwalior students are with social networking sites and how this affects their academic work.

Objectives of the Study

1. To determine the extent to which Jiwaji University students are exposed to social media.
2. To learn why students at Jiwaji University use social media.
3. To learn how the use of social media by students at the University of Gwalior affects their academic work.

Research Methodology

This investigation employs an exploratory research design that focuses on qualitative aspects.The primary data were collected using a sample size of 120 respondents. The data was gathered using a technique known as purposive sampling. The questionnaire was created by displaying statements that respondents were required to rank using a Likert scale to indicate their level of agreement or disagreement.

Findings

First and foremost, the findings revealed that Jiwaji University students are well-versed in social media, with all 120 respondents using one or more platforms.Google, YouTube, Facebook, and WhatsApp are all used by all respondents. Students are also fans of Twitter, Instagram, Teacher Tube, Academia.edu Research Gate,

and other major social media platforms.This backs up Wiley and Sisson's (2006) findings, which found that more than 90% of tertiary school students use social media in previous studies.In terms of time spent on social media, 11 participants (9 percent) spent between 0 and 30 minutes, 17 (14%), spent 30 minutes to one hour. 32 (27 percent) spent 1 hour to 2 hours and it can be deduced that the majority of students (50%) spend more than two (2) hours per day on social media sites, and when students become overly engaged or obsessed with social networking sites, they can improve their academic performance.120 students (29%) said they primarily use social media to communicate and upload images/ videos, and 71% said they primarily use social media for learning purposes.

Despite the fact that the majority of respondents use social networks mainly for learning purposes, they also use these tools to complete a number of academic tasks.70% of respondents use social media to engage in academic discussions with professors and classmates, 77 percent use social media to learn about and share information about class activitiesand 57% use social media tools such as wikis to gather information for assignment preparations. According to the study's findings, students' primary use of social media for academic purposes is to share knowledge with their peers. Students benefit from social media, according to O'Keeffe and Clake-Pearson (2011), because it connects them to assignments and class projects. In a similar vein, Salvation and Azharuddin (2014) found that students can use social networking sites to create group discussions to exchange ideas and communicate with their teachers, as well as ask friends for help with assignments (SNSs). Indeed, when used wisely, social media networks can make a significant contribution to students' academic lives.

Researchers wanted to know if students at Gwalior Jeevaji University were addicted to social media, and if so, how it would affect academic performance. Respondents were asked to rate the extent to which they agreed or disagreed with three statements.Table-01 displays the responses.

Table-01

Statements	N=120	
	Frequency	Percentage
Addiction to social media has a significant impact on academic life.		
Agree	58	48
Strongly Agree	35	29
Undecided	3	3
Disagree	12	10
Strongly Disagree	12	10
Total	**120**	**100**
My grades have improved as a result of my use of SMS materials such as Wikipedia for research.		
Agree	50	42
Strongly Agree	41	34
Undecided	4	3
Disagree	15	13
Strongly Disagree	10	8
Total	**120**	**100**
Participating in academic forums on social media improves my understanding of topics covered in class.		
Agree	41	34
Strongly Agree	40	33
Undecided	13	11
Disagree	17	14
Strongly Disagree	9	8
Total	**120**	**100**

In terms of whether the respondents' addiction to social media has a significant impact on their academic life, we find that the majority of them (77 percent) agree and strongly agree with the statement that social media helps in their academic life. (76 percent) of respondents agreed or strongly agreed that using social media sites such as Wikipedia helps them with their research and grades. A majority of respondents (67%) agreed and strongly agreed that participating in academic forums on social media helps them better understand class topics.This study confirmed the work of Wheeler, Yeomans and Wheeler (2008). Research by Rifkin, Longenecker, Leach, and Ortia (2009) identified four main benefits for college students from using social media: improved relationships, learning motivation, personalized learning resources, and improved collaboration skills.

Some of the statements were summarized and respondents were asked to indicate their level of agreement or disagreement, in order to determine how the use of social media has positively influenced Jiwaji University Gwalior students' academic work.Table-02 displays the responses.

Table-02

	N=120	
Statements	**Frequency**	**Percentage**
In terms of my academics, group discussions on social media produce positive results.		
Agree	31	26
Strongly Agree	49	41
Undecided	10	8
Disagree	17	14
Strongly Disagree	13	11
Total	**120**	**100**

Statements	N=120	
	Frequency	Percentage
My academic career has greatly improved since I became involved in these social networking sites.		
Agree	35	29
Strongly Agree	39	32
Undecided	20	17
Disagree	14	12
Strongly Disagree	12	10
Total	**120**	**100**

Statements	N=120	
	Frequency	Percentage
With a greater emphasis on technology in education, assist students in developing skills that will benefit them throughout their lives.		
Agree	55	46
Strongly Agree	37	31
Undecided	12	10
Disagree	7	6
Strongly Disagree	9	7
Total	**120**	**100**

Table 2 shows the results of the students' use of social media and its positive impact on their academic careers. Out of the total

120 respondents, 67 percent agree or strongly agree that group discussion via social media platforms produces positive results in their academic career, and 61 percent agree that their academic career has greatly improved as a result of their involvement with this platform. It is also worth noting that the majority of respondents (77%) agreed or strongly agreed with the statement that introducing modern technology into education helps students develop their skills and helps them throughout their lives.

Conclusion

Social media now offers a plethora of services and resources. These services and resources are available to social media users.Undoubtedly, social networks are, and will always be, an important communication tool in human life.Humanity today benefits tremendously from its existence, not only in terms of communication but also in the majority of scholarly pursuits.The invention of social media sites altered the entire pattern of the educational system, and it has had a significant impact on students' academic careers, as evidenced by the study's findings.It has largely replaced traditional methods of education, and students now prefer to study online, which has proven to be beneficial in terms of obtaining more and more education. These social media networks have been widely used and, to some extent, facilitated various types of education, including distance education.Getting information from friends, lectures, or experts on a local or globally is no longer a difficult task, and the internet is the ultimate enabler behind this success.

References.

Asur, S, Huberman, B.A. (2010) Predicting the future with social media. International Conference on Web intelligence and intelligent agent technology, 1.63.

Boyd, D. M, Ellison N. B. (2007). Social network sites, definition, history and scholarships. Journal of computer-mediated communication, vol-13(1) pp.210-230.

Brown, S. (2010) From VLEs to learning webs; the implication of Web 2.0 for learning and teaching. Interactive Learning Environments, vol- 18(1) pp. 1-10.

Cohen, H. (2011) Social Media Definition. http://heidicohen.com/social-media-definition/

Dunn, J. (2011)The tenbest ways and worst ways Social Media impacts Education. http://www.edudemic.com/social-media-education/

Hocoy, D. (2013) Facebook as Learning Management System: The Good, the Bad, and the Unexpected. http://er.educause.edu/articles/2013/12/facebook-as-learning-management-system-the-good-the-bad-and-the-unexpected.

Jha, V., Bhardwaj, R. (2012) new marketing renaissance: a paradigm shift in the social networks. International Journal of Engineering and Management Sciences, vol- 3(no-3) pp 384- 387.

Kirkpatrick, M. (2011) Indian Government to Launch Education Social Network. www.readwrite.com.

Kumar, S and Ahmad, S. (2010) Meaning, Aims and process of Education. www.sol.dc.au.in

Kyoshaba, M. (2009). Factors affecting academic performance of undergraduate students at Uganda Christian University. http://mak.ac.ug/documents/Makfiles/theses/kyoshaba%2520Martha.Pdf.

Mali. Alaaand Syed Hasan, S. S. (2013) Students' acceptance using Facebook as a learning tool: a case study. International Journal of Asian Social Science.

Matteson, A. (2011). Do You Tumble? Tumblr Could Change the Way You Blog. https://tumblrforlibraries.wikispaces.com/file/view/Do+You+Tumble

Maya, k. G., (2015)Achievement scripts, media influences on students' academic performance,Journal of Black Psychology, vol-42(3) pp.195-220.

Obi, N.C. & Salaat, A.B. et. al (2012) need for safety consciousness among the youths on Social Networking Sites. The Journal of Applied Science and Management, vol-14 (no-1).

Osharie, P. (2015) The social media and the academic performance of the students, https://www.researchgate.net/publication/273765340.

Patel, N. (2016). Social Media management. Los Angeles, California, USA.

Schroeder, A& Schneider, C. et al (2010) Social Software in Higher Education: Diversity of Applications and their contributions to Students' Learning Experiences. Communications of the Association for Information systems, vol-26, Article no-25(1), pp-547-564.

Thomas, D. A. (2011). A New Culture of learning. Charleston, SC: Create space.

VanDoorn, G., & Eklund, A. A. (2013). Face to Facebook: social media and the learning potential of Symmetrical and Synchronous communication. Journal of University Teaching & Learning Practice Vol-10 Issue 1.

Writer, S. (2009) one hundredways you should be using Facebook in our Classroom. http://www.onlinecollege.org/2009/10/20/100-ways-you-should-be-using-facebook-in-your-classroom/

Zuckerburg, M. (2005). Facebook Mission and Vision. Melo Park, California: Facebook.

Mohd Tariq Mir
Lecturer Sociology, Govt. of J&K,
Dept. of Higher Education
Email: tariq.mir50@gmail.com

Dr. Mehraj ud din Mir
Lecturer Commerce, Govt. of J&K,
Dept. of Higher Education

Showkat Ahmad Lone
Research Scholar
Dept. of Education, University of Kashmir, Srinagar

❑ ❑ ❑

Social Responsible Investing Strategy of Mutual funds

• **Dr. Puneet Joshi**

A socially responsible investing strategy is one that views successful investment returns and responsible corporate behavior as going hand in hand. Socially responsible investing (SRI), also known as social investment, is an investment that is considered socially responsible due to the nature of the business the company conducts. A common theme for socially responsible investments is socially conscious investing .SRI investors believe that by combining certain social criteria with rigorous investment standards, they can identify securities that will earn competitive returns and help build a better work. SRI analysts gather information on industry and company practices and review these in the context of a country's political economic and social environment.

Keywords: SRI of mutual fund houses, Mutual Fund Technology, Social Responsibilities, Marketing strategies, Mutual Fund Investments, Investors protection.

Introduction: The socially responsible investing approach may have started with the Quakers, a group of individuals who were part of the Religious Society of Friends in the 1700s. At that time, the Quakers refused to participate in the slave trade or the business of buying and selling humans.

Another prominent proponent of the SRI strategy was John Wesley. Wesley, a man of the cloth, proclaimed that earning money at the expense of another individual's welfare was a sin. He also asked his congregants to avoid participating in gambling and supporting industries, which utilized toxic materials.

It should be noted that socially responsible investing is

essentially interested in promoting the adherence to the positive aspects of these areas with publicly held companies. However, SRI also gets a lot of attention for industries and companies that it opposes as “bad” for society. The latter would include, among others, businesses involved in gambling, tobacco, weapons and alcohol these so-called “sinful” investment categories are often eliminated through SRI screening.

Review of SRI as a Strategy For Mutual Fund Houses: Socially responsible mutual funds hold securities in companies that adhere to social, moral, religious or environmental beliefs. To ensure the stocks chosen have values that coincide with the fund’s beliefs, companies undergo a careful screening process. A socially responsible mutual fund will only hold securities in companies that adhere to high standards of good corporate citizenship. Some SRI strategies which help Mutual fund houses to attract investors.

- **Values and Beliefs**: People hold such a wide variety values and beliefs; fund managers have quite a challenge in determining the stocks that reflect the optimal combination of values for attracting investors. The specific criteria used when screening for stocks all depend on the values and goals of the fund For example, funds with a strong sensitivity toward issues of environmental concern will specifically pick stocks in companies that go beyond fulfilling minimal environmental requirements.

- **Community Investments**: Many socially responsible mutual funds will also partition a portion of their portfolios for community investments. A common misconception is that these investments are donations. This is not the case. These investments allow investors to give to a community in need while making a return on their investment. Many community investments are put toward community development banks in developing countries or in lower-income areas in the U. S. for affordable housing and venture capital

- **Ownership Rights**: Shareholder activism is one of the most important issues for socially responsible funds. SRI funds use their ownership rights to influence management through policy change suggestions. This advocacy is achieved through attending shareholder meetings, filing proposals, writing letters to management and exercising voting rights.

- **Negative Screening**: As implied in the name, the technique involves screening a company's practices and products and/or services before deciding to invest in it. So, if a potential investor discovers that a particular mutual fund company investing in a company which produces harmful products – such as cigarettes – or engages in unethical practices, then they won't put their money into it.
- **Positive Investing** : An investor chooses to invest in MF companies whose practices they approve of.

For example, let's say that an individual really cares about

- The environment Then, their portfolio will probably comprise investments they've made in green energy.
- Developing a recycling program at the workplace
- Conserving water
- Purchasing energy-efficient equipment
- Enforcing eco-friendly work policies, such as asking individuals to switch off lights in rooms that are not in use.

India is ready for a socially responsible Investment : Ethical and sustainable investing has recently become a global phenomenon, capturing the attention of investors around the world. MSCI (Morgan Stanley Capital International) says that so far he has invested $30 trillion in environmental, social and governance (ESG) funds. According to the latest data from EPFR (Emerging Portfolio Fund Research), SRI (Socially Responsible Investing) saw record inflows of $168.74 billion in 2020 (63.34 billion in 2019). Collected. SRI investing has grown in importance over the years, and the pandemic has played a major role in further highlighting the importance of this trend.

Notable SRI funds that have appeared in the Indian market in recent years include AXIS AMC and ICICI Prudential, which launched ESG funds, SBI, which reclassified equity funds, and Mirae Asset Mutual Fund, which launched an ESG ETF (Exchange Traded Fund). This coincided with his Nifty ESG index, which in 2020 delivered higher returns than his five-year trend of the Nifty50. This is an unusual pattern. According to S&P Global Market Intelligence analysis, 14 out of 17 exchange-traded funds and mutual funds reported consistently higher returns than the S&P 500 in 2020.

Several mutual funds and ETFs adhere to the ESG criteria. If an investor is looking to invest in either of the two funds, visit the SIF website, which outlines over 100 socially responsible mutual funds. Also, they can also look at different socially responsible ETFs here.

Common approaches to SRI include:

- Values-based investing, also called negative screening, which focuses on excluding companies from the portfolio. This approach appeals most strongly to investors who care about avoiding investments in companies that don't align with their values.
- Integration, which attempts to improve the risk/return profile by considering environmental, social, and governance risks in the investment process. In this approach, portfolios are constructed by selecting companies that score well on material ESG issues that are important for those companies' sector.
- Impact investing, which refers to explicitly deploying investment dollars in an effort to directly achieve a desired outcome. Impact investors are typically more concerned with making a difference in the world or environment through the companies they invest in.

Conclusion: Socially responsible investing (SRI), also known as social investment, is an investment considered socially responsible due to the nature of the business the company conducts. A common theme underlying SRI is socially conscious investing. Socially responsible investments can be made in the securities of individual companies with good social value, or through a socially conscious mutual fund.

Mutual funds that are constrained by socially responsible investment strategies perform worse than mutual funds that are not constrained. To answer this question, we separately examine the common approaches to SRI and India ready for social responsible investment of SRI funds, and explore the role played by mutual fund managers in explaining the observed differences between SRI and conventional funds. Investors in SRI funds earn a premium in terms of superior risk-adjusted performance compared to similar traditional funds. SRI funds managed by SRI specialists have significantly outperformed their traditional peers, while SRI funds managed by generalist firms have underperformed similar traditional

funds. These results are of practical importance to investors. First, it shows that SRI funds can outperform comparable traditional funds. Second, when investing in SRI funds, it suggests that investors should consider the characteristics of the manager, especially his SRI expertise.

References:

1. Baks, Klaas P., Andrew Metrick, and Jessica Wachter 2000. Should investors avoid all actively managed mutual funds? A study in bayesian performance evaluation.
2. International Evidence on Ethical Mutual Fund Performance and Investment Style, Working Paper, Maastricht University. Brill, Hal, Jack A. Brill, and Cliff Feigenbaum, 2000
3. The Performance of Socially Responsible Mutual Funds: Incorporating Sociopolitical Information in Portfolio Selection, Managerial Finance 25, 23—36. Grossman, Blake and Wililam Sharpe, 1986
4. The Investment Performance of Socially Responsible Mutual Funds, Financial Analysts Journal, Nov/Dec, 62-66. Jones, Christopher S. and Jay Shanken, 2005,
5. Corporate Social Responsibility and Firm Financial Performance, Academy of Management
6. Neale, Alan (2001). Pension Funds and Socially Responsible Investment
7. Saravanakumar. M SuganthaLakshmi.T. (2012). Social Media Marketing.
8. Nawab, Noodles by MG Parameshwaran Guide To Indian Mutual Funds (Paperbck, Nakit Gala and Jitendra Gala)- Ankit Gala and Jitendra Gala.
9. Indian Mutual funds Handbok 5th Edition A guide for Industry Professionals and Intelligent Investors.
10. JNNCE Journal of Engineering and Management .
11. Saravanakumar. M SuganthaLakshmi.T. (2012). Social Media Marketing. Life Science Journal.
12. Mutual fund -Ladder to wealth Creation
13. Common sense of mutual funds-New imperatives for the Intelligent investors.

14. Bauer, R., J. Derwall and R. Otten: 2007, 'The Ethical Mutual Fund Performance Debate: New Evidence from Canada', Journal of Business Ethics 70(2), 111-124.

15. Bauer, R., K. Koedijk and R. Otten: 2005, 'International Evidence on Ethical Mutual Fund Performance and Investment Style', Journal of Banking and Finance 29(7), 1751-1767.

16. Benson, K., T. Brailsford and J. Humphrey: 2006, 'Do Socially Responsible Fund Managers

17. Really Invest Diferently?', Journal of Business Ethics 65(4), 337-357.

18. Benson, K. and J. Humphrey: 2008, 'Socially responsible investment funds: Investor reaction to current and past returns', Journal of Banking and Finance 32(9), 1850-1859.

19. Christofersen, S. and D. Musto: 2002, 'Demand Curves and the Pricing of Money Management',

Dr. Puneet Joshi

Bisso Ka chowk, Bheru ji ke gali, Bikaner

MailId-puneetjoshi6667@gmail.com

❑ ❑ ❑

Yoga and Ayurveda As A Global Health Approach to Covid-19 : A Study of Primary Prevention

Divyansh Jain • J.K. Sawalia

The usefulness of traditional, complementary, and integrative techniques for people concerning COVID-19 is a contentious issue among nation-states. The holistic idea of tying life, the body, the mind, and awareness together is important to Covid-19. This article has discussed different therapeutic benefits, such as Yoga, a properly balanced diet, a flexible schedule, and a SWOT analysis for combating the infectious COVID- 19. This study focuses on the role of Yoga, and dietary changes have played in preventing, controlling, and resolving Global COVID-19 challenges at the Macro level. Widely used search engines, Google Scholar, Sci-Hub, and J-Stor, were used to look up literature reviews. The nation's leading university, S-Vyasa Yoga University, renowned for its global perspective, provided Special Breathing techniques as literature. In this study, online programs for breathing-based meditation and modules for behaviour change were also looked for. Yoga and lifestyle changes can combat the COVID-19 outbreak by posing, preventing, and managing problems at the macro level. The practice of sectional breathing, in particular, can aid in overcoming COVID-19 obstacles. Yoga therapists can only offer yoga treatment programs offline because government regulations strictly adhere to social segregation. Online platforms, however, have played a major role in supporting people through yoga therapeutic relationships scheduled online, and online counseling sessions have also helped overcome the COVID-19 pandemic on a larger scale.

Keywords : Covid-19, Yoga, Life Style Modification, Ayurveda, Macro Level

Introduction

COVID-19 is a part of Coronavirus (CoV). It is a retrovirus with a capsid-positive sensory ribonucleic acid (RNA) genome. COVID-19 infection primarily causes respiratory infection with asymptomatic or mildly indicative fever, cough, fatigue, and indigestion, as well as serious acute respiratory distress syndrome (ARDS) and, in certain cases, fatal multi-organ failure (Sharma *et al.,* 2020/01/01)

The emergency shutdown and social isolation have resulted in stress, anxiety, fear, hopelessness, depression, nervousness, sleeping problems, ambiguity, frustration, unhappiness, and exhaustion. Besides that, rising COVID-19 incidents and deaths could increase people's stress and anxiety (Kulkarni et al., 2022). COVID-19 is one of the most severe stressors affecting the patient, family members, and healthcare workers. Psychosocial stress can lower immunity to infectious threats and overstimulate host inflammatory responses, resulting in tissue damage and even death.

In this pandemic situation, Performing Yoga, a Healthy diet & Habits, a Dynamic schedule, and a SWOT analysis play a vital role in each level, whether physical level, mental level, social or spiritual levels, or sheaths of the body. These four principles of life can manage and overcome covid-19 challenges. As per the review, we can achieve mental health equilibrium by following these life principles even though we can enhance the quality of life and control the stressful situation during the covid-19 pandemic.

Perform Yoga

Yoga may lead to help them overcome health barriers during the covid-19 pandemic situation. We can start Yoga with opening prayer and mindfulness, i.e., scanning the whole body part mentally, or can say that watch each part of the body at subtler levels by after that, standing postures, sitting postures, prone postures, supine postures and, after that pranayama at last deep relaxation technique which helps to balance our vital parameters such as stamina, respiratory rate, weight, peak expiratory flow rate, etc. by doing these yoga practices we can stay healthy and cope up the covid-19 pandemic situations. Yoga is broadly acknowledged as a prospective treatment protocol for dealing with emotional, physiological, and psychological issues (Sharma et al.,2020/01/01)

Healthy Diet and HABITS

Healthy diet and habits play a major role in our active life as well as health point of view. If we take healthy food, we can balance energy levels and balanced nutrition levels in our body such as vitamins, minerals, proteins, etc. healthy diet may lead to quality of life and a healthy mind. If we eat **Saatvik food**–(Fresh Fruits & Green Vegetables, Milk, Ghee) sattvic food, our mind and thoughts process works positively. If we eat **Raajsik food**–(Onion, Garlic, Spicy Food) and **Taamsik food**–(Egg, meat, fish, baked food), tamasik food, our mind and body react laziness, works negatively. By following a healthy diet, we can cope with or manage the stressful covid19 pandemic situation and improve our healthy life during the pandemic.

Habits

Habits will reshape the way one thinks about progress and success and provides one with the tools and strategies that one needs to transform your habits—whether you are an individual looking to win a covid-19 pandemic situation, an organization looking to reconsider an industry, or an individual looking to renounce smoking, lose weight, pare stress, and achieve long-term success. Good habits for a healthy life can protect us or cope with the covid-19 pandemic. There are washing of hands, Santization, wearing of mark properly and following of social distancing.

Dynamic Schedule

Every day now, Schedule a Timeline for individuals, employees, and Students: Many Individuals are interested in learning how to make a timetable for their daily routine. Making a routine daily timetable is an excellent way to become structured, feel motivated, and encourage you to accomplish the work to the best of your ability. How to Make Time Table for Daily Routine for Individuals, employees, and Students during the Covid-19 Pandemic?

1. Understand Your Learning Style

Follow no one else’s timetable or schedule because everyone has different things to do. Determine your preferred learning style, as some people prefer to learn in the morning while others prefer to learn at night.

2. Maintain a Healthy Work-Life Balance

Divide your time between studies and other daily activities. It is also critical to schedule time for physical activities and studies for students' overall growth and development.

3. Examine Your Progress

Check your progress after a few weeks or months, susceptible on your timetable. Experiment with different timings if your timetable needs to produce the desired results.

4. Make Time for Breaks

It is important to take short breaks between all activities. While it is important to work with dedication and hard work, it is also important to relax and take short breaks. This will help to increase energy and motivate you to work harder. Experts recommend working for 45 minutes and then resting for 15 minutes to avoid discrepancies.

5. Maintain Your Schedule

Maintaining a schedule is just as important as creating one. Making time for social and physical activities and studies is always critical. This extra time must be scheduled into students' daily routines.

Swot Analysis

A SWOT analysis is intended to facilitate a realistic, fact-based, data-driven examination of an individual or organization's strengths and weaknesses, initiatives, or within its industry. Individuals or organizations must maintain the accuracy of the analysis by avoiding preconceived notions or grey areas and instead focusing on real-life contexts. Individuals should use it as a guide, not as a prescription. SWOT analysis plays a very important role in overcoming the pandemic covid19 situations in pandemic situations. SWOT analysis shows our strengths, weakness, opportunity and threats; by converting our weaknesses into strengths and threats, we can achieve a healthy life and cope with the stressful or covid-19 pandemic situation.

We can achieve or fight the covid-19 pandemic situation by adopting the above four principles. Above these principles are research and experience-based; we can say that these dynamic principles and following a busy schedule or intervention can change our lives and protect against autoimmune diseases as well as

enhance our quality of life and reduce anxiety and depression in any stressful situation, whether a covid-19 pandemic situation or any.

Literature Review

Our goal is to present a contextual synthesis of the reviews that are currently accessible, primarily focusing on Yoga for COVID-19. A study that compared the patterns of physical activity among the sexes during the epidemic found that women were significantly more likely to do Yoga and less likely to march or stroll outside. Yoga is one of the self-directed activities that can be used at home to enhance mental health during the pandemic. Nagendra et al. focused on maintaining homeostasis in the body and mind. They provided philosophical relevance of Patanjali's *Pancha-koshas* (five sheaths of existence), *Viparyaya vritti* (false/misinterpretation of a subject), and *Pratipaksha Bhavana* (contrary, mental attitude recommended in yogic literature) to the current situation, in addition to the evidence pointing to a role for Yoga.

Moreover, in the same perspective, Nagarathna et al. covered the difficulties brought on by the pandemic as well as future applications of Yoga for COVID-19 prevention and therapy, including stress management, respiratory function improvement, and immunity. In another review, traditional Yoga knowledge was highlighted to create local and systematic preventative and therapeutic strategies following the known illness course of the SARS coronavirus 2 (SARS-CoV-2). The likely action mechanisms of Yoga and Meditation in battling the current pandemic were well described by Bushell et al. In order to justify and enhance the use of mindfulness and meditation as adjuvant therapy for the management of COVID-19, both local and systemic anti-inflammatory effects of Yoga have been reviewed and further justified an urgent need to research these processes.

Ancient review

अथ योगानुशासनम् ।। योगानुशासनम् 1.1

atha yogAnushAsanam 1.1

Now the discipline of yoga

Meaning

If you are disillusioned, hopeless, and completely receptive to the futility of all needs, if you see your life as meaningless - whatever you have done up to this point has died, and nothing remains in the

future, you are in absolute anguish - what Kierkegaard refers to as anguish. If you are in emotional pain or hardship, not understanding exactly what to do, where to go, whom to convert to, and on the verge of madness, suicide, or death, your entire pattern of life has suddenly become futile. If this moment has arrived, Patanjali asserts, NOW THE YOGA DISCIPLINE. Only now can you comprehend the science and discipline of Yoga (*Yoga: The Alpha and the Omega Vol 3: By OSHO*, 2015).

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ।। 1.2

yogashchittavR^ittinirodhaH .. 1\.2.

Yoga is the cessation of mind

Meaning

You are in Yoga if there is no mind; individuals are not in Yoga when there is a mind. As such, you can perform all the asanas, but if one's mind continues to work and you keep thinking, you are not practicing Yoga. Yoga is a state of mindlessness. You are a perfect yogi if you can be without your mind while performing any posture. It has transpired too many individuals who have never performed anybody's posture, and it has not happened to many people who have done postures for their entire lives (*Yoga: The Alpha and the Omega Vol 3: By OSHO*, 2015).

"*Brahme Muhurthe Uthishtet Swastho raksharthamayushaha*"

(Acarya Vaghbhata)

"Early to bed, early to rise; makes a man healthy, wealthy & wise."

Effects on the body:

Swasthya includes physical well-being in various planes of *Dosha*, *Dhatu* & *Mala*, the *Agni*, while also incorporating *Manas* (psychological plane) & *Atma* (spiritual plane) (*Ayurveda Mysore – Sriranga Ayurveda Chikitsa Mandira – DINACHARYA*, n.d.).

Effects on the mind:

It has an extraordinary impact on cardiac health as *Hrudaya* is the seat of *Manas* & *Brahmi Muhurta* is said to be the best time for introspection & emotional welfare.

Effect on digestion & defecation:

Agni (digestive fire) varies according to *Dina* (day) & *Rutu* (season).

Waking early ensures proper bowel movement, which ensures healthy *Apana Vata*.

Methodology

Literature reviews were searched from many engines such as google scholar, sci-hub, and J-stor searches for special Breathing techniques taken as literature from S-Vyasa Yoga University. This worldwide university serves the nation, and the breathing-based Meditation online program and lifestyle modification module were also searched for in this study.

Results

Yoga and Lifestyle modification can overcome the covid-19 pandemic by challenging, preventing, and managing overcoming among macro level. Especially sectional breathing practice can help to overcome covid-19 challenges.

Discussion

During the COVID-19 pandemic situation, in yoga therapy, the module set of breathing practices, asana, pranayama, and relaxation techniques, i.e., QRT (quick relaxation technique), Deep relaxation technique (DRT), which helps to cope with the stress and also manage the COVID-19 pandemic situation.

Conclusion

As the government guidelines strictly follow social distancing, yoga therapists are also restricted to providing yoga therapy sessions offline as an online platform play the biggest role in helping people through yoga therapy session online programmed, and online counseling session too helped to overcome the covid-19 pandemic during the macro level.

DIVYANSH JAIN
Ph.D. Scholar,
Department of Ashtang Yoga Lakulish Yoga
University Ahmedabad Gujarat
divyanshjn20@gmail.com

J.K. SAWALIA
Professor,
Department of Ashtang Yoga Lakulish Yoga
University Ahmedabad Gujarat

❑ ❑ ❑

Tech-Savvy World of Remote Workers : SWOT Analysis of Stress due to Financial Unawareness

Shubham Dadariya • Mohsina Bano
Swasti Singh • Dr. Meghwant Singh Thakur

In the dynamic modern World of Digitalization, Technology and Development go hand in hand, as the world rapidly changes, it's highly required to pace up with these changes in every field. The connectivity of this world has increased manifolds due to the usage of technology and this world is now a global village resulting in employees from all over the place working in an organization.

Teleworkers are increasing due to technological advancement andthe era's necessity. This technology has made virtual teams and cross-cultural teams possible to work. Remote workers are working in larger numbers all over the world. Although technology has made connectivity easier, human relations are impacted due to distance and lack of personal interaction this creates unawareness of various sorts, leading to stress. Various literature related to the study has been identified and analyzed to know the strain of financial unawareness among remote workers. Our objective is to identify the present scenario of tech-savvy remote workers and their stress levels due to financial unawareness through four key aspects of SWOT analysis. This research article tells us about the impact of technology used by remote workers as beneficial or a threat to generating financial awareness, leading to less stressful circumstances. How remote workers can use technology as an opportunity to reduce stress due to financial unawareness. This analysis can be an efficient and effective way of highlighting the working system of a remote worker towards smooth and fast financial awareness practices and a decline in stress due to the same.

Keywords : Technology, Financial Unawareness, Stress, Remote workers, Digitalisation

Introduction

For the growth of any nation and to boost its economy, financial planning and decision-making area must. Forthe upliftment of financial amplitude in a country, the citizens should possess financial awareness.It becomes a more important aspect for a country like India as it is still developing. India as a nation has seen industrial growth and is having a large number of workers in the service sector. Over the years, the ways of working have changed immensely and the workers have adopted different methods of working, but with these changes and the growing competition, individuals are struggling with various aspects and are dealing with a lot of stress. Organizations are allowing employees to work from home or be a part of their organization while working from home always, concepts like working away from the main offices have increased many folds. (Bhattacharyya) studies that workers in India are inclined towards different methods of working and are ready to work away from the main office space. During the time of the pandemic, it was seen that even the pink-collar workers like people serving in hospitality and teaching have worked from different spaces rather than in office spaces.

With the change of method in working, it becomes critical for the individuals and the organization to pay attention to the financial awareness of the employees. The people in the country believe in saving and even plan their finances for their grandchildren also. This importance of finances increases the importance of financial awareness in their lives. But various individuals still don't know much about finances and are still looking for traditionalways to plan their finances. Thus,whether lack of financial awareness culminates in stress or not is important to understand.

This paper highlights how financial awareness and the presence or absence of stress among the workers, working remotely. The paper will have a SWOT analysis to understand the financial awareness of remote workers leads to stress or not.

Review of Literature

(Ingusci, et al., 2021) studied, the mediating role of job crafting, which was defined as a second-order construct with

different dimensions (growing structural capabilities and rising difficult demands). They also suggested that Companies dealing with change should build a collaborative workplace at the individual and collective levels to incorporate job crafting treatment and enhance workers' personal and organizational resources, which will help them cope with the growing requirements. (M, et al., 2021). Organizational communication is positively connected with self-efficacy and adversely tied with technostress& psycho-physical illnesses, as per Structural Equations Model. Technostress has a positive relationship with psycho-physical problems as a mediator, but self-efficacy has a negative relationship. Both techno-stress and self-efficacy revealed unfavourable relationships between organizational communication and psycho-physical diseases. This study emphasized the possible protective impact of organizational communication in reducing psycho-physical diseases by buffering the effects of techno-stress and enhancing a personalized resource, self-efficacy. (Akiyoshi Shimura1, 2021) defined When controlling for influencing variables such as occupational stresses, social support, and individual intervening factors, this empirical study shows that remote work reduces psychological and physical stress reactions. The impacts of remote work on presenteeism, on the other hand, were minimal, even though full-remote work was shown to have a detrimental influence on low productivity. (B, R, & Thomas, 2021) stated that Stress rates are rising, yet women working at home in IT are unable to take enough time off to reenergize, fearing that they may be fired if they do not put up their best effort and effort. Although women IT personnel are skilled in their work, many are concerned that if the slump continues, they would lose their employment or have their remuneration reduced. (Monica Molino 1Emanuela Ingusci, 2020) stated that techno-stress during the Covid-19 pandemic, according to their findings. Remote working has been widely accepted by workers in both to private and public sectors as an emergency measure, and its use is projected to grow in the future. As a result, the goal of the research was to look into the effect of threat techno stressors, namely tech overload techno invasionand Techcomplexity on two important wellness outcomes, work-family conflict, & behavioral stress, while controlling for remote working. (Jodi Oakman, 2020) analyzed that, both workload and working remotely were identified as forebears of technostress creators in the study, as previously

stated, interventions in working cultures and also in the field of human resources management are required to avoid adverse implications of technology use as well as encourage a positive execution of remote work. (Molino, et al., 2020) defined techno-stresscreators scale's 3-factor structure was verified, and favourable correlations between workload, techno-stressors, work-family stress and psychological stress were noted. The importance of remote working situations has also been investigated. It also provided guidelines for practice in the areas of remote workingand employeewell-being. (Enbuske, 2019) investigated that employee participation when employers implement new digital technology and monitoring technologies in the workplace. Although the workforce's morality is at risk, safety advocates appear to be mostly sidelined from decision-making, strategy, and effect assessments. The findings reveal a pressing need to empower people in the face of digitalization and workplace risks affecting personal integrity. In this perspective, the introduction of digital technologies can be viewed as an opportunity that would strengthen negotiating structures and collective agreements to address major challenges such as changing working practices and work transformation. (Nair, 2019) recommended that companies would minimize specialized workspaces and instead use co-working facilities to save money on co-working space. Jobs that are imbued with innovation and creativity will continue to exist in the future. A source of concern was the possibility that, as a result of the introduction of automated technology, a bigger section of the employees might lose their jobs, resulting in huge unemployment and social strife. Some academics have suggested the implementation of universal basic income to address the socio-economic problem. (Naslund, et al., 2017) considered digital technology has the potential to improve mental health treatment quality and access. In middle and lower-income nations, we examined data about the use of mobile, web, and other distant technologies for such treatment and prevention of mental diseases. The data revealed that online, text messaging, and telephone support treatments had the potential to be beneficial. The evaluations were summed up as new tech to assist clinical care and educate health workers, smartphone tools to facilitate diagnosis and detection of mental disorders, technologies to promote adherence to treatment and assistance recovery, online self-help courses for people with mental illness, and courses to prevent and manage substance misuse.

Objectives

i. To understand the presence or absence of stress among employees working remotely, due to finances.

ii. To objectively understand the financial awareness of employees through SWOT analysis.

Research Methodology

After studying the available literature, the stress of employees working remotely was analyzed due to finances. The understanding of literature provided in journals, websites, and blogs is a SWOT analysisof how this situation can be dealt with from the point of view of organizations and individuals.

Analysis and Discussion

This paper will highlight how financial awareness and the presence or absence of stress among the workers, working remotely. Compressive SWOT analysis of remote working is stated by (Karunarathne, 2021) which enabled understandingof the challenges faced by such workers. The study covered the SWOT analysis as described below to understand the financial awareness of remote workers leads to stress or not.

Strengths

- After considering the various literature,it has been found that there arefavorable correlations amongwork-family stress, work-load, techno-stressors,and psychological stress. It is found that Digital technology holds the capability of improving the mental health, treatment quality and access among the employees and Employees will enhance greater interest in generating their financial awareness, thinking they are working away.

Weaknesses

- The detrimental consequences of tech-savvy remote working, such as the propensity to work long hours, complexity collaborating with co-workers, propensity for higher work intensity, restrictions with setting up and running technology, difficulties in accessing timely information due to network issues, difficulty organizing hours, detrimental consequences on subjective well-being, different time zone, difficulty in controlling and providing instant feedback, Reduced social contact, deficiency in learning capabilities due to

monotonous way of working, Resistance to change towards work pattern. Significantly lowered social contact, loneliness, decaying self-esteem & motivation, are identified and have a financial impact onstress levels. It can also be analyzed that Technostress has a negative relationship with self-efficacy. Interventions of diversified cultures and technology, make it difficult to execute programs for remote workers. Deficiency in learning capabilities due to the monotonous way of working.there is resistance to change in work patterns which makes learning quite difficult for financial awareness.

Opportunities

- It is found that after reviewingthe literature,building a collaborative workplace to educate the employees as per their requirements.Possibility of working at home during most productive hours, application in terms of work location at home, time savings due to decreased commute time, Organizations can have creative plans to make employees aware of such plans.Advancedframeworks could be formed by organizations regarding financial awareness as there would be an increase in remote workers due to technological advancement.Organizations can have creative plans to make employees aware of such plans.Workers to increase their awareness would look for more avenues to increase their knowledge. Enriched work-life balance and upgraded new technical and self-management learning skills for investing in finance are required.

Threats

The problems of remote working found in the literature that are more externaland are encountered over time are grouped under the 'threats'. Lack of technical knowledge, rigid behavior of senior employees, and Frequent Changes in financial policies by the government create resistance. Lack of job security and pressure to learn new technology leads to financial distraction. Less visibility in performance or the fairness of performance review labor market in equalities, incapability to differentiate work and home, and lack of in stitutional & administrator support, in the longrun, make employees stressed also they do not payattention and learn about financial awareness. Women are worried about-facing slump conditions and are unable to manage their finances. Cost-cutting

and specialized workplaces might create unemployment resulting in financial crises for such workers. Need to empower people in the face of digitalization in terms of financial awareness. There might be a challenge to create awareness among workers involved in home-based working and is unskilled or not well educated. Lack of job security leads to financial distraction, stress, and Incompetency in pace up with the latest technology were also found.

SWOT Analysis

Strengths

- Favourable correlations between workload, techno-stressors, work-family stress, and psychological stress were noted.
- Digital technology has the potential to improve mental health treatment quality and access
- Employees will show greater interest in generating their financial awareness, thinking they are working away.
- More contact between workers and employers will create better bonds through financial awareness programs

Weakness

- Techno-stress has a negative relationship with self-efficacy.
- interventions of diversified cultures and technology, make it difficult to execute programs for remote workers
- Deficiency in learning capabilities due to monotonous way of working.
- Resistance to change towards work pattern makes learning difficult towards financial awareness.

Opportunities

- Building a collaborative workplace to educate the employees as per their requirements.
- Advance framework could be formed by organizations regarding financial awareness as there would be an increase in remote workers due to technological advancement.

Threats

- Women are worried about-facing slump conditions and are unable to manage their finances.
- Cost-cutting and specialized workplaces might create unemployment resulting in financial crises for such workers.

• Organizations can have creative plans to make employees aware of such plans. • Workers to increase their awareness would look for more avenues to increase their knowledge. • Upgrade and work on new technologiesand self-manage-ment learning skills for investing finances.	• Need to empower people in the face of digitalization in terms of financial awareness. • There might be a challenge to create awareness among workers involved in home-based working and is unskilled or not well educated. • Lack of job security leads to financial distraction • Incompetency to pace up

Recommendation and Future Direction

Governments and organizations should collaborate and frame policies according to the need of remote workers considering their stress areas related to finance. A research study can be done using a survey method to know the financial literacy of remote workers and know the reasonsfor the stress, this will help organizations to frame policy as per the need of specific industries in terms of financial awareness with the effective application of technology.

Conclusion

Through the analysis of the current literature, the goal of the review study is to identify SWOT analysis connected with organizations adopting the approach of working effectively remotely. The study attempt resulted in the identification of four key aspects of the selected and related literature and stated that, to enable future strategic management studies of remote working/ work from home and assist to know stress levels arising out offinance concerned. Overall development of employees through financial awareness initiatives creates long-term benefits of the gained financial knowledge and will help to manage the stress of a remote workforceeven after leaving the organization.

Acknowledgment: This paper is largely an outcome of research sponsored by the Indian Council of Social Science Research (ICSSR). However, the responsibility for the facts stated, opinions expressed, and the conclusions drawn is entire that on us.

References

Akiyoshi Shimura1, 2. K. (2021). Remote Work Decreases Psychological and Physical Stress Responses, but Full-Remote Work Increases Presenteeism.

B, S., R, M., & Thomas, A. A. (2021, June). An Investigation of the Impact of Occupational Stress on Mental health of remote working women IT Professionals in Urban Bangalore, India. *Journal of International Women's Studies, 22*(6).

Bhattacharyya, S. J. (n.d.). *Work from home: Understanding the gaps in India's regulatory framework*. (The Times of India) Retrieved 4 19, 2022, from https://timesofindia.indiatimes.com/blogs/voices/work-from-home-understanding-the-gaps-in-indias-regulatory-framework/

Enbuske, A. S. (2019, july 17). Digitalisation, work environment and personal integrity at work. *Transfer: European Review of Labour and Research, 25*(2), 235-242. doi:https://doi.org/10.1177/1024258919851928

Ingusci, E., Signore, F., Giancaspro, M. L., Manuti, A., Molino, M, . . . & Cortese, C. G. (2021). Ingusci, E., Signore, F., Giancaspro, M. L., Manuti, A., Molino, M., Russo, V., Zito, M., & Cortese, C. G. (2021). Workload, Techno Overload, and Behavioral Stress During COVID-19 Emergency: The Role of Job Crafting in Remote Workers. *Frontiers in psychology*.

Jodi Oakman, N. K. (2020, Nov). A rapid review of mental and physical health effects of working at home: how do we optimise health?

Karunarathne, P. (2021, Aug). A SWOT Analysis of Remote Working Based on Review of Literature. *International Journal of Business, Technology, and Organizational Behavior, 1*.

M, Z., E, I., CG, C., ML, G., A, M., M, M., . . . V, R. (2021). Does the End Justify the Means? The Role of Organizational Communication among Work-from-Home Employees during the COVID-19

Pandemic. *INTERNATIONAL JOURNAL OF ENVIRONMENTAL RESEARCH AND PUBLIC HEALTH*.

Molino, M., Ingusci, E., Signore, F., Manuti, A., Giancaspro, M. L., Russo, V., . . . Cortese, a. C. (2020). Wellbeing Costs of Technology Use during Covid-19 Remote Working: An Investigation Using the Italian Translation of the Technostress Creators Scale. *Sustainability, MDPI, 12*(15).

Monica Molino 1 Emanuela Ingusci, F. S. (2020). Wellbeing Costs of Technology Use during Covid-19 Remote Working: An Investigation Using the Italian,Translation of the Technostress Creators Scale. *MDPI*.

Nair, S. S. (2019). Explicating the future of work: perspectives from India. *Journal of Management*, 175-194.

Naslund, J. A., Aschbrenner, K. A., Araya, R., Marsch, L. A., Unutzer, J. U., Patel, V., & Bar. (2017). Digital technology for treating and preventing mental disorders in low-income and middle-income countries: a narrative review of the literature. *LANCET PSYCHIATRY*.

Shubham Dadariya
Research Scholar,
FMS Dept, Dr. Harisingh Gour
University, Sagar
shubhamdadariya@yahoo.com

Mohsina Bano
ICSSR Research Doctoral Fellow
Research Scholar,
FMS Dept., Dr. HarisinghGour
University, Sagar
mohsinakhan38@gmail.com

Swasti Singh
ICSSR Research
Doctoral Fellow
Research Scholar,
FMS Dept, Dr. HarisinghGour
University, Sagar
shubhi_2390@yahoo.com

Dr. Meghwant Singh Thakur
Assistant Professor
School of Commerce & Management,
Dr. Harisingh Gour
University, Sagar
meghwant@gmail.com

❑ ❑ ❑

Inscriptions and Insights : The Embodiment of Shah Jahan's Faith and Spirituality in Michael Calabria's The Language of the Taj Mahal: Islam, Prayer and the Religion of Shah Jahan

• **Prof. Khurshid Khan**

Love assumes a central and primary role in most discussions of the Taj Mahal, academic or otherwise. However, the object of love that the Taj Mahal represents shifts. In popular memory, the Funerary structure is celebrated as a monument of romantic love, which focus on the romantic impulses of the emperor, who conceived and built the Taj as a deep expression of his love for his wife Arjumand Banu Begum / Mumtaz Mahal ("the Chosen one of the Palace"). Scholarly writings see the commissioning of Taj Mahal stemming from Shah Jahan's love for architecture. These studies emphasize the study of its architectural features. Michael D. Calabria in his book, **The Language of the Taj Mahal : Islam, Prayer and the Religion of Shah Jahan,** published by I.B. Tauris, London (2022), studies the monument through a different object of love i.e., as "an eloquent testimony" to the emperor's love for his faith. In the authors' words "a faith he (Shah Jahan 1628-66) approached sincerely but lived imperfectly".

The work draws attention to the study of the Qur'ānic verses calligraphed on various parts- from the gateways to the graves in the basement- of the Taj. The calligraphic engravings on the Taj are generally seen as merely decorative-used for beautification and barely studied, even though it is a vital part of

the monument.[1] Generally, calligraphy on artefacts is ignored even though it is a key to comprehending meanings assigned to objects on which it is rendered. In the work, Calabria has attempted a detailed study of the inscriptional programme of the Taj and indicated the reasons and purpose with which the 241 Qur'ānic verses were chosen to be inscribed on the monument.

Along with identifying, translating and commenting upon the Qur'ānic verses, he has discussed the significance behind their placement on certain parts of the monument. While the Architect Ustad Isa and the Emperor have been discussed at length elsewhere, Calabria finds another author for this famous monument in the persona of Amanat Khan-the calligrapher whose name is also inscribed on the tomb. The author combs through sources to demonstrate the calligrapher's role in selecting Qur'ānic verses with Shah Jahan. Thus, ably demonstrating that the Taj is more than a mute tomb complex and presents it as an embodiment of the way Shah Jahan interpreted Islam for himself, and the obligations it entailed on him as a ruler towards humanity. The inscriptions denote that Shah Jahan believed that faith should be expressed in one's actions and not in prayer alone. For him 'caring for the poor, the orphaned, the hungry and the imprisoned is a vital aspect of religion. And so is "compassionate and consistent" dispensation of justice. (p.216)

The work indicates that the façade through which one enters the Taj Mahal, that is the south gate, the chapter "The Daybreak" (*sūrah al-Fajr*) from the Qur'ān is inscribed to remind humanity of how it has abandoned its concern for the orphan and the needy. Further it mentions the day of judgement and the fate that would befall the greedy on that day. When one leaves the structure through the same gate on its rare side is inscribed the Qur'ānic chapter "Morning Light" (*sūrah al-Duhā*). The verses in this chapter similarly exhort humanity to care for the poor and the orphans. Calabria argues that the two chapters on the front and rear

1. The author has indicated that it is true that the Qur'ânic verses inscribed on the Taj are so stylized that it is difficult to read. However, a person familiar with the sacred text on reading of a few initial lines can identify the verse and read them from the Qur'an.

side of the entrance gate carry the “ultimate message of the Taj” i.e., to care for the marginalized.

Calabria further argues that the chapter, *Yā Sīn* (the heart of the Quran) is inscribed on the surface of each of the four *pishtaqs* (tall gateways) of the main mausoleum. He puts forth that *Yā Sīn* is engraved on the tomb not solely because of its associations with the dying and the dead but because it embodies the most essential teachings of the Qur’ān. The author examines the eschatological connection between the chapter *al-Fajr* inscribed on the main entrance gate and *Yā Sīn* on the mausoleum’s four gates. He then posits that both chapters remind the faithful “to return” to God. For Calabria, the other chapters inscribed on the doorways to the tomb, address the fundamental question, “where is humanity headed to?” and he perceives the Qur’ānic verses as an architectural instrument to persuade humankind to heed God’s (and his Prophet’s) message while journeying towards the divine. The Taj, when viewed through this significant calligraphic frame, allows Calabria to hail the structure as “a monumental Qur’ān”.

Calabria arrives at such conclusions, among others, through fastidious scrutiny of Qur’ānic chapters and verses engraved on the Taj, he cross references those inscriptions from other literary texts and the sayings of the prophet (*hadīs*). For instance, Calabria demonstrates, that as the sky splits open to reveal the light of the morning sun, the Taj too appears in all its whiteness before the visitors as the light of the dawn. He invites attention to the fact that *sūrah al-Fajr* (on the entrance) and *sūrah al-Duhā* (on the exit), both refer to dawn. The calligraphic reference to daybreak, for Calabria, emphasises that just as the sky splits open at sunrise to gradually reveal the light of the day after “the darkness of light” as does death lead to a new life.

Calabria also submits that the entire monument invokes the movement of the sun in the sky, and when viewed in that light, the inscriptions reveal that the figure eight in funerary architecture is not just an invocation of paradise but a reference to the day of resurrection as well. Calabria places such semiotic insights from the architecture of the Taj Mahal not as an immemorial and invariant Qur’ānic truth, but rather he contextualises the chosen Qur’ānic verses in their significance for Shah Jahan as a 17th Century South Asian monarch. For instance, demonstrating the

contextual relevance of the chapters of "The Daybreak" (*sūrah al-Fajr)* and *al-Duhā* in the seventeenth century, Calabria writes:

"In these verses Shah Jahan saw tragic relevance to his own time for early in his reign-*even as he grieved Mumtaz's death-the subcontinent suffered …the great famine of 1630-32.*"

On account of the above, three million perished in Gujarat and one million in Ahmednagar. There were famines in Punjab in 1636-37 and in Kashmir in 1642 leading to huge loss of lives" (p.70). Hence, he suggests that such suffering moved Shah Jahan to turn to the scripture to remind the wealthy to care for the needy.

The contextual analysis of these Qur'ānic verses relating to the funerary structure could not have been possible without the author's serious engagement with the **language and syntax of the Qur'ān and the hadīs.** Here Calabria's previous scholarship on religion and spirituality aids his detailed analysis of the emperor's faith displayed on the funerary structure. He complements his argument for a "monumental Qur'ān" by referring to the literary texts of that period and other architectural monuments like mosques and other tombs complexes of the Sultanate and the Mughal era. Such comparisons facilitated the author to mention the contributions of Mumtaz Mahal in administrative and judicial matters. This is a welcome change from the fare that relegates her to the position of a mute muse for the monument.

Scholars engaging with religious orientations of Mughal rulers perceive administrative policy as a barometer for their faith. Because of such a perspective, they categorize the rulers as either liberal or orthodox political entities. This view conceives religion from without where conformity to ritualistic elements of faith is considered as orthodox and their non-observance as liberalism. For the Mughals, such discussions place Akbar and Aurangzeb as the polar ends of the barometer. Calabria takes a more circumspect decision here, instead of placing the emperors on a sliding scale of adherence to faith, he places them on a continuum where the actions of one influence and direct the other.

Calabria draws attention to the nature of impact Akbar had on Shah Jahan's religion and spirituality. He examines literary texts, albums of paintings and calligraphy, the poetry inscribed on some of the paintings and the emperor's inscriptions on his books from

his library. He provides an account of Shah Jahan's affiliations with Sufis and the spiritual discussions he had with Sufi Shaykhs like Miyan Mir (c.1550-1635), Mullah Shah Badakhshi, Mir Sayyid Muhammad Qannauji and Chishtî Shaykh Muhibbullah of Allahabad (1587-1648). Calabria uses such associations to argue that the tradition of positioning oneself as the temporal and spiritual head of the state initiated by Akbar was carried forth by Jahangir and Shah Jahan as well. This is a marked departure from writings which project Shah Jahan as an orthodox ruler. The work ends poignantly, with a detailed account of Aurangzeb deposing his father and Shah Jahan's burial next to Mumtaz in the Taj Mahal. Calabria has presented a text that is archivally rigorous and semiotically creative, which exhorts other scholars to peer through into the Calligraphic and con-textual elements that secure meanings for the Taj. Calabria's text provides a new dimension to the historical study of the era.

Submitted for consideration for publication:

Date: 17/7/23.

Prof. Khurshid Khan
Department of History
Shivaji College, University of Delhi

❑ ❑ ❑

पाली जिले में पाषाणकालीन स्थलों की खोज : एक सर्वेक्षण

कल्पेश प्रताप सिंह कनोज • चिंतन ठाकर

तमेघ पंवार • पुनाराम पटेल

सारांश : *राजस्थान में हुए व्यापक शोध के परिणामस्वरूप कई प्रागैतिहासिक स्थलों की खोज हुई है। यह अध्ययन राजस्थान के पाली जिले के असर्वेक्षित क्षेत्र से संबंधित है, जो थार रेगिस्तान के किनारे पर स्थित है। यह मेड़ों, निचली पहाड़ियों और नदी घाटियों से बना है। अरावली के इस लहरदार भूगोल में, अरावली की सबसे ऊंची चोटी गुरु शिखर भी इसी क्षेत्र में स्थित है। जवाई इस क्षेत्र की प्रमुख नदी है। यह शोध-पत्र पाली जिले में किये गए पुरातात्विक सर्वेक्षण की जांच रिपोर्ट को प्रस्तुत करता है। सर्वेक्षण में खोजे गए पुरास्थल से प्राप्त औजार कनाश्म चट्टानों की क्षरित मिट्टी के छितरे धरातल पर प्राप्त हुए है। सर्वेक्षण में कुल छह पुरस्थलों की खोज की गयी है जिनका विवरण इस शोध-पत्र में प्रस्तुत है।*

परिचय :

पाली जिला लगभग 24° 45' और 26° 29' उत्तर अक्षांश और 72° 47' और 74° 18' पूर्व देशांतर के बीच स्थित है। इसकी उत्तर से दक्षिण की अधिकतम लंबाई 192 किमी और पूर्व से पश्चिम की अधिकतम चौड़ाई 166 किमी. है। उत्तर में जोधपुर और नागौर, उत्तर-पूर्व में अजमेर, दक्षिण-पूर्व में उदयपुर, दक्षिण-पश्चिम और पश्चिम में क्रमशः सिरोही और जालोर, और पश्चिम में इसका शीर्ष बाड़मेर के त्रि-जंक्शन को छूता है, जालौर और जोधपुर जिले, इसकी सीमा राजस्थान के छह जिलों के साथ लगती है।

इस क्षेत्र में आमतौर पर छिटपुट पहाड़ियों के साथ लहरदार मैदान हैं, एवं

यह एक असमान त्रिकोण का रूप देते हैं और इसे उप-पर्वतीय के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है। जिले की सबसे ऊंची चोटी 1,099 मीटर ऊंची अरावली चोटी है, जो जिले के पूर्वी किनारे के साथ-साथ दक्षिण-पश्चिम से उत्तर-पूर्व तक फैली हुई है। जिले की नदियाँ मुख्य रूप से पूर्व से पश्चिम की ओर जाती हैं। मैदान आमतौर पर पूर्व से पश्चिम ढलान के साथ 180 मीटर से 500 मीटर तक की ऊंचाई में होते हैं। पाली 212 मीटर ऊंचाई पर स्थित है।

अरावली के अपवाद के साथ जिले में कोई बड़ी पहाड़ियाँ नहीं हैं, जो बाली और देसुरी तहसीलों में दक्षिण-पश्चिम से उत्तर-पूर्व तक फैली हुई हैं। मनियारी, बाला, सोरावास, केरला, बूमदरा, चोटेला, भौरी, भाखरीवाला, और हेमावास (पाली तहसील में) और माफ़जी-की-भाकरी, नरसिंहजी-की-भाकरी, खेमबोल-की-भाकरी, और नेकम-की-भाकरी (में) सोजत तहसील) (सोजत तहसील में)। जैतारण उपमंडल में बार, निमाज और रास के गांव इसी तरह बिखरी हुई पहाड़ियों से भरे हुए हैं।

पाली जिला पुरातत्व की दृष्टी से पश्चिमी राजस्थान मुख्यतया थार के किनारे में स्थित प्राचीन मानवों के बसासत को समझने के लिए अतीव महत्वपूर्ण है। पाषाणकाल से संबंधित इस जिले में कई कार्य किये गए है एवं कई विद्वानों ने इस जिले में पाषाणकालीन पुरस्थलों की खोज की है।

शुष्क क्षेत्र में प्रारंभिक प्रागैतिहासिक स्थलों का पहला व्यवस्थित क्षेत्र अध्ययन वर्ष 1966-1967 में मिश्रा और लेशनिक द्वारा उत्तर गुजरात और दक्षिण राजस्थान में किया गया था, साथ ही वीरेन्द्र नाथ मिश्रा द्वारा 1958 में मध्य लूनी नदी की घाटी एवं इसकी सहायक नदियों में भी पुरातात्विक सर्वेक्षण का कार्य किया गया था। वि.एन. मिश्रा एवं अल्चिन को लूनी नदी घाटी में ख़ास कर पाली जिले के कई हिस्सों में पाषाण कालीन पुरस्थलों को खोजने का श्रेय जाता है।

20वीं शताब्दी की शुरुआत में थार के उत्तरी भाग में घग्गर नदी के पुरा-प्रवाह के साथ कई प्रोटो-ऐतिहासिक और प्रारंभिक ऐतिहासिक स्थलों के अस्तित्व के कारण थार रेगिस्तान एवं राजस्थान को बहुत युवा माना जाता था (राजगुरु *et al.*, 2014, p. 64)।

इसके बाद हेकेट से लेकर अभी तक कई विद्वानों (खरकवाल, 2016; गोधल मीणा, 2017; चेटर्जी *et al.*, 2017; ठाकर, तलेसरा, *et al.*, 2019; ठाकर, पटेल, *et al.*, 2019; ब्लिंकहॉर्न, 2013, 2018, 2021;

मिश्राvi.एन., 1967; मिश्राvi.एन. *et al.*, 1980; मिश्रावी.एन., 1958, 1964, 1968, 1973; मिश्रावी.एन. & नागर, *n.d.*; मिश्राशेइला, 2001; राजगुरु *et al.*, 2014), एस.आर.राव (आई.ए.आर., 1954; इंडियन आर्कीयोलोजिकल रिव्यु 1956-57, 1957) (धीर & सिंघवी, 2012) इत्यादि सभी विद्वानों ने राजस्थान के सभी हिस्सों में पाषाणकालीन सर्वेक्षण करके बहुत से पाषाणकालीन स्थलों की खोज की।

लूनी घाटी को उसी तरह एक मैदान के रूप में माना जा सकता है जैसे सिंधु या गंगा के जलोढ़ मैदान पर्यवेक्षकों को घाटियों के बजाय मैदानों के रूप में देखते हैं। लूनी के मामले में, नदी तल बमुश्किल कटा हुआ निक्षेपण नियम है, और नदी कम शुष्क स्थानों से पूर्व की ओर रेत और बजरी से भरी हुई है।

वीरेन्द्र नाथ मिश्र के द्वारा अपने शोध प्रबंध के कार्य को पूर्ण करने हेतु लूनी नदी घाटी के सर्वेक्षण के दौरान पाली जिले में पाषाणकालीन विभिन्न संस्कृतिक चरणों के पुरस्थलों का पता लगाया। हालांकि यह सभी स्थल लूनी नदी एवं इसकी सहायक नदियों के पास स्थित थे। इन सभी पाषाण कालीन पुरास्थल से औजारों की प्राप्ति वीरेन्द्र नाथ मिश्र जी को लूनी की सहायक नदियों यथा बंदी, रेरिया इत्यादि नदियों के तल से प्राप्त किये गए। साठ के दशक से पाषाण युग पुरातत्व से संबंधित पिछले दशकों में बहुत से विद्वानों ने काम किया है।

राजस्थान के पश्चिमी एवं दक्षिण-पश्चिम हिस्से में स्थित थार के मरुस्थल पर पाषाण काल के कालखंड में उत्खनन का कार्य भी प्रभावी तौर पर हुआ है। इन उत्खनित स्थलों में डीडवाना, सिंघी-तलाव, जायल, 16 आर. (मिश्राvi.एन. *et al.*, 1980) प्रमुख है। इन स्थलों के उत्खनन, बहु-विषयक शोध एवं व्यवस्थित रूप से किये गए सर्वेक्षणों से राजस्थान के पश्चिमी हिस्से में स्थित मरुस्थल के व्यवस्थित कालक्रम का अनुमान लगाया जा सका है।

पाली जिले की महत्वपूर्ण पाषाण कालीन स्थलों में 'मोगरा' (*Allchin et al.*, 1978, *P*. 180) का नाम प्रमुख है जिसे सत्तर के दशक में अल्चिन के द्वारा खोजा गया। इस प्रमुख पाषाण कालीन स्थल के अलावा भी पाली एवं जोधपुर जिले की सीमा में अल्चिन के द्वारा कई पाषाणकालीन पुरास्थलों की खोज की गयी। इस सभी स्थलों में गुरहा, सार, खेरला इत्यादि पुरास्थल प्रमुख है।

प्राविधि :

सर्वेक्षण को आरम्भ करने से पूर्व की तैयारी में इस क्षेत्र में किये गए पूर्व

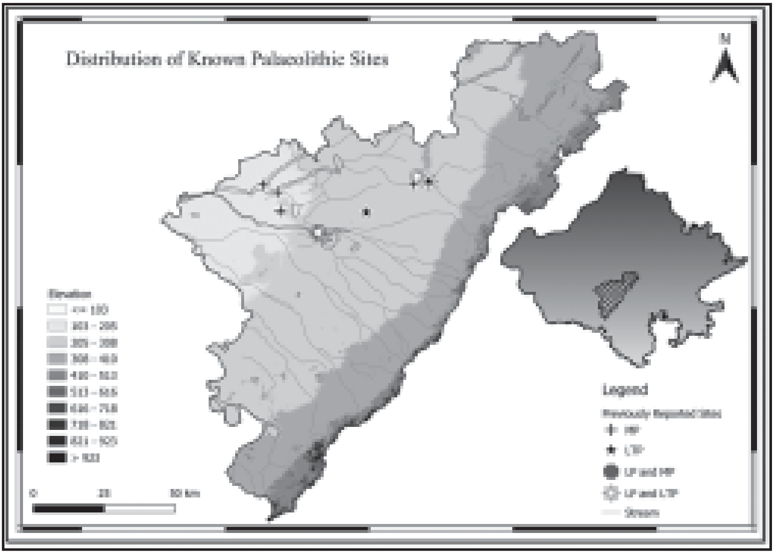

पाली जिले के पाषणकालीन स्थल

के कार्यों को जांचने हेतु साहित्यिक स्रोतों को एकत्रित किया गया। इन सभी साहित्यिक स्रोतों को इकट्ठा करने हेतु जनार्दन राय नागर राजस्थान विद्यापीठ के पुस्तकालय की सहायता ली गयी। इन सभी साहित्यिक स्रोतों को पुस्तकालय में ढूंढ़ा गया एवं उन्हें एकत्रित किया गया। विभिन्न संस्कृतियों व समयकालों से संबद्ध सभी प्रकाशित सामग्रियों को सारणीबद्ध करने के पश्चात् सर्वेक्षण की योजना बनाई गयी कि कहाँ सर्वेक्षण किया जा चुका है व कहाँ किया जाना चाहिए।

सर्वेक्षण में जाने से पूर्व कुछ मुख्य उपकरणों को प्रयोग में लाया गया जिसका विवरण इस प्रकार है—

1. जी. पी. एस., 2. डिजीटल केमरा, 3. कम्पास (दिशासूचक यंत्र), 4. टोपोशीट्स, 5. साधारण नक्शे व रोड एटलस, 6. टेप (फीता), 7. प्लास्टिक बॉक्स, 8. चाकू, 9. करनी, 10. रस्सी, 11. धागा, 12. कैंची, 13. टार्च, 14. मोमबत्ती, 15. रूई, 16. वाटर प्रूफ पॉलिथिन की थैलियाँ, 17. साधारण पॉलिथिन की थैलियाँ, 18. पारदर्शी पॉलिथिन व प्लास्टिक शीट्स, 19. मृदपात्रों हेतु कपड़े के थैले (पॉट्री बेग्ज), 20. स्टेशनरी (पेन, मार्कर, परमानेन्ट मार्कर, पेन्सिल, स्केल, रबर, डायरी, ग्राफ बुक आदि), 21. अन्य सामग्री।

सर्वेक्षण करने हेतु सबसे पहले तो टोपोशीट्स का प्रयोग किया गया एवं पूरे भू-भाग का और बारीकी से अध्ययन करने के लिए गूगल अर्थ सॉफ्टवेयर का प्रयोग किया गया। इस सॉफ्टवेयर के माध्यम से नदियों एवं अन्य जल-स्रोतों के पास के स्थलों का बारीकी से मुआयना किया गया एवं सर्वेक्षण के दौरान भी इस सॉफ्टवेयर का प्रयोग करके संभावित क्षेत्रों तक पहुंचने में सहायता प्राप्त की गयी। गूगल अर्थ के अलावा कुछ अन्य सॉफ्टवेयरों का भी प्रयोग किया गया जिनमें 'क्यूजीआईएस' एक प्रमुख सॉफ्टवेयर है।

पाली जिले में सर्वेक्षण करने हेतु कई प्रकार की अन्य प्रविधियों को भी काम में लिया गया है। इस शोध प्रबंध को पूर्ण करने हेतु मुख्यतया लूनी, जवाई एवं इसकी सहायक नदियों एवं नालों के आस-पास के क्षेत्रों को सर्वेक्षित किया गया। इस सर्वेक्षण हेतु 'हीरो होंडा' एवं मारुती ८०० वाहनों को प्रयोग में लाया गया।

प्रथम सीजन सितम्बर 2022 से नवम्बर 2022 का था जिसके अंतर्गत सर्वप्रथम इस पूरे क्षेत्र के भू-आकृति स्वरूप को समझने के लिए केवल सामान्य सर्वेक्षण किया गया साथ ही उन जिन स्थलों को पहले के सीजन में चिन्हित किया गया था उन जगहों पर जाकर पुरास्थलों की खोज की गयी।

परिणाम : पाषाणकालीन पुरास्थल :

पूर्व में मिश्राजी के द्वारा खोजे गए पुरास्थलों पर जाने का भी प्रयास किया गया ताकि स्थल के सन्दर्भ के विषय में दृष्टि स्पष्ट की जा सकें। मिश्रा जी के द्वारा लिखी गयी पुस्तक में दिए गए स्थलों के वर्णनानुसार कई पुरास्थलों की अवस्थति अब पहले जैसी नहीं रह गयी है एवं कितने ही पुरास्थल अब आधुनिक अतिक्रमण के कारण पूर्ण रूप से नष्ट भी हो चुके है।

रेरिया, जवाई एवं बांदी नदी पर जिन स्थलों की खोज की गयी थी वे भी अब आधुनिक खनन जिनमें खासतौर पर बजरी एवं मुरम के खनन के कारण ये नष्ट हो चुके है। अभी भी ऐसी कई जगह है जो की मानवीय परिप्रेक्ष की दृष्टि से पूर्ण रूप से दूर है एवं इन स्थलों को अभी खोजा जाना शेष है।

अपने इस सर्वेक्षण में एक मात्र स्थान जो कि वर्ष 2018 में डॉ. चिंतन ठाकर के द्वारा चोटिला स्थित ॐ बन्ना मंदिर से 4 कि.मी. दक्षिण में खोजा

चोटिला पुरास्थल का दृश्य एवं वहां से प्राप्त औजार

गया था उसी स्थल पर पुनः जाया गया एवं उस स्थल से पुनः व्यवस्थित तरीके से सेम्पलस को एकत्रित किया गया। इस स्थल से प्राप्त औजारों में फ्लुटेड कोर, स्क्रेपर, फ्लैक टूल्स, समान्तर भुजाओं वाली ब्लेड्स, फ्लेक्स इत्यादि उपकारों को एकत्रित किया गया। ये सभी औजार चर्ट पत्थर पर बने हुए है।

सर्वेक्षण के दौरान खोजे गए पाषाणकालीन पुरास्थल :

चामुंडेरी : यह स्थल पाली जिले के चामुंडेरी ग्राम पंचायत से 300 मीटर

चामुंडेरी पुरास्थल का दृश्य एवं स्थल से खोजे गए

 ISSN 2278-4632 जनवरी-जून 2023

दक्षिण-पश्चिम में स्थित है। यह स्थल कनाश्म चट्टानों के छोटे-छोटे आवरणों में फैला हुआ है (देखे चित्र 5)। इन्हीं कनाश्म चट्टानों के क्षरित धरातल पर पाषाणकालीन औजारों को खोजा गया। यहाँ से प्राप्त औजारों में फ्लुतेड कोर, फलैक्स, स्क्रेपर्स एवं पत्थर के छिलकों पर बने उपकरणों की को खोजा गया। यहाँ से प्राप्त औजार क्रमशः क्वार्टज़ एवं चर्ट पत्थरों पर बने है।

पाषाणकालीन औजार

चिमनपुरा : यह स्थल पाली जिले के चामुंडेरी ग्राम से 3 कि.मी. उत्तर-पूर्व में स्थित है (देखे चित्र)। यहाँ से प्राप्त औजारों में फ्लुतेड कोर, फलैक्स, स्क्रेपर्स एवं पत्थर के छिलकों पर बने उपकरणों को खोजा गया। यहाँ से प्राप्त औजार क्रमशः क्वार्टज़ एवं चर्ट पत्थरों पर बने है।

चिमनपुरा पुरास्थल का दृश्य एवं स्थल से खोजे गए औजार

लालपुरा : यह स्थल पाली जिले के चामुंडेरी ग्राम से पांच कि.मी. उत्तर-पूर्व में स्थित (देखे चित्र) है। यहाँ से प्राप्त औजारों में कोर, फलैक्स, स्क्रेपर्स, नोच एवं पत्थर के छिलकों पर बने उपकरणों की को खोजा गया। यहाँ से प्राप्त औजार क्वार्टज़ एवं पत्थरों पर बने है।

लालपुरा पुरास्थल का दृश्य

कोठार : यह स्थल पाली जिले के कोठार ग्राम पंचायत से एक कि.मी. कि.मी. उत्तर-पश्चिम में स्थित है (देखे चित्र)। यह पाली जिले का अब तक का खोजा गया सबसे बड़ा एवं सबसे अधिक औजार घनत्व वाला स्थल है। यहाँ से प्राप्त औजारों में फ्लुटेड कोर, फलैक्स, स्क्रेपर्स एवं पत्थर के छिलकों पर बने उपकरणों की को खोजा गया। यहाँ से प्राप्त औजार क्रमशः क्वार्टज़, रायोलाइट एवं चर्ट पत्थरों पर बने है। इस स्थल से सिलबट्टे एवं हेमर स्टोन भी काफी मात्रा में खोजे गए है। इस स्थल पर एक बड़ा शैलाश्रय भी बना हुआ है जिस पर गुहा-चित्रों का अंकन किया गया है।

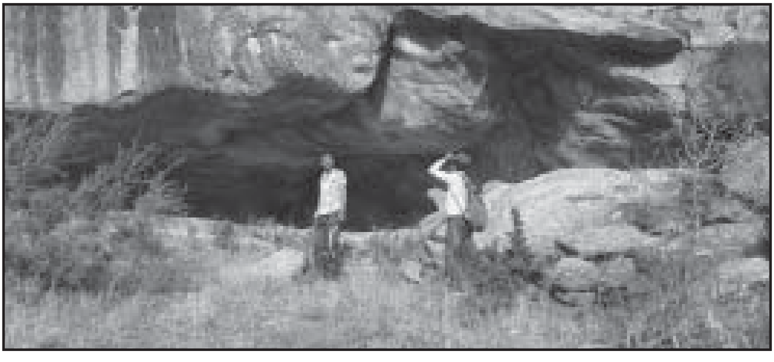

कोठार पुरास्थल का दृश्य

 ISSN 2278-4632 जनवरी-जून 2023

जवाई बाँध : यह स्थल पाली जिले के जवाई बाँध के एरिनपूरा छावनी के पार्श्व भाग में स्थित है (देखे चित्र)। यहाँ से भी काफी मात्रा में पाषाण-कालीन उपकरणों की खोज की गयी है। यहाँ से प्राप्त औजारों में फ्लुतेड कोर, फलैक्स, स्क्रेपर्स एवं पत्थर के छिलकों पर बने उपकरणों की को खोजा गया। यहाँ से प्राप्त औजार क्रमशः क्वार्टज़, रायोलाइट एवं चर्ट पत्थरों पर बने है। इस स्थल से सिलबट्टे एवं हेमर स्टोन भी काफी मात्रा में खोजे गए है।

जवाई बाँध पुरास्थल का दृश्य

दुदनी : यह स्थल जवाई बाँध के दक्षिण-पूर्व में लगभग 3 कि.मी. की दूरी पर स्थित है। कनाश्म चट्टानों की तलहटी के समीप के धरातल पर ग्रेनाइट के कच्चे माल पर बनी हस्तकुल्हाड़ी, फ्लेक्स आदि को खोजा गया। (देखे चित्र)।

दुदनी पुरास्थल का दृश्य

मोरीबेड़ा : यह स्थल पाली जिले के मोरी बड़ा ग्राम से 1 कि.मी. दक्षिण-पूर्व में स्थित है (देखे चित्र)। यहाँ से प्राप्त औजारों में कोर, फलैक्स, स्क्रेपर्स, नोच एवं पत्थर के छिलकों पर बने उपकरणों की को खोजा गया। यहाँ से प्राप्त औजार क्वार्टज़ एवं पत्थरों पर बने है। इस स्थल से क्वार्टज़ पत्थर के हेमर स्टोन भी प्राप्त किये गए है।

मोरीबेड़ा पुरास्थल का दृश्य

निष्कर्ष :

पाली जिले में किये गए पुरातात्विक सर्वेक्षण के पश्चात कई पाषाणकालीन स्थल प्रकाश में आये है। ये सभी पुरास्थल मुख्य नदी एवं उनकी सहायक नदियों से दूर स्थित है। आदिम मानवों के द्वारा इस प्रकार का भौगोलिक अनुकूलन इस प्रकार के प्रदेश में पहले भी सिरोही जिले की पश्चिम बनास नदी की पाषाण कालीन स्थलों पर देखा गया है। सर्वेक्षण के दौरान जिन स्थलों की खोज की गयी ये सभी स्थल लेट पाषाणकल के अनुक्रम से सम्बन्ध रखते है।

सर्वेक्षण में मुख्य नदी के अलावा सहायक नदी की घाटियाँ,उनके जमाव, पहाड़ियों की ढलानों पर चट्टानों के विशेष उभार तथा ऐसे प्रमुख सभी स्थानों का सर्वेक्षण किया गया, जहाँ से पाषाणकालीन औजारों की मिलने की सम्भावना है। अभी किये गए गए सर्वेक्षणों से यह भी ज्ञात होता है कि यहाँ से प्राप्त किये गए औजारों को बनाने की प्राविधि एवं औजारों का प्रकार पूर्व में किये गए सर्वेक्षण के द्वारा ज्ञात पाषाणकालीन औजारों से काफी हद तक मेल भी खाती है। नवीन सर्वेक्षण में इन औजारों को बनाने के लिए प्रयुक्त कच्चे माल में भी विविधता देखी गयी है। जहाँ तक स्थल की उपियोगिता का प्रश्न है पहले खोजे गए स्थलों के जैसे ही चट्टानों के आवरणों की सतह पर स्थित क्षरित मिट्टी की

सतह पर औजारों की प्राप्ति की गयी जिससे यह ज्ञात होता है कि इस तरह के स्थलों की उपयोगिता प्राचीन मानवों के लिए अधिक रही होगी।

सन्दर्भ सूचि :

आई.ए.आर. (1954).

इंडियन आर्कीयोलोजिकल रिव्यु1956-57. (1957).

खरकवाल जीवन सिंह. (2016). एक्स्केवेशन एट चन्द्रावती (खरकवालजीवन सिंह (Ed.). हिमांशु पब्लिकेशन.

गोधल विनीत, & मीणा मदनलाल. (2017). प्रागैतिहासिक राजस्थान. शोध पत्रिका, 68(1-2), 1-20.

चेटर्जी मालविका, अखिलेश कुमार, पप्पू शांति, रवीद्रनाथ सुधा, उदयराज. (2017). अ लेट पेलिओलिथिक असेम्बलेज एट कुंजारम, साउथ-ईस्ट इंडिया. एंटिक्विटी, 2, 1-6. https://doi.org/10.15184/aqy.2017.214

ठाकर चिंतन, तलेसरा प्रियांक, देवडा के.पी. सिंह., खान अल्ताफ. (2019). एन अर्कियोलोजिकल एक्सप्लोरेशन ऑफ़ गोढवाड (सिरोही). राजस्थान अर्कियोलोजी एंड एपीग्राफी कांग्रेस, 1(1), 55-64.

ठाकर चिंतन, पटेल पुनाराम, खरकवाल जीवन सिंह, तलेसरा प्रियांक. (2019). पश्चिमी बनास घाटी में पाषाणकालीन स्थलों की खोजः एक सर्वेक्षण. शोध पत्रिका, 70 (1-4), 103-125.

धीर आर.पी., सिंघवी ए.के. (2012). द थार डेजर्ट एंड इट्स एंटिक्विटी. करंट साइंस, 102 (7), 1001-1008.

ब्लिंकहॉर्न जेम्स. (2013). अ न्यू सिंथेसिस ऑफ़ एविडेंस फॉर थे अपर प्लेस्टोसिन ऑक्यूपेशन 16आर ड्यून एंड इट्स साउथर्न एशियन कॉन्टेक्स्ट. क्वाटर्नरी इंटरनॅशनल, 300, 282-291. https://doi.org/10.1016/j.quaint.2013.01.023

ब्लिंकहॉर्न जेम्स. (2018). बुढा पुष्कर रीविजीटेडः टेक्नोलॉजिकल वेरियाबिलिटी इन लेट पेलिओलिथिक स्टोन टूल्स एट द थार डेजर्ट मार्जिन,इंडिया. जर्नल ऑफ़ आर्कियोलोजीकल साइंस/: रिपोर्ट्स, *20*(April), 168–182. https://doi.org/10.1016/j.jasrep.2018.04.020

ब्लिंकहॉर्न जेम्स. (2021). द गेटवे टू द ओरिएण्टल जोन/: एन्वार्मेंट चेंज एंड पेलिओलिथिक बिहेवियर इन द थार डेजर्ट. क्वाटर्नरी इंटरनॅशनल, *596* (June), 79–92. https://doi.org/10.1016/j.quaint.2020.11.021

मिश्रा वि.एन. (1967). प्री एंड प्रोटो हिस्ट्री ऑफ़ बेडच बेसिन साउथ राजस्थान. डेकन कोल्लागे पोस्ट ग्रेजुएट एंड रिसर्च इंस्टिट्यूट.

मिश्रा वि.एन., राजगुरुएस.एन., वासनआर.जे., अग्रवालडी.पी. (1980). फर्दर लाइट ऑन लोवर पेलिओलिथिक ओक्युपेशन एंड पेलियोएन्वारमेंट इन सेमी-एरिड जोन ऑफ़ राजस्थान. पुरातत्व, 51-60.

मिश्रा वी.एन. (1958). पेलिओलिथिक इंडस्ट्री ऑफ़ द बनास, ईस्टर्न राजपुताना.

मिश्रा वी.एन. (1964). पेलिओलिथिक्स फ्रॉम डिस्ट्रिक्ट उदयपुर, साउथ राजस्थान. एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बोम्बे, 36, 55-59.

मिश्रा वी.एन. (1968). मिडिल स्टोन एज इन राजस्थान. प्रीहिस्टोराइ; प्रोबलेम्स इट टेंडेंसेस, 295-302.

मिश्रा वी.एन. (1973). बागोर-अ लेट मेसोलिथिक सेटलमेंट इन नार्थ-वेस्ट इंडिया. वर्ल्ड आर्कियोलोजी, 5(1), 92-110.

मिश्रा वी.एन., नागर मालती. (प.व.). प्रीहिस्टोरिक बेकग्राउंड ऑफ़ राजस्थान. श्री मल्लाम्पल्ली सोमशेखरा सर्मा कॉमममेमोरेशन वोल्यूम, 345-358.

मिश्राशेइला. (2001). क्वाटरनरी फ्लुविअल जिओमोर्फोलोजी ऑफ़ वेस्टर्न इंडिया. जी.एस.आई. स्पेशल पब्लिकेशन, January.

राजगुरु एस.एन, देओ सुषमा जी., गैलार्ड क्लैर. (2014).

प्लेस्टोसिन जिओआर्कियोलोजी ऑफ़ द थर डेजर्ट. अन्नाल्स ऑफ़ एरिड जोन, 53(2), 63-76.

K.P. Singh Kanoj S/o Madan Singh

29 'Mewar House' Veer Hanuman Nagar Century
Garden Road Pali (Raj.) 306401
Mob. 9460732445

❑ ❑ ❑

बैराठ : बौद्ध पुरातात्विक साक्ष्यों के सन्दर्भ में मौर्य कालीन सामाजिक धार्मिक इतिहास का विश्लेषण

• विजय लक्ष्मी सिंह

बैराठ जयपुर दिल्ली मार्ग पर जयपुर से 52 मील दूर राजस्थान में लाल रंग की अरावली पहाड़ियों के बीच एक गोलाकार घाटी के मध्य स्थित है। बैराठ का प्राचीन नाम विराठनगर है जिसकी स्थापना राजा विराठ ने की थी।[1] कहा जाता है कि पांडवों ने अपने वनवास के तेरहवें वर्ष को वेश में बिताया था। बैराठ मत्स्य जनपद की राजधानी है जो अंगुतर निकाय में सोलह महाजनपदों में सूचीबद्ध है।[2] विदेशी यात्रियों फाहियान[3] हुआन त्सांग[4] ने बैराठ का उल्लेख महान बौद्ध केन्द्र के रूप में किया। बौद्ध अनुसंधान पर साहित्य आधारित विद्वानों या कला और वास्तुकला के इतिहासकारों का प्रभुत्व है। बौद्ध ग्रंथों में राजस्थान में बौद्ध विहार, चैत्य, मठ की स्थापना का उल्लेख मिलता है। बौद्ध धर्म के इतिहास की पूरी तरह से मान्य तस्वीर रखने के लिए पुरातात्विक अवशेषों को शामिल करने की आवश्यकता है। महात्मा बुद्ध राजस्थान नहीं गए परन्तु मौर्य साम्राज्य का विस्तार मगध से ले कर तक्षिला, काबुल, कंधार और बैक्ट्रिया तक हुआ और इसका रास्ता राजस्थान से हो कर गया और सम्राट अशोक द्वारा बौद्ध धर्म आत्मसात् करने के कारण राजस्थान बौद्ध प्रभाव से वंचित नहीं रह सका। बैराठ आज खंडहरों के एक टीले पर स्थित है जहाँ से हम वर्तमान शहर को देख सकते हैं। आस-पास टूटे हुए मिट्टी के बर्तन और प्राचीन ताम्बे के टुकड़े बिखरे हुए हैं जिससे घाटी सामान्यतः लाल रंग की दिखती है। उचित पुरातात्विक खुदाई और अन्वेषण के बाद बैराठ (राजस्थान) में कई बौद्ध अवशेष बरामद किए गए थे, जो मत्स्य जनपद राजधानी में बौद्ध धर्म के विकास के स्पष्ट सीमांकन को दर्शाते हैं। मौर्य सभ्यता के अवशेष बैराठ से प्राप्त हुए हैं, जिनमें अशोक के शिलालेख के साथ, ईंट से निर्मित बौद्ध मठ और मंदिरों के स्तंभ और अवशेष भी मिले हैं। टेराकोटा

मूर्तियों, मोतियों, पंच-चिह्नित सिक्कों को खुदाई से बरामद किया गया जो बैराठ में मौर्य शासन की उपस्थिति का संकेत देता है।[5] यहाँ पुरातात्विक अन्वेषण में प्राप्त सामग्रियों के विश्लेषण के माध्यम से बैराठ क्षेत्र के मौर्य इतिहास और सांस्कृतिक निरंतरता को समझने का प्रयास किया है।

बैराठ मौर्य काल का बौद्ध धर्म का प्रमुख केन्द्र रहा है। राजस्थान और भारतीय उपमहाद्वीप के विभिन्न हिस्सों से प्राप्त पुरातात्विक रिकॉर्ड में बौद्ध धर्म की भौतिक अभिव्यक्ति बुद्ध के 200-300 साल बाद शिलालेखों, स्तूपों, मठों, छवियों और पूजा की अन्य वस्तुओं के रूप में दिखाई दी। तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व से प्रारंभिक बौद्ध धर्म के विकास और प्रसार को आंतरिक रूप से मौर्य सम्राट अशोक के साथ जोड़ा गया है, और इसके परिणामस्वरूप पुरातात्विक रिकॉर्ड में बैराठ मौर्य काल का बौद्ध केन्द्र है। अशोक स्तंभ भारतीय वास्तुकला में भी महत्वपूर्ण हैं और विशेष मौर्य पॉलिश इन स्तम्भों की ऐतिहासिक पहचान है।[6] अशोक स्तंभों और शिलालेखों ने एक साथ अद्वितीय सांस्कृतिक अर्थ का स्मारक बनाया। अशोक के छोटे पत्थर शिलालेख, प्रमुख पत्थर शिलालेख और स्तंभ शिलालेख की तारीख से पहले के हैं। दक्षिण एशिया में, पहला पत्थर शिलालेख तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व में हुआ था, और वह अशोक का शिलालेख था। अशोक का बौद्ध धर्म में रूपांतरण बौद्ध धर्म के राजनीतिक संरक्षण के लिए एक बड़ा मील का पत्थर था। कलिंग युद्ध में विनाशकारी अनुभव के बाद अशोक ने बुद्ध की शिक्षाओं का पालन करने का फैसला किया, जो उपमहाद्वीप में युद्ध समाप्त होने का संकेत था।

मौर्य शासकों के अधीन भारतीय उपमहाद्वीप के बड़े हिस्से के एकीकरण के बावजूद इसकी राजनीतिक सीमा अनिश्चित बनी रही। अशोक शिलालेख जो मौर्य साम्राज्य का सबसे महत्वपूर्ण स्रोत थे, अशोक ने भारतीय उपमहाद्वीप का भौगोलिक एकीकरण किया। इन शिलालेखों ने प्राचीन भारत में अभिलेख (एपिग्राफी) और साक्षरता के तत्व की शुरुआत को भी चिह्नित किया। ये शिलालेख प्रशासनिक उद्देश्यों के लिए लिखे गए थे और इन शिलालेखों के माध्यम से अशोक ने अपने अधिकृत जन को सीधे निर्देश जारी किए। बैराठ से प्राप्त शिलालेख (आदेश) इस स्थान को सबसे पहले बौद्ध स्थल के रूप में स्थापित करता है।[7] बैराठ से लगभग डेढ़ किलोमीटर दूर भीम पहाड़ी पर कार्लाइल को 1871-72 में एक और अस्पष्ट शिलालेख मिला[8], जिसे रूपनाथ और सासाराम स्थित शिलालेख का संस्करण माना जाता है। इस शिलालेख को अशोक ने बौद्ध धर्म अपनाने के बाद खुदवाया था। इस अभिलेख में अशोक ने यह स्वीकार किया

कि उपासक अवस्था में अशोक ने बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए अधिक प्रयत्न नहीं किया। मगर संघ में प्रवेश करने के बाद उसने बौद्ध धर्म का प्रचार आरम्भ किया।[9] अशोक स्तंभों के अवशेषों के साथ इस स्थान पर एक गोलाकार मंदिर और मठ शामिल हैं जिनकी चर्चा विस्तार से हम आगे करेंगे। बाद के बौद्ध स्रोत बताते हैं, स्तूपों के प्रसार अशोक के संरक्षण के कारण हुए जो स्थायी धार्मिक वास्तुकला के निर्माण के लिए सार्वजनिक संसाधनों को प्रसारित करने के माध्यम से राजनीतिक वैधता व्यक्त करने की एक नई शैली को दर्शाता है।[10] थेरवाद परंपरा के अनुसार, तीसरी बौद्ध परिषद मौर्य साम्राज्य की राजधानी पाटलिपुत्र में आयोजित की गई थी और 250 ईसा पूर्व में मौर्य राजा अशोक से जुड़ी हुई थी। यहां हमें संघ और राजनीतिक संरक्षण के बीच स्पष्ट कड़ी नजर आती है। कौशांबी, बैराठ और सांची के अशोक के आदेश संघ के भीतर फूट के खिलाफ चेतावनी देते हैं और अशोक के प्रसिद्ध 'शासन' में असंतुष्ट भिक्षुओं और भिक्षुणिओं को निष्कासित करने की बात कही गई है।[11] बौद्ध परिषद फूट के पश्चात् बहुसंख्यक भिक्षुओं को महासंहिता कहा जाने लगा और अल्पसंख्यक मोटे तौर पर बुजुर्गों को स्थाविरावदा/थेरावदा कहा जाने लगा। चूंकि परिषद का उल्लेख केवल थेरवाद परंपरा से आता है, इसलिए यहां ग्रंथों में थेरवाद शिक्षाओं को दी गई प्राथमिकता और अधिकार को वैध बनाने के संभावित प्रयास के रूप में देखा गया है। थेरवाद परंपरा अशोक काल के दौरान मगध में शक्ति का दावा करती है, जहां से इसने न केवल भारतीय उपमहाद्वीप के विभिन्न हिस्सों में बल्कि श्रीलंका और हेलेनिस्टिक दुनिया में बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए मिशनरियों को भेजा था, जैसा कि अशोक काल के शिलालेख रिकॉर्ड से भी स्पष्ट है। बौद्ध स्तूप सामान्य रूप से भारतीय उपमहाद्वीप और विशेष रूप से उत्तर पश्चिम भारतीय उपमहाद्वीप में बौद्ध तीर्थस्थल का प्राथमिक केन्द्र बन गए, उनके आसपास बड़े तीर्थस्थल बने, जैसे चनेती बौद्ध स्तूप, संघोल बौद्ध स्तूप, देवनिमोरी बौद्ध स्तूप, बीजक-की-पहाड़ी बौद्ध मठ, सिंध बौद्ध स्तूप, धरमराजिका बौद्ध स्तूप, चरसदा बौद्ध स्तूप आदि। बौद्ध का एक महत्वपूर्ण सिद्धांत 'राजनयिक संरक्षण' है और बौद्ध स्थलों के विकास के साथ इसका स्वरूप बदलता है। सबसे पुराने स्तूप मौर्य काल के हैं, जो बताते हैं कि इन स्मारकों का मूल राजनयिक नींव था, जो मौर्य आधिपत्य के विस्तार का हिस्सा था।[12] ऐसा प्रतीत होता है कि राजस्थान बौद्ध धर्म के प्रभाव से अछूता नहीं रहा और इसमें अशोक का राजनयिक संरक्षण महत्वपूर्ण रूप से उत्तरदायी था। बैराठ में उत्तरी काले पॉलिश वेयर मिट्टी के बर्तनों की उपस्थिति मगध साम्राज्य के साथ इसके संबंध का संकेत है।[13] इस मिट्टी के बर्तन का मुख्य स्रोत ऐतिहासिक मगध था जहां से यह बौद्ध भिक्षुओं के माध्यम से बैराठ तक फैल

गया। मगध से आये मिट्टी के बर्तनों को नुकसान से बचाने के लिए बैराठ के भिक्षुओं ने तांबे की रिवेट्स, फिलेट्स और पिन का विशेष प्रयोग किया गया जो प्रयोगों के नवीनीकरण[14] के सबूत हैं। ऐसा लगता है कि भिक्षुओं ने कुम्हारों के क्षतिग्रस्त मिट्टी के बर्तनों को फेंकने के बजाय तांबे के तारों साथ बांध कर संरक्षित किया क्योंकि वह कीमती थे। इस काल में बैराठ में पाए गए मिट्टी के बर्तनों पर 'धर्मचक्र', 'त्रिरत्न' और 'स्वस्तिक' जैसे पवित्र प्रतीक पाए गए हैं।[15] कनिंघम और उनके सहायक कार्लाइल (1864 -65)[16], और डी आर भंडारकर (1909-10) ने बैराठ के अवशेषों का का पुरातत्विक सर्वेक्षण किया। 1935 में दयाराम साहनी[17] ने बैराठ का उत्खनन किया किया। अशोक का भबरू शिलालेख[18] जो बुद्ध के धम्म और संघ में उनके विश्वास की अभिव्यक्ति के साथ प्रारम्भ होता है, उन्होंने यह भी घोषणा की कि संघ या बौद्ध भिक्षु को संबोधित बुद्ध का उपदेश सत्य है। भबरू शिलालेख बैराठ में बौद्ध भिक्षुओं की उपस्थिति का स्पष्ट संकेतक है। बैराठ के बीजक पहाड़ियों पर पुरातात्विक खुदाई[19] अशोक के समय बौद्ध तीर्थ की उपस्थिति का संकेत देती है। कई इतिहासकार बैराठ को राजस्थान में बौद्ध धर्म विकास के रूप में एक उल्लेखनीय केन्द्र के रूप में नहीं मानते हैं क्योंकि बौद्ध धर्म के अपेक्षाकृत कम अवशेष प्राप्त हुए हैं।[20] पुरातात्विक साक्ष्यों की मात्रात्मक कमी राजस्थान में बौद्ध धर्म की उपस्थिति और दृढ़ता को अस्वीकार नहीं करती है क्योंकि राजस्थान बौद्ध धर्म के महान संरक्षक अशोक के मौर्य शासन का हिस्सा था। बौद्ध अवशेषों की अनुपलब्धता के लिए अन्वेषणों की कमी और व्यापक शहरीकरण को जिम्मेदार ठहराया जा सकता है, जो पुरातात्विक स्थलों के विनाशको का कारण बने।

कुछ इतिहासकार अशोक के धम्म की घोषणा को उनके राजनीतिक आदर्शों और तर्कों से जोड़ते हैं जो शासक के व्यक्तिगत विश्वास और उनकी सार्वजनिक घोषणा का संकेत देते हैं। यह अशोक के घोषित धम्म में बौद्ध तत्व को कम करता है। रोमिला थापर की राय है कि अशोक ने अपने साम्राज्य को मजबूत करने के लिए धम्म को एक वैचारिक उपकरण के रूप में इस्तेमाल किया। अपने शासनकाल के शुरुआती वर्षों में समर्थन की कमी के कारण, उन्होंने गैर रुढ़िवादी तत्त्वों का समर्थन मांगा और धम्म को अपनाने और प्रचार करने का व्यावहारिक लाभ देखा, यह मूल रूप से एक नैतिक अवधारणा थी जो व्यक्ति और समाज के बीच संबंधों पर केंद्रित थी। हालांकि यह एक एकीकृत रणनीति के रूप में विफल रहा।[21] अशोक धम्म में बौद्ध तत्त्व बौद्ध धर्म से जुड़े कुछ महत्वपूर्ण विचारों के अभाव के बावजूद प्रासंगिक हैं जैसे कि अष्ट मार्ग, निबान, दुख का सिद्धांत आदि। शिलालेख बार-बार अहिंसा के बारे में जोर देते

हैं जो बौद्ध सिद्धांतों का मूल है। मौर्य ग्रंथ अर्थशास्त्र में अहिंसा[22] और जानवरों के कल्याण[23] के बारे में भी बात की गई है। उपमहाद्वीप के एक शासक के रूप में अशोक ने खुद को धम्म के एक शिक्षक, उद्घोषक और प्रचारक के रूप में पेश किया, यह उनके शिलालेखों से स्पष्ट है। रूमेदेई और निगली सागर शिलालेखों में अशोक की लुम्बिनी यात्रा की चर्चा है जो अशोक की धर्म के प्रति व्यक्तिगत आस्था का स्पष्ट प्रमाण है।[24] इतिहासकार अक्सर अशोक को बौद्ध धर्म में परिवर्तित करने का मुद्दा ब्राह्मणवादी धर्म के खिलाफ असहमति के दर्शन के रूप में उठाते हैं जो सच नहीं हो सकता है। अशोक कहते हैं, वह जो अपने स्वयं के प्रति लगाव से अपने ही संप्रदाय के वैभव को बढ़ाने के इरादे से, पूरी तरह से दूसरों के संप्रदायों का तिरस्कार करते हुए अपने स्वयं के संप्रदाय का सम्मान करता है, वास्तव में इस तरह के आचरण से अपने ही संप्रदाय को सबसे गंभीर चोट पहुंचती है। संस्कृत के द्वितीय शताब्दी के साहित्यिक स्रोत दीपवंस और पांचवीं शताब्दी के महावंस[27] जो अशोक के जीवनी ग्रन्थ हैं, और इन ग्रंथों ने भी अशोक के जीवन, उनका बौद्ध धर्म में धर्मान्तरण और उनके बौद्ध धर्म के प्रचार इत्यादि के बारे में समझने में मदद की।

केवल एक बैराठ के अभिलेख में ही, विशेष रूप से संघ को संबोधित किया गया है, यह दर्शाता है कि 'त्रिरत्न' का सूत्र पहले से ही बौद्धों द्वारा विश्वास की स्वीकारोक्ति के रूप में इस्तेमाल किया गया था। दस्तावेज़ से पता चलता है कि किसी प्रकार का कैनन (थेरवाद बौद्ध परंपरा का मानक संग्रह) पहले से ही मौजूद था, हालांकि सूचीबद्ध सात लिपिकीय मार्ग की पहचान निश्चित से बहुत दूर है इसके अलावा, यह स्पष्ट है कि, इस आदेश की घोषणा के समय, बौद्ध आदेश के प्रति अशोक का रवैया पूरी तरह से युगवादी था।[28] भिक्षुओं का अभिवादन करने के बाद और बुद्ध, धम्म और संघ में अपनी आस्था व्यक्त करने के बाद अशोक घोषणा करते हैं: जो कुछ भी, श्रीमान भगवान बुद्ध ने कहा, वह सत्य कहा गया था, लेकिन अब मैं मेरे द्वारा बताए गए मार्ग का पालन करने का प्रस्ताव करता हूँ—ताकि असली धम्म लंबे समय तक चल सके। बौद्ध धर्म में अशोक का योगदान निर्विवाद है।[29] राजस्थान में बौद्ध वास्तुकला के प्राचीनतम प्रमाण बौद्ध स्तूप, चैत्य, विहार के संदर्भ मौर्य राजा–अशोक से जुड़े हैं। अशोक के बौद्ध धर्म में धर्मांतरण के बारे में हम ग्रंथों और अभिलेखों से जानते हैं। उन्होंने बौद्ध धर्म के प्रचार और प्रसार के लिए पूरे भारतीय उपमहाद्वीप में अस्सी हजार बौद्ध मठों की स्थापना की थी। बैराठ में अशोक के दो शिलालेखों के साथ बौद्ध मठों, और ईंट मंदिरों के अवशेष पाए गए थे। बीजक की पहाड़ी के नाम से प्रसिद्ध पहाड़ी की अलग छतों में की गई खुदाई में लकड़ी के छब्बीस अष्टकोणीय स्तंभों के साथ ईंट के काम

के चूने के पायलदार पैनलों से बने मौर्य गोलाकार स्तूप मंदिर के अवशेष मिले हैं, एक खुले वर्ग आंगन के चारों ओर व्यवस्थित कोशिकाओं की एक दोहरी पंक्ति के साथ मठ के अवशेष मिले हैं।[30] बैराठ से लगभग डेढ़ किलोमीटर दूर भीम पहाड़ी पर कार्लाइल को 1871-72 में एक और अस्पष्ट शिलालेख मिला, जिसे रूपनाथ और सासाराम स्थित शिलालेख का संस्करण माना जाता है।[31] चट्टान की सतह इतनी खराब और खुरदरी थी कि केवल सबसे उत्सुक पर्यवेक्षक ही उस पर एक बेहद विकृत शिलालेख के अस्तित्व को समझ सकता था।[32] यह काफी समय से गलत तरीके से था माना जाता है कि यह शिलालेख बैराठ से 12 मील उत्तर में भबरू में पाया गया था। यह शिलालेख सबसे अद्वितीय शिलालेखों में से एक है क्योंकि यह पत्थर के स्लैब पर अंकित है। आदेश को कलकत्ता में एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल के संग्रहालय में स्थानांतरित कर दिया गया था और अब इसे इस संग्रहालय में प्रदर्शित किया गया है।

साहनी को इस फरमान के भबरू मूल पर कड़ी आपत्ति थी क्योंकि पहाड़ियों की ढलान पर आधुनिक आवासों को छोड़कर किसी भी प्राचीन अवशेषों की अनुपस्थिति थी। वह आगे तर्क देते हैं कि दूसरी ओर बीजक की पहाड़ी (बैराठ) पर अशोक शिलालेख था और खुदाई में आगे महत्वपूर्ण अशोक काल के अवशेष पाए गए थे जो इस शासन की उत्पत्ति को भबरू नहीं बैराठ को बताते हैं।[33] इस अभिलेख में अशोक ने यह स्वीकार किया कि उपासक अवस्था में अशोक ने बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए अधिक प्रयत्न नहीं किया। मगर संघ में प्रवेश करने के बाद उसने बौद्ध धर्म का प्रचार आरम्भ किया। अशोक का बैराठ आदेश एकमात्र शिलालेख है जो पत्थर के स्लैब पर उत्कीर्ण है और अन्य पत्थर के स्तंभ शिलालेख से असाधारण है। बुद्ध, धम्म और संघ पर अशोक के विश्वास का प्रमाण यहां दर्ज है। इस आदेश में उन्होंने सुझाव दिया कि बौद्ध भिक्षु और लोकधर्मियों को अत्यधिक ध्यान के साथ बौद्ध दर्शन का पालन करना चाहिए और उन्हें बौद्ध पाठ के विशेष मार्ग (सात संख्या में) का अध्ययन करने के लिए भी खुद को समर्पित करना चाहिए।[34] बैराठ आदेश बौद्ध संघ के मामलों में अशोक के सक्रिय हस्तक्षेप को प्रदर्शित करता है। बौद्ध ग्रंथों में राजस्थान में बौद्ध विहार, चैत्य मठ की स्थापना का उल्लेख मिलता है। राजस्थान में पुरातात्विक साक्ष्य बौद्ध धर्म के इस पहलू का बहुत उपयोगी अध्ययन और विश्लेषण है।

यह माना जाता है कि बौद्ध काल से पहले से ही प्राकृतिक गुफाओं में एकान्त ध्यान के अभ्यास से चट्टान-कट आश्रयों की अवधारणा उभरी थी। कई विद्वानों ने माना कि शायद भिक्षु 300 ईसा पूर्व तक प्राकृतिक गुफाओं या

समुदाय द्वारा दान किए गए अरामों में रहते थे। गुफाओं के व्यापक उपयोग के लिए मुख्य दर्शन और प्रेरणा भारतीय धार्मिक विश्वास है जो व्यक्तिगत रूप से स्वयं (आत्मा) को सशक्त बनाता है। आत्मन को भगवान (ब्रह्मा) के रूप में स्वीकार किया जाता है और गुफा को आत्मन के वास्तविक निवास के रूप में माना जाता है। इस चरण में एक तरफ बौद्ध भिक्षु गुफाओं के रहस्यमय आयाम के बारे में तो पता चलता था, दूसरी तरफ हमें भारत के विभिन्न हिस्सों में विहार निर्माण का संकेत मिलता है।[35]

प्रख्यात पुरातत्वविद् एवं विद्वान डॉ. दया राम सहानी, डॉ. एन. आर. बनर्जी के उत्खनन विराठनगर/बैराठ की प्राचीनता को प्रमाणित करते हैं कि यह एक महत्वपूर्ण बौद्ध तीर्थ था। मौर्य वंश के समय यह स्थान बौद्ध केन्द्र के रूप में फला-फूला था। राजा अशोक को यह स्थान पसंद था, उन्होंने स्तूपों, पत्थरों के शिलालेखों की स्थापना की और चट्टान से कटे हुए गुफा आश्रयों का भी दान दिया। ऐसा माना जाता है कि राजा अशोक ने इन निर्माणों का संरक्षण किया। यह मान्यता है कि चंद्रगुप्त मौर्य का जन्म स्थान था, उसी कारण शायद यह स्थान इतना फला-फूला था। हुआन सांग के अनुसार, बीजक पहाड़ी आठ बौद्ध विहारों में से एक थी। इस मठ परिसर को पहाड़ी की चोटी पर उकेरा गया था और पत्थर को उकेरकर बनाई गई सीढ़ी से पहुंचा गया था, और सीढ़ियों को सीमेंट करने के लिए चूने और ईंटों का इस्तेमाल किया गया था। ढलान के 100 मीटर ऊपर एक टैंक कृष्ण कुंड भी बनाया गया था जो अब एक बांध में बदल गया है।[36] मंदिर संरचना, मठ परिसर और स्तूप के अवशेष यह भी प्रदर्शित करते हैं कि उस समय वास्तुकला की अत्यधिक विशिष्ट तकनीक विकसित की गई थी। खुदाई के समय डॉ. दया राम साहनी ने खंभों के अष्टकोणीय लकड़ी के टुकड़ों के खंडहरों की खोज की जो चूने और अन्य सामग्री के साथ मज़बूती से बनाये गए थे। लेकिन बाद के दिनों में बेहतर पकड़ के लिए लोहे की सलाखों और लकड़ी के ब्लॉकों का इस्तेमाल किया गया।[37] खंभों की सजावट भी सांची से मिलती जुलती थी। स्तूप संरचना चुनार पत्थर से बनी थी और अन्य धार्मिक संरचना लकड़ी से बनी थी और एक अन्य महत्वपूर्ण बात यह है कि यह स्तूप संरचना सिर्फ जुनार स्तंभ से मिलती-जुलती है। बीजक का यह मंदिर राजस्थान में स्थित जूनार मंदिर से काफी पुराना था और माना जाता है कि इस मंदिर को राजा अशोक ने बनवाया था। निष्कर्ष यह है, इस स्थान पर बौद्ध स्तूप और मठ की मौजूदगी साफ तौर पर साबित होती है। बुद्ध का उपदेश स्तूप की दीवार के प्लास्टर पर पाली में लिखा गया था। बीजक पहाड़ी से मिले मठ के सबूतों को पहचाना जा सकता है जहां भिक्षुओं ने

धार्मिक चर्चा के लिए अपनी बैठकें आयोजित कीं। मठ के निचले हिस्से में एक गोलाकार चैता-गृह है। इन मठ परिसरों का उपयोग अध्ययन और ध्यान के लिए किया जाता होगा। यहां मठों की संख्या का निर्धारण करना बहुत कठिन है क्योंकि व्यापक खुदाई ने अवशेषों को विकृत कर दिया। बौद्ध स्मारकों का सर्वेक्षण स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि इन स्मारकों ने कई बार संरक्षण के लिए काम किया था लेकिन यह मूल संरचना अभी भी अपरिवर्तित थी। बीजक पहाड़ी की तलहटी में निवास क्षेत्र की पहचान की जाती है। यहां मकानों के खंडहर मिले हैं जो आम लोगों के बसने का केन्द्र होने का संकेत देते हैं। बर्तनों के ढेर, लोहे और तांबे के पिंडों में कुम्हार, सुनार और काला लोहा समुदाय की उपस्थिति स्पष्ट होती है। यह बस्ती क्षेत्र ऊपरी मंच और निचले मंच में बंटा हुआ है। बस्ती के ऊपरी मंच का निर्माण कई चरणों में किया गया था और समय के अनुसार इसे संशोधित किया गया था। ऊपरी प्लेटफॉर्म पर लगभग मकानों की पहचान की गई है और प्लेटफॉर्म के पूर्वी हिस्से में 12 कमरे की उपस्थिति स्पष्ट हैं। इनमें छह कमरे बड़े और छह आकार के छोटे हैं। मठ में उपयोग की जाने वाली ईंटें सामान आकार में रही हैं। इन अवशेषों के अध्ययन से पता चला कि इन कमरों का उपयोग भिक्षुओं और बौद्ध शिष्यों के ठहरने के लिए किया गया था। इन कमरों में भिक्षुओं ने लोकधर्मियों को आध्यात्मिक शिक्षा दी। ये गुफा आश्रय स्थल हमारी प्राचीन गुफा संस्कृतियों के बारे में याद दिलाते हैं। बैराठ कई शताब्दियों तक बहुत समृद्ध था और निस्संदेह यह मौर्य काल में बौद्ध धर्म का एक बड़ा केन्द्र था। बौद्ध प्रतिष्ठान बीजक-की-पहाड़ी से खंभों के टुकड़े और चुनार बलुआ पत्थर से बना एक छाता पाया गया है और इन खंभों के टुकड़ों में मौर्य पॉलिश की विशेषता है।[38] दिलचस्प बात यह है कि मठ के आंगन के केन्द्र में एक बड़ी चट्टान रखी गई है, जो सर कनिंघम के अनुसार मौर्य काल के ईंट के बने स्तूप का मूल था। प्राचीन राजस्थान में गहरे निहित बौद्ध मूल्यों के बारे में जानने के लिए एक विस्तृत पुरातात्विक अध्ययन की आवश्यकता है। बैराठ में बौद्ध मठ (जिसे आमतौर पर बौद्ध धर्म के प्राथमिक के रूप में देखा जाता है) की उपस्थिति बौद्ध सिद्धांत के रूप में न केवल एक धार्मिक प्रेरक शक्ति थी बल्कि संगठन भी था जो धर्म से ज्यादा यह अशोक के राजनीतिक विस्तार में प्रमुख अंग बन गया और वहां की संस्कृति, कला और समाज में भी परिवर्तन लाया।

सन्दर्भ

1. महाभारत, चार, 1.1; क्रिटिकल एडिशन, भंडारकर ओरिएंटल इंस्टीट्यूट पुणे, 1927-66

2. अंगुत्तर निकाय, संस्. आर मौरिस और इ हार्डी, 2 वोलुमस, कलकत्ता, 1903-4
3. जेम्स लग्गे, ट्रेवल्स ऑफ़ फ़ाहीयान: अ रिकॉर्ड ऑफ़ बुद्धिस्ट किंगडम्स, 1886, पृ. 198
4. थॉमस वॉटर्स, 'ऑन युआन-चान' *ट्रेवल्स इन इंडिया* (629-645) दिल्ली, 1961
5. वाई डी शर्मा, *एक्सप्लोरशंस ऑफ़ हिस्टोरिकल साइट्स,* पृ. 150.
6. एस.पी. गुप्ता, *दी रूट्स ऑफ़ इंडियन आर्ट,* दिल्ली, 1980, पृ. 8.
7. इ. हुलत्ज़, 1925. *इंस्क्रिप्शन्स ऑफ़ अशोक, कार्पस इंस्क्रिप्शनम इंडिकारम* वॉल्यूम 1, दिल्ली : आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ़ इंडिया (रीप्रिंट 1991) पृ. 172-73; बी.एम.बरुआ, *अशोकन इंस्क्रिप्शन,* कलकत्ता, 1955.
8. कार्लाइल, सी. एल. 1878. बैराठ और विराठ इन आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ़ इंडिया रिपोर्ट वॉल. 6. कलकत्ता : 91 -103.
9. इ. हुलत्ज़, 1925. *इंस्क्रिप्शन्स ऑफ़ अशोक, कार्पस इंस्क्रिप्शनम इंडिकारम* वॉल्यूम 1, दिल्ली : आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ़ इंडिया (रीप्रिंट 1991) 172-73, बी.एम.बरुआ, *अशोकन इंस्क्रिप्शन,* कलकत्ता, 1955.
10. जेम्स हैतजमां, द *अर्बन कॉन्टेक्स्ट ऑफ़ अर्ली बुद्धिस्ट मोनुमेंट्स इन साउथ एशिया,* इन जैसन हॉक्स एंड अकीरा शिमदा संस्करण, बुद्धिस्ट स्तुपास इन साउथ एशिया, दिल्ली, 2009, पृ. 200.
11. एच सरकार, *भारत में प्रारंभिक बौद्ध वास्तुकला में अध्ययन,* दिल्ली, 1966. 1966. जे. ब्लोच, *लेस इंस्क्रिप्शन्स* द अशोका पृ. 152, रोमिला थापर, द पास्ट बिफोर अस, 2013 पृ. 140.
12. जे.एच मार्चल, ए. फाउचर और एन.जी मजुमदार, सांची के स्मारक, एएसआई, दिल्ली, 1940
13. इंडियन *अर्कयोलॉजी-ए रिव्यु*-1962-63, अर्कायोलॉजीकल सर्वे ऑफ़ इंडिया, गवर्नमेंट ऑफ़ इंडिया, दिल्ली, 1965, पृ. 27; और कैलाश चंद जैन, *अन्सिएंट सिटीज एंड टौउन्स ऑफ़ राजस्थान,* दिल्ली, फर्स्ट एडिशन 1972, रीप्रिंट, 1990, पृ. 91
14. दयाराम साहनी, *आर्कियोलॉजिकल रिमेंस एंड एक्सकैवाशंस* एट बैराठ, डिपार्टमेंट ऑफ़ अर्चयोलोग्य एंड हिस्टोरिकल रिसर्च सेंटर, जयपुर स्टेट, जयपुर, पृ. 12
15. दयाराम साहनी, *आर्कियोलॉजिकल रिमेंस एंड एक्सकैवाशंस एट बैराठ,* डिपार्टमेंट ऑफ़ अर्चयोलोग्य एंड हिस्टोरिकल रिसर्च सेंटर, जयपुर स्टेट, जयपुर,

पृ. 12 निकी चतुर्वेदी, एवोलुशन ऑफ़ बुद्धिज़्म इन राजस्थान, प्रोसीडिंग्स ऑफ़ इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस, 2012, वॉल 73 पृ. 155-162

16. एलेग्जेंडर कन्निंघम, *आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ़ इंडिया रिपोर्ट*, वॉल दो, पृ. 242, वॉल चार (1878), पृ. 91.

17. दयाराम साहनी, *आर्कियोलॉजिकल रिमेंस एंड एक्सकैवाशंस एट बैराठ*, डिपार्टमेंट ऑफ़ अर्चयोलोग्य एंड हिस्टोरिकल रिसर्च सेंटर, जयपुर स्टेट, जयपुर, पृ. 12.

18. बी.एम.बरुआ, *अशोकन इंस्क्रिप्शन*, कलकत्ता, 1955.

19. दयाराम साहनी, *आर्कियोलॉजिकल रिमेंस एंड एक्सकैवाशंस एट* बैराठ, डिपार्टमेंट ऑफ़ अर्चयोलोग्य एंड हिस्टोरिकल रिसर्च सेंटर, जयपुर स्टेट, जयपुर, पृ. 12

20. जी.सी. पण्डे, फॉउण्डेशन्स ऑफ़ इंडियन कल्चर : *स्पिरिचुअल विज़न एंड सिंबॉलिक फॉर्म्स इन अन्सिएंट इंडिया*, दिल्ली, 1972, पृ. 31

21. रोमिला थापर, *अशोका एंड द डिक्लाइन ऑफ़ द मौर्यास*, दिल्ली, 1987, पृ. 136-81

22. *अर्थशास्त्र*, 1.3.8 आर पी कंगले, बॉम्बे, 1960-65.

23. *अर्थशास्त्र* 2.26 आर पी कंगले, बॉम्बे, 1960-65.

24. इ. हुलत्ज़, 1925. इंस्क्रिप्शन्स *ऑफ़ अशोक, कार्पस इंस्क्रिप्शनम इंडिकारम* वॉल्यूम 1, दिल्ली : आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ़ इंडिया (रीप्रिंट 1991) पृ. 172-73 बी.एम.बरुआ, *अशोकन इंस्क्रिप्शन*, कलकत्ता, 1955.

25. ए एल बाशम, *अशोका एंड बुद्धिज़्म-ए री एक्जामिनेशन* पृ. 131, जर्नल ऑफ़ इंटरनेशनल स्टडीज ऑफ़ बुद्धिस्ट एसोसिएशन, सं. ऐ के नारायण, विस्कॉन्सिन, मैडिसन, यू.स.ए. वॉल. 5, 1982 नो. 1, पृ. 141-42.

26. ह. ओल्डेनबर्ग, सं. द दीपवम्साः एन अन्सिएंट बुद्धिस्ट हिस्टोरिकल रिकॉर्ड., लंदन, 1979

27. डब्लू गैंगर, सं. द महावम्सा, लंदन पाली तेत सोसाइटी, 1908

28. ए एल बाशम, *अशोका एंड बुद्धिज़्म-ए री एक्जामिनेशन* प. 131, जर्नल ऑफ़ इंटरनेशनल स्टडीज ऑफ़ बुद्धिस्ट एसोसिएशन, सं. ऐ के नारायण, विस्कॉन्सिन, मैडिसन, यु.स. ए .वॉल.5, 1982 नो., 1, पृ. 141-42.

29. ए एल बाशम, *अशोका एंड बुद्धिज़्म-ए री एक्जामिनेशन* पृ. 131, जर्नल ऑफ़ इंटरनेशनल स्टडीज ऑफ़ बुद्धिस्ट एसोसिएशन, सं. ऐ के नारायण, विस्कॉन्सिन, मैडिसन, यु.स. ए. वॉल. 5, 1982 नो., 1, पृ. 141-42.

30. दयाराम साहनी, *आर्कियोलॉजिकल रिमेंस एंड एक्सकैवाशंस एट* बैराठ, डिपार्टमेंट ऑफ़ अर्चयोलोग्य एंड हिस्टोरिकल रिसर्च सेंटर, जयपुर स्टेट, जयपुर, पृ. 13.
31. दयाराम साहनी, *आर्कियोलॉजिकल रिमेंस एंड एक्सकैवाशंस एट* बैराठ, डिपार्टमेंट ऑफ़ अर्चयोलोग्य एंड हिस्टोरिकल रिसर्च सेंटर, जयपुर स्टेट, जयपुर, पृ. 12, पृ. 13.
32. दयाराम साहनी, *आर्कियोलॉजिकल रिमेंस एंड एक्सकैवाशंस एट* बैराठ, डिपार्टमेंट ऑफ़ अर्चयोलोग्य एंड हिस्टोरिकल रिसर्च सेंटर, जयपुर स्टेट, जयपुर, पृ. 13.
33. दयाराम साहनी, *आर्कियोलॉजिकल रिमेंस एंड एक्सकैवाशंस एट* बैराठ, डिपार्टमेंट ऑफ़ अर्चयोलोग्य एंड हिस्टोरिकल रिसर्च सेंटर, जयपुर स्टेट, जयपुर, पृ. 18.
34. इ. हुलत्ज़, 1925. *इंस्क्रिप्शन्स ऑफ़ अशोक, कार्पस इंस्क्रिप्शनम इंडिकारम* वॉल्यूम 1, दिल्ली : आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ़ इंडिया (रीप्रिंट 1991) पृ. 172-73 बी.एम.बरुआ, अशोकन इंस्क्रिप्शन, कलकत्ता, 1955.
35. डी.डी. कोसंबी, एन *इंट्रोडक्शन टू द स्टडी ऑफ़ अन्सिएंट इंडियन* हिस्ट्री, बॉम्बे, 1957, 21
36. दयाराम साहनी, *आर्कियोलॉजिकल रिमेंस एंड एक्सकैवाशंस एट* बैराठ, डिपार्टमेंट ऑफ़ अर्चयोलोग्य एंड हिस्टोरिकल रिसर्च सेंटर, जयपुर स्टेट, जयपुर, पृ. 21
37. दयाराम साहनी, *आर्कियोलॉजिकल रिमेंस एंड एक्सकैवाशंस एट* बैराठ, डिपार्टमेंट ऑफ़ अर्चयोलोग्य एंड हिस्टोरिकल रिसर्च सेंटर, जयपुर स्टेट, जयपुर, पृ. 21
38. दयाराम साहनी, *आर्कियोलॉजिकल रिमेंस एंड एक्सकैवाशंस एट* बैराठ, डिपार्टमेंट ऑफ़ अर्चयोलोग्य एंड हिस्टोरिकल रिसर्च सेंटर, जयपुर स्टेट, जयपुर, पृ. 12

विजय लक्ष्मी सिंह

प्रोफेसर

इतिहास विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

❑❑❑

भारतीय चित्रकला का स्वर्णिम इतिहास

• डॉ. राकेश कुमार किराड़ू

मनुष्य की वह रचना जो उसके जीवन को आनंद से सराबोर कर दे वह कला कहलाती हैं। वैसे कला का अर्थ सुंदर, कोमल और आनंद प्रदान करने वाला शिल्प होता हैं। भारतीय पुरातन साहित्य में शिल्प के अंतर्गत ही समस्त कलाएं समाहित मानी गई है। वैसे तो भारतीय कला दर्शन पर आधारित हैं, जो सदैव ही सत्यम्, शिवम्, सुंदरम् की अभिव्यक्ति करती है। बात अगर भारतीय वेदों में कला की करें तो इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग ऋग्वेद में हुआ है।

यथा कला यथा शफ, मध, शृण स नियामति[1]

भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में कला के बारे में विचार व्यक्त करते हुए कहा है कि तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न स विद्या न सा कला यानि कि चराचर जगत में ऐसा कोई भी ज्ञान नहीं है जिसमें कला ना हो।[2] कला शब्द की उत्पत्ति संस्कृत में कल् धातु से मानी गई है। कल् का अर्थ होता है प्रेरित करना या किसी भी सृजन के लिए प्रेरणा का कार्य करना। जिसका अवलंबन लेकर कलाकार कलाकृति का सृजन करता है। भारतीय कला जगत में वैसे तो अनेक प्रकार की कलाओं का वर्णन आता है, जिसमें चित्रकला, मूर्तिकला, संगीतकला, काव्यकला, हस्तकला, मृदभांड कला, मुद्रा कला, प्रस्तर कला, धातु कला, मृतिका कला इत्यादि प्रमुख है, परन्तु अन्य कलाओं के साथ-साथ चित्रकला का भी विशिष्ट स्थान है।

भारत में चित्रकला की उत्पत्ति को साहित्यिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो अनेक ग्रंथों में इसके उदाहरण देखने में मिलते हैं। अगर ऐतिहासिक दृष्टिकोण से इसे देखा जाए तो इसके प्रारंभिक उदाहरण प्रागैतिहासिक गुफाओं में प्राप्त होते हैं। जिसमें आदिमानव ने अपने आस-पास के जीवन की झांकियों को अंतर्मन की कल्पना के साथ मिलाकर गुफा की दीवारों पर उनका प्रस्फुटन चित्र रूप में किया, जिसके साक्ष्य आज भी मौजूद है। उसी क्रम में आगे चलकर भारतीय चित्रकला का और सुदृढ़ रूप हमारे सामने आता है। जो भारतीय चित्रकला का स्वर्णिम काल

 ISSN 2278-4632

रहा है। जिसमें भारत ही नहीं विश्व कला जगत की सिरमौर अजंता चित्रकला अपने आप में अद्‌भुत है। इनमें विशेष तौर से भगवान बुद्ध के जन्म से पूर्व की घटनाओं जिनको जातक कथाओं के नाम से जाना जाता है, उनका तो अनूठा चित्रांकन इन गुफाओं में किया गया है। इसके अलावा यहां पर भगवान बुद्ध के जीवन से जुड़ी हुई अनेकों घटनाओं का चित्रात्मक रूप में बखूबी वर्णन किया गया है। इसके साथ-साथ अनेकों अलंकारिक चित्रों का सृजन इन गुफाओं की आंतरिक दीवारों पर किया गया है।

अजंता की गुफाएं महाराष्ट्र राज्य के औरंगाबाद जिले से लगभग 107 किलोमीटर और जलगांव रेलवे स्टेशन से लगभग पचपन किलोमीटर की दूरी पर बाधोरा नदी के तट पर सतपुड़ा की पर्वत शृंखलाओं में अर्धचंद्राकार आकार में स्थित है। इन गुफाओं की कुल संख्या 30 है। प्रारंभ में कुल 29 गुफाओं का पता लगा था लेकिन उसके बाद गुफा संख्या 14 और 15 के बीच में एक और गुफा का पता लगाया गया। जिसे 15(ए) नाम से पहचाना गया। इन गुफाओं की गिनती पूर्व से पश्चिम दिशा की ओर की गई है। इन गुफाओं को विशेष तौर से दो भागों में विभाजित किया गया है। जिनमें 25 गुफाएं विहार है और 5 चैत्य गुफाएं है। विहार गुफाओं का तात्पर्य बौद्ध भिक्षुओं के निवास स्थान से है और चैत्य गुफाओं का तात्पर्य वहां पर पूजा अर्चना से है। चैत्य गुफाओं में क्रमशः गुफा संख्या 9,10,19,26 व 30, है और शेष 25 गुफाएं विहार गुफाएं है। वर्तमान समय में अब 26 गुफाओं तक ही मार्ग की सुगमता है, जिससे 26 गुफाओं के चित्र हम देख सकते है। इसके बाद गुफा संख्या 27 से लेकर 30 तक की गुफाएं पहाड़ी के संकरे मार्ग होने के कारण उनका मार्ग अवरुद्ध हो गया है। इसलिए अब वहां पर पहुंच पाना अत्यधिक कठिन है।

इन गुफाओं का निर्माण काल लगभग 200 ईसा पूर्व से प्रारंभ होकर लगभग 500 ईसा तक निर्मित होती रही। चित्रण के दृष्टिकोण से उनका सृजन काल 10-200 ई. पूर्व से लगभग 682 ई. पूर्व तक जारी रहा।[3] इन गुफाओं की खोज का श्रेय एक ब्रिटिश रेजीमेंन्ट के अधिकारी को जाता है। जिसने सन् 1819 में इसको पुनः खोज निकाला। इसके पश्चात् अनेकों भारतीय व विदेशी कलाकारों ने इसकी अनुकृतियां बनाने का कार्य किया। साथ ही साथ इस पर अनेक शोध पत्र व रिपोर्ट प्रस्तुत की गई। जिससें अजंता का रूप निखर कर विश्व कला जगत पर उजागर हुआ। इस प्रकार अजंता के चित्रों की ख्याति संपूर्ण विश्व में सूर्य की किरणों के समान फैल गई और उसका विस्तृत और विशुद्ध रूप आज भी हम प्रत्यक्ष तौर पर देख सकते हैं।

इन चित्रों को बनाने के लिए विशेष चित्रण विधि का प्रयोग किया गया है। जिसमें गुफा के आंतरिक भागों की खुरदरी दीवारों पर प्लास्टर करने के लिए खड़िया, चूना, गोबर, और स्थानीय मिट्टी को मिला करके उनको कई दिनों तक अलसी के पानी में भिगोकर फूलने के लिए छोड़ दिया जाता था। जब वह फूलकर तैयार हो जाती तब इसे गुफा की खुरदरी सतह पर लगभग एक इंच मोटाई के बराबर प्लास्टर रूप में लगा दिया जाता था। तत्पश्चात् उसको समतल किया जाता था। कभी-कभी छत में लगने वाले इस प्लास्टर के अंदर धान की भूसी भी मिला दी जाती थी। उसको भी समतल करके उस पर चित्रांकन किया जाता था। प्रसिद्ध इतिहासकार **ई.वी हैवल** के अनुसार यह चित्र बनकर तैयार हो जाते थे। तब सूखने के बाद उसमें अत्यधिक प्रकाश को उभारने के लिए टेम्परा पद्धति चित्रण किया जाता था। इसी प्रकार **लेडी हैरिघम** के मतानुसार लाल रंग से सर्वप्रथम रेखांकन किया जाता था, फिर उस पर पतले-पतले रंगों की परतों में कई तानें लगा दी जाती थी। तत्पश्चात् काले व भूरे रंग से सीमा रेखाएं बनाई जाती थी। **ग्रिफिथ** महोदय के मतानुसार लाल रंग से रेखांकन किया जाता था। इस प्रकार अलग-अलग विद्वानों ने अपने शोध कार्य के जरिए अजंता के चित्रों को बनाने की तकनीक का अलग-अलग शोध आलेखों में वर्णन किया है।

शोध आलेखों व व्यक्तिगत भ्रमण के दौरान भी यह बात पाई गई है कि अब कुल 16 गुफाओं में चित्र शेष बचे हुए हैं जिनमें 17वीं गुफा में चित्र सर्वाधिक मिलते हैं, इनमें भी अब सुरक्षित चित्रों में लगभग 9 गुफाएं ही शामिल है, जिसमें गुफा संख्या 1,2,9,10,11,16,17,19, तथा 21 है। ऐसा साक्ष्य प्राप्त हुए है कि गुफा संख्या 9 व 10 का निर्माण सबसे पहले हुआ जबकि जेम्स फर्ग्युसन के अनुसार पहली गुफा में चित्र सबसे बाद में बनाए गये।[4]

अजंता में बने हुए चित्रों को हम तीन श्रेणियों में बांट सकते हैं इसमें प्रथम श्रेणी के चित्रों में जातक कथाओं का विशेष रूप से चित्रण हुआ है। जातक कथाओं का अर्थ बुद्ध के जन्म से उनके पूर्वजन्म की घटनाओं का वर्णन होता है। दूसरे स्तर के चित्रों में बुद्ध के जीवन की अनेकों अलौकिक घटनाओं का चित्र रूप में सृजन हुआ है। इसके अलावा तृतीय स्तर पर अलंकारिक श्रेणी के रूप में हम इनके चित्रों को बांट सकते है, जिसमें पशु, पक्षी, वृक्ष, लताऐ, फूल-पत्तियां, गरुड़, नाग, हाथी गंधर्व और अप्सराएं इत्यादि का भी चित्रण यहां काफी हद तक दृष्टिगोचर होता हैं।

जातक कथाओं में अनेकानेक कथाओं का चित्रण वहां पर हुआ है। जिसमें छदंत जातक, साम जातक, हस्ती जातक, महाउम्मग जातक, महाकपि जातक,

मातृपोषक जातक, शिवि जातक वेस्सांतर जातक, महाहंस जातक, क्षांतिवादी जातक और महाजनक जातक इत्यादि प्रमुखता से चित्रित है। बुद्ध के जीवन से जुड़ी हुई घटनाओं में माया देवी का स्वप्न, बुद्ध का जन्म, बुद्ध उपदेश देते हुए, मरणासन्न राजकुमारी, नंदकुमार को वैराग्य होना, श्रावस्ती का चमत्कार, राहुल समर्पण और मार विजय इत्यादि प्रसिद्ध है। इसके अलावा स्तूप पूजा, नागपुरुष, पशुओं को खदेड़ते हुए चरवाहे, दो अंगूठे वाली रमणी जैसे अनेकानेक अन्य चित्रों का सृजन यहां पर किया गया है। बुद्ध को यहां पर अनेकानेक रूपों में चित्रित किया गया है जिसमें उनका *पद्मपाणि, वज्रपाणि,* बोधिसत्त्व, अवलोकितेश्वर रूप कुशलता के साथ दर्शाया गया है। अब हम यहां पर अजंता के कुछ विशिष्ट चित्रों की विस्तृत चर्चा कर रहे हैं।

बोधि सत्व पद्मपाणि : यह चित्र अजंता की गुफा संख्या एक में बना हुआ हैं। यह चित्र भगवान बुद्ध के पद्मपाणि रूप का सृजन है, जिसमें भगवान बुद्ध को त्रिभंगी मुद्रा में दर्शाया गया हैं। उनको कमर के ऊपर के भाग तक ही दर्शाया गया है व नीचे का भाग अस्पष्ट है। इस चित्र के ऊपर गुप्तकालीन विष्णु की छाप दिखाई देती है। चित्र में भगवान बुद्ध के एक हाथ में कमल का पुष्प लिया हुआ है, इसी कारण से इस चित्र का शीर्षक *पद्मपाणि बोधिसत्व* पड़ा है। बुद्ध के सिर के ऊपर मुकुट, कानों में कुंडल, गले में माला इत्यादि का बड़ा ही सुंदर चित्रण यहां पर किया गया है। उनके चेहरे पर परम शांति के भाव परिलक्षित हो रहे हैं। उनकी आंखों को बड़ा ही सुंदर और कलात्मक बनाया गया है। विशेष बात यह है कि उनकी दोनों भोहों को एक साथ जोड़ करके दिखाया गया है, जो कलाकार की कलात्मक अभिव्यक्ति का उदाहरण प्रस्तुत कर रहा है। चित्र की पृष्ठभूमि में अनेक पशु, पक्षी जैसे सिंह, मोर,व कबूतर इत्यादि का अंकन किया गया है।

मार विजय : यह चित्र भी गुफा संख्या एक में बना हुआ है। ऐसी मान्यता है कि जब भगवान बुद्ध को विशिष्ट ध्यान व योगिक क्रियाओं के द्वारा ज्ञान की प्राप्ति होने वाली थी। तब अनेक प्रकार के संकट उनके ऊपर आए या यूं कहें कि ये सारे संकट उनकी परीक्षा लेने के लिए आए थे। यहां पर मार का अर्थ कामदेव की सेना से लगाया गया है। जिन्होंने भगवान बुद्ध को पथभ्रष्ट करने के लिए अनेक प्रकार के प्रयोजन किए, लेकिन बावजूद इसके भगवान बुद्ध ध्यानमग्न रहे और उन्होंने विशिष्ट प्रकार का ज्ञानार्जन किया। इस चित्र के अंदर भगवान बुद्ध को ध्यानस्थ मुद्रा में बैठे हुए दर्शाया गया है। उनके चारों तरफ विशिष्ट प्रकार के बोने और उनकी भयानक आकृतियां जो हाथ में तलवार इत्यादि लिए हुए हैं। वह बुद्ध को डराने का प्रयास कर रही हैं लेकिन भगवान बुद्ध को सांसारिक दुखों व सुखों को त्याग कर बोधि वृक्ष के नीचे वज्रासन की मुद्रा में ध्यान में लीन चित्रित किया गया है।

भगवान बुद्ध के चेहरे पर परम शांति के भाव परिलक्षित हो रहे हैं। वे बिल्कुल भी विचलित ना होकर अपनी ध्यानस्थ मुद्रा में ही तल्लीन है।

मृग जातक : बौद्ध पौराणिक साहित्य के अनुसार इस कथा में एक सुनहरी मृग एक व्यापारी को आत्महत्या करने से बचाता है और उससे प्रार्थना करता है कि आप शहर में जा करके इसकी चर्चा किसी से ना करें। लेकिन जब व्यापारी अपने शहर बनारस में पहुंचता है, तो उसे ज्ञात होता है कि राजा ने एक सुनहरी मृग ढूंढ़ कर लाने वाले को पुरस्कार स्वरूप बहुत-सा धन देने का कहा है। यह बात सुनकर व्यापारी के मन में लालच आ जाता है और तब वह जंगल में राजा को लेकर के चला जाता है लेकिन मृग ने फिर सारी बात राजा को बताई। तब राजा ने व्यापारी को दंड देने का सोचा लेकिन इसके उलट मृग ने राजा से व्यापारी के लिए दया की भीख मांगी क्योंकि यह कोई सामान्य मृग नहीं था बल्कि यह सुनहरी मृग स्वयं बोधिसत्व ही थे। इस वृतांत का यहां पर सुंदर निरूपण किया गया है। जिसमें एक तरफ सुनहरी मृग है तो दूसरी तरफ राजा और व्यापारी को चित्रित किया गया है।

मरणासन्न राजकुमारी : यह चित्र अजंता की गुफा संख्या सोलह में बना हुआ है, जो मरती हुई राजकुमारी के नाम से प्रसिद्ध है। यह राजकुमारी भगवान बुद्ध के भाई नंद की पत्नी सुंदरी है। जिसकी ऐसी दशा नंद के द्वारा भिक्षु बन जाने की सूचना मिलने पर हो गई। इस चित्र में एक महिला को अधलेटी अवस्था में चित्रित किया गया है, जिसके पीछे एक दासी उसे सहारा देकर ऊपर की ओर उठाएं हुए हैं। वहीं दूसरी दासी अपने एक हाथ से उसके हाथ की नाड़ी का परीक्षण कर रही है, एक अन्य दासी पंखा झल रही है। इसी दल में एक स्त्री अपने चेहरे को छिपाए हुए खड़ी है। शायद उसने यह वृतांत देखकर रुदन शुरू कर दिया है। चित्र में एक ओर सफेद टोपी लगाए एक पुरुष दरवाजे पर खड़ा है। दूसरा व्यक्ति स्तंभ के पीछे बैठा है। सफेद टोपी लगाए हुए यह वृद्धजन हाथ में मुकुट लिए हुए द्वार के निकट खड़ा है जो संभव है नंद कुमार के वैरागी हो जाने की सूचना की ओर इशारा कर रहा है।

राहुल समर्पण : यह चित्र अजंता की गुफा संख्या सत्रह में बना हुआ है, जिसमें राहुल के मुख पर एक बालक की तरह अबोधता के भाव परिलक्षित हो रहे हैं। वही यशोधरा के नेत्रों में आत्म त्याग की भावना दिखाई दे रही है। वही दूसरी तरफ बुद्ध के मुख पर आध्यात्मिकता के भाव को बड़ी ही सुंदरता के साथ दर्शाया गया है। कथानक के अनुरूप जब भगवान बुद्ध अपने ही घर अपनी पत्नी यशोधरा से भिक्षा मांगने आते हैं। तब यशोधरा अपने पुत्र राहुल को बुद्ध के समर्पित कर देती है।

माया देवी का स्वप्न : इस शीर्षक के कई चित्र अजंता की गुफाओं में देखे जा सकते हैं। लेकिन गुफा संख्या दो में यह चित्र सुरक्षित अवस्था में है। इस चित्र का निरूपण बुद्ध के जन्म के चित्रों के नीचे किया गया है। इस चित्र में माया देवी के शयनकक्ष को दर्शाया गया है, जहां पर वह सो रही है। एक सफेद हाथी उनके गर्भ में प्रविष्ट होते हुए चित्रित किया गया है। इस चित्र में कलाकार ने सफेद गोल आकार के प्रतीक से स्वप्न की कथा का निरूपण बहुत ही सुंदरता पूर्वक किया गया है।

उक्त चित्रों के अलावा भी अनेकानेक चित्रों का बड़ी ही कुशलतापूर्वक सृजन अजंता कि गुफाओं मे बौद्ध भिक्षुओं ने किया। इस क्रम में यहां अजंता के चित्रों की विशेषताओं का अध्ययन भी आवश्यक है। जिसमें सर्वप्रथम इन चित्रों में रेखाओं का अद्भुत और असाधारण प्रभुत्व देखने में आता है। जिसमें रेखाओं की आवश्यकतानुसार सुंदर भावनात्मक अभिव्यक्ति की गई है। कहीं-कहीं पर एकदम बारीक कोमल रेखाएं तो कहीं पर अपेक्षाकृत कुछ मोटी रेखाओं का भी अंकन देखने में आता है।

रेखांकन के साथ ही रंगांकन में भी अद्भुत क्षमता का परिचय अजंता के चित्रकारों ने दिया हैं। प्रायः चित्रों में सफेद, लाल, भूरे, हल्के व गहरे रंगों का प्रयोग किया गया है। अजंता के चित्रों में प्रायः सीधा सपाट रंग भर दिया गया है और छाया प्रकाश के सिद्धांत का पालन अत्यल्प ही देखने में आता है। कहीं-कहीं पर उभार या गोलाई दर्शाने के लिए कुछ गहरे रंगों के द्वारा उभार दे दिया गया है।

अजंता की एक और विशेषता है, जो उसको विशिष्ट स्थान प्रदान करती है, वह है चित्रों में प्रयुक्त हस्त मुद्राएं, अंग-प्रत्यंग एवं उनकी भाव भंगिमाएं जिसमें भगवान बुद्ध के चित्रण में उनकी हस्त मुद्राएं, धर्मचक्र प्रवर्तन मुद्रा इत्यादि में लोचदार अंगुलियों की बनावट ऐसी है मानो लगता है कि जैसे शास्त्रीय नृत्य के अंदर कोई कलाकार अपनी कला का प्रदर्शन अपनी भाव भंगिमाओं के द्वारा कर रहा है।

अजंता के चित्रकारों ने नारी चित्रण को भी विशिष्टता के साथ दर्शाया है। नारी के अनेक रूपों को कई बार वात्सल्य, प्रेयसी, विरहनी, राजकुमारी, नर्तकी, अप्सरा और नायिका इत्यादि अनेक रूपों में सृजित किया है।

अजंता के चित्रकारों ने रूपाकारों को मुकुट, आभूषण इत्यादि से भी सुशोभित दर्शाया गया है। जिनके हाथों व गले में बड़ी-बड़ी मालाएं बनाई गई है। उनकी भुजाओं पर बाजूबंद कमर में मोतियों की मालाएं और लड़ियां इत्यादि सुंदर बनाई गई है।

अजंता को यदि आलेखन की खान कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। अजंता की गुफाओं में दीवारों और उनकी छतों पर जहां-जहां नजर जाती है वहां-वहां पर बहुत सुंदर अलंकरण आलेखन देखने में आते हैं। जो अपनी विशिष्ट अलंकारिक छटा को बिखेर रहे हैं। इन आलेखनों में प्राय: पशु, पक्षी, पुष्प, लताओं का कुशलता से प्रयोग किया गया है। इसके अलावा वृषभ, बंदर, मछली, मगर, हिरण, हंस व तोता इत्यादि बहुत ही कुशलता के साथ चित्रित है।

इस प्रकार की अनेक विशेषताएं अजंता की चित्रावलियों में दृष्टिगोचर होती है। हालांकि एक शोध आलेख में अजंता के चित्रों के बारे में पूर्णरूपेण व्याख्या करना बेमानी-सी बात होती है लेकिन फिर भी उसको सार रूप में यहां पर लिखाने का प्रयास किया गया है।

हम यह बात कह सकते हैं कि अजंता की चित्रावलियों का भारतीय कला जगत में नहीं वरन् विश्व के कला जगत में अमूल्य स्थान है। जिसका संरक्षण भी करना अति आवश्यक है। हालांकि भारत सरकार के द्वारा समय-समय पर इसको सुरक्षित व संरक्षित किया जाता रहा है और इनके चित्रों की अनुकृतियां भी बनाई जाती रही है। लेकिन मूल तो मूल ही है अत: इन अनुकृतियों की जगह अगर इन चित्रावलियों को ही और सुरक्षित व संरक्षित करने के सामूहिक प्रयास किए जाए तो विश्व कला जगत की यह अमूल्य थाती सदैव सदैव के लिए जिंदा रह पाएगी।

संदर्भ :

1. वैश्य रीता प्रताप, भारतीय चित्रकला एवम् मूर्तिकला का इतिहास, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, ग्यारहवा संस्करण, 2011, पृ. सं., 3
2. वहीं पृ. सं., 3
3. वहीं पृ. सं., 62
4. जेम्स फर्ग्युसन, ऑन दी रॉक टैम्पल्स ऑफ इंडिया, जर्नल ऑफ दी रॉयल ऐशियाटिक सोसायटी ऑफ ग्रेट ब्रिटेन एवड आयरलैण्ड, आठ (1846), पृ. सं., 87

डॉ. राकेश कुमार किराड़ू

सहायक आचार्य (ड्राईंग एण्ड पेंटिग)

सिस्टर निवेदिता कन्या महाविद्यालय, बीकानेर (राजस्थान)

मो. : 7976216294

❑❑❑

शरभपुरीय तथा पाण्डुवंशीय विविध कलात्मक शैव प्रतिमायें

डॉ. मोना जैन • नमन जैन

दक्षिण कोसल के स्थानीय राजवंश शरभपुरीय एवं पाण्डुवंशीय शासकों के शासन काल में ताला, सिसदेवरी, मल्हार, राजिम, खरौद, सिरपुर तथा पलारी कला केन्द्र के रूप में पल्लवित हुए। ये सभी क्षेत्र वनों से आच्छादित, सुरक्षित स्थल तथा जलमार्ग नदियों के पास होने तथा भरपूर संसाधनों के उपलब्ध होने के कारण सांस्कृतिक कला-सम्पदा की दृष्टि से समृद्धशाली होते चले गये। इसका एक मुख्य कारण यह भी रहा कि यहाँ मूर्ति एवं प्रतिमाओं का सृजन कोमल प्रस्तरों से हुआ, ताला के मूर्तिशिल्प में यह विशेषकर हुआ। विख्यात पुरातत्वविद् डॉ. श्यामकुमार पाण्डेय का कहना है कि ''ये चट्टानें इतनी मुलायम हैं कि इन्हें नाई की नहनी से भी छीला जा सकता है।''[1]

शरभपुरीय तथा पाण्डुवंश की अधिकतर प्रतिमायें धर्म तथा सम्प्रदाय से संबंधित होने के साथ कुछ प्रतिमायें[2] तत्कालीन समाज एवं दैनिक पारिवारिक जीवन से भी संबंधित हैं। इनमें धार्मिक तथा धर्मेत्तर दोनों ही प्रकार की प्रतिमायें दिखायी देती हैं।

पौराणिक साहित्य में शिव का महिमा का वर्णन मिलता है—

वन्दे महानन्दमनन्तलीलं महेश्वरं सर्वविभुं महान्तम्।
गौरीप्रियं कार्तिकविघ्नराजसमुद्भव शंकरमादिदेवं।।

(शिवपुराण, अध्याय-1)

शिव के अवतारों की कल्पना को मूर्तरूप देने के लिए शिल्पकारों ने तत्कालीन युग में जीवंत प्रतिमाओं का सृजन किया।[3] गंधेश्वर मंदिर अभिलेख[4] से ज्ञात होता है कि गुप्तोत्तर काल में शैव धर्म को मानने वाले थे। शिव का शांत रूप सौम्य भाव को अभिव्यक्त करता है। शरभपुरीय और पाण्डुवंशीय प्रतिमाओं में शिव के विभिन्न मानव रूपों का वर्णन मिलता है।

ताला स्थित देवरानी मंदिर की रूद्र शिव की प्रतिमा[5] लाल रंग प्रस्तर से निर्मित है यद्यपि इस प्रतिमा के संबंध में पुरातत्वविद्‌ व कलाविदों में मतभेद मिलता है। यह मानवाकृति में निर्मित है। समपाद स्थानक मुद्रा में है, दायें हाथ में दण्ड खंडितावस्था में है। बायाँ हाथ कमर पर अवस्थित है। संपूर्ण देह पर पशु, पक्षी, मानव एवं अन्य जीव धारियों का शिल्पांकन दिखाई देता है। शिव प्रतिमा का मध्य भाग[6] लाल चूना पत्थर पर निर्मित है। शिव का धड़ से पैर तक हिस्सा दृश्यमान है। पैर का भाग खण्डित है। यह द्विभंग मुद्रा में है। बाघम्बर धारण किए शिव का बायाँ हाथ जंघा के पास है। शिव मस्तक[7] लाल पीले रंग के प्रस्तर से निर्मित है, प्रतिमा में शिव का जटाजूट विशिष्ट प्रकार का है। नयन मूंदे हुए है। यह प्रतिमा जिला पुरातत्व संग्रहालय बिलासपुर में है।

सिरपुर से प्राप्त शिव की प्रतिमा[8] धूसर काले प्रस्तर से निर्मित है। यह प्रतिमा षठ भुजी है। दायाँ हाथ खण्डित है तथा बायें हाथ में क्रमशः सर्प, त्रिशूल एवं डमरू धारण किये हैं। वाहन नंदी लघु आकार में शिल्पांकित है। यह प्रतिमा पाण्डुवंशीय छठवीं-सातवीं ईस्वी की है।

शिवलिंग में शिव के एक मुखी से लेकर पंच मुखी तक का अंकन किया जाता था।[9] गुप्तकाल में एक मुखी अथवा चतुर्मुखी शिवलिंग प्रतिमाओं की परम्परा लोकप्रिय थी।[10] चतुर्मुखी शिवलिंग सिरपुर की मूर्तिशाला में संग्रहित है।[11] यह काले प्रस्तर से निर्मित है। शिव की मुखमुद्रा शांत, सौम्य, जटाकेश चन्द्रमा तथा सर्प से युक्त मानवरूप में दर्शित है। यह प्रतिमा पाण्डुवंशीय छठवीं शताब्दी ईस्वी की है।

ताला के देवरानी मंदिर से प्राप्त पाँचवी छठवीं शताब्दी ईस्वी की उमा महेश्वर[12] की शरभपुरीय शासकों के शासनकाल में निर्मित प्रतिमा लाल रंग के चूना प्रस्तर की है। आलिंगनरत शिव-पार्वती दोनों का मुखमण्डल खण्डित है। शिव का एक हाथ जमीन पर है। पार्वती शिव की गोदी में बैठी हैं। देवी शिव के गले में बाँहे डाले हुए हैं, शिव पार्वती के वक्ष को स्पर्श करते हुए प्रदर्शित है।

मल्हार के देउर मंदिर से प्राप्त उमा महेश्वर[13] की प्रतिमा पीले प्रस्तर पर निर्मित है। शिव की बायी जंघा पर उमा विराजमान है। उमाने अपने दायें हाथ को शिव की बायी जंघा पर और बायें हाथ को दायी जंघा पर रखा है। चतुर्भुजी शिव के पीछे के दोनों हाथों में क्रमशः सर्प और त्रिशूल है। सामने का दायाँ हाथ जनेऊ को दबाये अभय मुद्रा में है तथा बायाँ हाथ उमा के बायें कंधे पर है। यह प्रतिमा पांडुवंशीय छठवीं शताब्दी ईस्वी की है।

गंधेश्वर मंदिर, सिरपुर से प्राप्त उमा महेश्वर[14] की प्रतिमा धूसर काले

प्रस्तर से निर्मित है। महेश्वर की बायी जंघा पर उमा विराजमान है। महेश्वर का नंदी ऊपर बैठा है। महेश्वर का बायाँ हाथ उमा के बाये कंधे पर है तथा दायें हाथ की हथेली क्षरितावस्था में है, महेश्वर का मुख भी क्षरितावस्था में है। प्रतिमा पाण्डुवंशीय छठवी-सातवीं शताब्दी ईस्वी की है।

तीन प्रतिमायें[15] उमा महेश्वर की गंधेश्वर मंदिर परिसर से सिरपुर से छठवीं सातवीं शताब्दी ईस्वी पाण्डुवंशीय प्राप्त हुई हैं। प्रतिमायें धूसर काले प्रस्तर से निर्मित हैं।

मठपुरैना (तालाब के मेड) रायपुर से प्राप्त उमा महेश्वर की प्रतिमा[16] कृष्णलोहित प्रस्तर फलक पर अच्छी स्थिति में हैं। महाकवि कालिदास द्वारा रचित कुमारसम्भवम् में शिव-पार्वती द्वारा कुमार कार्तिकेय को तारकासुर का वध करने के लिए भेजते हैं, उसका वर्णन मिलता है।

देवताओं द्वारा शिव से कुमार को देवताओं के शत्रु तारकासुर से युद्ध करने और इन्द्र व देवताओं की रक्षा करने के लिए विनती करने पर शिव कुमार को युद्ध कौशल में निपुण करते हैं और फिर कुमार को तारकासुर के वध हेतु भेजते हैं। यह पूरा कथानक शिल्प में दृष्टव्य होता है।

समस्त देवताओं के आगे यात्रा योग्य सुंदर वेष धारण कर उपस्थित होकर कुमार ने तीनों लोक के स्वामी भगवान शिव के चरणों में अपना शीश झुकाकर प्रणाम किया।

प्रस्थानकालोचितचारूवेषः स स्वर्गिवर्गैरनुगम्यमानः।
ततः कुमारः शिरसा नतेन त्रैलोक्यमुतः प्रणनाम पावौ।।

(कुमारसम्भवम्, अध्याय 13/श्लोक 1)

तब शिव ने प्रणाम स्वीकार करते हुए पुत्र का सिर सूंधकर अत्यंत प्रसन्नता से आशीष दिया कि हे वीर पुत्र! युद्ध में तुम इन्द्र के शत्रु तारकासुर का वध करो और इंद्र के पद को पुनः स्थिर कर दो। इसके पश्चात कुमार ने अत्यंत विनम्रता से अपनी माता पार्वती को प्रणाम किया। उस समय माता पार्वती की आँखों से जो अश्रुविन्द गिरा मानो उसी से श्रेष्ठ वीर का सेनापति के पद पर अभिषेक हो गया।

उमा की बायीं तरफ कार्तिकेय पंख फैलाये मोर पर आरूढ़ है और युद्ध के लिए देवलोक से प्रस्थान करते हुए प्रदर्शित है। प्रतिमा के नेत्रों से अश्रु बहते हुए दिखाया गया कि उमा पुत्र को युद्ध के लिए भेजते हुए विचलित हो रही है। शिव उमा को अंक में लेकर ढांढस बंधा रहे हैं, पर शिव भी पुत्र को भेजते हुए विचलित हो रहे हैं दिखाई देते हैं। पुत्र वियोग का दृश्य पाण्डुवंशीय इस प्रतिमा में दिखाई देता है।

शृंगारपरक उमा-महेश्वर की पाण्डुवंशीय छठवीं-सातवीं शताब्दी ईस्वी की प्रतिमा कृष्ण प्रस्तर फलक पर अच्छी स्थिति में है। उमा महेश्वर अपने परिवार के साथ हैं। शिव उमा के साथ वृषभ पर ललितासन मुद्रा में आसनस्थ हैं। नंदी सिर उठाकर शिव को देख रहा हैं। चतुर्भुजी शिव उमा को अंक में लिए हैं। पीछे के दोनों हाथ खण्डित हैं। शिव उमा को देख रहे है। आभामंडल शोभायमान है। शिव का दायाँ पैर खण्डित, अधोवस्त्र धारण किए हैं। शिव का बायाँ पैर मुड़ा हुआ हैं, जिसके तलुवे पर पदम् की आकृति बनी है। कलाकार ने उमा की देह को कोमल, सुंदर एवं समानुपातिक बनाया है। द्विभुजी उमा का दायाँ हाथ शिव के कंधे पर है, महीन वस्त्र धारण की है। उमा के बायें तरफ मोर पर आसीन कार्तिकेय हैं, इसकी सतह घिस जाने के कारण स्पष्ट दृष्टिगोचर नहीं होती। नीचे की तरफ चतुर्भुजी गणेश स्थानक त्रिभंग मुद्रा में अपने वाहन मूषक पर द्रष्टव्य हैं। उमा के पैर के नीचे उपासिका है जो हाथ में शंख लिए है, खंडित हो जाने के कारण स्पष्ट नहीं है।

पार्वती को शिव की शक्ति माना गया है। इस अवधारणा ने जनमानस में एक नयी कल्पना को साकार किया। यही विचार अर्धनारीश्वर के रूप में परिणीत हुआ।[17] राजिम से प्राप्त अर्धनारीश्वर की प्रतिमा[18] सफेद बलुआ से निर्मित शरभपुरीय पाँचवी छठवीं शताब्दी ईस्वी की है। शिव एक हाथ में डमरू धारण किए हैं तथा एक हाथ अभय मुद्रा में है। पार्वती पीछे के हाथ में दर्पण (वामतो दर्पणं मत्स्यपुराण, 123/30) और सामने के हाथ में वस्त्रखण्ड धारण की है।

सिसदेवरी से प्राप्त अर्धनारीश्वर की प्रतिमा लाल बलुआ प्रस्तर से निर्मित है। कमर के दायें भाग पर लहरियादार परिधान है। कमर की बायी ओर घुटने तक लहरियादार अधोवस्त्र धारण किये है। घंटियों से गुंथा हुआ साड़ी की छोर शोभायमान है। कटि के मध्य भाग में सिंह की पूँछ दायी तरफ लटक रही है। पूंछ साड़ी की सलवटों के साथ सामंजस्य बनाये हुए है। अर्धनारीश्वर का सिर, भुजायें तथा पैर खंडित है। जी.एल.रायकवार ने इस प्रतिमा को शरभपुरीय छठवीं-सातवीं शताब्दी ईस्वी का माना है[19] सिसदेवरी से छठवीं शताब्दी ईस्वी का अर्धनारीश्वर का शीर्ष प्राप्त होता है, जो लाल बलुआ प्रस्तर से निर्मित है। गोलाकार मुख पर दायी ओर मूँछ है। सिर के ऊपर जटाजूट एवं अर्धचन्द्र है, बायी और फूलों का गुच्छा है, जो केशों से लिपटा हुआ है।[20]

देउर मंदिर, मल्हार से पाण्डुवंशीय छठवीं शताब्दी ईस्वी कल्याण सुंदर[21] (शिव पार्वती विवाह) प्रतिमा में शिव पार्वती स्थानक मुद्रा में है। प्रतिमा लाल रंग के बलुआ प्रस्तर से निर्मित है। शिव पार्वती का बायाँ हाथ तथा पार्वती शिव

 ISSN 2278-4632

का दायाँ हाथ पकड़े हुए हैं। शिव का एक हाथ अभय मुद्रा में है। शिव पार्वती का सिर खण्डित है। शिव के पार्श्व में चतुर्भुजी बह्मा आसन मुद्रा में है। शिव के पार्श्व में विष्णु घट लेकर खड़े हैं। अनुचारिका एक हाथ में मोदक तथा दूसरे हाथ को ऊपर कर पार्वती के हाथ को पकड़ी है।

कल्याण सुंदर[22] की एक अन्य प्रतिमा पांडुवंशीय आठवी शताब्दी ईस्वी की सिद्देश्वर मंदिर, पलारी से प्राप्त होती है। यह प्रतिमा पीले रंग के बलुआ प्रस्तर से निर्मित है। शिव पार्वती दोनों पूर्ण विकसित पदम् पर स्थानक है। शिव पार्वती के दाये हाथ को पकड़े हैं तथा बायें हाथ से पार्वती की बायी भुजा को पकड़े हैं। पार्वती का बायाँ हाथ नीचे की ओर है, जो खंडित है। शिव और पार्वती एक दूसरे को देखते हुए प्रदर्शित हैं। पार्वती के पार्श्व में सूक्ष्मकाय नारी शिल्पांकित है तथा बड़े आकार में चतुर्भुजी देवी स्थानक है। किनारे की तरफ स्त्री खंजनी एवं पुरुष मृदंग बजा रहा है। ब्रह्मा और विष्णु अपने-अपने वाहन हंस और गरूड़ पर आसीन है। ब्रह्मा और विष्णु के पार्श्व में दो योगी प्रतिमायें आसन मुद्रा में है। ब्रह्मा त्रिमुखी व चतुर्मुखी हैं। एक हाथ में वेद धारण किए है तथा एक हाथ को दायें घुटने पर रखे हैं, अन्य दो हाथ खंडित हैं। विष्णु चतुर्भुजी हैं, ऊपर के दोनों हाथ में शंख और चक्र धारण किए हैं तथा अन्य दो हाथ अभय तथा वरद मुद्रा में हैं।

राजिम से प्राप्त नटराज शिव की प्रतिमा शरभपुरीय छठवीं शताब्दी ईस्वी की है। पिण्डीबन्ध देवी-देवताओं के चिन्हों से चिन्हित होते हैं। शिव ने रेचक, अंगधर और पिण्डीबन्धों के सृजन कार्य को पूरा करने के उपरान्त उन्हें तण्डु मुनि को दिया। तब तण्डुमुनि ने गीत और वाद्य को संयुक्त कर नृत्य की रचना की, वही ताण्डव नाम से विख्यात हुआ।[23] नृत्य के दो प्राचीन रूप तांडव व लास्य है। तांडव कठोरता को झलक लिए होता है और इसे पुरुष नृत्य के रूप में स्वीकार किया गया है।[24] नटराज शिव की शरभपुरीय प्रतिमा अष्टभुजी है, हाथ में आयुध धारण दिए हुए हैं।[25]

सिरपुर से प्राप्त नटराज की प्रतिमा छठवीं शताब्दी ईस्वी की धूसर काले प्रस्तर से निर्मित है।[26] नटराज अष्टभुजी हैं, हाथों में आयुध धारण किए हैं। नटेश के बायीं ओर कार्तिक तथा दायीं और गणेश शिल्पांकित हैं। पार्श्व में संभवतः पार्वती और अनुचर है, प्रतिमा क्षरितावस्था में होने के कारण अस्पष्ट हैं।

कार्तिकेय की प्रतिमा[27] लाल पीले रंग के प्रस्तर से निर्मित है। मयूर पर आसीन कार्तिक दोनों पैर को फैला कर बैठे हैं। प्रतिमा चतुर्भुजी रही होगी, ऐसा प्रतीत होता है। कार्तिकेय बायें हाथ से मयूर पंख पकड़े हैं। यह प्रतिमा जिला

पुरातत्व संग्रहालय बिलासपुर में है। ताला से प्राप्त कार्तिकेय की यह प्रतिमा शरभपुरीय पांचवी छठवीं शताब्दी ईस्वी की है।

राजिम के कुलेश्वर मंदिर की कार्तिकेय की प्रतिमा[28] कत्थे, पीले, चमकदार पत्थर से निर्मित है। कार्तिकेय अपने वाहन मयूर पर ललितासन मुद्रा में हैं। द्विभुजी कार्तिकेय दायें हाथ को ऊपर किए और कुछ भी धारण किए हैं, जो खण्डित है। बायाँ हाथ नीचे की ओर घुटने के पास हैं। कार्तिकेय बखनरवा घर धारण किए हैं। मयूर के सिर का भाग खण्डित हो गया है। कार्तिकेय के नीचे साधु की मूर्ति है, जो पालथी मारे हुए है, दोनों हाथ खण्डितावस्था में हैं। बीच में उपासक की मूर्ति है, जिसके एक सिर तथा दो धड़ हैं। पास में उपासक की मूर्ति है, जो ललितासन मुद्रा में है और वह बटुक (छोटा) है। यह प्रतिमा राजिम के कुलेश्वर मंदिर से प्राप्त पाण्डुवंशीय है।

शरभपुरीय एवं पाण्डुवंशीय शासकों के काल को स्वर्णयुग कहा जा सकता है। शरभपुरीय एवं पाण्डुवंशीय शासक कलाप्रेमी थे जिसका प्रमाण उनके द्वारा निर्मित मूर्तियाँ तथा मंदिर-स्थापत्य हैं। इन शासकों के शासन काल में मंदिर-स्थापत्य में विभिन्न धार्मिक प्रतिमाओं एवं धर्मेन्तर मूर्तियों का कलात्मक शिल्पांकन देखने को मिलता है। इन नरेशों के शासन काल में ताला, सिसदेवरी, मल्लार, राजिम, सिरपुर तथा पलारी कला के प्रमुख केंद्र रहे। अंत में यह कहा जा सकता है कि प्राचीन काल में यह संपूर्ण क्षेत्र वनप्रांतर तथा सुरक्षित स्थल और जलमार्ग नदियों के निकट होने के कारण उपलब्ध संसाधनों से भरपूर सांस्कृतिक कला के वैभवपूर्ण होने तथा तत्कालीन समाज में प्रचलित उपासना परम्परा, विभिन्न धर्म सम्प्रदायों की महत्वपूर्ण जानकारी हमें मूर्ति-शिल्पों से प्राप्त होती है।

संदर्भ :

1. पाण्डेय श्याम कुमार, *दक्षिण कोसल का इतिहास तथा वास्तु शिल्प*, पृष्ठ 73
2. ठाकुर विष्णुसिंह, राजिम, पृ.106-07
3. गुप्त शिव कुमार, *प्राचीन भारतीय मूर्तिकला*, पृ. 133
4. जैन बालचन्द्र, *उत्कीर्ण* लेख, पृ. 194
5. रायकवार जी.एल, *ताला का पुरावैभव* पृ. 29
6. वही, पृ. 29
7. वही, पृ. 29
8. रायकवार जी.एल, *'सिरपुर की शिल्पकला', कोसल,* अंक 4 (2011) संचालनालय, संस्कृति एवं पुरातत्व, छत्तीसगढ़ शासन, रायपुर, पृ. 49

9. श्रीवास्तव डॉ. बृजभूषण, *प्राचीन भारतीय प्रतिमा विज्ञान एवं मूर्तिकला*, पृ. 60
10. गुप्त शिव कुमार, *प्राचीन भारतीय मूर्तिकला*, पृ. 133
11. लक्ष्मण मंदिर परिसर में स्थित मूर्तिशाला, अधीक्षण पुरातत्वविद, भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण, रायपुर मण्डल, न्यू राजेन्द्र नगर, रायपुर, रायकवार, जी.एल., *सिरपुर की शिल्पकला*, कोसल अंक 4, (2011), संचालनालय, संस्कृति एवं पुरातत्व, छत्तीसगढ़ शासन, रायपुर, पृ. 48
12. रायकवार, जी.एल, *ताला का पुरा वैभव*, पृ. 24
13. पांडेय रघुनंदन प्रसाद, *मल्हार दर्शन*, पृ. 11
14. श्रीवास्तव महेशचन्द्र, *सिरपुर*, पृ. 47
15. वही, पृ. 47
16. यदु हेमु, *दक्षिण कोसल की कला*, पृ. 71
17. गुप्त शिव कुमार, *प्राचीन भारतीय मूर्तिकला*, पृ. 137
18. ठाकुर विष्णुसिंह, *राजिम*, पृ. 115
19. रायकवार जी.एल, *सिसदेवरी उत्खनन*, पृ. 25
20. वही, पृ. 25
21. पाण्डेय रघुनंदन प्रसाद, मलहार दर्शन, पृ. 11
22. वर्मा कामता प्रसाद, *छत्तीसगढ़ की स्थापत्यकला*, पृ. 82
23. *नाट्यशास्त्र*, 4/261-263
24. श्रीराम परिहार, ''नृत्य की ताल पर'', रंग संवाद-10 (वनमाली सृजनपीठ संवाद पत्रिका) वनमाली सृजनपीठ अरेरा कॉलोनी, भोपाल, मार्च 2014, पृ. 17
25. ठाकुर विष्णुसिंह, *राजिम*, पृ. 115
26. रायकवार जी.एल., 'सिरपुर की शिल्पकला', *कोसल* अंक 4 (2011) संचालनालय, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, छत्तीसगढ़ शासन, रायपुर, पृ. 49
27. निगम एल.एस. रिडिल ऑफ इण्डियन आइकलोग्राफी, चित्रफलक 19, रायकवार जी.एल., अद्भुत कला परम्परा की धरोहर-ताला, *बिहनिया*, अंक-7 (2009), संस्कृति विभाग, रायपुर, पृ. 33, रायकवार जी.एल., ताला का पुरा वैभव, पृ. 18
28. ठाकुर विष्णु सिंह, *राजिम*, पृ. 117

डॉ. मोना जैन

शास. जे. योगानन्दम् छत्तीसगढ़ महाविद्यालय

रायपुर (छ.ग.)

❑❑❑

प्रताप की राजधानी चावंड की जनसंख्या का अनुमान

• डॉ. बी.एल. भादानी

प्रस्तावना

सामान्यतः महाराणा प्रताप के इतिहास को इतिहासकारों द्वारा हल्दीघाटी युद्ध तक ही सीमित कर दिया गया है। इस युद्ध में जय-पराजय के प्रश्न पर विद्वानों के मध्य बह-मुबाहसे ने महाराणा के पश्चात्वर्ती इतिहास को पृष्ठभूमि में धकेल कर गौण बना दिया है। इन बहसों से हल्दीघाटी युद्ध में सिसोदिया शासक की पराजय को विजय में परिवर्तित नहीं किया जा सकता या फिर कोरी 'घोषणाओं' से इस युद्ध के परिणाम को बदला भी नहीं जा सकता।

इस आलेख को लिखने का उद्देश्य 1585 ई. में प्रताप द्वारा स्थापित राजधानी चावंड के विस्तार एवं जनसंख्या का अध्ययन करना है। इसमें पूर्व में स्थापित राजधानी उदयपुर एवं उसके उजड़ने एवं चावंड के बसने एवं फैलाव के मध्य सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास भी किया गया है।

प्रताप द्वारा स्थापित चावंड : मेवाड़ की पांचवी राजधानी

मुग़ल सेना के विरुद्ध दिवेर विजय के पश्चात महाराणा प्रताप ने ऐसे स्थान की तलाश प्रारंभ कर दी जो सुरक्षात्मक दृष्टि से निरापद एवं पूर्णतः रक्षित हो। कुम्भलगढ़ एवं गोगूंदा अब सुरक्षित नहीं रहे थे क्योंकि मुग़ल यहाँ तक पहुँच चुके थे इसलिए वह पहाड़ों के मध्य किसी ऐसे स्थान की खोज में था जहां मुग़ल सेना का पहुँचना आसान न हो। तब उसे छपनियां राठौड़ों की राजधानी चावंड का स्मरण हो आया जहां के लूणा चावंडिया नामक भोमिया को दबाने में उसके पिता राणा उदयसिंह असफल रहे और उसे भी काफी बल प्रयोग करने के पश्चात् सफलता प्राप्त हुई लेकिन इसके उपरांत भी संगठित विद्रोहियों का पूर्णतः दमन नहीं किया

जा सका था। प्रताप के मस्तिक में नई राजधानी के लिए चावंड का विचार आने पर उसने अपने परामर्शदाताओं, सैन्य एवं क्षेत्र विशेष के विशेषज्ञों से विचार-विमर्श के पश्चात अन्तिम निर्णय ले लिया। इस निर्णय से चावंड को मेवाड़ की पांचवीं राजधानी का दर्जा प्राप्त हो गया।

गोहिल/गुहिल एवं बप्पा रावल द्वारा स्थापित मेवाड़ राज्य की कई राजधानियां रहीं। गुहिल से सिसोदिया शाखा के शासकों के काल तक राजधानियां परिवर्तित होती रहीं—वे थीं नागदा (आयड़), चित्तौड़, उदयपुर, गोगूंदा एवं चावंड। इस प्रकार लगभग एक हजार वर्ष में पांच राजधानियां स्थापित की गईं, जो राज्यसत्ता का केन्द्र हुआ करती थीं। शासक अपने सम्पूर्ण लवाजमे के साथ यहां निवास करता था जिनमें मुख्य थे—राजवंश के सदस्य, भाई बिरादरी एवं गैर-बिरादरी के सामंत, दरबारी, मंत्री, सैनिक-प्रशासनिक अधिकारी, चारण-भाट, पुरोहित, साहित्यकार, शासक एवं रनिवास में कार्यरत सेवक आदि। इसके अतिरिक्त राज्य द्वारा पोषित सेना एवं उससे सम्बद्ध विभागों के कर्मचारी मुख्यालय पर ही निवास करते थे। राज्यसत्ता का केन्द्र होने के कारण शासकीय अमले के अतिरिक्त विभिन्न व्यवसायों एवं जातियों के लोगों का राजधानी में बड़ी संख्या में जमावड़ा होना भी स्वाभाविक था। इतनी बड़ी संख्या में लोगों की बसावट से राजधानी में व्यापार का विस्तार होना भी स्वाभाविक था। इस प्रकार राजधानी का शहर के रूप में विकास होना भी निश्चित था।

मेवाड़ की उपरोक्त राजधानियों के विस्तार एवं उसमें निवास करने वाले जनसमुदाय का संख्यात्मक आकलन करना अत्यंत रुचिकर अध्ययन है लेकिन अधिकांश स्थानों से सम्बन्धित प्रत्यक्ष साक्ष्यों का अभाव इस प्रयास में सबसे बड़ी बाधा है। महाराणा उदयसिंह द्वारा स्थापित उदयपुर एकमात्र ऐसी राजधानी थी जिसमें घर-गिनती (house-count) के आंकड़े उपलब्ध होते हैं। इसके अतिरिक्त चित्तौड़ के बारे में अप्रत्यक्ष साक्ष्य मिलते हैं जो अलाउद्दीन ख़िलजी एवं मुग़ल बादशाह अकबर द्वारा आक्रमण के दौरान जनसामान्य के कत्लेआम के आंकड़े हैं जिनके आधार पर कुछ मोटा-मोटा अनुमान लगाया जा सकता है।

लूणा चावंडिया (भोमिया) का सत्ता केन्द्र : चावंड

मेवाड़ रियासत में एक ऐसा भोमिया क्षेत्र था जो स्वायत्तशासी था जिसके स्वामी स्वयंभू शासक थे। दूसरे शब्दों में यह राज्य के भीतर राज्य (State within state) था। ये राठौड़ बिरादरी के थे जो किसी की संप्रभुता को मान्यता नहीं देते थे। उनके द्वारा शासित क्षेत्र 'छप्पन' कहलाता था जो छप्पन गाँवों के चार समूहों में विभाजित था जिसके चार पृथक सत्ता केन्द्र थे : झाड़ोल,

सलूम्बर, सेमारी एवं चावंड। छप्पन की ईकाइयों के समूह में विभाजित क्षेत्र पर आधिपत्य होने के कारण ये भोमिये[1] 'छपनिया राठौड़' कहलाते थे। उनके अधीन क्षेत्र में कुल 224 गाँव थे जो उनके **उतन** (फारसी वतन) कहलाते थे अर्थात् जिन पर इनका पैतृक अधिकार था। किसी की भी सत्ता को मान्यता प्रदान न करने के कारण इनका क्षेत्र विद्रोही अर्थात **मेवासी** (फारसी-**ज़ोरतलब**)[2] कहलाता था। ये सोनिंग राठौड़ के वंशधर थे लेकिन इनके यहां आकर बसने एवं इस क्षेत्र पर आधिपत्य स्थापित करने का समय ज्ञात नहीं है। यहां यह जानना अत्यन्त दिलचस्प है कि राणा उदयसिंह से पूर्व मेवाड़ के किसी भी शासक ने इनके क्षेत्र की ओर ध्यान क्यों नहीं दिया? उदयसिंह के काल में इस क्षेत्र पर आधिपत्य करने के प्रयास किए गए लेकिन पूर्णतः सफलता नहीं मिली। अन्त में महाराणा प्रताप को इसमें कुछ सीमा तक सफलता प्राप्त हुई। इनके विद्रोह के सम्पूर्ण केन्द्र समाप्त करके सीधा राज्य द्वारा शासित क्षेत्र **खालिसा** (सीधे राज्य प्रशासन का अंग) में सम्मिलित कर लिए गए।

छपनियां राठौड़ भूमिया चूंकि स्वायत्तशासी थे इसलिए शासकों के समान इन्होंने अपनी जीवनशैली अपनाई हुई थी जिसके कारण बड़ी संख्या में दस्तकारों का इन केन्द्रों की ओर आकर्षित होना स्वाभाविक था। इनकी आवश्यकताएं पूरी करने के लिए व्यापारी भी यहां आकर बसने लगे परिणामत: व्यापारिक गतिविधियों में वृद्धि होने लगी। इनकी आर्थिक सम्पन्नता का आधार इनके अधीन उपजाऊ क्षेत्र का होना था।

महाराणा प्रताप द्वारा कड़े संघर्ष के पश्चात लूणा चावंडिया को परास्त किया जा सका तथा इसके साथ ही चावंड के अतिरिक्त छप्पन के अन्य सभी सत्ता केन्द्रों को भी ध्वस्त कर दिया गया। नैणसी लिखता है कि इनके विद्रोही केन्द्र (**मेवास**) बर्बाद कर दिए गए लेकिन छपनियें राठौड़ प्रताप के समय भी गाँवों में निवास करते रहे थे।[3] सिसोदिया एवं छपनियां राठौड़ों के मध्य कड़े संघर्ष का श्रेय पश्चातवर्ती समूह की खांप (अर्थात् छपनियां राठौड़ों की खांप) आधारित सैन्य शक्ति को दिया जा सकता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि प्रताप ने जिस समय लूणा चावंडिया से चावंड जीता था उस समय भी वह निश्चित ही एक विकसित शहर रहा होगा। पहाड़ों के मध्य प्राकृतिक किलेबंदी से सुरक्षित यह एक ऐसा शहर था जो मध्यकालीन मापदण्डों के अनुकूल एक आदर्श स्थल था। सिसोदिया शासक ने छापामार युद्ध के द्वारा मुग़ल थानों पर अपना आधिपत्य स्थापित करने के पश्चात नवीन राजधानी की स्थापना के लिए उपयुक्त स्थान की खोज प्रारम्भ की तब उसको

 ISSN 2278-4632

अपने द्वारा विजित चावंड का स्मरण हो आया जिस पर कड़े संघर्ष के पश्चात उसने आधिपत्य स्थापित किया गया था जो युद्धकालीन राजधानी हेतु एक आदर्श स्थल था जिसको भोमिया द्वारा विकसित भी किया गया था। इसलिए अन्त में 1585 ई. में यहीं नवीन राजधानी स्थापित की गई। दुर्ग की नींव भी वहीं रखी गई जहां पूर्व में लूणा चावंडिया की गढ़ी थी।[4]

प्रताप की सेना के अनुमान का आधार :

1585 ई. में सिसोदिया शासक द्वारा राजधानी की स्थापना के पश्चात चावंड की जनसंख्या का अनुमान लगाना अत्यंत दिलचस्प होगा। इसके लिए सर्वप्रथम हमें प्रताप की सेना की संख्या ज्ञात करनी होगी जिसमें एक जैन मुनि हमारी सहायता करता है। महाराणा प्रताप द्वारा 1585 ई. में चावंड में राजधानी स्थापना के तीन वर्ष पश्चात् 1588 ई. में जैन मुनि हेमरतन ने सिसोदिया शासक के अधिकारी ताराचंद (भामाशाह का भाई) के अनुनय विनय पर 'गोरा बादल पदमिणी चउपई' नामक ग्रन्थ की रचना की जो प्रत्यक्ष रूप से तो अलाउद्दीन-पद्मिणी कथा पर केन्द्रित है लेकिन मेरा मानना है कि चूंकि ग्रन्थ की रचना प्रताप के काल में की गई इसलिए स्वभावतः वर्णन भी प्रतापकालीन है न कि अलाउद्दीन के समय का। इस ग्रन्थ में चित्तौड़ के शासक की सेना की संख्या का अप्रत्यक्ष संकेत मिलता है जो प्रकारान्तर से प्रताप की सेना का आकलन होना चाहिए। कवि के अनुसार सिसोदिया सेना की संख्या लगभग बारह हजार थी।[5] इस अनुमान का आधार हेमरतन द्वारा रचित दो पद्य हैं। इन दो पद्यों के अनुसार चौहान सैन्य योजनाकर्ता बादल के अनुसार दो हजार पालकियों में शस्त्रों से सुसजित दो सैनिक बैठेंगे जिसका तात्पर्य यह हुआ कि चार हजार सैनिक उनमें होंगे। लेकिन कवि उन पालकियों को उठाने वाले कहारों का जिक्र नहीं करता है। इसलिए एक पालकी को उठाने हेतु चार कहारों की आवश्यकता होती है जिस अनुमान के आधार सैनिकों की कुल संख्या बारह हजार हो जाती है। इतने सैनिकों के साथ चौहान बादल अलाउद्दीन से भेंट करने गया था। अलाउद्दीन से यह कहा कि इन पालकियों में पद्मिनी एवं उनकी सहेलियां हैं। इतनी बड़ी संख्या में सैनिकों के उपरोक्त अनुमान की पुष्टि जहाँगीर के समय में आए एक अंग्रेज यात्री के कथन से भी होती है। विलियम हॉकिन्स (1609-11 ई.) ने महाराणा अमरसिंह की सेना की कुल संख्या सत्तर हजार अंकित की है जिसमें 20,000 घुड़सवार एवं 50,000 पैदल सैनिक थे।[6] इसी प्रकार विलियम फिंच, जो 1608-11 ई. के मध्य भारत आया था, वह राणा अमरसिंह की सैन्य शक्ति के बारे में लिखता है कि He is able to make

twelve thousand horse upon any occassion अर्थात् किसी भी अवसर पर वह बारह हजार उम्दा घोड़े तैयार कर सकता है।[7] उसके द्वारा आगे लिखा गया कथन भी बहुत महत्त्वपूर्ण है कि उसके राज्य में 'अच्छे एवं बहुत अच्छे (अर्थात) बड़े शहर हैं' (and holds many faire towns and goodly cities)[8] जब फिंच अच्छे अर्थात बड़े शहरों की बात करता है तो इसमें एक चावंड निश्चित ही सम्मिलित रहा होगा जो उस समय महाराणा अमरसिंह की राजधानी था। दो अंग्रेज यात्रियों द्वारा प्रदत्त साक्ष्य का महत्त्व इसलिए और अधिक बढ़ जाता है क्योंकि उनका वर्णन 1615 ई. की मेवाड़-मुग़ल सन्धि से पूर्व का है। इस सन्धि से पूर्व फिंच के अनुसार महाराणा का बहुत सम्मान था। उसके शब्दों का भावार्थ यह है : इसके विपरीत बांई ओर मारवा (मारवाड़) के पहाड़ जिनका विस्तार अमदावेर (अहमदाबाद) हैं। इन पहाड़ों पर अपराजेय दुर्ग स्थित है जो गढ़ चितू (चित्तौड़) कहलाता है जो राणा की मुख्य गद्दी है जो एक शक्तिशाली राजा है जिसको न तो पठान और न ही अकबर अपने अधीन कर पाया। इसी कारण से समस्त भारत के राजा एवं अमीर सम्मान करते हैं जैसा कि रोम के पोप के अनुयायी करते हैं। इसलिए जो भी राजा इनके विरुद्ध भेजे गए उन्होंने इनकी सीमाओं में कोई हानि नहीं पहुँचाई। इनकी 200 कोस की सीमा पहाड़ों एवं अन्य निर्माणों से किलेबंदी के कारण पहुँच के बाहर है।[9]

इस नवस्थापित राजधानी-शहर में आवासित विभिन्न जातियों एवं व्यावसायिक वर्गों की संख्या के अनुमान हेतु इससे पूर्व 1553 एवं 1559 ई. के मध्य स्थापित उदयपुर[10] एवं 1660 ई. के दशक में नैणसी द्वारा संकलित किए गए विभिन्न जातियों एवं व्यावसायिक समूहों के घरों की गिनती को आधार बनाया जा सकता है।[11] राणा उदयसिंह ने चित्तौड़ पतन से पूर्व अपने नाम पर पिछोला झील के तट पर इस शहर को बसाया था। इस बात की सम्भावना व्यक्त की जा सकती है कि चित्तौड़ आक्रमण से पूर्व इस शहर की आबादी का बड़ा हिस्सा नवस्थापित राजधानी उदयपुर आकर बस गया होगा। लेकिन चित्तौड़ आक्रमण के समय अकबर ने एक सैन्य टुकड़ी राणा उदयसिंह को पकड़ने एवं वहां के लोगों को दण्डित करने के लिए भेजी थी तब उस समय वह शहर निश्चित ही उजड़ गया होगा।[12] लेकिन बाद में 1615 ई. में मेवाड़-मुग़ल सन्धि के पश्चात यह शहर फिर से आबाद हुवा तब चावंड की अधिकांश शहरी आबादी सम्भवत: महाराणा के लवाजमे के साथ उदयपुर आकर बस गई होगी। इस प्रकार एक राजधानी के उजड़ने एवं दूसरे के आबाद होने में अन्तर्निहित सम्बन्ध होने के कारण ही हमने उदयपुर शहर के जाति समूहों को

चावंड के लिए भी सही मानते हुए जनसंख्या का अनुमान लगाने का प्रयास किया है जो तथ्यों के अधिक समीप प्रतीत होता है। उदयपुर के इन जाति-समूहों में सैनिकों को सम्मिलित नहीं किया गया था। इसका कारण सम्भवतः जानबूझकर इनको शहरी आबादी से पृथक करना रहा होगा लेकिन चावंड के मामले में हमने ऐसा नहीं किया है क्योंकि यह युद्धकालीन राजधानी थी इसलिए इसकी सुरक्षा के लिए सेना का दुर्ग के आसपास ही निवास करना आवश्यक रहा होगा। इनके साथ घोड़ों की देखभाल हेतु साईसों को भी साथ में ही रखा गया होगा।

महाराणा प्रताप की सैन्यशक्ति का ऊपर किए गए आकलन के अनुसार यह संख्या बारह हजार के लगभग थी। यह सेना चावंड में नियुक्त थी। चूंकि ये सैनिक राजधानी की सुरक्षा हेतु थे इसलिए इस शहर के निवासी भी थे। इन सैनिकों पर निर्भर परिवार के सदस्यों की संख्या ज्ञात करने के लिए जनसंख्याविदों द्वारा सुझाए गए प्रति व्यक्ति के परिवार के सदस्यों की संख्या 4.5 से गुणा करके प्राप्त की जा सकती है। इसका तात्पर्य है 12,000 × 4.5 = 54,000 अर्थात् सैनिकों पर निर्भर पारिवारिक लोगों की संख्या 54,000 थी।

इसी प्रकार कम से कम पांच हजार घोड़ों की देखभाल हेतु कम से कम पाँच सौ साइसों (घोड़ों की रखवाली करने वाले सेवक) की आवश्यकता होती थी जिनका कार्य उनको दाना-चारा देना, मालिश करना एवं नहलाना आदि था। इन पर आधारित परिवार के सदस्यों की संख्या 500× 4.5=2,250 होती है।

अब इसके पश्चात चावंड की जनसंख्या में उन्हीं वर्गों एवं जातीय समूहों को सम्मिलित किया जा सकता है जो नैणसी द्वारा उदयपुर शहर के वर्णन में अंकित किए गये हैं। सर्वप्रथम महाजनों की श्रेणी अंकित है जिसमें ओसवाल, माहेश्वरी, हूबा, चित्तौड़ा, नागदा, नरसिंहापुरा एवं पोरवाड़ आदि सम्मिलित हैं। उदयपुर में महाजन व्यापारी वर्ग के घरों की संख्या 2000 दर्ज की गई है इसलिए चावंड के लिए हम इसके आधे का अनुमान लगा सकते हैं अर्थात एक हजार। घरों की इस संख्या को एक परिवार मानकर 4.5 से गुणा करके उन पर निर्भर संख्या का अनुमान लगा सकते हैं अर्थात् 1000 × 4.5 =4,500 महाजन प्रताप के समय चावंड में निवास करते थे।

इसके पश्चात ख्यात द्वारा ब्राह्मणों के 1500 एवं इनके साथ 60 भोजकों (मन्दिर के पुजारी) के कुल घर 1560 दर्शाए गए हैं। महाराणा ने अनेक

ब्राह्मणों को भूमिदान प्रदान किये थे। सिसोदिया राजवंश में पूजा-अर्चना हेतु बड़ी संख्या में ब्राह्मण राजपरिवार के आस-पास बसने की परम्परा रही है। प्रताप के समय में चामुंडा देवी के मन्दिर की स्थापना की गई थी जिसकी पूजा अर्चना की जिम्मेदारी ब्राह्मण वर्ग की थी। इसके अतिरिक्त मेवाड़ राजवंश के ईष्टदेव एकलिंग जी की नियमित पूजा-अर्चना भी मेवाड़ी ब्राह्मणों द्वारा ही की जाती थी। अगर चावंड में भी उदयपुर के बराबर ब्राह्मणों, जिसमें भोजकों के 60 परिवार सम्मिलित हैं, के घरों की संख्या मान लिया जावे तो इस वर्ग की जनसंख्या 1500 × 4.5=6,750 के लगभग आती है।

पंचोली एवं भटनागर कायस्थ जाति के थे जिनका मुख्य कार्य राजस्व विभाग से सम्बन्धित था। कृषकों से लगान वसूली का पूरा हिसाब-किताब एवं दरबार की कार्यवाही का विवरण रखना भी उनका ही दायित्व था। उदयपुर में इनके घरों की संख्या 500 थी इसलिए यही अनुमान चावंड के लिए भी मान लिया जावे तो इस वर्ग की जनसंख्या 500 × 4.5=2,250 होती है।

खांट भीलों के घरों की संख्या उदयपुर में 500 अंकित की गई है। भीलों एवं सिसोदिया राजवंश के मध्य घनिष्ठ सम्बन्ध रहे हैं जिसकी पुष्टि मेवाड़ के राजचिन्ह से होती है। चावंड भील बाहुल्य क्षेत्र था इसलिए इनके घरों की संख्या निश्चित ही उदयपुर की तुलना में अधिक रही होगी। पहाड़ी क्षेत्र होने के कारण इनकी सेवाएं भी बहुत अधिक ली गई होंगी इसलिए इनके घरों की संख्या 600 का अनुमान लगाया जा सकता है। इस आधार पर इन पर निर्भर परिवार के सदस्यों की संख्या 600×4.5=2,700 होनी चाहिए।

महिलवाड़ियों की संख्या उदयपुर शहर में 5000 दर्शाई गई है। ये लोग मुख्यत: बागवान या माली होते थे जो बागों में विभिन्न प्रकार के फल-फूल उगाते थे एवं खुले बाजार में बेचने का कार्य करते थे। राजवंश के सदस्यों, सरदारों एवं उच्च वर्ग के लोगों के लिए विभिन्न प्रकार के फल-फूल की आपूर्ति भी करते थे एवं बागों की देखभाल करना भी इनका ही काम था। इस बात का अनुमान लगाया जा सकता है कि चावंड में भी इनकी संख्या उदयपुर से कम नहीं रही होगी। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि पूर्व में भी स्वायत्तशाषी भूमिया का क्षेत्र होने के कारण यहां बड़े-बड़े बाग पूर्व में भी रहे होंगे जो उनकी मांग की आपूर्ति करते थे। इस आधार पर इनकी जनसंख्या 5000 × 4.5=22,500 थी या फिर इससे भी अधिक रही होगी।

उदयपुर में राजपूत सरदारों की संख्या 1500 थी। इसमें सभी राजपूत खांपों को सम्मिलित कर लिया गया है। दिवेर युद्ध एवं मुग़लों के पश्चिमी क्षेत्रों

से सभी थानों को उठाने में राठौड़, भाटी, सोनगरा एवं अन्य राजपूतों के अतिरिक्त अफगान सैनिकों का भी सहयोग रहा था इसलिए चावंड में एक मिश्रित सरदारों की श्रेणी उत्पन्न हो गई होगी। इसलिए यहां राजपूतों के स्थान पर सरदारों की श्रेणी के घरों की संख्या माना जाना चाहिए। जहां तक उनके घरों की संख्या का प्रश्न है अगर उनके उदयपुर के समान ही मान लिया जावे तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी जिसके आधार पर उनकी जनसंख्या 1500×4.5= 6,750 होनी चाहिए।

उदयपुर शहर में एक श्रेणी पूण जाति अंकित की गई है जिसका मोटे तौर पर अर्थ मिश्रित जातियों से लगाया जाता है। यह एक जाति समूह है जिसको किसी स्थान पर **पवन जात** भी लिखा जाता है जिसका अर्थ है ऐसी जातियां जो समाज के दूसरे वर्गों को अपनी सेवाएं प्रदान करते हैं एवं उसके बदले में किसी भी जिन्स (kind) के रूप में भुगतान पाते हैं।[13] इनको सामान्यतः इनकी सेवा के बदले में नकद में भुगतान नहीं किया जाता था। इस शब्द की उत्पत्ति **पावना** शब्द से हुई है जिसका अर्थ है प्राप्त करना। समाज के सभी लोगों को सेवाएं प्रदान करने वालों में विभिन्न प्रकार के दस्तकार, विभिन्न व्यवसायों से सम्बद्ध लोग एवं निम्न जाति (menial castes) के लोग सम्मिलित होते थे उदाहरणार्थ जुलाहे, दर्जी, खुदाई करने वाले मिस्त्री, कलाल, कुम्भार, गांधी, हथियार बनाने वाले कारीगर, लोहार, बढ़ई, चमार, सफाईकर्मी एवं ढेढ़ आदि। इस वर्ग के लोग भोमियों के समय से ही चावंड में निवास कर रहे होंगे। उदयपुर में इनकी संख्या 9000 दर्शाई गई है। अगर हम इतने ही घरों की संख्या प्रताप की राजधानी शहर के लिए मान ली जाए तो इन पर निर्भर लोगों की संख्या 9000 × 4.5 = 40,500 होती है।

चावंड स्वायत्तशाषी भोमियों का सत्ता केन्द्र शहर था इसलिए वहीं अपनी गढ़ी (fortress) बनाकर लघु रूप में वे सार्वभौम शासक के समान जीवनयापन करते थे। उनकी जीवन शैली ऐशो-आराम युक्त थी। इसलिए इनकी आवश्यकताओं एवं सुविधाभोगी जीवन पद्धति की वस्तुओं को उपलब्ध करवाने के लिए उस स्थान पर दस्तकारों का समूह आबाद हो गया था। जो वस्तुएं बड़े शहरों या व्यापारिक केन्द्रों पर मिलती थीं उन्हें व्यापारी वर्ग उपलब्ध करवाता था। इसके अतिरिक्त भोमियों की अपनी बिरादरी की सेना होती थी जिनके लिए घोड़ों की आपूर्ति बाहर से व्यापारियों द्वारा की जाती थी। चावंड का भोमिया लूणा चावंडिया था जिसके अधीन छप्पन गाँव थे जो उपजाऊ क्षेत्र में स्थित थे इसलिए कृषि उत्पादन का अधिशेष उसे प्राप्त होता था। नैणसी के साक्ष्य से

ऐसा प्रतीत होता है कि जावर की खान भी महाराणा प्रताप की विजय से पूर्व लूणा चावंडिया के अधीन क्षेत्र में थी। जहां चांदी एवं जस्ता निकाला जाता था जिससे महाराणा को 400 एवं 500 रु. की प्रतिदिन आय होती थी। सम्भवत: यही स्थिति लूणा के समय में भी रही होगी जिससे उसकी आर्थिक सम्पन्नता का अनुमान लगाया जा सकता है।[14] यह आर्थिक सम्पन्नता उसकी सैन्य शक्ति की परिचायक है। उनके समय में जो दस्तकार वर्ग एवं अन्य व्यवसायों के लोग निवास कर रहे थे वे सब ही प्रताप के समय में चावंड में ही रहे जिनकी संख्या के अनुमान को हमने उसी में मान लिया है।

चूंकि ऊपर हम उदयपुर शहर के घरों की गणना को आधार बनाकर चावंड की विभिन्न जाति-समूहों के घरों की संख्या एवं उन पर निर्भर लोगों की संख्या प्राप्त कर चुके हैं इसलिए अब सर्वप्रथम उदयपुर शहर की जनसंख्या के बारे में जानना आवश्यक है। नैणसी इस शहर के आबाद घरों (households) की निश्चित कुल संख्या (absolute) अंकित करता है। हालांकि उसके द्वारा प्रदत्त साक्ष्य से यह नहीं ज्ञात होता है कि यह किस समय से सम्बन्धित है। उसके अनुसार राणा उदयसिंह चित्तौड़ त्यागने के पश्चात् सर्वप्रथम वह कुम्भलमेर गया एवं उसके पश्चात उसने उदयपुर बसाया। यह बात 1553 एवं 1559 ई. के मध्य की होनी चाहिए। मारवाड़ का इतिहासकार नैणसी उदयपुर के आस-पास की भौगोलिक स्थिति एवं राणा द्वारा उदयसागर निर्माण करवाने के साथ ही शहर के आबाद घरों की संख्या अंकित करता है। इस आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि ये आंकड़े या तो 1567 ई. अर्थात चित्तौड़ आक्रमण के पूर्व के हैं या फिर नैणसी के अपने समय अर्थात् 1650 ई. के दशक के हैं। अगर ये आंकड़े चित्तौड़ आक्रमण से पूर्व के हैं तो फिर इसी आक्रमण के समय अकबर ने एक सैन्य टुकड़ी को राणा की खोज में एवं उदयपुर पर आक्रमण करने तथा साथ ही वहां के निवासियों, राणा की सेना एवं साथियों का कत्ल एवं कैद करने हेतु भेजा था। तब उस स्थिति में तत्कालीन उदयपुर की आबादी निश्चित ही उजड़ गई होगी। इसलिए यह सम्भव है कि 1615 ई. में मेवाड़-मुग़ल सन्धि के पश्चात चावंड की आबादी का अधिकांश भाग सम्भवत: शासकीय लवाजमे के साथ उदयपुर चला गया होगा। बाद में जब नैणसी मेवाड़ के सिसोदियों के बारे में ऐतिहासिक जानकारी किसी आधिकारिक व्यक्ति से संग्रहीत कर रहा था तब उसे तत्कालीन समय के उदयपुर शहर के घरों की गिनती भी प्राप्त हुई होगी।[15] उसके द्वारा संकलित उदयपुर शहर की जाति एवं व्यवसायिक वर्ग के घरों की गणना निम्न सारणी में प्रस्तुत की जा रही है :

उदयपुर शहर की जनसंख्या का अनुमान (1650 ई. के लगभग)

क्र. सं.	जाति/समूह	घरों की संख्या	प्रति घर आबादी (×4.5)	कुल जनसंख्या
1.	महाजन (ओसवाल, माहेश्वरी, हुबा, चितोड़ा, नागदहा, नरसिंहपुरा, पोरवाड़)	2,000	4.5	9,000
2.	ब्राह्मण	1,500	4.5	6,750
3.	पंचोली, भटनागर	500	4.5	2,250
4.	भोजग	60	4.5	270
5.	खांट भील (भील नायक)	500	4.5	2,250
6.	महिलवाड़िया	5,000	4.5	22,500
7.	राजपूत	1,500	4.5	6,750
8.	पूणजात (दस्तकार वर्ग)	9,000	4.5	40,500
	कुल	20,060		90,270

उदयपुर शहर के विभिन्न जातीय एवं व्यावसायिक समूहों के कुल घरों की संख्या बीस हजार से थोड़ी अधिक है। इनमें सर्वाधिक लगभग 45 प्रतिशत (44.86%) पवन जात अर्थात दस्तकार एवं सेवा प्रदाता वर्ग की है। इसके पश्चात महिलवाड़ियों अर्थात फल-फूल उत्पादकों एवं बाग़वानों के घरों की है जो कुल घरों का 25 प्रतिशत (24.92%) है। महाजन पद व्यापारी वर्ग से सम्बन्धित है जिसमें विभिन्न शाखाएं यथा-ओसवाल, माहेश्वरी, हूबा, चित्तौड़ा, नागदहा, नरसिंहपुरा एवं पोरवाड़ समाहित हैं जो 9.97 प्रतिशत के साथ तीसरे स्थान पर है। इससे व्यापार एवं वाणिज्य की स्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है। राजपूत एवं ब्राह्मणों की संख्या समान है जो चौथे स्थान पर हैं जिनका प्रतिशत 7.47 है। राजपूत श्रेणी में सरदार, मंत्री एवं राज्य अधिकारी सम्मिलित थे जबकि ब्राह्मणों में धार्मिक अनुदान प्राप्तकर्त्ता, पुरोहित,

पुजारी एवं विद्वान समाहित थे। इनके अतिरिक्त, पंचोली, भटनागर एवं भील हैं जिनके घरों का प्रतिशत 2.49 प्रतिशत है। जैन मन्दिरों के पुजारी सामान्यत: भोजक अर्थात शाकद्विपीय ब्राह्मणों होते हैं जिनके घर 0.90 प्रतिशत अर्थात कुल साठ घर हैं।

चूंकि ऊपर हमने उदयपुर के आधार पर ही चावंड के घरों एवं जनसंख्या का अनुमान लगाया है जिसे यहां निम्न सारणी में प्रस्तुत किया जा सकता है :

चावंड शहर की जनसंख्या का अनुमान

(उदयपुर शहर को आधार मानकर 1585-1615 ई. के मध्य)

क्र. सं.	मद	अनुमानित घरों की संख्या	प्रति घर 4.5 व्यक्ति घरों की संख्या
1.	सैनिक	12,000	54,000
2.	साईस (सैन्य घोड़ों की देखभाल करने वाले)	500	2,250
3.	महाजन	1,000	4,500
4.	ब्राह्मण एवं भोजग	1,500	6,750
5.	पंचोली एवं भटनागर	500	2,250
6.	भील	600	2,700
7.	महलवाड़ियां (बागवान)	5,000	22,500
8.	राजपूत	1,500	6,750
9.	पवनजात (दस्तकार एवं सेवा प्रदाता वर्ग)	9,000	40,500
	कुल	29,600	1,33,200

चावंड की जनसंख्या उदयपुर की 147.55 प्रतिशत आती है जिसका तात्पर्य है कि 47.55 प्रतिशत अधिक है। इसका मुख्य कारण चावंड में सैनिकों की उपस्थिति है। बड़ी संख्या में बाग़वान वर्ग की उपस्थिति शासक वर्ग के लिए फलों के उत्पादन को दर्शाती है। इसी प्रकार दस्तकार एवं सेवा प्रदाता वर्ग की अधिक संख्या में उपस्थिति जजमानी (Patron-Client) सम्बन्धों को उजागर करती है। चावंड के लिए प्राप्त किए गए जनसंख्या के आंकड़ों को नकारने का कोई पर्याप्त एवं ठोस कारण दृष्टिगोचर नहीं होता। इसके आधार पर कहा जा सकता है कि 1585 ई. में राजधानी की स्थापना से लेकर 1615 ई. में राजधानी के उदयपुर चले जाने के पूर्व तक चावंड एक विकसित शहर का दर्जा प्राप्त कर चुका था जो शासक वर्ग के स्थायित्व का द्योतक है।

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि महाराणा प्रताप द्वारा स्थापित नवीन राजधानी चावंड मध्यकालीन राजस्थान का एक विस्तृत एवं विशाल शहर था। इस बिन्दु पर गहन शोध के द्वारा इसे आगे बढाया जा सकता है।

संदर्भ

1. नैणसी, ख्यात, सं. बद्रीप्रसाद साकरिया, प्रथम राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, 1960, पृ. 36
2. वही।
3. वही।
4. इसकी पुष्टि मेरे द्वारा किए गए स्थल सर्वेक्षण से होती है।
5. हेमरतन, **गोरा बादल पद्मिणी चउपई,** सं. मुनि श्री जिनविजय, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, तृतीय संस्करण, 2000, पद्य संख्या 512-513, पृ. 50
6. विलियम हॉकिन्स, **अली ट्रेवल्स इन इण्डिया**, संपा. विलियम फोस्टर, दिल्ली, 2012, पृ. 114
7. विलियम फिंच, **अली ट्रेवल्स इन इण्डिया**, संपा. विलियम फोस्टर, लो प्राईस पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2012, पृ. 170
8. वही।
9. वही; इस कथन में सत्यता नहीं है क्योंकि चित्तौड़ पर अलाउद्दीन खिलजी एवं अकबर ने अपना आधिपत्य स्थापित किया था।
10. मनोहर सिंह राणावत, चित्तौड़-उदयपुर पाटनामा के आधार पर उदयपुर की स्थापना 15 अप्रेल 1553 ई. के दिन की थी, दृष्टव्य, **शोध पत्रिका,** पूर्णांक 220-

21, पृ. 16; जबकि कविराजा संग्रह के अनुसार शहर की स्थापना वि.सं. 1616/ई. 1559 में हुई थी।

11. नैणसी, **ख्यात**, प्रथम, पृ. 33-34

12. दृष्टव्य **फतहनामा**, दृष्टव्य, डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू' **महाराणा प्रताप का युग** आर्यावर्त संस्कृति संस्थान, दिल्ली, द्वितीय संशोधित संस्करण, 2016, पृ. 265-75।

13. पवन जात की व्याख्या के लिए दृष्टव्य, बी.एल. भादानी, **पिजेन्ट्स आर्टिजन्स एण्ड एन्त्रप्रन्योर्स-इकॉनोमी ऑफ मारवाड़,** रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 1999, पृ. 137-50

14. नैणसी, ख्यात, प्रथम, पृ. 35

15. वही, पृ. 33-34; नैणसी की अपने ग्रन्थ **ख्यात** लेखन की योजना बहुत विस्तृत थी। उसका मुख्य उद्देश्य उत्तर भारत के लगभग सभी राजपूत राज्यों की उत्पत्ति से लेकर उसके अपने समय तक के इतिहास का क्रमबद्ध इतिहास संकलन था। इसके लिए उसने उसी राज्य के अधिकारी या किसी आधिकारिक व्यक्ति से सम्पर्क करके सामग्री संकलित की थी। प्रथम स्तर पर उसे जैसी सामग्री प्राप्त हुई उसकी प्रतिलिपि करवाता रहा एवं जहां तक सम्भव था जिस स्रोत से जानकारी उपलब्ध होती थी उस स्रोत का नाम अंकित कर देता था। उसकी योजना बाद में उसे पुनर्लेखन द्वारा संयोजित करने की थी जो उसकी आत्महत्या के कारण से नहीं हो पाया। मेवाड़ के इतिहास, भूगोल एवं आर्थिक संसाधनों के बारे में जो सामग्री संकलित की है वह मूल्यवान ही नहीं बल्कि अद्वितीय भी है। उसने मेवाड़ के पहाड़ों, घाटियों, जल स्रोतों, नदियों, शहरों, कस्बों, सिसोदिया राज्य के उत्थान की कहानी, विभिन्न शक्तियों से युद्धों एवं राजपरिवार आदि के बारे में जो सामग्री संकलित की है वह किसी भी मेवाड़ी स्रोत से अधिक महत्त्वपूर्ण है, **नैणसी ख्यात**, प्रथम, पृ. 55-43; डॉ. मनोहर सिंह राणावत, **मुंहणोत नैणसी एवं उसके इतिहास-ग्रन्थ,** राजस्थान साहित्य मंदिर, जोधपुर, 1981; विक्रम सिंह अमरावत, **ख्यात साहित्य और इतिहास लेखन**, इतिहास अनुसंधान संस्थान, चौपासनी, जोधपुर, 2017, पृ. 81-83

प्रोफेसर (डॉ.) बी.एल. भादानी
रांगड़ी चौक, बीकानेर 334001 (राज.)

❑❑❑

भारतीय इतिहास में 18वीं शताब्दी

• सूरजभान भारद्वाज

भारतीय इतिहास में 18वीं सदी का मूल्यांकन दो बिन्दुओं से किया जा सकता है, पहला, मुगल साम्राज्य के पतन के दृष्टिकोण से और दूसरा भारत में ब्रिटिश राजसत्ता की शुरुआत से। इन घटनाओं का भारतीय राजनीति, समाज और अर्थव्यवस्था पर काफी प्रभाव पड़ा। 18वीं सदी के शुरुआत में मुगल साम्राज्य की Political Economy का क्षेत्रीय शक्तियों में विभाजन होना। दूसरा 18वीं सदी के दूसरे भाग में प्लासी की लड़ाई (1757 ई.) और बक्सर की लड़ाई (1764 ई.) के बाद ब्रिटिश सत्ता की शुरुआत के साथ-साथ भारतीय समाज और अर्थव्यवस्था पर काफी प्रभाव पड़ा। इतिहासकारों ने इन दोनों पहलुओं को अध्ययन का विषय बनाया है और अलग-अलग ढंग से इनकी व्याख्या की है मुगल साम्राज्य के पतन के बाद सामाजिक और आर्थिक बदलाओं की प्रकृति क्या थी? अलीगढ़ स्कूल के इतिहासकारों का मानना है कि मुगल साम्राज्य के पतन से जिस प्रकार सामाजिक व आर्थिक हालात बने, उनके परिणाम स्वरूप क्षेत्रीय शक्तियों का उदय हुआ था। दूसरी तरफ कैम्ब्रीज स्कूल के इतिहासकारों ने ठीक इसके विपरीत अपनी दलील पेश की। उनके अनुसार भारत में क्षेत्रीय शक्तियों के उदय के कारण ही मुगल साम्राज्य धराशायी हुआ था। दोनों तरह की धारणाओं ने 18वीं सदी को बहुत ही महत्त्वपूर्ण और रोमांचकारी बना दिया। इसी तरह से 18वीं सदी को आर्थिक दृष्टिकोण से भी अलग-अलग धाराओं में समझा गया है। इरफान हबीब का मानना है कि मुगल साम्राज्य भारतीय उपमहाद्वीप में एक बड़े भू-भाग में फैला हुआ था। मुगल साम्राज्य के केन्द्रीय प्रशासनिक ढांचे में कुछ ऐसी विशेषताएं थीं जैसे राजनैतिक एकता, केन्द्रीय प्रशासन व भूराजस्व व्यवस्था आदि। भूराजस्व प्रणाली के अन्तर्गत अधिकांश इलाकों से किसानों द्वारा पैदा किया गया कृषि उत्पाद से भूराजस्व को इकट्ठा किया जाता था, जिसके कारण आर्थिक विकास की गति

को काफी बढ़ावा मिला। अर्थात् कृषि उत्पाद से ही प्राप्त भूराजस्व ही मुगल साम्राज्य की अर्थ व्यवस्था की रीड की हड्डी की तरह काम करती थी। इसी कृषि आमदनी पर ही मुगलों की सैन्य व्यवस्था टिकी हुई थी। इरफान हबीब का कहना है कि पूर्व-उपनिवेशिक भारत में शहरी अर्थ व्यवस्था काफी हद तक गैर-कृषि अर्थात् दस्तकारी उत्पादन पर आधारित व्यापार व व्यापारिक पूंजी पर निर्भर करती थी। यह मुख्य रूप से कृषि आधिक्य (surplus) जिसे इकट्ठा करके भू राजस्व के रूप में मुगल अमीर वर्ग शहरों में खपत करता था। अर्थात् मुगल शहरी अर्थव्यवस्था का विकास काफी हद तक मुगल अमीर वर्ग की गतिविधियों पर केन्द्रीत केन्द्रित होता था। जब अठारहवीं सदी के प्रारंभ में कृषि संकट के कारण मुगल साम्राज्य का पतन हो गया, तब इसके साथ-साथ मुगल अमीर वर्ग का भी पतन हो गया। इससे उस पूरे प्रक्रम को धक्का लगा जिससे शहरी अर्थ व्यवस्था का विकास हो रहा था। चूंकि मुगल अर्थ व्यवस्था काफी हद तक कृषि उत्पादन पर आधारित थी, कृषि संकट के कारण मुगल साम्राज्य भी धराशायी हो गया। कृषि संकट ने मुगल साम्राज्य की अर्थ व्यवस्था को बुरी तरह से प्रभावित किया। इरफान हबीब का मानना है कि भू राजस्व की ऊंची मांग ने किसानों का बुरी तरह से शोषण किया। जिसके कारण किसानों में बड़े पैमाने पर असन्तोष हुआ। किसानों ने मुगल साम्राज्य के खिलाफ अनेक विद्रोह किये। किसान गाँव छोड़कर भाग गये, जिससे कृषि लायक भूमि बगैर जोते पड़ी रही। इससे मुगल साम्राज्य के लिए कृषि संकट पैदा हो गया। इससे अमीर वर्ग के लिए अपने सैन्य बल को बरकरार रखना मुश्किल हो गया। मुगल साम्राज्य के पतन के साथ-साथ अमीर वर्ग भी बिखर गया। इससे आर्थिक विकास रुक गया और व्यापार व व्यापारिक पूंजी बुरी तरह से प्रभावित हुई। इसलिए इरफान हबीब ने 18वीं सदी के पुवार्ध का काल 'अन्धकारमय' काल माना है, यह पूरी तरह से राजनैतिक अराजकता का काल मानता है जिसमें व्यापार व व्यापारिक रास्ते असुरक्षित हो गये थे। मुगल साम्राज्य के आर्थिक पतनशील और राजनैतिक अराजकता के वातावरण में क्षेत्रीय शक्तियां अवध बंगाल और हैदराबाद नबाबों का उदय हुआ।

इस तरह से इरफान हबीब 18वीं सदी को आर्थिक पतन और अराजकता से भरी हुई मानते हैं। वे आगे लिखते हैं कि मुगल साम्राज्य के पतन के बाद जिस प्रकार की क्षेत्रीय शक्तियों का उदय हुआ था, उन्होंने कोई नई व्यवस्था या प्रशासनिक ढांचा तैयार नहीं किया था। बल्कि उनके द्वारा पैदा की गई अराजकता व उदासीनीकरण ने विदेशी ताकतों के लिए द्वार खोल दिये।

हालांकि 18वीं सदी को पतनशील व अन्धकारमय युग की संज्ञा देने वाले ब्रिटिश इतिहासकार जेम्स मिल पहले व्यक्ति थे। इसके पीछे उनके अपने उपनिवेशिक हित जुड़े हुए थे। वे 18वीं सदी की छवि को इस प्रकार से पेश करके अपने ब्रिटिश प्रशासन की छवि को कानून एवं व्यवस्था के नाम से उचित सिद्ध करना चाहते थे। सतीशचन्द्रा के अनुसार 18वीं सदी आर्थिक पतन का काल नहीं मान सकते। उनके अनुसार मुगल साम्राज्य के पतन के बाद जो इलाका नवाबों व मराठों के अन्तर्गत आया, वहां पर उन्होंने मुगल प्रशासनिक ढांचे की तरह ही ढांचा बनाया और उन्होंने अपने अपने इलाकों में कृषि व व्यापारिक ढांचे को काफी बढ़ावा दिया। इसलिए सतीश चन्द्रा 18वीं सदी को आर्थिक गिरावट व अराजकता के रूप में नहीं देखते उनका मानना है कि भारतीय अर्थव्यवस्था व सामाजिक ढांचे में बदलाव 19वीं सदी के प्रारम्भ के दौर से शुरू हुआ। सतीशचन्द्रा मुगल साम्राज्य के पतन से सम्बन्धित भी वे इरफान हबीब से सहमत नहीं है। उनके अनुसार मुगल साम्राज्य का पतन जागीरदारी संकट के कारण हुआ। उनके अनुसार मनसबदारों की संख्या में लगातार बढ़ रही थी, दूसरी तरफ उनको तनखाह के बदले जागीरें मिलनी थीं उनमें बढ़ोतरी नहीं हो रही थी। इससे मनसबदारों में जागीर पाने की होड़ लग गई। खाफी खां के अनुसार जागीरों की हालत ऐसे बन गई जैसे 'एक अनार सौ बीमार'। इससे मुगल दरबार में मनसबदारो में गुटबाजी को जन्म दिया। स्थिति यह बन गई कि हर कोई मनसबदार किसी न किसी गुट का सदस्य होता था।

इससे मुगल बादशाह की ताकत कमजोर होती चली गई। दूसरी तरफ जागीरों की कमी के कारण मनसबदारो में असन्तोष बढ़ने लगा। इससे मुगल साम्राज्य के आर्थिक व प्रशासनिक ढांचे पर बुरा प्रभाव पड़ा। मुगल बादशाह जागीरदारी संकट को हल करने में पूरी तरह से विफल रहे। परिणामस्वरूप बंगाल, अवध व हैदराबाद के अमीरों (नबाब) ने अपने आपको स्वतन्त्र घोषित कर अलग-अलग राज्य बना लिए। इसके साथ-साथ जमींदारों के विद्रोहों के परिणाम स्वरूप मराठा, सिक्ख व जाट राज्यों की स्थापना हुई और इस तरह से मुगल साम्राज्य बिखर गया। अतहर अली ने इस बदलते हुए परिवेश को इस प्रकार से परिभाषित किया है। बंगाल, अवध व हैदराबाद के नवाब पहले मुगल मनसबदार ही होते थे, जिन्होंने मुगल बादशाह की राजनैतिक कमजोरी का फायदा उठाकर अपने-अपने स्वतन्त्र राज्य बना लिए थे। जिन्होंने अपने प्रशासनिक ढांचे को मुगल साम्राज्य के प्रशासनिक ढांचे की नकल करके बनाया था। दूसरी तरह के राज्य जाट, मराठा व सिक्ख ज़मीदारों ने बनाये थे जो पहले

मुगल साम्राज्य में ज़मीदार थे। सिलिए मुगल साम्राज्य के विघटन के बाद जिन शक्तियों ने नये-नये राज्यों का निर्माण किया था, वे सभी मुगल साम्राज्य के जागीरदार व ज़मींदार थे, इसलिए उन्होंने कोई नई व्यवस्था या ढांचा तैयार नहीं किया था।

अतहर अली मुगल साम्राज्य के पतन की प्रक्रिया को ग्लोबल ढांचे से जोड़ कर देखते हैं। उनका मानना है कि 18वीं सदी में तीन बड़े साम्राज्यों का बिखराव हुआ। मुगल साम्राज्य, सफाविद साम्राज्य (इरान) और आटोमन साम्राज्य (टर्की) इन तीनों साम्राज्यों का पतन लगभग एक ही साथ हुआ था।

इन तीनों साम्राज्यों का पतन इसलिए हुआ कि 18वीं सदी में इन साम्राज्यों ने अपने विकास के लिए या उत्पादन बढ़ाने के लिए न तो नई तकनीकी का विकास किया और न ही अपनाया। उनका कहना है कि 18वीं सदी में पश्चिमी यूरोप में जिस प्रकार अलग-अलग क्षेत्रों में विकास हो रहा था, उनकी नकल करने या अपनाने में इन साम्राज्यों का नकारात्मक रवैया रहा है। अतहर अली का मानना है कि 17वीं सदी तक मुगल साम्राज्य यूरोपीयन साम्राज्यों से ज्यादा सक्षम, शक्तिशाली और आर्थिक दृष्टि से उन्नतशील था। मगर 18वीं सदी में मुगल साम्राज्य कमजोर होता चला गया। दूसरी तरफ पश्चिमी साम्राज्यों में तेजी से विज्ञान और तकनीकी के क्षेत्र में बदलाव हो रहे थे, जिसके कारण यूरोपीयन व्यापारिक शक्तियों के मुकाबले कमजोर होता चला गया। अर्थात् मुगल साम्राज्य ने नई तकनीकी को अपनाने व नकल करने में कोई दिलचस्पी नहीं दिखाई। मुगल साम्राज्य की व उसके अमीर वर्ग की बढ़ती हुई मांग आर्थिक संकट से पूरी नहीं हो रही थी। इस तरह का संकट आटोमन और सफाविद साम्राज्यों का भी रहा। इसलिए 18वीं सदी में मुगल साम्राज्य द्वारा नई तकनीकी न अपनाने से उत्पादन क्षमता घटती चली गई। अतहर अली इसे 'सांस्कृतिक असफलता' और 'ज्ञान' की सूक्ष्मता मानते हैं। इसलिए 18वीं सदी को अतहर अली पतनशील और सांस्कृतिक असफलता मानते हैं।

कैम्ब्रीज स्कूल के इतिहासकार सी.ए. बेली की समझ 18वीं सदी पर अलीगढ़ स्कूल के इतिहासकारों से ठीक विपरीत है। इसी सन्दर्भ में मुज्जफर आलम की राय भी बेली से मिलती जुलती है। दोनों का मानना है कि मुगल शासक वर्ग के पतन के बाद क्षेत्रीय राज्यों में एक नये शासक वर्ग का उदय हुआ, जिसने बड़ी पूंजी और सम्पन्नता अर्जित कर ली थी। दोनों ने 18वीं सदी में मुगल साम्राज्य के पतन के बाद सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक बदलाओं को नये सम्पन्न वर्गों के उदय से जोड़ा है।

बेली और मुज्जफर आलम द्वारा उठाये गये सवालों का तर्कसंत कुछ ठीक वैसा ही है जैसा कि फिलिप काल्फिन ने 1970 में जरनल ऑफ एशियन स्टडीज में 18वीं सदी पर अपने लेख में लिखा था कि मुगल साम्राज्य के पतन के बाद क्षेत्रीय राजनीति के कारण नये-नये स्थानीय अमीर और समूह उभरकर आये जिन्होंने अपने-अपने इलाकों का प्रतिनिधित्व किया। बेली का शोध का मुख्य क्षेत्र उत्तरी भारत अठारहवीं सदी उत्तरार्द्ध एवं प्रारम्भिक उन्नीसवीं सदी रहा है जो मुख्य रूप से ब्रिटिश सत्ता के प्रारम्भिक विस्तार का काल रहा है। जबकि मुज्जफर आलम के शोध का समयकाल 18वीं सदी का प्रारम्भिक (पूर्वार्द्ध) काल रहा है। उनके क्षेत्र पंजाब और अवध दो महत्त्वपूर्ण मुगल साम्राज्य के सूबे रहे हैं। बेली मुगल साम्राज्य को केन्द्रीकृत राज्य न मानकर एक बुल्डोजर स्टेट के रूप में देखते हैं। उनके अनुसार भारत में औपनिवेशिक सत्ता की स्थापना व्यापारिक समुदाय व ज़मींदार वर्ग के ईस्ट इंडिया कम्पनी के साथ समझौते के परिणाम स्वरूप हुआ। बेली के अनुसार मुगल साम्राज्य हिन्दू ज़मींदार, किसान, व्यापारी, राजे रजवाड़े और स्थानीय वर्गों को अपने साथ पूरी तरह से आत्मसात नहीं कर पाया था। इसलिए मुगल साम्राज्य के पतन के बाद में सभी समूह खुलकर अपनी पहचान के साथ उभरे और उन्होंने भारत में नई ब्रिटिश सत्ता के साथ समझौता किया और सहयोगी बन कर नई राजसत्ता की स्थापना की। बेली के अनुसार भारत में औपनिवेशिक सत्ता की स्थापना अंग्रेजों द्वारा हिंसा करके जोर-जबरदस्ती का परिणाम नहीं था। बल्कि इसकी स्थापना समझौते के परिणाम स्वरूप हुई। इसलिए 18वीं सदी भारत में कोई त्रासदी या अन्धकारमय नहीं थी, बल्कि सामाजिक और आर्थिक विकास की सदी थी। बेली और मुज्जफर आलम का मानना है कि मुगल साम्राज्य के पतन के बाद एक नये सम्पन्न सामाजिक वर्ग का विकास हुआ, जिन्होंने अपने-अपने क्षेत्रों में कृषि और व्यापार को बढ़ावा दिया। सतीश चन्द्रा भी 18वीं सदी के पूर्वार्द्ध को आर्थिक और सामाजिक पतन का कारण नहीं मानते। उनका मानना है कि इस समय में नये सामाजिक वर्ग और भिन्न-भिन्न भूस्वामी वर्ग और भी ज्यादा मजबूती से उभरकर आये। इसलिए 18वीं सदी देहाती विशेषाधिकार वर्ग (ज़मींदार) के लिए उत्थान की सदी थी, जो अपनी पहचान को और भी मजबूती से बना पाये। दूसरी तरफ असीम दास गुप्ता भी 18वीं सदी को आर्थिक गिरावट के रूप में देखते हैं। उनके अनुसार इस आर्थिक गिरावट के कारण ही सूरत बन्दरगाह का पतन हुआ था। जादुनाथ सरकार ने 18वीं सदी को ठहराव, पतनशील और अस्तव्यस्तता की सदी के रूप में चित्रित किया है।

इतिहासकार में 18वीं सदी की निरन्तरता व परिवर्तन से सम्बन्धित विषय पर भी बहस जारी है। प्रश्न यह है कि क्या 18वीं सदी को एक ही यूनिट या ईकाई मानकर अध्ययन करना चाहिए या फिर पूर्वार्द्ध को उत्तरार्द्ध से अलग करके 18वीं सदी का अध्ययन होना चाहिए। इरफान हबीब और अतहरअली का मानना है कि 18वीं सदी को दो भागों में बांटकर इसका ऐतिहासिक विश्लेषण करना चाहिए। 18वीं सदी का पूर्वार्द्ध मुगल साम्राज्य के पतन से जुड़ा हुआ है, जिसमें कृषि विद्रोह हुए और मुगल साम्राज्य को घोर कृषि संकट का सामना करना पड़ा, जिसके परिणामस्वरूप कृषि उत्पादन, व्यापार और वाणिज्य पर बुरा प्रभाव पड़ा। इसके साथ-साथ मुगल संस्थाओं (भू लगान व्यवस्था, मनसबदारी/जागीरदारी और मुगल अमीर वर्ग जैसी संस्थायें) का भी पतन हो गया था। इसलिए 18वीं सदी का पूर्वार्द्ध एक अन्धकारमय और अराजकतावादी युग था। यह काल प्लासी की लड़ाई (1757 ई.) और बक्सर की लड़ाई (1764 ई.) तक माना जाता है। इसके बाद ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी ने एक नई सत्ता की शुरुआत की अर्थात भारत में औपनिवेशिक प्रशासन की शुरुआत होती है, जिसने मुगलकालीन अर्थव्यवस्था व राजनीति को पूरी तरह से तहस-नहस करके एक नई सत्ता की शुरुआत की। इसलिए 18वीं सदी का दूसरा भाग (उत्तरार्द्ध) राजनैतिक, आर्थिक व सामाजिक रूप से पहले वाले भाग से पूर्णतया भिन्न था। इससे औपनिवेशिक इतिहास की शुरुआत होती है। इसलिए इरफान हबीब और अतहर अली की समझ साफ है कि 18वीं सदी को एक इकाई के रूप में नहीं समझा जा सकता। दूसरी तरफ सी.ए. बेली, मुज्जफर आलम, तपनराम चौधरी और सतीशचन्द्रा 18वीं सदी को एक इकाई के रूप में समझने की बात करते हैं। इनका मानना है कि 18वीं सदी का विभाजन करके अध्ययन नहीं करना चाहिए, इसे निरन्तरता के रूप में समझना चाहिए। इनका कहना है कि कृषि उत्पादन, व्यापार और वाणिज्य में गिरावट नहीं आई, क्योंकि मुगल साम्राज्य के पतन के बाद भी अवध, बंगाल और हैदराबाद के नबाबों ने अपने-अपने क्षेत्रों में मुगलकालीन प्रशासनिक ढांचे को बरकरार रखा। इनका मानना है कि ब्रिटिश राजसत्ता की स्थापना के बाद भी क्षेत्रीय परिस्थितियों और आर्थिक व सामाजिक परिस्थितियों में कोई खास बदलाव नजर नहीं आते। सतीशचन्द्रा का कहना है कि भारत में आर्थिक व सामाजिक बदलाव 19वीं सदी के पूर्वार्द्ध से माने जाते हैं। इसलिए 18वीं सदी का अध्ययन निरन्तरता के रूप में समझना चाहिए न कि अलग-अलग हिस्सों में बांटकर करना चाहिए।

ISSN 2278-4632

18वीं सदी के दौरान भारतीय संस्कृति के विषय में भी इतिहासकारों में अलग-अलग समझ बनी हुई है। अलीगढ़ स्कूल के इतिहासकारों का मानना है कि मुगल साम्राज्य के पतन के साथ सांस्कृतिक क्षेत्र में गिरावट आई। जैसे भवन निर्माण, संगीत, वादन व चित्रकला आदि कलाओं को राजनैतिक संरक्षण न मिलने से गिरावट आई। क्योंकि इन कलाओं को संरक्षण और उनका विकास मुगल शासक (अमीर वर्ग) से जुड़ा था। मुगल शासकों ने बाहर से आने वाले कलाकारों व चित्रकारों को खूब राजनैतिक संरक्षण दिया। ऐसे लोग मुगल दरबार में लगातार आते रहते थे। जैसे मुगल साम्राज्य का पतन हुआ, वैसे ही कलाकारों व कलाओं को राजनैतिक संरक्षण मिलना बन्द हो गया था। इस तरह से 18वीं सदी में संस्कृति के क्षेत्र में काफी गिरावट आई। 18वीं 19वीं सदियों में आने वाले यूरोपीयन यात्रियों ने भी भारत में धर्म व संस्कृति में गिरावट की बात भी की है। जैसे डेबाईस, फोर्बस एवं बुकानिन आदि ने भारतीय सांस्कृतिक जीवन व धर्म में गिरावट को रेखांकित कर ब्रिटिश सभ्यता की सर्वोच्चता को स्थापित करने का प्रयास किया। हाल ही में कुछ इतिहासकारों ने 18वीं सदी के सांस्कृतिक गिरावट के सिद्धान्त को चुनौती दी है। उनका कहना है कि मुगल साम्राज्य के पतन के बाद भी कलाकारों, संगीतज्ञों एवं विद्वानों को संरक्षण मिलता रहा है। 18वीं सदी में अवध अनेक कलाकारों, संगीतकारों व कवियों का केन्द्र बन गया था जिसके परिणामस्वरूप अनेक शहरों व कस्बों में हिन्दू मुस्लिम सांझा संस्कृति का विकास हुआ। सांस्कृतिक और कला के क्षेत्र में लखनऊ, हैदराबाद और राजपूत राज्यों की राजधानियों में कला व संस्कृति खूब पनप रही थी। लघुचित्र कला राजस्थान में किशनगढ़ और बून्दी, पंजाब के पहाड़ी राज्यों, अवध और दक्कन में काफी विकसित थी।

इसी तरह की लघु चित्रकला 18वीं सदी के उतरार्द्ध में लखनऊ, हैदराबाद और मुर्शिदाबाद में काफी फलफूल रही थी। मुगल बादशाह मोहम्मदशाह के (1719-1748 ई.) शासनकाल में अनेक प्रकार के संगीत के प्रकारों की शुरुआत हुई। खगोल विद्या में महाराजा सवाई जयसिंह का बहुत महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। इससे यह मालूम पड़ता है कि 18वीं सदी में भारतीय परम्परागत संस्कृति फलती-फूलती रही, मगर यौरूपियन तकनीकी व विज्ञान के क्षेत्र में पतनशील रही।

राजस्थान

मुगल साम्राज्य के पतन के बाद राजस्थान के राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन में भी महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आये। इसलिए 18वीं सदी के संदर्भ में

राजस्थान के इतिहास के कुछ महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं पर चर्चा करना आवश्यक है। राजपूत शासक मुगल अमीर वर्ग का महत्त्वपूर्ण हिस्सा होते थे। मुगल सेवा में रहते हुए राजपूत शासकों ने अनेक मुगल संस्थाओं के अनुभव को साझा करते हुए अपने वतन राज्यों के प्रशासनिक ढांचे में बदलाव किये। अर्थात् मुगल प्रशासनिक ढांचे की नकल के आधार पर राजपूत प्रशासनिक ढांचे को भी विकसित किया। जैसे राजपूत जागीरदारी व्यवस्था, अमीर वर्ग और भूराजस्व प्रणाली आदि। राजपूत राजाओं ने जनानी ड्योडी को भी मुगल हरम संस्कृति के अनुसार बनाया। राजपूत शासक मुगलों के मनसबदार होने के कारण उनको मुगल बादशाहों से बड़ी-बड़ी जागीरें मिलती थीं। इन्हें तनख्वाह जागीर कहा जाता था। कई बार तनखाह जागीर उनके अपने वतन जागीर (घरेलू राज्य) से भी बड़ी होती थी। राजपूत शासक अपने परिवार व कुल के राजपूतों को बड़ी संख्या में अपनी तनख्वाह जागीर में रोजगार देते थे। इसके अलावा भी मुगल बादशाह राजपूत राजाओं के परिवार के सदस्यों को भी अलग से मनसब देते थे। इससे राजपूत शासकों को उनके कुल के राजपूत सरदारों से कभी चुनौती नहीं मिलती थी।

राजपूत शासकों ने जब मुगल बादशाहों की अधीनता स्वीकार करली, उसके बाद राजपूत शासकों में आपसी सीमा विवाद, लड़ाई-झगड़े सब खत्म हो गये। क्योंकि मुगल राजपूत सन्धि के अनुसार कोई दूसरे राज्य पर आक्रमण नहीं कर सकता था। इससे राजपूत राज्यों में शान्ति बनी रही और संगठित रूप से राज्यों को प्रशासन चलाने के अवसर मिलें।

मुगल साम्राज्य के पतन के बाद राजपूत शासक अपने-अपने राज्यों में स्वतन्त्र होकर शासन करने लगे और सीमा विस्तार करने लगे। परिणामस्वरूप राजपूत शासकों में फिर से लड़ाई-झगड़े होने लगे। इससे राजपूत राजाओं में एक-दूसरे से ईर्ष्या एवं परिस्पर्धा बढ़ने लगी। राजपूत शासकों ने अपने परिवार व कुल वंश के सरदारों को चाकरी (राज्य सेवा) के बदले पट्टा जागीर देनी शुरू कर दी। यह राजपूतों का परम्परागत तरीका होता था अर्थात् वेतन के बदले पट्टा जागीर दी जाती थी जिसमें गांव आवंटित किये जाते थे। बड़े-बड़े सरदारों को दी जाने वाली पट्टा जागीर ठिकाने कहलाते थे, और इनके पाने वालों को ठिकानेदार कहते थे। इस तरह राजपूत राज्यों को ठिकानों में विभाजित कर दिया गया। ठिकानेदारों को अपने महाराजा को सैनिक दायित्त्व और पेशकश देनी होती थी। इस तरह से राजपूत राजाओं और ठिकानेदारों के बीच सामन्तीय सम्बन्धों का विकास हुआ। इस तरह से राजस्थान में 18वीं सदी में एक नये रूप में

सामन्तवाद को समझा जा सकता है। हालांकि ठिकानेदारों की कृषि से होने वाली आय सीमित होती थी। इनके पास पूंजी का संचय इतना नहीं होता था कि वे स्वतन्त्र रूप से व्यापार व वाणिज्य कर सकें। ज्यादातर ठिकानेदार महाजनों से पैसा उधार लेकर अपना काम चलाते थे।

राजपूत शासकों को अपने राज्यों की भौगोलिक सीमाओं के विस्तार एवं बाह्य आक्रमणों से सुरक्षा के लिए बड़ी सेना की आवश्यकता थी, मगर आर्थिक संकट के कारण वे अपनी सैनिक शक्ति का विस्तार ज्यादा नहीं कर सकते थे। कृषि से होने वाली आय के स्रोत भी सीमित होते थे। व्यापार से भी ज्यादा आमदनी नहीं होती थी, क्योंकि राजस्थान के ज्यादातर इलाके शुष्क व रेतीली भूमि होने के कारण कृषि पैदावार व्यापारिक दृष्टिकोण से बहुत ही कम पूंजी अर्जित की जाती थी। राजपूत राजाओं को ज्यादातर व्यापार से होने वाली आय सीमा शुल्क से होती थी।

एक आकलन के अनुसार बीकानेर और जोधपुर राजाओं को कृषि और व्यापार से होने वाली आय राज्य के खर्च के 60-65 प्रतिशत से ज्यादा नहीं होती थी। इसलिए राज्य का खर्च चलाने के लिए उन्हें सेठ साहूकारों के कर्ज पर निर्भर होना पड़ता था—इस तरह से राजपूत राज्यों ने अपनी राज्य व्यवस्था चलाने के लिए बहुत-सा धन सेठ साहूकारों से लेना शुरू कर दिया। कर्ज के बदले राजाओं ने सेठ साहूकारों को राज्य की प्रशासनिक जिम्मेदारी भी देनी भी शुरू कर दी तथा साथ-साथ गांवों को भी इजारे पर देना शुरू कर दिया। राज्य की आय को बढ़ाने के लिए किसानों पर अनेक प्रकार के गैर कृषि कर लगा दिये गये जिससे किसानों को आर्थिक हालात और भी दयनीय होती गई। इससे किसानों में राज्य के खिलाफ असन्तोष बढ़ता गया। इस स्थिति के बावजूद भी सेठ साहूकारों (बनिया वर्ग) की आर्थिक स्थिति मजबूत होती गई और राज्य में उनका हस्तक्षेप बढ़ता गया। मारवाड़ राज्यों में बनी हुई विशाल हवेलियां इनकी आर्थिक और सामाजिक हैसियत की साक्षी हैं। बीकानेर और जैसलमेर में बनी हवेलियों की प्रशासनिक और व्यापारिक महता बहुत अधिक होती थी। इनके अलावा बागड़ के इलाके में जैसे झुंझनूं, मंडावा, रतनगढ़, रामगढ़, नवलगढ़, चूरू, रतनगढ़, डूंडलोद, बिसाऊ और मुकन्दगढ़ की हवेलियों की महता वहां के स्थानीय दृष्टिकोण से समझने की आवश्यकता है, ये हवेलियां व्यापारिक गतिविधियों का केन्द्र होती थीं और इनकी भूमिका एक व्यापारिक कस्बे की भांति होती थी। इन हवेलियों का सम्बन्ध स्थानीय मण्डियों और प्रशासन से जुड़ा रहता था। 18वीं सदी में अनेक स्थानीय मण्डियों का विकास हुआ।

19वीं सदी में ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी के सहयोग से ठेके सेठ साहूकारों (वैश्य समुदाय) ने अनेक लाभकारी ठेके प्राप्त किये, जिसके परिणामस्वरूप एक सशक्त व्यापारिक समुदाय का विकास हुआ।

18वीं सदी में राजपूत शासकों को सबसे बड़ी चुनौती मराठाओं से मिली। सन् 1750 के बाद मराठों के बढ़ते हुवे राजनैतिक और सैनिक प्रभाव ने राजस्थान के महाराजाओं को सरदेशमुखी और चौथ करों को पेशकश के नाम से चुकाने को बाध्य किया। आर्थिक रूप से इन करों का भार राजपूत शासकों के लिए असहनीय था। फिर भी मराठों की ताकत के सामने राजपूत शासक इन करों को चुकाने के लिए मजबूर थे। सन् 1750 के एक पत्र में जयपुर के कच्छवाह शासक का दीवान शिकायत कर रहा है कि कुछ महीने पहले पेशकश की बड़ी रकम होल्कर (मराठा) को चुकाई थी। अब फिर से उनका मांग पत्र आया है। यदि हम इसकी उगाई रैय्यत (किसानों) से करते हैं, तब रैयति का विश्वास हमसे उठ जायेगा। रैयति कैसे इन करों को चुकायेंगी आखिर। रैयति ही राज्य का आधार होती हैं, राजपूत शासकों के लिए आर्थिक दृष्टिकोण से मराठाओं की मांग को पूरा करना एक बड़ी चुनौती थी। इसलिए 18वीं सदी राजपूत शासकों के लिए आर्थिक दृष्टिकोण से संकटमय सदी थी।

सांस्कृतिक दृष्टिकोण से 18वीं सदी राजस्थान के इतिहास में बहुत महत्त्वपूर्ण थी। राजपूत शासकों ने जन साधारण में अपनी राजशाही की छवि को चमकाने के लिए कल्याणकारी कार्य किये जैसे मन्दिर, धर्मशालायें, बावड़ी, तालाब व कुएं बनवाये। धार्मिक कार्यों में विशेष रुचि लेने लगे। बड़े-बड़े वैष्णव मन्दिरों का निर्माण किया गया, साथ-साथ ब्राह्मणों द्वारा धार्मिक अनुष्ठान व समारोह भी आयोजित करवाए गये। ताकि जनता में उनकी छवि प्रतापी व बड़े-बड़े महाराजाओं की बने। इसी तरह चारण व भाटों के लेखन परम्परा में भी बदलाव देखे जा सकते हैं। चारण व भाटों द्वारा ख्यातों की रचना अपने महाराजा को केन्द्रित करके, घटनाओं को बढ़ा चढ़ाकर की जाने लगे। प्रशासनिक दस्तावेज भी सुचारू रूप से लिखे जाने लगे। इस तरह से एक नये तरह के साहित्य व प्रशासनिक दस्तावेज ने राज्य की अवधारणा बदलने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

सन्दर्भ

1. इरफान हबीब 'ऐटिन्थ सेन्च्युरी इन इण्डियन इकनोमिक हिस्ट्री' *प्रोसेडिंग्स ऑफ द इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस,* 1995, पृ. 358-78; द *एग्रेरियन सिस्टम ऑफ*

मुग़ल इण्डिया, दिल्ली 1963; *'स्टडीज कोलोनियल इकानामी विदाउट कोलोनियसिज्म'*, माडर्न एशियन स्टडीज, वाल्यूम 19, भाग 3 जुलाई, 1985, पृ. 355-81

2. एम. अतहर अली, 'द एटीन्थ सेन्च्युरी : एन इन्टरप्रिटेशन' *इण्डियन हिस्टोरिकल रिव्यू,* 5 (1-2), 1978-79 पृ. 175-86; 'द पासिंग ऑफ अम्पायरः द मुगल केस' *माडर्न एशियन स्टडीज* 9(13) 1975, पृ. 385-96
3. सतीश चन्द्र, *पार्टीज एण्ड पालिटिक्स एट द मुग़ल कोर्ट* 1707-40, अलीगढ़ 1959; 'रिव्यू ऑफ द क्रासिस ऑफ द जागीरदारी सिस्टम' *मेडिवल इण्डिया, सोसायटी,* द *जागीरदारी क्रासिस एण्ड* द *विलेज,* दिल्ली 1982, पृ. 61-75
4. सी.ए. बेली, *रूलर्स, टाउन्समेन एण्ड बाजार्स : नार्थ इण्डियन सोसायटी इन द एज ऑफ ब्रिटिश एक्सपेन्शन* 1770-1870, कैम्ब्रीज, 1983ः सी.ए. बेली एवं संजय सुब्रमन्यम, 'पोर्टफोलियो केपिटलिस्ट एण्ड द पॉलिटिकल इकानामी ऑफ अर्ली माडर्न इण्डिया' *आई.ई.एम. एच.आर,* वाल्यूम 25 नं. 4, 1988 पृ. 401-24
5. मुज़फ्फर आलम, द *क्रासिस ऑफ अम्पायर इन मुग़ल नार्थ इण्डिया; अवध एण्ड पंजाब* 1707-1748. दिल्ली 1986; मुजफ़्फर आलम एण्ड संजय सुब्रमण्यम, द *मुग़ल स्टेट* 1526-1750, दिल्ली 1998
6. अशिन दास गुप्ता, *इण्डियन मर्चेन्ट्स एण्ड* द *डिकलाईन ऑफ सूरत* सी 1700-1750 वेसबेडेन, 1979
7. करेन लियोनार्ड, 'द *ग्रेट फर्म थ्योरी ऑफ* द *डिकलाईन ऑफ मुग़ल एम्पायर', कम्परेटिव स्टडीज इन हिस्ट्री एण्ड सोसायटी* में प्रकाशित, वाल्यूम 21, नं. 2, 1979, पृ. 161-67
8. डेविड लुडेन 'कास्ट सोसायटी एण्ड यूनिट्स ऑफ प्रोडक्शन इन अर्ली माडर्न साउथ इण्डिया' *इन्स्टिट्यूशन एण्ड इकनोमिक चेंज इन साउथ एशिया* में प्रकाशित सं. बर्टन स्टाईन एण्ड संजय सुब्रमण्यम, दिल्ली 1996, पृ. 105-33.
9. जादुनाथ सरकार, *फॉल ऑफ* द *मुग़ल एम्पायर* 4 भाग, कलकत्ता 1932, पुनर्मुद्रण बम्बई 1971-75
10. फिलिप कलिकन्स, 'द फारमेशन ऑफ ए रीजनल ओरियन्टल रूलिंग ग्रुप इन बंगाल 1700-1740' *जरनल ऑफ एशियन स्टडीज* में प्रकाशित, भाग 29 (4), 1970, पृ. 799-806
11. बारनेट *बी. रिचर्ड, नार्थ इण्डिया विचविन एम्पायर्स : अवध* द *मुगल्स एण्ड* द *ब्रिटिश* 1720-1801, बर्कले 1980

12. पी.जे. माशर्ल, बंगाल : द *ब्रिटिश ब्रिजहैड इस्टर्न इण्डिया* 1740-1828, केम्ब्रीज 1787
13. सुशील चौधरी, *फ्राम प्रोस्परिटी टू डिकलाईन : एटिन्थ सैन्च्यूरी बंगाल*, दिल्ली 1995
14. आन्द्रेविंक, *लैण्ड एण्ड सोविरेन्टी इन इण्डियाः एग्रेरियन सोसायटी एण्ड पोलिटिक्स अंडर द एटिन्थ सैन्चुरी मराठा स्वराज्य*, केम्ब्रीज, 1986
15. फ्रेन्क पर्लिन, 'ऑफ वाईट व्हेल्स एण्ड कन्ट्रीमेन इन द एटीन्थ सैन्च्युरी मराठा डक्कन' *जरनल ऑफ एशियन स्टडीज* में प्रकाशित, 5, 1979, पृ. 239-72
16. घनश्याम लाल देवड़ा, *राजस्थान इतिहास के अभिज्ञान रूप*, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर 2010
17. *एटीन्थ सैन्च्युरी* सं. सीमा अल्वी, आक्सफॉर्ड, दिल्ली 2003

सूरजभान भारद्वाज

हाऊस नं. 948

सैक्टर नं. 31

गुरूग्राम हरियाणा

❑❑❑

प्रासाद वास्तु-उद्भव, विकास, चर्मोत्कर्ष तथा शैलियों का आंकलन

• डॉ. रीतेश व्यास

भारतीय स्थापत्य के स्वरूप और प्रकृति की बात की जाए तो एक विस्तृत व्याख्या भी सूक्ष्म लगेगी। स्थापत्य के निर्माण और वास्तु को केन्द्रित कर अध्ययन किया जा सकता है। प्राचीन भारतीय वांगमय में वास्तु को निर्माण का आधार माना गया है। यदि वास्तु की अनुपालना ना करके निर्माण किया गया या हुआ है तो उसके दुष्परिणाम होने की संभावना व्यक्त की गई है। भारतीय वास्तु में भवन निर्माण प्रारम्भिक सीढ़ी है, जिसके कई पायदान हैं, जैसे तालाब, कुएं, बावड़ियां, छतरियां, छोटे-छोटे स्वरूप हैं तो किले, महल और मन्दिर (प्रासाद) इसके बड़े स्वरूप हैं। इसका अध्ययन करना ही भारतीय वास्तु शास्त्र का अध्ययन माना गया है।

हिन्दू मन्दिर भारतीय वास्तु शास्त्र और वास्तुकला का सर्वस्व है। मन्दिर यज्ञ वेदी से प्रारम्भ होकर शिखर-शिखा पर समाप्त होता है। प्रासाद शब्द में **प्रकर्षेण सादनम्** की परम्परा है, जो सबसे पहले वैदिक चित्ति के कलेवर-निर्माण में काम में की गई थी और वही बाद में हिन्दू मन्दिरों के निर्माण की पृष्ठभूमि बनी।[1] वास्तुकला के प्रमाण पत्थर आदि चिरस्थाई द्रव्यों से निर्मित होने के कारण सदियों तक हमारे सांस्कृतिक विकास को निर्देश देने के साथ-साथ सांस्कृतिक वैभव का प्रत्यक्ष इतिहास भी उपस्थित करते है। प्रत्येक क्षेत्र की वास्तु कृतियों में तत्कालीन जाति एवं देश की विशेषताओं की छाप भी रहती है और हमारे भारतीय वास्तु कला की सर्वप्रमुख विशेषता उसकी आध्यात्म निष्ठा है। भारत की वास्तु कला विशेषकर मन्दिर-निर्माण में पनपी, आगे बही और उनके शिखर की तरह ऊंची उठी।

मन्दिर स्थापत्य सिर्फ हमारी धार्मिक चेतना और विश्वास को मूर्त रूप प्रदान करने, प्रतीकों की कल्पना करना ही नहीं बल्कि देश के दर्शन एवं पुराण में

प्रतिष्ठापित तत्त्वों के रहस्यों को खोलना भी है। कहा जाता है कि मन्दिरों के निर्माण में जन सामान्य की धार्मिक चेतना की निष्ठा में देव मिलन की भावना ही प्रमुख है।[2] मन्दिर की पीठ उसका कलेवर एवं उसका आकार एवं विस्तार सभी इस भावना के प्रतीक हैं। सम्भव है इस अध्ययन के दौरान हम यह भी महसूस करें कि जिस पूजा भावना से हमारे पूर्वजों ने पत्थरों और अन्य सामग्रियों से पूजागृहों का निर्माण किया था वही भावना हमेशा जागरूक रही या उसमें बढ़ोतरी होती गई।

इसमें कोई दो राय नहीं कि मन्दिर ऊंचे शिखर की भांति मनुष्य ने हमेशा श्रेष्ठ को ही चुना, इसलिए मन्दिर का शिखर, बिन्दु में अवसान प्राप्त करता है और वहीं मनुष्य और देवता का मिलन होता है। इसके पीछे एक धार्मिक-व्यावसायिक दृष्टिकोण भी है, जो जन धर्म की आस्था का परिचायक है।

मन्दिर वास्तु को समझने के लिए उसकी पृष्ठभूमि के उन तथ्यों को भी उजागर करना हैं, जिनके सुदृढ़ कन्धों पर मन्दिर की विशाल शृंखलाओं का निर्माण हुआ है। मन्दिर स्वयं लौकिक ही नहीं, बल्कि अलौकिक व आध्यात्मिक की मूर्त व्याख्या है। **शताब्दियों की सांस्कृतिक प्रगति के संघर्ष से जो अन्त में निष्कर्ष निकला वही हिन्दू-मन्दिर है।**[3]

इसी प्रकार प्रासाद वास्तु की पृष्ठभूमि के उन प्राचीन गर्तों व आवर्तों को खोजना है, जिनके सुदृढ़ एवं सनातनी, ओजस्वी और शान्त स्कन्धों पर हिन्दू प्रासाद की विशाल शिलाओं का निर्माण हुआ है। हिन्दू प्रासाद, हिन्दू संस्कृति, धर्म एवं दर्शन, प्रार्थना, मन्त्र एवं तन्त्र, यज्ञ एवं चिन्तन, पुराण एवं काव्य, आगम एवं निगम का पूंजीभूत मूर्तरूप है। भारतीय मन्दिर निर्माण लौकिक कला पर आधारित नहीं है। सत्य तो यही है कि मन्दिर स्वयं लौकिक नहीं, वह अलौकिक व आध्यात्मिक तत्व की मूर्तिमती व्याख्या है।

भारतीय जीवन सदैव आध्यात्म से प्रेरित रहा है। जीवन की सफलता में लौकिक अभ्युदय की अपेक्षा परलौकिक विश्वास ही सर्वप्रधान रहा। प्रार्थना, मंत्रोचार, यज्ञ, चिन्तन-ध्यान, योग, वैराग्य, जप-तप, पूजा-पाठ, तीर्थ-यात्रा, देव-दर्शन, मन्दिर-निर्माण और परम्पराओं ने सनातन काल से साधना-पथ पर पाथेय का काम किया है। यह सही है मनुष्य ने स्वयं को पशुता से बचाने के लिए धर्म के प्रति अपनी जिज्ञासा को बनाए रखा। प्रत्येक मनुष्य का बौद्धिक स्तर, मानसिक क्षितिज एक जैसा नहीं होता, इसी कारण उसका आध्यात्मिक स्तर भी समान नहीं होता। इसीलिए उसके बौद्धिक स्तर के आधार पर साधना

के विभिन्न साधना मार्गों का निर्माण हुआ। मार्ग अनेक अवश्य थे लेकिन लक्ष्य एक ही है और वो है देव प्राप्ति। देश काल परिस्थितियों ने यद्यपि देव प्राप्ति के अनेक मार्ग प्रशस्त कर दिए हैं, लेकिन वर्तमान दौर में देव-पूजा, देव-प्रतिष्ठा एवं देवालय निर्माण भारत की सर्वाधिक प्रशस्त, व्यापक एवं सर्व लोकोपकारी संस्था मानी गई।

मन्दिर निर्माण को तीन दृष्टिकोण से देख सकते हैं—**कलात्मक, दार्शनिक** और **धार्मिक**।[4]

धार्मिक दृष्टिकोण में कुएं, तालाब, मन्दिर आदि की परोपकार्य परम्परा, दूसरी इसका जनमानस, राजाओं एवं सम्पन्न व्यक्तियों पर प्रभाव तथा उसके आशय से इस संस्था का उद्धार भी हो जाता है। राजाओं के संरक्षण से विस्तार होना भी शामिल है। जिससे विशाल और भव्य मन्दिरों का निर्माण हो सका तथा तीर्थ यात्रा के उद्देश्य को पूरा किया जा सका और नए स्थलों को प्रतिष्ठा मिली।

मन्दिर निर्माण वास्तुकला (स्थापत्य) का महत्त्वपूर्ण अंग है। **प्रासाद** शब्द वैसे तो जन साधारण में राजाओं, राजवंशों के सदस्यों एवं श्रेष्ठि वर्ग के महलों के लिए प्रयुक्त होता है, लेकिन वास्तु शास्त्रीय परिभाषा में राज शब्द जोड़ने से वह राजमहल का द्योतक हो जाता है, इसलिए संक्षेप में प्रासाद शब्द परम्परा से देवमन्दिरों एवं राजमहलों—दोनों के लिए प्रयुक्त हुआ है।[5]

प्रासाद शब्द विशाल (देव मन्दिरों), देवालयों एवं क्षुद्रमण्डपों जहां किसी भी देव या शिवलिंग की स्थापना होती है, दोनों के लिए प्रयुक्त होता है। इस शब्द के अर्थ में उत्तुंग राजभवन एवं साधारण भवन दोनों सम्मिलित है। पुराणों, आगमों, रामायण तथा महाभारत आदि विभिन्न साहित्यिक ग्रंथों के साथ-साथ अभिलेखों एवं बौद्ध धार्मिक साहित्य आदि के विभिन्न संदर्भों में प्रासाद शब्द का अनेक स्थानों पर प्रयोग हुआ है। प्रासाद शब्द का विशुद्ध एवं एकांगी प्रयोग देवमन्दिर के लिए ही पुराणों में हुआ है। दक्षिण भारत में मन्दिर के लिए **विमान शब्द** का प्रयोग हुआ है। **समरांगणसूत्रधार** में तो प्रासाद शब्द का एक मात्र अर्थ देवमन्दिर ही है। **ईशानशिवगुरुदेव पद्धति** के 12वें अध्याय के 16वें श्लोक में प्रासाद की व्याख्या करते हुए लिखा है कि 'देवमन्दिर प्रासाद का स्वरूप शिव तथा शक्ति की उभयात्मक सत्ता का द्योतक है। अथवा इसके स्वरूप में प्रारम्भिक तत्व जैसे वसुधा आदि से लेकर शक्ति तक सभी तत्त्वों का समावेश है। इस प्रकार प्रासाद रूपी यह देव मन्दिर शैवी मूर्ति के नाम से चरितार्थ होता है। अतः यह प्रासाद ध्यान एवं पूजा दोनों के लिए योग्य है।[6]

प्रासाद सम्बन्धी विवरण जैसा सूत्रग्रंथों में मिलता है उनका सम्बन्ध वेदी वातावरण से है। शखायन श्रौतसूत्र में जिस प्रासाद का उल्लेख मिलता है उसका अर्थ प्रोन्नत पीठ (Raised Platform) है। बाद में यही पीठ (जगती के रूप में) विशालकाय प्रासाद का आधार बनी—

संस्थिते मध्यमें हन्याहवनीयमभितो विक्षु प्रासाद्न वितन्वन्ति।[7]

यही पीठ सजधज कर विभिन्न पुरुषाकृति वास्तु अवयवों से अलंकृत एवं निर्मित होकर देव आवास के रूप में परिणत हो गया।

विमान और प्रासाद

विमान और प्रासाद देव मन्दिर के ही प्रतीक के रूप में प्रयोग लिए गए शब्द हैं। प्रासाद शब्द की उत्पत्ति की दृष्टि से दो अर्थ निकलते हैं—

प्रकर्षेण सादनम् स्थापनम् आच्छादन वा (Piling up of vedic altar) **तथा प्रसाद एवं प्रासाद** (Pleasing)।[8]

प्रासाद-प्रसन्नता—वह भवन विशेष जो अपने सौन्दर्य एवं अपनी ओजस्विता तथा आकर्षण के कारण मनुष्य जगत एवं देवों दोनों के लिए **सत्य-शिव-सुन्दर** की धार्मिक भावना का प्रतीक बना।[9]

देवादीनां नराणां च येषु रम्यतया चिरम्।
मनांसि च प्रसीदन्ति प्रासादास्तेन कीर्तिता।।[10] शिल्परत्न

अर्थात् जिन भवन विशेषों में प्रस्तर-शिलाओं, इष्टकाओं तथा सुधा एवं वज्र लेप आदि दृढ़ वास्तु-संभारों से स्थायित्व प्रदान करने वाले वास्तु-सौन्दर्य की चिर प्रतिष्ठा संस्थापित हो चुकी है और इसी सौन्दर्य के कारण ये भवन देवादिक एवं मनुष्य दोनों के मन को प्रसन्न करते हैं। अतः भवन प्रसाद कहलाते हैं।[11]

साहित्यिक साक्ष्यों के अलावा पुरातात्त्विक स्रोतों से भी प्रासाद का उल्लेख मिलता है। दूसरी शताब्दी ईसापूर्व के शिलालेख[12] में भागवत शब्द का उल्लेख उत्तम प्रासाद की ओर संकेत करता है। इसी प्रकार भरहुत[13] के साक्ष्य में वैजयन्त प्रासाद का वर्णन है। वह भी प्रासाद के इतिहास पर प्रकाश डालता है।

समरांगणसूत्रधार में प्रासादों की उत्पत्ति-प्रस्तुति के सम्बन्ध में लिखा है कि देवों, राजाओं तथा ब्राह्मणों आदि वर्णों के जो प्रासाद है, उनकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में लिखा है—**अत्यंत प्राचीन परम्परा की बात है, ब्रह्मा ने देवों के लिए**

पांच विमानों की रचना की। ये बड़े ही सुन्दर विशालकाय और आकाशगामी थे। इनके नाम वैराज, कैलाश पुष्पक, मणिक तथा त्रिविष्टक थे। ये सभी सोने के बने थे, मणियों से जड़ित थे। इनके प्रयोग नियोग से वैराज अपने लिए रखा तथा कैलाश शूलपाणि शंकर के लिए, पुष्पक कुबेर या यम के लिए, मणिक पाशी वरूण के लिए तथा त्रिविष्टम सुरराज इन्द्र के लिए प्रकल्पित किया।[14]

विमान शब्द की उत्पत्ति वि उपसर्ग मा धातु के निष्पन्न मान पर आधारित है। मान का तात्पर्य सामान्य रूप से नापना से है, लेकिन वास्तु शास्त्रीय परम्परा में मान या मेय का तात्पर्य एक रचना विशेष से भी है—

यच्च येन भवेद् द्रव्यं मेयं तदपि कीर्त्यते।[15]

विमान उस भवन का नाम दिया गया है जिसको विशिष्ट प्रक्रिया से प्रतिष्ठित किया गया हो और वही भवन विमान के नाम से पुकारा जाता है। शिल्प रत्न में लिखा है—

नानामानविधानत्वाद् विमानं शास्त्रत: कृतम।[16]

मानसार में एक तल से बारह तल के भवनों या देवालयों या राजालयों को विमान कहा गया है। रामायण, महाभारत में भी विमान का तात्पर्य उत्तुंग भवन से है। वास्तुशास्त्रीय परम्परा में विमान को देवभवन के रूप में प्रतिष्ठित करने के पीछे आध्यात्मिक व दार्शनिक पक्ष भी है। वायु पुराण के अनुसार मा मान का तात्पर्य वास्तु-विशेष की सत्ता और स्वरूप प्रदान करना है। यही तथ्य माया शब्द में भी उद्घाटित होता है। माया अव्यक्त की व्यक्त का साधन है और इसका कर्ता स्वयं पुरुष है। पुरुष जो परब्रह्म का प्रथम अविर्भाव है वही मापदण्ड का वाहक भी है। अत: वह विश्व का स्थपति अर्थात् विश्वकर्मा है। इस उन्मेष से विमान अपने सभी अंगों का निर्मिति से निष्पन्न साक्षात् जगत्सृष्टा की आकृति है। अत: वह विश्व है, उसी विश्व की प्रतिकृति अर्थात प्रासाद माना गया है।[17]

संक्षेप में प्रासाद शब्द के अर्थ में यही कहा जा सकता है कि प्रासाद-बहुभूमिक भवन था। वह अन्य भवन रचनाओं से विलक्षण था। इसकी परम्परा बुद्ध से भी प्राचीन है। प्रासाद भवनों में भूमियो तथा शिखरों की रचना अनिवार्य थी और वे उत्तुंग पर्वतों के सादृश्य में प्रशस्ति पाते थे। प्रासाद के शिखर पर आमलक की न्यास परम्परा भी कम प्राचीन नहीं। कई वास्तु ग्रंथों में देवमन्दिर के अर्थ में इस शब्द का प्रयोग मिलता है।

इस प्रकार के उद्धरण के बाद यह भी तय किया जाए कि विमान वास्तु और प्रासाद-वास्तु में क्या अन्तर है। मुख्य रूप से भारतीय स्थापत्य की दो प्रमुख शैलियां हैं—उत्तरी परम्परा और दक्षिणी परम्परा। मन्दिर निर्माण की भी दो शैलियां विकसित हुई—**उत्तर के मन्दिरों का अर्थ—प्रासाद से है और दक्षिण के मन्दिरों का तात्पर्य विमान है।** प्रासादों के शीर्ष को **आमलक** के नाम से पुकारते हैं जबकि विमान के शीर्ष को **स्तूपिका** कहा जाता है। विमानों में गोपुरों एवं मण्डपों का भी निवेश अनिवार्य माना गया है। विमानों की रचना का आधार रथाकृति है और दक्षिण भारत के अधिकांश मन्दिरों में ये ही देखने में आता है। प्रासादों का निर्माण वैदिक चित्ति है।

प्रासाद वास्तु—जन्म, विकास व चर्मोत्कर्ष

मानव के विकास में कई पक्षों ने भूमिका अदा की। सांस्कृतिक विकास के साथ-साथ मानव के रहन-सहन, खान-पान, वेशभूषा उसके आचार विचार तथा ईश्वर की उपासना जैसे कार्य कलापों में भी विकास हुआ। मावन सभ्यता में उसके अदृश्य शक्ति के प्रति समर्पण की भावना प्राचीन काल से चली आ रही है। उसने कभी वृक्षों की पूजा की तथा कभी प्रकृति के सूर्य, चन्द्रमा, आकाश, अग्नि, पहाड़, समुद्र, नदियों आदि के प्रति समर्पण भाव रखा। कभी ऊंचे उठकर मंत्रों-तन्त्रों या अन्य तरीकों से उनका पोषण किया। प्रारम्भ में मनुष्य जंगलों, पहाड़ों, गुफाओं में रहा तो उसका ईष्ट भी वहीं आसपास ही था या वहीं प्रतिष्ठित था। जब उसने अपने-अपने निवास स्थान बना लिए तो अपने इष्ट के आवास भवन भी बनाए।

इस निष्कर्ष पर पहुंचना कि प्रासाद कब बनने शुरू हुए तथा सबसे पहले किसने बनवाया कहना मुश्किल है। विद्वानों के अनुसार वैदिक कालीन आर्य योगकर्म के रूप में भी पूजा करते थे, वह व्यक्तिगत भी था और सामूहिक भी। आर्यों-अनार्यों के संघर्ष के बाद एक निश्चित पूजा कर्म होने लगा। विशुद्ध आर्यों के समाज में प्रायः प्रधान रूप से शिक्षित, मेधावी, चिन्तक तथा शूरवीर एवं व्यापारियों का प्राधान्य था। ये वर्ग या समाज मूर्तिपूजा में न तो विश्वास रखता था और न ही इस परम्परा को अपनाने में उसने जल्दबाजी ही की। आगे चलकर जब उन्होंने अपना समाज संघटित किया— वर्णाश्रम धर्म की प्रक्रिया को प्रतिष्ठित किया तो मूर्ति पूजा की आवश्यकता को भी उन्होंने स्वीकार किया। प्रारम्भ में देवताओं की प्रतिष्ठा साधारण तरीके से अपने आवास गृहों में की और उसे देवागार, देवतायतन, देवकुण्ड देवगृह, कहा गया। बाद में इसमें भी

बदलाव हुआ। देवपूजा, प्रतिमा-प्रतिष्ठा, मन्दिर-निर्माण, तीर्थ व्यवस्था की स्थापना हुई। पुराणों और आगमों की रचना के साथ ही अनेक देवों की प्रतिमा पूजा तथा प्रतिष्ठा के लिए विशेषकर—विष्णु एवं शिव—के देवालयों तथा प्रतिमाओं की स्थापना एवं निर्माण की परम्परा शुरू हुई।

यह एक धार्मिक क्रांति का युग था। **स्वर्गकामो यजते** के स्थान पर **स्वर्गार्थी देवालयं कारयते** की नई चेतना का विकास हुआ। इष्ट के स्थान पर मूर्त की प्रतिष्ठा को विशेष स्थान मिला। ब्राह्मण धर्म के इस नए रूप का प्रचार व्यास-पीठों एवं पुराण-प्रवचनों से देश के एक कोने से दूसरे कोने तक होने लगा। उसके साथ ही मन्दिर निर्माण, देव-प्रतिमा-प्रतिष्ठा, तीर्थ-स्थापना आदि कार्य होने लगे। यह भी कहा गया कि आर्यों ने जिन देवभवनों का निर्माण किया वह भी असुरों के भवनों का ही प्रभाव था।

कृत्वा प्रभूतं सलिलमारामारन्विनिवेश्य च
देवतायतनं कुर्याद्यशोधर्माभिवृद्धये
अश्टापूतेनं लभ्यन्ते ये लोकस्तान् वुभूषता
देवानामालयः कार्यो द्वयमप्यत्र दृश्यते।।[18]

समरांगणसूत्रधार के अनुसार प्रासादों की उत्पत्ति एवं उनका विकास विमानों से हुआ। विमानों के लिए—**वियद्वर्त्म-विचारीणी, श्रीमन्ति, महान्ति** विशेषणों का प्रयोग किया है। इन विमानों का निर्माता ब्रह्मा को बताया गया। श्रीमन्ति का अर्थ शोभा सम्पन्न तथा महान्ति का तात्पर्य–विशाल है। तारापद भट्टाचार्य के अनुसार वास्तु विद्या और वास्तु कला की शैलियों (दक्षिण पथीय व उत्तरा पथीय) में दक्षिण की वास्तु विद्या तथा वास्तु परम्परा या शैली का प्रथम उद्भावक, प्रतिष्ठापक शैली पहले विकसित हुई (द्रविड़) और उसी को आधार बनाकर उत्तरापथ शैली (नागर) का विकास हुआ।[19]

हम जानते हैं कि विमान ऊंचे शिखर और रथाकृति के थे। रथ एक प्रकार का यान विशेष है। वहीं देवयान-देवों के रथ अर्थ में आकाशीय विमानों-पुष्पक विमानों की तरह प्रचलित होने लगा। देवों का विमान भ्रमण परम्परा से प्रचलित था। अतः उसी परम्परा के प्रतीक स्वरूप देवों की प्रतिष्ठा के अनुरूप भवन विशेषों के नामकरण में विमान शब्द का प्रयोग हुआ। वहीं विमान शब्द समय के साथ एक विशेष प्रकार के भवन के लिए प्रचलित हो गया। उन्ही विमानाकृति भव्य भवनों का जब एक नवीन वास्तु शैली में निर्माण हुआ तो वे प्रासाद

कहलाए। प्रासाद और विमान में सिर्फ (रचना) निर्माण शैली का ही अन्तर है न कि प्रकृति का। अलग-अलग क्षेत्रों में पनपने के कारण ये आकार-प्रकार में एक दूसरे से भिन्न होते गए।

प्रासाद जन्म एवं विकास अर्थात् मन्दिरों की उत्पत्ति एवं विकास के सम्बन्ध में विद्वानों ने बहुत कुछ लिखा है। सभी का सार यही है कि प्रासाद वास्तु की परम्परा में भारत की प्राचीनतम् पूजा-वास्तु एवं पूजा परम्परा के घटक विद्यमान है, जिनका पुंजीभूत स्वरूप हिन्दू-प्रासाद है। सिंधु काल व वैदिक कालीन पूजा परम्परा से भी हमें प्रमाण मिलते हैं। बौद्धों के विहार, चैत्य, स्तूप बौद्धों की ही उपज थे। इस प्रकार 200 ई.पू. जितनी भी पूजा-वास्तु एवं पूजा परिपाटियां प्रचलित थी उन सभी ने प्रासाद वास्तु के जन्म एवं विकास में सहायता दी।

प्रासाद वास्तु के जन्म एवं विकास में कुछ प्राचीन परम्पराओं ने सहयोग दिया—

1. चित्ति-वैदिक वेदी
2. डोलमेन
3. वैदिक सद्म एवं दीक्षाशालाएं तथा अवैदिक देवगृह
4. गिरि-प्रतिमाएं
5. हिन्दू दार्शनिक दृष्टि।

हिन्दू प्रासाद का जन्म व विकास इन्हीं प्राचीन स्रोतों के उद्गमों पर आगे बढ़ा, जिनके सहारे न केवल उसके भव्य रूप का ही निर्माण हुआ बल्कि उसकी मौलिक प्रतिष्ठा भी प्रतिष्ठित हुई।[20]

प्रासाद/मन्दिर के तीन प्रधान अंग है—

अधिष्ठान (जिसे पीठ, मसरक, आद्यग, कुहिन, वास्त्वाधार भी कहते हैं।), **गर्भगृह** तथा **गर्भोपरि छाद्यरचना**।[21]

वैदिक चित्ति—वेदी पूजा-वास्तु का प्रारम्भ है। वेदी की पीठ मन्दिर या प्रासाद की जगति/पीठ के रूप में परिणत हुई। इस प्रकार प्रासाद का आधार वैदिक कालीन वेदी से विकसित हुआ। जिस प्रकार वेदी की जगती का निर्माण किया जाता था उसी प्रकार प्रासाद की जगती पर, उसके अधिष्ठान वेदिका-उपपीठ तथा पीठ पर भव्य संरचना (Super sturcture) का विस्तार किया जाता है।

 ISSN 2278-4632 जनवरी-जून 2023

श्रीमती स्टैला के अनुसार—मन्दिर की शरीर-रचना में नीचे से ऊपर तक वैदिक चित्ति विद्यमान है। रचना तथा संज्ञा की दृष्टि से प्रासाद या हिन्दू मन्दिर वेदी तथा चित्ति दोनों की संज्ञाओं को परिभाषित करती है। इसके अतिरिक्त इसकी पूर्ण रचना को जब हम बाहर से देखते हैं तो यह विशाल पुंज जैसा दिखाई देता है। इस प्रकार यह भवन ही नहीं एक स्मारक भी है। गर्भगृह की दीवारों की मोटाई वहां की संयुक्त-रचना इन दोनों तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि प्रासाद एक चित्ति है।[22]

समरांगणसूत्रधार में शिखर रहित प्रासादों की चर्चा है। इन्हें छाद्यप्रासाद की संज्ञा दी गई है। यह भी दो वर्गों में विभाजित है—एक वे जो पत्थर की पट्टिकाओं की रचना मात्र है तथा दूसरी स्तम्भशाला है (Pillerd Halls)।[23]

उत्पत्ति—प्रासाद की जगती (पीठ, अधिष्ठान) की वैदिक चित्तियों पर पत्थर की पट्टिकाओं की जो ऊंची रचना होती है, वही छाद्य प्रासादों (Flat-oofed Temples) के निर्माण की प्रकृति बनती है। पाषाण ने ही गर्भगृह को स्वरूप प्रदान किया। लेकिन इन पाषाण शिलाओं की प्रकृति के रचना विशेष एवं सौन्दर्य शून्यता होने के कारण इस प्रासाद उत्पत्ति के सम्बन्ध में कुछ भी कहना मुश्किल है।

वैदिक और अवैदिक गर्भगृह

प्रासाद-वास्तु से पहले भारत में प्रासाद वास्तु की दो परम्पराएं प्रचलित थी—एक आर्य व एक अनार्य (द्रविड़)। हमें कदली मण्डप, वन्दनवार, अशोकादि वृक्षों का विविध पत्रावलियों, पुष्पमालाओं आदि का उल्लेख मिलता है। समरांगणसूत्रधार में गर्भगृह को भवन का आन्तरिक भाग माना है—

यच्छालालिन्दयोः शेषं भवेद् गर्भगृहितत्।।[24]

रचना तथा विस्तार एवं प्रसार की दृष्टि से हिन्दू-मन्दिर के गर्भगृह का प्रारंम्भ है। यह शाला लकड़ी तथा भूसे से बनती थी तथा छत बालू तथा इसकी सिरा भी वैसी ही होती थी। अन्य किसी प्रकार की ऊपरी रचना का यहां अभाव था।

श्रीमती स्टेला के अनुसार—जिस प्रकार दीक्षाशाला आदि वैदिक संस्थाओं ने प्रासाद के गर्भगृह के रूप निर्माण में जितनी महत्त्वपूर्ण भूमिका नहीं रखी हो, लेकिन उनकी देन निर्विवाद है। वहां प्राचीन मन्दिरों की परम्परा ने प्रासाद की छाद्य भूषाओं, शिखरों आदि में जो वृक्ष, कदलीपत्र तथा अनेक

विभिन्न शाखा संयोजनों से विष्पन्न होते हैं, वे अपने प्राचीनतम आकार में आज भी स्थापित किये जाते हैं तथा जिनमें पूजा उपकरणों से युक्त इस प्रकार के छोटे से स्थान को घेरकर निराकार देव की कल्पना की जाती है। उन्ही में विकसित हिन्दू-मन्दिर के शिखर वास्तुकला की उत्पत्ति हुई। **वास्तव में जो चार बांसों या शाखाओं को चारों दिशाओं में खड़ाकर मण्डप बनाया जाता था वही मन्दिर का आकार है। जो वन्दन माल सजायी जाती थी, उन्होंने ही आगे चलकर शिखर भूषाओं को पल्लवित करने में महत्ती भूमिका निभाई।**[25]

अजंता की गुफाएं भी मन्दिरों की श्रेणी में ही आती हैं। पहाड़ों ने ही प्रासादों के आकार के निर्माण में सहायता प्रदान की। समरांगणसूत्रधार में **मेरू** को प्रासाद राज माना गया है और वही पर्वत राज है। पहाड़ी गुफाओं ने भी प्रासादों की आकृति रचना में सहयोग किया। समरांगण में ऐसे प्रासादों को **लयन गुहाघर, गुहराज** कहा गया है। बौद्ध, जैन एवं ब्राह्मण सभी धर्मों के अनुयायियों में गिरि कन्दराओं का वास साधना के लिए सर्वोत्तम माना गया है।[26]

प्रासाद वास्तु का चर्मोत्कर्ष

भारतीय वास्तु कला में पिछले करीब 100 वर्षों के पहले 50 वर्षों को समीक्षात्मक दृष्टिकोण से देखा जाए तो केन्द्र में हमेशा प्रासाद ही रहा है। भारतीयों ने वास्तु की उन्नति में विशेषकर पूजा-वास्तु की ओर विशेष रूझान रखा। उत्तर और दक्षिण में अनेक प्रासाद बने, जिन्होंने हमारे आध्यात्मिक होने का प्रमाण दिया। इन सभी कृतियों के उदय में धार्मिक आस्था ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। बौद्धों के विहार एवं चैत्य तथा जैनों के मन्दिर भी इसी आस्था के परिणाम थे। ब्राह्मण, बौद्धों तथा जैन सभी ने पूजा वास्तु या प्रासाद निर्माण की ओर ऐसा उत्साह दिखाया मानो सारा समाज, सारे व्यक्ति प्रासादकर्मा स्थपति के अनुगामी बन गए हो अथवा उनकी कार्यशाला के सहकारी हो।

प्रासादों के विकास में दो प्रमुख परम्पराएं पल्लवित होती दिखती हैं—जो भारतीय उत्तरापथ तथा दक्षिणा पथ की विशेषताओं की सूचक है—

1. पिरामिडल आकार और उसका कलेवर
2. शिखराकार और उसका कलेवर।[27]

पिरामिडल

इस परम्परा का विकास दक्षिण भारत में हुआ, इसके प्रमाण शास्त्र और

 ISSN 2278-4632 जनवरी-जून 2023

कला दोनों में ही मिलते हैं। समरांगणसूत्रधार में इकहरे, दुहरे, तिहरे छाद्यों का वर्णन है।[28] इस प्रकार के प्रासादों का विकास हुआ उसमें—

1. **पोलीछत**—यह बौद्धों के चैत्यों के आकार पर आश्रित है।
2. **तोरण**—ऐसी आकृति वाली छतों के प्रासाद जो मामल्लपुर के रथ विमानों में है।
3. **भौमिक**—इन आकारों का स्थापत्य प्रदर्शन दक्षिणी विमान प्रासादों के गोपुरों के शिखर भाग जैसा है।
4. **वैतानिक**—इनकी प्राचीन प्रतिकृति तपस्वियों की कुटियों से प्राप्त होती है, उन्हीं की प्राचीन प्रकृति पर कई मन्दिरों का विकास हुआ, जिनकी छतें डोम के आकार की है।

प्राचीन काल में इन कुटियों को पर्णकुटी या पर्णशाला के नाम से भी जाना जाता था। वहीं आगे चलकर बड़े-बड़े प्रासादों की छाद्य प्रतिकृति का आदर्श उपस्थित करने में सहायक हुई।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कई आकृतियों से विकसित प्रासाद अपनी पूर्ण सजधज के साथ जब स्थापत्य के कौशल का सुन्दर प्रदर्शन हुआ तो वह एक अद्भुत छटा का कारण बना। पिरामिडल आकार की छतों वाले प्रासादों का विकास भूमिकाओं (स्टोरीज) के रूप में भी हुआ—

1. विभिन्न भूमिकाओं (एक भूमिका से 12 भूमिका तक) से स्कन्ध प्रदेश का विन्यास।
2. क्षुद्र या विमान
3. विमानों पर विमान।

शिखरोत्तम आकार

हिन्दू मन्दिरों के निर्माण की जो शैली सबसे ज्यादा प्रस्फुटित हुई उसमें शिखर वाले मन्दिरों का विशेष विकास हुआ। भारत में तीन-चौथाई से ज्यादा भू-भाग पर ऐसे ही मन्दिर बने हैं। भारतीय स्थापत्य में हिन्दू प्रासादों की छटा इन्हीं शिखरों में दिखाई देती है। समरांगणसूत्रधार में करीब छः अध्यायों में शिखराकार मन्दिरों का विशद वर्णन हुआ है।[29] सूत्र के लिखने के समय ही नागर शैली के समकक्षता लिए कई शैलियां पनप रही थी। जैसे **लाट, ललित, लतिन, वावट या वैराट, भूमिज** आदि। इसी तरह प्रासाद जातियों का उदय

हुआ तथा वे प्रतिष्ठित भी हुई। 11वीं शताब्दी में अब केवल देवता ही पूज्य नहीं रहे बल्कि प्रासाद भी पूज्य बन गए।

शिखर प्रासादों में भी तीन भेद मिलते हैं—

1. **स्तवक शिखर**
2. **गवाक्ष शिखर**
3. **पूर्ण शिखर**।[30]

चूंकि शिखर के अभाव में प्रासाद को अधूरा समझा गया है। प्रासादों के कलेवर निर्माण में शिखराकार यदि विशेष ऊंचाई को प्राप्त हुआ है तो यह स्वाभाविक ही था। शिखर की रचना कैसे होती है और वास्तु की दृष्टि से उसके क्या-क्या नियामक सिद्धांत थे, इस सम्बन्ध में प्राचीन विद्वानों ने विशद व्याख्या की है। रेखाशास्त्र, ज्यामिति शास्त्र के आधार पर त्रिगुण, चतुर्भुज, पंचगुण या षड्गुण सूत्रों के आधार पर शिखरों का विन्यास बनाया गया है और शिखरों के इस प्रकार के विन्यास पर ही इनकी वास्तु शास्त्रीय विभिन्न संज्ञाएं, जैसे पद्मकोष, वेणुकोष प्रचलित हुई।

प्रासाद शैलियां (नागर, द्राविड और बेसर)

भारतीय वास्तु के प्राप्त स्मारकों में मन्दिर प्रमुख हैं। इसलिए जो भी वास्तु कला विषयक शैलियों के सम्बन्ध में विवेचन किया है या हुआ है उसमें प्रासाद शैलियों के सम्बन्ध में रहस्योद्घाटन हुआ है। वर्तमान दौर में तीन शैलियां दृष्टिगोचर होती हैं—**नागर, द्राविड** और **बेसर**। इसके अलावा समरांगण में मन्दिर की तीन और शैलियों का विवेचन मिलता है। **ववाट, भूमिज व ललित**।[31]

जैसा हम जानते हैं कि देश में प्रारम्भ दो शैलियों का प्रसार हुआ—**आर्य परम्परा जिसे विश्वकर्मा परम्परा**, विश्वकर्मा स्कूल या उत्तरीय परम्परा, नार्दन स्कूल या नागर शैली किसी भी नाम से जाना जा सकता है। इसी प्रकार दूसरी परम्परा अनार्य परम्परा या मय परम्परा, मय स्कूल है। इसे दक्षिणीय परम्परा, साउदर्न स्कूल या द्राविड़ परम्परा या द्राविड़ शैली कहा गया। यह स्पष्ट है कि किसी भी शैली या परम्परा को विकसित होने में समय लगता है। इसे भी पल्लवित होने में शताब्दियां लगी।

नागर शैली में नागर शब्द की उत्पत्ति के सम्बन्ध में व्याख्या हुई है। नागर शब्द का लोकप्रिय एवं सार्वजनिक अर्थ है नगर का या नगर से सम्बन्धित,

इस प्रकार वास्तुशास्त्र की नागर शैली से हमारा तात्पर्य उस शैली से है जिसके विकास के निर्देशन स्वरूप भव्य-भवन विमान या मन्दिर, प्रासाद बड़े-बड़े नगरों में बने, वे सभी नागर नाम से विख्यात हुए। उत्तर भारत में उस समय श्रावस्ती, कोशाम्बी, साकेत, कपिलवस्तु, राजगृह, पाटलीपुत्र, वैशाली, तक्षशिला महानगर बसे और ये बड़े नगर विशेषकर उस समय मध्य देश में थे, बाद में उत्तरापथ की वास्तु शैली का नाम नागर शैली पड़ा होगा।[32]

एक अनुमान यह भी लगाया गया है कि इस शैली का विकास नागों (असुरों) का हाथ था। सत्य तो यह है कि नागर-वास्तु जिसमें हमने विश्वकर्मा-परम्परा माना है, उसके विकास में नाग-राजा **शेष** का बड़ा योगदान था। डॉ. जयसवाल ने भारशिव नागों को नागर कला का जन्म दाता माना है। इसके अलावा नागर-वास्तु-विद्या एवं नागर चित्रकला की प्राचीन पारम्परिक घनिष्ठता का प्रमाण विष्णुधर्मेत्तेर पुराण से प्राप्त होता है तथा नग्नजाति के चित्र लक्षण से स्पष्ट होता है। यह नग्न जाति नाग राजा था। अतः नागर कला के जन्म व विकास में नागों का हाथ अवश्य था।[33]

इसी प्रकार **द्राविड़ शैली** का तात्पर्य उस शैली से हैं जो दक्षिणापथ या दक्षिण भारत के विशाल भू भाग में बने भवनों या विमानों की रचना में फली-फूली। **बेसर** शब्द भौगोलिक नहीं है। समरांगण तथा उत्तरापथीय किसी भी वास्तुशास्त्रीय ग्रंथ में बेसर का कहीं भी उल्लेख नहीं है। तारापद भट्टाचार्य ने बेसर के सम्बन्ध में लिखा है कि यह एक प्रकार का आभूषण विशेष (नासिका आभूषण) है तथा उसकी आकृति **वर्तुल** होती है। अतः बेसर से उन भवनों का बोध होना चाहिए जो बर्तुलाकार है। इसका प्रयोग विंध्य और कृष्णा नदी के मध्य के भूभाग में किया गया। इस भाग में चालुक्य वंश का राज्य फैला था अतः कई विद्वानों ने इसे चालुक्य शैली भी कहा है। 10वीं शताब्दी के बाद नागर व द्राविड शैली में ही मन्दिर बने।

इनके अलावा कई शैलियों की चर्चा है उनमें हैं **वावाट** और **भूमिज** भी है। समरांगणसूधार में **वावाट** की 12 शैलियों का उल्लेख है। ये पिरामिड आकार के बनाए गए हैं। वावाट प्रासाद प्लान में नागर के ही समान है। फर्क इतना है कि वावाट का छाद्य शिखराकार न होकर पिरामिड के आकार का है। इसी तरह **भूमिज** शब्द में एक स्थानीय शैली का आभास होता है। यह शैली आसाम, बंगाल की ओर शासन करने वाले भोम राजाओं से सम्बन्ध रखती है। बिहार में भूमिहारों के बाहुल्य के कारण भी यह भूमिज हुई। समरांगण के अनुसार (अध्याय 64) इस शैली के तीन प्रकार बताए हैं, जिनमें निशद आदि

चार चौकोर प्रासाद, कुमुद आदि सात वृक्षजाति प्रासाद तथा स्वस्तिक आदि पांच अष्टशाल प्रासादों का वर्णन हुआ है।

भारत के विभिन्न भागों में विकसित शैलियों में भेद मिलना स्वाभाविक है, क्योंकि साहित्यिक ज्ञान, कला साधना में शास्त्रीय ज्ञान के अलावा व्यक्तिगत प्रेरणा और व्यक्तिगत समझ ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। निश्चित रूप से विभिन्न वास्तु-कृतियों में स्थापत्य कलाकारों में जब किसी अत्यंत मेधावी स्थपति का जन्म हुआ होगा तो अपनी वैयक्तिक विलक्षण समझ से उस क्षेत्र की प्रचलित शैली में एक विशेष प्रेरणा प्रदान की होगी।[34]

इनके अलावा यह भी स्वीकार्य है कि भारत के विभिन्न क्षेत्रों में विकसित शैलियों के कई भेद हो सकते है। साहित्य और कला की साधना में शास्त्रीय ज्ञान के अतिरिक्त व्यक्तिगत प्रेरणा तथा व्यक्तिगत समझ भी सनातन की प्रत्येक कृति में देखी गई है।

संदर्भ :

1. डॉ. द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल—भारतीय स्थापत्य, हिन्दी समिति, उत्तर प्रदेश, 1965, पृ. 209।
2. वही, पृ. 210
3. वही, पृ. 210
4. वही, पृ. 211-212
5. वही, 213
6. समरांगणसूत्रधार, वास्तुवांगमय प्रकाशन शाला, 1965, व भारतीय स्थापत्य, पृ. 214
7. इशानगुरुदेव पद्धति, अध्याय 12, श्लोक 16।
8. शखसयन श्रौतसूत्र, अ. 16वां, 16 13।
9. भारतीय स्थापत्य, पृ. 220।
10. वही, 220
11. वही, 221।
12. गरूड स्तम्भ भिलसा।
13. प्रथम शताब्दी ईसापुर्व का रिलिफ पैनल।
14. समरांगणसूत्रधार अध्याय, 49।
15. भारतीय स्थापत्य, पृ. 227।
16. शिल्परत्न

17. वायुपुराण, 4,30-31।
18. वृहत्संहिता, 56, 1-2।
19. Canons of Indian Architecture Page 270-271।
20. भारतीय स्थापत्य, 238।
21. वही, 239।
22. द हिन्दू टेम्पल्स, भारतीय स्थापत्य, 239।
23. समरांगणसूत्रधार, अ. 49 व 52
24. वही, अ. 19
25. द हिन्दू टेम्पल्स, पृ. 159।
26. समरांगणसूत्रधार, अ. 61
27. भारतीय स्थापत्य, 248।
28. समरांगणसूत्रधार, अ. 49।
29. वही, अ. 56-60 व 63।
30. भारतीय स्थापत्य, 252।
31. वही, 258।
32. कामिकागम, 49, 1-2।
33. भारतीय स्थापत्य, 352।
34. समरांगणसूत्रधार, अ. 49, 55-60, 62, 63, 64, 65।

डॉ. रीतेश व्यास
सीनियर फैलो
संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार
drrkvyas1977@gmail.com
9828777455

❑❑❑

पुष्टिमार्गी परम्परा में वसन्तोत्सव सेवा : वसन्त के दस दिन

• शिव कुमार व्यास

शीत ऋतु के अन्तिम चरण हेमन्त ऋतु की समाप्ति पर वसंत का आगमन होता है। वसन्त ऋतु को ऋतुओं का राजा माना जाता है। भारतीय संवत्सर के चैत्र एवं बैशाख दो मास वसंत ऋतु के माने गए हैं। वसंत का अर्थ होता है 'बहार का मौसम'। मूर्त या मानवीकृत वसंत को कामदेव का साथी माना जाता है। वसंतोत्सव का आनंदमंगल फाल्गुन की पूर्णिमा को होली उत्सव के अवसर पर मनाया जाता है।[1]

माघ शुक्ल पंचमी को वसन्त पंचमी, मदन पंचमी, श्री पंचमी आदि नामों से अभिहीत किया जाता है। भारतीय पंचागानुसार यदि किसी वर्ष दो पंचमी तिथि का प्रावधान हो, तो पहली पंचमी तिथि को ही उत्सव मनाया जाता है। कदाचित् तिथि क्षय होने पर (विद्धा पंचमी को) ही उत्सव मनाया जाता है।[2] वसंत पंचमी के दिन कामदेव का प्रादुर्भाव माना जाता है। पुष्टिमार्गी भक्ति परम्परा में वर्षभर की षड् ऋतुओं को, प्रतिदिन की पृथक-पृथक पद्धतियों से, श्री ठाकुर जी के सुखार्थ विशिष्ट प्रकार से मनाने की परम्परा रही है। अतः वसंत पंचमी से सभी पुष्टिमार्गी मन्दिरों में प्रभुजी, चालीस दिन डोलोत्सव[3] तक क्रमशः वसंत, धमार, फाग एवं होली खेलते हैं।

वसन्तोत्सव के चालीस दिवसीय उत्सव का प्रारम्भ मंदिर के कीर्तनकारों द्वारा, मन्दिरों में, कृष्णदास द्वारा रचित पदों के गायन किया जाता है। इस कीर्तन में प्रकृति में दृश्यमान सुन्दरता का बखान किया गया है।

नवल वसंत नवल वृंदावन खेलत नवल गोवर्धनधारी।
हलधर नवल ब्रजबालक नवल नवल बनी गोकुल नारी।।1।।

नवल जमुनातट नवल विमलजल नौतन मंद सुगंध समीर।
नवल कुसुम नव पल्लव साखा कुंजत नवल मधुप पिक कीर।।2।।

ISSN 2278-4632 जनवरी-जून 2023

नव मृगमद नव अरगजा वंदन नौतन अगर सुनवल अबीर।
नवचंदन नव हरद कुंकुमा छिरकत नवल परस्पर नीर।।3।।
नवलधेनु महुवरि बाजे, अनुपम भूषण नौतन चीर।
नवलरूप नव कृष्णदास प्रभुको, नौतन जस गावत मुनि धीर।।4।।

वसन्तोत्सव का प्रारम्भ :

पुष्टि प्रभु की सेवा का क्रम स्वयं प्रभुजी की आज्ञा से माना जाता है। श्रीप्रभु को कल्याण भट्ट नामक वैष्णव ने सर्वप्रथम वसंत का श्रृंगार धराया (रखा) गया। कालान्तर में गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने सेवा प्रणालिका में नियमित रूप से वसंत श्रृंगार की व्यवस्था की।[4] माघ बदी एकम् से चैत्र शुक्ला पूर्णिमा प्रभृति तीन मास की सेवा चन्द्रावलीजी[5] के भाव से की जाती है। माघ कृष्णा प्रतिपदा से माघ शुक्ल चतुर्थी प्रभृति बीस दिन सेवा का क्रम शीतकालीन सेवा के अनुसार होता है।[6]

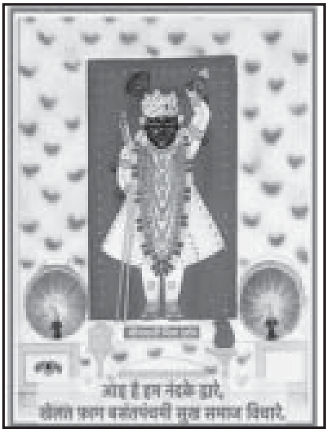

वसन्त पंचमी के दिवस से सभी पुष्टिमार्गीय मंदिरों की सेवा प्रणाली में शीत ऋतु के अवसान की ओर होने के कारण कई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन होते है। वसन्तोत्सव के दौरान श्री ठाकुर जी को धराये (रखे) जाने वाले शीतकालीन साज को बड़ा[7] कर इनकी जगह पर सम्पूर्ण लाल किनारी के सफेद साज धराये (रखे) जाते है, साथ ही इस दिन से डोलोत्सव तक खंडपाट, चौकी, पडघा (रखने की चौकी) आदि सभी साज चांदी के ही आते है। वसन्तोत्सव के चालीस दिन पर्यन्त अर्थात् डोलोत्सव के प्रारम्भ तक जरी के वस्त्र धराये (रखे) जाने वर्जित होते है।

शीतकाल में प्रतिदिन राजभोग सरे (हटाने) पश्चात् उत्थापन तक प्रभु सुखार्थ चरण-चौकी से शैया मन्दिर में शैयाजी तक बिछाई जाने वाली लाल रंग की रुईवाली पतली गद्दी (तेह) को बिछाना बंद कर दिया जाता है।

मदन उत्सव के प्रारम्भ से श्रीजी को शीतकाल का विशेष खाद्य सौभाग्य-सूंठ[8] शयन भोग में धराया (रखा) जाता है तथा गेंद, छड़ी एवं दोहरी गुँजामाला

(रंग बिरंगे घने पुष्पों से निर्मित घुटनों से नीचे तक की बड़ी माला) भी धरायी जाती है।

वसन्तोत्सव की भाव-भावना :

यद्यपि श्रीजी की सेवा भावना में माघ, फाल्गुन एवं चैत्र मास को अष्ट सखियों में प्रथम श्री चन्द्रावलीजी के सेवा मास माने जाते हैं। जिनमें माघ मास में प्रणयलीला की महारास, फाल्गुन में होली की धूमधाम के फागण नृत्य एवं चैत्र मास में महारास की समाप्ति मानते हुए शृंगार एवं लीला के पद गाये जाते है।[9] बसन्तोत्सव के चालीस दिनों की सेवा में, वसन्त क्रीड़ा में दस दिवस सात्विक भक्तों एवं श्री यमुना जी[10] के भाव से होती है। अन्य तीस दिनों की लीला भी राजस, तामस एवं निर्गुण लीला के होते है। जिनमें वसन्त के दस दिनों के बाद धमार, फाग एवं होली के दस-दस दिनों की गणना होती है।[11]

पुष्टिमार्गी भक्ति भावना में वसंत का खेल के लिए, गुलाल; स्वामीनी जी के हास्य भाव तथा ललीता जी के सखी भाव से, अबीर को स्वामीनी जी के मुख चन्द्र की छटा एवं श्री चन्द्रावलीजी के भाव से, चोवा को यमुनाजी के भाव से और केशरयुक्त चन्दन कंचनवर्णी राधिका जी (श्री स्वामिनीजी[12]) के भाव से उपयोग में लिया जाता है।[13]

इस प्रकार श्रीजी आगामी चालीस दिनों तक इन चार वस्तुओं से बसन्त खेलते है। अनामिका उंगली से टिपकियां (छोटी-छोटी बिन्दियाँ) कर सूक्ष्म खेल होता है।

यद्यपि श्रीजी की सेवा भावना में माघ, फाल्गुन एवं चैत्र मास को अष्ट सखियों में प्रथम श्री चन्द्रावली जी के सेवा मास माने जाते हैं। परन्तु वसन्तोत्सव के प्रथम दस दिवस की सेवा श्री यमुना जी के भाव से होती है। बसंत खेल के ये प्रथम दस दिन सात्विक भक्तों के खेल के दिन माने जाते है।

श्रीजी को वसंत का खेल गुलाल, अबीर, चोवा और चन्दन इन चार वस्तुओं से खेलाया जाता है। पुष्टिमार्गी भक्ति भावना में गुलाल को ललीता जी के भाव से, अबीर को श्री चन्द्रावलीजी के भाव से, चोवा को यमुनाजी के भाव से और केशरयुक्त चन्दन कंचनवर्णी राधिका जी (श्री स्वामिनीजी) के भाव से उपयोग में लिया जाता है।

इस प्रकार श्रीजी आगामी दस दिनों तक इन चार वस्तुओं से वसन्त खेलते है। अनामिका उंगली से टिपकियां कर के सूक्ष्म खेल होता है।

सप्तगृह सेवा प्रणालिका में विशिष्टता :

प्रधान गृह में श्रीजी राजभोग के पश्चात् ही वसन्त खेलाया जाता है।[14] परन्तु अन्य सप्त गृहों की सेवा प्रणालिका में कुछ अन्तर है। वसन्त पंचमी के उत्सव में सभी सप्तगृह सेवा प्रणालिका में श्रीमस्तक पर पाग का शृंगार एवं उत्सव भोग आवश्यक रूप से धराया (रखा) जाता है। श्रीमथुरेश जी, श्रीगोकुलनाथ जी, श्री गोकुलचन्द्रमा जी एवं श्रीमदन मोहन जी में कुल्हे (सिर का मुकुट जिसके आगे पीछे के दो सिरे ऊपर उठे होते है।) का शृंगार भी धराया (रखा) जाता है। सप्तगृहों के मन्दिरों में राजभोग के पश्चात् वसन्त खेल होता है तब उत्सव भोग आता है।

विट्ठलनाथ जी एवं श्री गोकुलनाथ जी के गृह में माघ शुक्ल षष्ठी से होरी डांडा अर्थात् माघ शुक्ला पूर्णिमा तक शृंगार में एवं श्री मदनमोहन जी में सदैव ही शृंगार के बाद वसन्त का खेल होता है। विट्ठलनाथ जी में होरी डांडा के बाद वसन्त का खेल राजभोग के बाद होता है।[15]

श्रीजी का सेवाक्रम :

श्रीजी मंदिर में वसन्त के दस दिवसों में तीन उत्सव सेवा; वसन्तोत्सव, सेहरा का उत्सव, बड़ा मनोरथ एवं होरी-डांडा रोपणी उत्सव सेवा होती है। इस अवसर पर परम्परानुसार सभी मुख्य द्वारों की देहरी (देहलीज) का पूजन कर हल्दी से लीप कर आशापाल की सूत की डोरी से वंदनमाल बाँधी जाती है।

पंचमी को नित्योत्सव की मंगला, राजभोग, संध्या एवं शयन सेवा में, बड़ा मनोरथ; माघ शुक्ल अष्टमी, को दो समय की आरती थाली में आती है। झारीजी में यमुनाजल भरा जाता है। गेंद, चौगान व दिलवा सभी चांदी के आते है।

उत्सव प्रारम्भ में मंगला दर्शन पश्चात् श्रीप्रभु को चन्दन, आंवला, एवं फुलेल (सुगन्धित तेल) से अभ्यंग[16] (विशिष्ट स्नान) कराया जाता है तथा सेवाप्रणालीका के अनुसार नियत वस्त्र एवं शृंगार धराये (रखे) जाते है।

माध शुक्ल सप्तमी को द्वितीय गृह प्रभु श्री विट्ठलनाथ जी के घर से गुड़कल (आटा एवं गुड़ से मिल कर बना खाद्यान्न) और घी की कटोरी भी सिद्ध (बन) हो कर आती है। जिसे प्रभुजी को मंगलभोग में आरोगने (भोग लगने) के पश्चात् वैष्णव भक्तों को सखड़ी भोग के रूप में वितरित कर दिया जाता है। वसंतोत्सव के प्रथम दस दिन की कीर्तन (राग) सेवा, शृंगार के भाव में, वसंत राग में, ऋतु के पदानुसार होती है।

वस्त्र एवं शृंगार :

प्रथम तिलकायत[17] विट्ठलेशराय के भ्राता एवं गोवर्धन लाल के पुत्र गो. दामोदर लाल महाराज ने सन् 1913-14 ई. में वर्तमान वसंत पंचमी के शृंगार में घेरदार वागा, श्वेत अड़तु की सूथन, सफेद ठाड़े वस्त्र, श्रीमस्तक पर श्याम खिड़की की श्वेत पाग के ऊपर सादी लाल मोर चंद्रिका तथा श्वेत खण्ड पाट के साथ प्रतिदिन छोगा व श्रीहस्त में पुष्पों की छड़ी का विधान किया गया। वसन्त का खेल श्वेत साटन वस्त्र पर चोवा, चन्दन, गुलाल एवं अबीर पर टिपकियों (छोटी-छोटी बिन्दियों) से खेलाया जाता है।[18]

- माघ शुक्ला षष्ठी के दिन श्रीजी को सुन्दर गुलाबी झाई के (आभायुक्त) रूपहली जरी की तुईलैस की किनारी से सुसज्जित श्वेत सूथन, चोली, चाकदार वागा धराए जाते हैं।
- वसंत पंचमी के दो दिन बाद सप्तमी के दिन श्रीजी को नियम से श्वेत लट्ठा के घेरदार वागा के ऊपर हल्की गुलाबी झाँई की फतवी[19] धरायी जाती है। फतवी द्वितीय गृह प्रभु श्री विट्ठलनाथ जी के घर से बन कर (सिद्ध (बना) हो कर) आती है। जबकि घेरदार वागा श्रीजी में ही सिद्ध (बना) होता है। फतवी संग श्रीजी के लिए मंगल भोग भी आता है।
- नवमी का कटि (कमर) पर एक विशेषत: चपड़ास[20] का शृंगार धराया (रखा) जाता है जो आरती दर्शन पश्चात् भी नहीं हटाया जाता।
- माघ शुक्ल त्रयोदशी को श्रीजी में सेहरा का शृंगार होता है। सेहरा के शृंगार पर श्रीजी को लाल लट्ठा की सूथन, चोली, चाकदार वागा का शृंगार धराया (रखा) जाएगा। श्रीमस्तक पर लाल रंग के दुमाला के ऊपर मीना का सेहरा धराया (रखा) जाता है। श्रीमस्तक पर लाल रंग के दुमाला के ऊपर मीना का सेहरा धराया (रखा) जाता है। इस दिन कपोल पर कमल पत्र नहीं बनाए जाते अपितु रोपणी से बनाए (मांडे) जाते है। राजभोग में दुमाला को सब से खिलाया जाता है। त्रवल (कंठी या गलपटिया) की जगह स्वर्ण की चंपाकली (पंचलड़ी) धरायी जाती है। श्रीकंठ में कस्तुरी, कली एवं कमल माला धरायी जाती है।

राजभोग एवं बड़ा मनोरथ :

वसंतोत्सव उत्सव में धरायी जाने वाली उत्सव भोग की चारों सामग्री[21] में से वासंती राजभोग संख्या में दो-दो नग सेवा में धराये (रखे) जाते हैं। राजभोग की अनसखड़ी में दाख[22] का रायता एवं सखड़ी में मीठी सेव,

केसरयुक्त पेठा व पाँच-भात[23] आरोगाये जाते है। छप्पनभोग दर्शन में प्रभु के सम्मुख पच्चीस बीड़ा (पान) सिकोरी (स्वर्ण निर्मित जालीदार पात्र) में रखे जाते हैं।

- श्रीनाथ जी में मार्गशीर्ष अष्टमी के दिन मनोरथी वैष्णव द्वारा आयोजित छप्पन भोग का मनोरथ करवाया जा सकता है। जिसे बड़ा मनोरथ[24] कहा जाता है। यद्यपि श्रीजी के घर का छप्पन भोग नियम से वर्ष में केवल एक बार मार्गशीर्ष शुक्ल पूर्णिमा को ही होता हैं। छप्पनभोग की भोग सामग्री मन्दिर के मणिकोठा, डोल-तिबारी, रतनचौक आदि में रखे जाते है। बड़ा मनोरथ के कारण ही श्रीजी में मंगला के पश्चात सीधे राजभोग अथवा छप्पनभोग भोग हटाने के पश्चात ही वैष्णवों हेतु दर्शन खुलते है। राजभोग के पश्चात वसन्ताधिवासन होता है।[25]

श्रीजी को गोपीवल्लभ (ग्वाल) भोग में मेवाबाटी व दूध घर में सिद्ध (बनी) हुई केसर युक्त बासोंदी[26] (रबड़ी) की हांडी का भोग अरोगाया (लगाया) जाता है।

वसंतोत्सव के राग एवं कीर्तनकार :

वसंतोत्सव को सभी उत्सवों में नवीन एवं अनूठे रस से पूर्ण माना जाता है। चैत्र एवं बैशाख मास को मधु-माधव[27] का मास माना जाता है। अर्थात् ऋतु एवं कामदेव को आपस में परम मित्र माना जाता है।[28] अतः अष्टसखा कवियों में कुंभनदास द्वारा रचित राग वसंत की अष्टपदी, राग आसावरी, राग सारंग के साथ सूरदास, कृष्णदास के पदों का गायन किया जाता है।

ब्रज भक्तों के संग वसन्तोत्सव :

वसन्त पंचमी से चालीस दिनों तक रसमय वसंत, धमार, फाग एवं होली उत्सव की शुरुआत के तहत प्रथम दस दिवस का वसंत खेल माघ शुक्ल पंचमी (वसंत पंचमी) को प्रारम्भ हो माघ शुक्ल पूर्णिमा तक चलता है। श्रीप्रभु गुलाल, अबीर, चोवा, चन्दन एवं केसर से ब्रजभक्तों के साथ नन्द भवन में ही वसंत का खेल होता है। वसंत के कीर्तन में भक्त एवं कीर्तनकार शान्त भाव से श्रीजी एवं स्वामीनीजी (राधाजी) को सुक्ष्म प्रकृति दर्शन करवाते है। सेवा का यह क्रम माघ शुक्ल पूर्णिमा तक चलता है।[29] इसी दिन गाँव, नगर में भद्रा[30], ग्रहण एवं ग्रस्तोदय ग्रह रहित काल में कन्दर्प (डंडा) रोपण किया जाता है।[31] डांडा-रोपण के उत्सव को श्रीयमुना जी की सेवा के दस दिनों की पूर्णता का उत्सव भी माना जाता है।

सार संक्षेप :

पुष्टीमार्गी परम्परा के मन्दिरों में शीत ऋतु के अन्तिम चरण में नियम से वसन्त-उत्सव मनाया जाता है। पुष्टि परम्परा के वैशिष्ट्यानुसार यह उत्सव भी राग-भोग-शृंगार से ही ब्रज भक्तों द्वारा भाव भावना से मनाया जाता है। उत्सव के दौरान श्री प्रभु जी को विशिष्ट वस्त्र-शृंगार, उत्तम भोग एवं अष्टछाप कीर्तनकारों के निर्धारित कीर्तनों का गायन किया जाता है।

सन्दर्भ

1. आप्टे, वामन शिवराम, संस्कृत-हिन्दी शब्दकोश, कमल प्रकाशन, 2005, पृ. 932
2. श्री रघुनाथजी शिवजी, मुखियाजी, खेमराज श्री कृष्णदास बंबई, 1905, पृ. 213
3. फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा या चैत्र कृष्णा प्रतिपदा में से जिस दिन उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र हो उस दिन से सप्तगृह सेवा प्रणालिका में डोलोत्सव मनाया जाता है। श्री रघुनाथ जी शिवजी, वल्लभ पुष्टि प्रकाश, पृ. 152,153
4. शर्मा, बलदेव बागरोदी श्रीनाथ-सेवा-रसोदधि, श्रीमती रुक्मिणी बेन काराणी, 1981, पृ. 493
5. प्रभु के नित्य धाम में अभिन्न रूप से सेवारत रहने वाली नित्य सिद्धा गोपी के रूप में प्रसिद्ध चन्द्रावली का प्राकट्य यमुना जी से माना जाता है तथा सांसारिक जन्म के सम्बन्ध में कृष्णदास द्वारा रचित पदानुसार भाद्रपद शुक्ला पंचमी के दिन मीरीमोठा गाँव में चन्द्रभान गोप के घर माता सुखमा के गर्भ से जन्म माना जाता है तथा इनका श्रीविग्रह सदैव 14 वर्ष 4 मास एवं बीस दिन का माना गया है। कृष्णदास द्वारा रचित अन्य पद-चन्द्रभान के नव रिधि आईं, सुखमा कूख अवतरी कन्या घर घर बजत बधाई। नाम धर्यो चन्द्रावली सुखनिधि कोटिक चन्द्र लजाने। भादों सुद पाँचे शुभ वासर अरुन हृदय रस माने। शर्मा, बलदेव बागरोदी वही, पृ.490 से 492
6. शर्मा, बलदेव बागरोदी वही, पृ.492
7. पुष्टिमार्गी भक्ति परम्परा में सेवा में प्रयुक्त वस्त्र, शृंगार आदि में परिवर्तन होना।
8. यह एक गुजराती व्यंजन है जिसका सेवन शीत ऋतु के अवसान में किया जाता है। इसके निर्माण में सूँठ एक पाव, वसंतलोचन एक तोला, पीपलामूळ एक तोला, त्रिकुटा (सूंठ, मिरच एवं पीपल) तीन तोला, मूसली दो तोला, लोंग एक तोला, विदारी कन्द एक तोला आदि को मिश्रित कर बनाया जाता है। व्यंजन पाक प्रदीप, पृ. 58, 59

9. शर्मा, बलदेव बागरोदी वही, पृ. 492

10. वर्षोत्सव में केवल वसंत पंचमी की सेवा ही चन्द्रावली जी के साथ यमुना जी के सम्मिलित अधिकार की नवधा भक्ति के है। शर्मा, बलदेव बागरोदी वही, पृ. 502

11. शर्मा, बलदेव बागरोदी वही, पृ. 507

12. चन्द्रावलीजी, विशाखाजी, आदि सखियों की प्रधान राधाजी हैं इसी कारण उन्हें स्वामीनीजी के नाम से सम्बोधित किया जाता है। पुष्टिमार्गीय सार संग्रह, पृ. 32

13. शर्मा, बलदेव बागरोदी वही, पृ. 501

14. श्री रघुनाथ जी शिवजी मुखियाजी, वही, पृ. 143

15. श्री रघुनाथ जी शिवजी, वल्लभ पुष्टि प्रकाश, पृ. 08,09

16. श्रीजी ठाकुर जी को विशिष्ट सुगन्धित तेल से करवाया गया स्नान

17. श्रीनाथजी के प्रधान सेवक आचार्य को तिलकायत कहा जाता है। महाप्रभु वल्लभाचार्य के पुत्र गो. विठ्ठलनाथ के प्रपौत्र, गो. गिरधर लाल के पौत्र एवं गो. गोवर्धन लाल के पुत्र विठ्ठलेशराय द्वारा श्रीनाथ जी को अपना प्रिय शृंगार 'टिपारा' धराये (रखे) जाने के कारण 'टिपारा वाले तिलकायत' के रूप में प्रसिद्ध हो गये। श्रीजी की वर्षोत्सव सेवा में तिलकायत को साठ दिन सेवा का अधिकार प्राप्त होता है। शर्मा, बलदेव बागरोदी वही, पृ. XX

18. शर्मा, बलदेव बागरोदी वही, पृ. 493

19. फतवी आधी बांहों वाली एक बंडी या जैकेट जैसी पोशाक होती है। जो कि शीतकाल के दौरान चोली एवं घेरदार वागा के ऊपर अलग रंग की होती है। शीतकाल में फतवी के चार शृंगार धराये (रखे) जाते है।

20. स्वर्ण निर्मित घुंडी-नाका का शृंगार

21. श्रीजी में प्रत्येक उत्सव के लिए पृथक्-पृथक् उत्सव भोग का प्रावधान है। वसन्त पंचमी के उत्सव में उत्सव भोग हेतु कसार का गुंजा, मठड़ी (नरम ठौर), सेव के लकू एवं शक्कर पारा नियत होता है। श्री रघुनाथ जी शिवजी मुखियाजी, वही, पृ. 142

22. किशमिश या छुआरा

23. चावलों को मेवा, दही, राई, श्रीखंड, व वड़ी के साथ श्री ठाकुर के राजभोग में आरोगण के रूप में धराये (रखे) जाते है।

24. वैष्णवों के अनुरोध पर श्री तिलकायत जी की आज्ञानुसार बड़ा मनोरथ आयोजित होते है। यदि किन्हीं वैष्णव द्वारा श्रीजी में छप्पन भोग का मनोरथ आयोजित करना हो तो यह मनोरथी घर के अतिरिक्त विभिन्न खाली दिनों में जिन्हें सामान्यतया बड़ा

मनोरथ कहा जाता है। यह छप्पनभोग का बड़ा मनोरथ सभी वैष्णव मंदिरों एवं हवेलियों में सुविधानुसार आयोजित होत है।

25. वसन्ताधिवासन में पंचसर अर्थात पाँच बाणों के मुख-शोषण, दीपन सम्मोहन, तापन, उन्माद; श्रीमद् भागवत प्रमाण-संदधेस्त्रं स्वधनुषि कामः पंचमुखं तदा।। घट में जल भर कर उसमें पंचबाण के प्रतीक पाँच फल के साथ आम्र, मौर, खजूर की डाली एवं हरी जौ (यव) तथा बेर एवं पुष्पों को मिलाकर लाल किनारी के पट से ढ़क कर स्थापना की जाती है तथा उसका पूजन किया जाता है। रघुनाथ जी शिवजी मुखिया जी, वही, पृ. 288

26. दुग्ध एवं चावल से निर्मित मिष्टान्न रबड़ी

27. मधुमाधवौ वसंतः सुश्रु सर्वप्रिये चारुतरं वसन्ते-ॠतु, आप्टे, वामन शिवराम, वही, पृ. 932

28. देखत वन व्रजनाथ आज सखी उपजत है अनुराग। मानो मदन वसन्त मिले दोऊ खेलत डोलत फाग।। शर्मा, बलदेव बागरोदी श्रीनाथ-सेवा-रसोदधि, श्रीमती रुक्मिणी बेन काराणी, 1981, पृ. 501

29. शर्मा, बलदेव बागरोदी वही, पृ. 502

30. भारतीय पंचांगानुसार प्रति मास दशमी तिथि के अवसान एवं द्वादशी तिथि के आरम्भ तक सम्पूर्ण एकादशी को भद्रा रहती है। सम्पूर्ण तिथि को दो भागों में विभाजित कर प्रथम विभाग को स्वच्छ तिथि मानते हुए कंदर्प या होरी डांडा उत्सव मनाया जाता है। श्री रघुनाथजी शिवजी, वही, पृ.212

31. डांडोरोपन चले नन्द अरु गिरवरधारी। वाजे बहुति बजावत नान परवा बजे थारी। रघुनाथ जी शिवजी मुखियाजी, वही, पृ. 213 शर्मा, बलदेव बागरोदी वही, पृ. 509, 510

शिव कुमार व्यास

शोधार्थी, इतिहास विभाग

जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय

जोधपुर

❑❑❑

 ISSN 2278-4632

अंग्रेजी सरकार की मारवाड़ रियासत के साथ नमक संधियां एवं उनका प्रभाव

• डॉ. सुखाराम

राजपूताना में नमक उत्पादन के अनेक केन्द्र थे। यहाँ कीरियासतों में स्थानीय स्तर पर नमक का उत्पादन होता था। यह नमक अधिकांशतः कर मुक्त होने तथा उत्पादन लागत पर बिकने के कारण अंग्रेजी कम्पनी के नमक से बहुत सस्ता था। अंग्रेजी सरकार स्थानीय नमक को महंगा करके इंग्लैण्ड से आयातित नमक को सस्ता करना चाहती थी। 1818 ई. की संधियों के बाद अंग्रेजी सरकार को अपना नमक लगान सुरक्षित रखने का अवसर भी मिल गया। बंगाल के नमक की राजस्थान के नमक से प्रतिस्पर्धा रोकने के लिए कम्पनी ने एक नमक बोर्ड का गठन किया और 1843 ई. से एक सीमा रेखा (नमक रेखा) बनानी शुरू की जो अटक से मद्रास की सीमा तक 4000 किमी. लम्बी थी।[1] अंग्रेजी सरकार की साम्राज्यवादी नजरें यहाँ के नमक पर थीं। अतः आम उपभोग की वस्तु नमक को अपनी आय का साधन बनाना चाहती थी। इसी समय भरतपुर के तत्कालीन अंग्रेजी एजेन्ट वाल्टर ने नमक उत्पादन को आय का साधन बनाने तथा नमक उत्पादन केन्द्रों को रेल लाइन से जोड़ने का परामर्श अंग्रेजी सरकार को दिया।[2]

1856 ई. में तत्कालीन चुंगी कमीश्नर बेनिस्टार्ट ने कम्पनी सरकार को सुझाव दिया कि यदि राजस्थान के सभी राज्यों के साथ समझौता करके उनके नमक उत्पादन क्षेत्रों का नियंत्रण अपने हाथों में लेकर नमक पर एक नियमित चुंगी पद्धति लागू की जाए तो काफी लाभप्रद रहेगा।[3] इसी सुझाव पर अमल करते हुए अंग्रेजी सरकार ने नमक पर अधिकार करने के लिए सबसे पहले जयपुर व जोधपुर राज्यों के साथ नमक संधियाँ की।

अंग्रेजी सरकार ने नमक के स्रोतों पर अधिकार करने की योजना बनाई। सांभर झील पर जयपुर व जोधपुर दोनों का संयुक्त अधिकार था। ब्रिटिश

सरकार ने भारत के नमक स्रोतों पर अधिकार करने की नीति के अंतर्गत अंग्रेजों ने 1869-70 ई. में दोनों रियासतों पर दबाव डालकर अलग-अलग समझौते कर लिए।[4] जयपुर महाराजा रामसिंह अंग्रेजों का पक्षधर था जो अंग्रेजों को मना नहीं कर सकता था और जयपुर का प्रधानमंत्री फैज अली भी अंग्रेज भक्त था। जोधपुर महाराजा तख्तसिंह की स्थिति अपने राज्य के आंतरिक कारणों से अत्यन्त दुर्बल थी। महाराजा ने 7 अगस्त, 1869 ई. में शिमला में संधि को इसलिए स्वीकार कर लिया ताकि अंग्रेजी सरकार जोधपुर राज्य में कुशासन पर सवाल न खड़े करे। सांभर की नमक संधि 27 जनवरी, 1870 ई. तथा नावां व गुढ़ा की नमक संधि 18 अप्रेल, 1870 ई. में की गई थीं।

सांभर, नावां एवं गुढ़ा की नमक संधियां

1. जोधपुर द्वारा अंग्रेजों के साथ संधि करने के बाद सांभर झील से नमक निकालने तथा बेचने का अधिकार अंग्रेजी सरकार को दे दिए गए।
2. ब्रिटिश सरकार ने सांभर के आधे भाग को 1.25 लाख रुपये तथा 7000 मन नमक राजघराने के निजी उपयोग के लिए देने के बदले जोधपुर से पट्टे पर ले लिया।
3. सांभर की संधि के तीन महीने बाद 18 अप्रेल, 1870 ई. को एक अन्य संधि द्वारा नावां व गुढ़ा के नमक स्रोतों को भी राज्य द्वारा अंग्रेजों को पट्टे पर दे दिए गए।
4. इन स्थानों पर प्रति वर्ष 6 से 9 लाख मन नमक का उत्पादन होता था और इसके बदले जोधपुर राज्य को अंग्रेजों की ओर से 3 लाख रुपये वार्षिक देना स्वीकार किया गया।
5. राज्य की ओर से अंग्रेजों को जो पट्टे दिये गए वह स्थाई थे, उन्हें वापस लेने के अधिकार राज्य के पास नहीं थे। यदि अंग्रेज चाहे तो दो वर्ष का नोटिस देकर ये पट्टे वापस कर सकते थे।
6. इस संधि के बाद अंग्रेजों को सांभर झील के आस-पास रहने वाले लोगों के घरों की तलाशी लेने व अनधिकृत रूप से नमक बनाने पर उन्हें बंदी बनाने के अधिकार भी प्राप्त हो गए।[5]
7. सांभर में एक 'साल्ट न्यायालय' की स्थापना की गई तथा अपराधियों को दण्डित करने का अधिकार भी अंग्रेजों को मिल गया।
8. संधियों के बाद नमक के भाव निर्धारित करने का अधिकार ब्रिटिश सरकार के पास चला गया।

 ISSN 2278-4632 जनवरी-जून 2023

जोधपुर राज्य ने इन नमक संधियों द्वारा अपने असीमित नमक भण्डारों को मामूली कीमत में ही बेच दिया। ये नमक संधियाँ 1 मई, 1871 ई. को प्रभावी हुई। यह नमक संधियाँ अंग्रेजी नमक एकाधिकार की दिशा में एक बड़ा कदम थी। सांभर से नमक को जोधपुर राज्य व देश के अन्य भागों तक पहुँचाने का कार्य बंजारों द्वारा किया जाता था। बंजारे व्यापारी, मालवाहक व वितरक का कार्य एक साथ करते थे। भरतपुर के अंग्रेजी एजेन्ट वाल्टर ने ब्रिटिश सरकार को नमक को आय का प्रमुख साधन बनाने के लिए सरकार को नमक उत्पादक क्षेत्रों को रेल लाइन से जोड़ने का सुझाव दिया। इसी के तहत राजपूताना-मालवा रेलवे के अधीन दिल्ली-अहमदाबाद रेलवे लाइन का निर्माण कार्य शुरू किया गया। सन् 1885 में सांभर को भी रेलवे लाइन से जोड़ दिया।[6] सांभर, नावां व गूढ़ा के नमक पर नियंत्रण के बाद अंग्रेजों की महत्त्वाकांक्षा और बढ़ गई। 1870 ई. की संधियों के बाद भी जोधपुर राज्य के पास डीडवाना, पचपदरा, फलोदी व लूनी क्षेत्र का प्रचुर नमक उपलब्ध था।

डीडवाना, फलोदी, पचपदरा व लूनी क्षेत्र का नमक उत्पादन क्षेत्रों का नियंत्रण-1879 ई.

अंग्रेज राजस्थान के सम्पूर्ण नमक पर अपना एकाधिकार करना चाहते थे इसी कारण ए. ओ. ह्यूम को अन्य कार्यों से मुक्त कर इन राज्यों के साथ केवल नमक-संधियाँ करने का कार्य सौंपा गया। जोधपुर महाराजा जसवंतसिंह द्वितीय ने 18 जनवरी, 1879 ई. को अंग्रेजों के साथ किए एक समझौते द्वारा डीडवाना, फलोदी, पचपदरा व लूनी क्षेत्र का नमक उत्पादन क्षेत्रों का नियंत्रण अंग्रेजों को दे दिया।[7] फलोदी से 1.5 लाख मन तथा डीडवाना में नमक की झील से 4 लाख मन नमक का उत्पादन होता था। पचपदरा का नमक अंग्रेजी सरकार को 1.7 लाख रुपये वार्षिक के बदले पट्टे पर दे दिया था। इस प्रकार जोधपुर राज्य ने अपने नमक उत्पादन के स्रोतों को केवल 9,61,395 रुपये वार्षिक के बदले अंग्रेजों को सौंप दिया।

अंग्रेजों द्वारा जोधपुर राज्य के साथ किए गए इन समझौतों की कुछ शर्तें इस प्रकार से थीं—

1. इन नमक संधियों के बाद नमक का उत्पादन केवल भारत सरकार ही करेगी।[8]
2. भारत सरकार द्वारा नमक उत्पादन न करने एवं राज्य को इससे हानि होने की स्थिति में भी जोधपुर राज्य अपनी सीमा में नमक उत्पादन नहीं करेगा।[9]

3. भारत सरकार की इच्छा होने पर दो वर्ष का नोटिस देकर इन नमक संधियों से हट सकती थीं किंतु राज्य सरकार चाहकर भी इन संधियों से अलग नहीं हो सकती थीं।[10]

4. राज्य को अब उस नमक पर किसी भी प्रकार का कर, चुंगी कर, पारगमन शुल्क लगाने की अनुमति नहीं, जिस पर अंग्रेजी सरकार ने कर चुकाया गया हो।[11]

5. राज्य ऐसे नमक का आयात नहीं कर सकता जिस पर अंग्रेजी नमक कर न दिया गया हो।

6. यदि राज्य में किसी व्यापारी के पास नमक का भण्डार हो तो राज्य उसे अपने नियंत्रण में लेकर व्यापारी से नमक कर वसूलेगा या एक निश्चित दर से अंग्रेजों को बेच देगा।[12]

7. भारत सरकार द्वारा तैयार किए गए नमक लेखा को राज्य द्वारा केवल स्वीकृत करना होता था, उसमें किसी भी प्रकार के परिवर्तन करने या सुझाव देने का अधिकार राज्य सरकार को नहीं था।[13]

राज्य में अब नमक उत्पादन बंद कर दिया गया और इसके बदले राज्य व उन ठिकानेदारों को जिनके क्षेत्र में नमक उत्पादन के क्षेत्र थे, क्षतिपूर्ति के रूप में अत्यन्त कम राशि दी गई। यह राशि नमक से होने वाली आगामी आय, नमक उत्पादन को रोकने, नमक पर लगने वाले आयात-निर्यात व पारगमन शुल्कों के घाटे को पूरा करने के लिए दी गई थी। जोधपुर महाराजा के पारिवारिक उपयोग के लिए वार्षिक 10,000 मन नमक देना तय किया गया। राज्य की जनता के उपभोग के लिए कम कीमत पर 2,25,000 मन नमक 50 पैसे प्रति मन के हिसाब से देना तय किया गया ताकि इन समझौतों के कारण उत्पन्न जन असंतोष को कुछ सीमा तक कम किया जा सके।

अंग्रेजी सरकार ने सांभर, डीडवाना व पचपदरा के अलावा सभी केन्द्रों पर नमक का उत्पादन बंद कर दिया। सरकार ने प्रारम्भ में 1.5 रुपया तथा बाद में इसे बढ़ाकर 2.78 रुपये चुंगी कर लगा दिया। इससे राज्य का नमक जो कभी जनता को बहुत सस्ता मिलता था, अब तीन से चार गुना तक महँगा हो गया। इस प्रकार जोधपुर राज्य ने अपने नमक उत्पादन के स्रोतों को केवल 9,61,395 रुपये वार्षिक के बदले अंग्रेजों को सौंप दिया।

अंग्रेजी सरकार ने राजस्थान की विभिन्न रियासतों को 22 लाख रुपये वार्षिक से अधिक धन देकर 57 से 65 लाख मन नमक के स्रोतों पर अधिकार कर लिया जिससे लगभग 2 करोड़ रुपये वार्षिक नमक कर की आय होने लगी।

1878 से पूर्व में सांभर नमक कर व सामान्य नमक कर की तुलनाः-

क्रम संख्या	वर्ष	सांभर के नमक पर कर (रुपये में)	वर्ष	सामान्य नमक पर कर (रुपये में)
1.	1843-1846	1.30 प्रति मण	1837 अक्टूबर 1888	3.25 प्रति मण
2.	1846-1859	2.00 प्रति मण	अप्रेल 1849 से	2.50 प्रति मण
3.	1.1.1860-31.1.1861	2.50 प्रति मण	दिसम्बर 1859 से	3.00 प्रति मण
4.	31.1.1861-31.12.1877	3.00 प्रति मण	मार्च 1861 से	3.25 प्रति मण
5.	31.12.1877-1.1.1878	2.75 प्रति मण	अगस्त 1878 से	2.87 प्रति मण

जोधपुर राज्य द्वारा अंग्रेजों के साथ की गई नमक संधियों से न केवल राज्य प्रभावित हुआ बल्कि यहां की आम जनता, व्यापारी, मजदूर एवं बंजारे भी प्रभावित हुए बिना नहीं रहे—

1. राज्य के नमक समझौतों से नमक पर अंग्रेजों का एकाधिकार हो गया और नमक जैसी आम उपभोग की वस्तु जनता के लिए तीन से चार गुना तक महँगी हो गई।
2. नमक संधियों से राज्य की जनता का आर्थिक शोषण के साथ-साथ कुपोषण को भी बढ़ावा मिला।
3. नमक संधियों से नमक व्यापार से जुड़े हुए व्यापारियों का व्यवसाय छिन गया। कपड़े की छपाई व रंगाई तथा चमड़ा उद्योग पर भी विपरीत प्रभाव पड़ा तथा नमक उद्योग में लगे सैकड़ों मजदूर बेरोजगार हो गए।
4. भरतपुर के अंग्रेजी एजेन्ट वाल्टर ने ब्रिटिश सरकार को नमक उत्पादन को आय का प्रमुख साधन बनाने के सुझाव के बाद सरकार ने नमक उत्पादक क्षेत्रों को रेल लाइन से जोड़ने की योजना बनाई। इसी योजना के तहत राजपूताना-मालवा रेलवे के अधीन दिल्ली-अहमदाबाद रेलवे लाइन का निर्माण कार्य शुरू किया गया। रेलमार्ग की एक शाखा अजमेर

से फुलेरा व कुचामन रोड तक बनाई गई जिस पर सांभर झील स्थित थी। सन् 1874-75 ई. में सांभर तक इस लाइन का विस्तार कर दिया गया।

5. अंग्रेजों द्वारा नमक परिवहन के लिए रेलवे लाइनों के विकास से सांभर, नावां, गुढ़ा जैसे नमक केन्द्रों के रेल से जुड़ जाने से परम्परागत परिवहन के साधनों विशेषकर बंजारों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। अधिकांश बंजारों की आजीविका का मुख्य साधन नमक परिवहन ही था। सांभर से नमक को जोधपुर राज्य व देश के अन्य भागों तक पहुँचाने का कार्य बंजारों द्वारा किया जाता था। बंजारे नमक परिवहन व वितरण का कार्य करते थे। अब बंजारों का स्थान रेलवे ने ले लिया।
6. नमक उत्पादन में कोई कमी न आए इसलिए अंग्रेजों ने 1900 ई. में किशनगढ़ राज्य को सांभर झील में आने वाले पानी को रोकने के लिए रूपनगर वाले क्षेत्र में बांध बनाने या कुएं नहीं खोदने के लिए बाध्य किया। इस कारण यहां सिंचाई के साधनों पर बुरा प्रभाव पड़ा।

नमक संधियों के माध्यम से अंग्रेजी सरकार ने मारवाड़ रियासत के सभी नमक केन्द्रों तथा नमक उत्पादन पर अपना एकाधिकार स्थापित कर लिया। शासक अपनी आंतरिक प्रशासनिक दुर्बलताओं के कारण अंग्रेजों के साथ मोलभाव करने की स्थिति में नहीं होने के कारण बहुत ही कम कीमत पर राज्य का सारा नमक साम्राज्यवादी सत्ता को सौंप दिया। जिसका परिणाम राज्य की जनता को आर्थिक शोषण के रूप में चुकाना पड़ा।

संदर्भः

1. एफ. एशटनः डिप्टी कमीशनर, नॉर्थ इंडिया साल्ट रेवेन्यु, दी साल्ट इण्डस्ट्री ऑफ राजपूताना, द जर्नल ऑफ इंडियन आर्ट एंड इंडस्ट्री, पृ. 26
2. एम.एस. जैन, आधुनिक राजस्थान का इतिहास, पृ. 118-19
3. कालूराम शर्मा, उन्नीसवीं सदी के राजस्थान का सामाजिक एवं आर्थिक जीवन, पृ. 175
4. इन्सट्रु मेंट ऑफ एक्सेसन ऑफ कर्नल एच. एच. राजराजेश्वर महाराजाधिराज सर उम्मेदसिंहजी, सेड्यूल्स 1, 2, 3, 4, 5, 1893. एण्ड नोट्स ऑन साल्ट एण्ड फिनान्सियल स्टेटमेंट्स, थर्ड एग्रीमेंट ऑफ 1879, पृ. 26-27
5. एम. एस. जैन, आधुनिक राजस्थान का इतिहास, पृ. 119-20

6. इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया, भाग-21, पृ. 133
7. एचिसन, ट्रीटीज एंगेजमेंट्स एण्ड सनद्स, भाग-3, पृ. 189
8. एचिसन, ट्रीटीज एंगेजमेंट्स एण्ड सनद्स, भाग-3, नमक संधियां (1870) आर्टिकल-1, पृ. 184
9. एचिसन, उपर्युक्त, आर्टिकल-1, पृ. 184
10. एचिसन, उपर्युक्त, आर्टिकल-2, पृ. 184
11. एचिसन, उपर्युक्त, आर्टिकल-9, पृ. 186
12. एचिसन, उपर्युक्त, आर्टिकल-3, पृ. 185
13. एचिसन, उपर्युक्त,आर्टिकल-12, पृ. 187
14. जॉर्ज वाट, डिक्शनरी ऑफ ए इकॉनोमिक प्रोडक्ट्स ऑफ इण्डिया, खण्ड-4, पृ. 421.
15. एम.एस. जैन, उपर्युक्त, पृ. 124.
16. एम.एस. जैन, उपर्युक्त, पृ. 118.
17. एम.एस. जैन, राजस्थान थ्रू दी ऐजेज, भाग-3; पृ. 201, इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया, भाग-21, पृ. 133.
18. बसंत जोशी, उन्नीसवीं सदी का राजस्थान, जयपुर पब्लिशिंग हाउस, पृ. 53
19. रघुबीर सिंह, पूर्व आधुनिक राजस्थान, सर्वोदय साहित्य मंदिर, हैदराबाद, पृ. 296

डॉ. सुखाराम
सहायक आचार्य इतिहास
राजकीय डूँगर महाविद्यालय, बीकानेर, राजस्थान

❑❑❑

पण्डित काशीराज की कलम से—तृतीय पानीपत युद्ध के अनछुए प्रसंग

सदाशिवभाऊ की पत्नी पार्वती बाई तथा नाना फड़नवीस की दुर्दशा युद्ध के दौरान

अंतिमा कनेरिया • दिनेश महाजन

सारांश– *18वीं सदी के उत्तरार्ध उत्तर भारत में सत्ता के शून्यता को भरने के लिए मराठा सर्वशक्तिमान थे। मराठा के साथ अन्य शक्ति अफगान निरंतर रूप से शक्तिशाली होते जा रहे थे। इसी बीच जब मराठा सरदार ने पंजाब से अफगान सरदार को पलायन के लिए मजबूर कर दिया। तब मराठा और अफगानों के बीच एक विध्वंसकारी युद्ध हुआ जिसे पानीपत तृतीय युद्ध के नाम से जाना जाता है यह युद्ध 14 जनवरी 1761 को मराठा और अफगानों के बीच हुआ। मराठों के लिए विनाशकारी सिद्ध हुआ और मराठा अपनी शक्ति से पंगु होकर महाराष्ट्र तक ही सीमित रह गए। इस युद्ध का काशीनाथ पंडित ने की स्थिति का वर्णन किया है, जो काफी दुखदायक था। जिसमें सदाशिव भाव की पत्नी और नाना फडणवीस के परिवार की दर्दनाक स्थिति का वर्णन किया है। छत्रपति शिवाजी महाराज के समय मराठा शिविरों में महिलाओं और नृत्यकियो का प्रवेश पूर्ण रूप से प्रतिबंधित था। किंतु लंबे समय अंतराल बाद मराठा पेशवा एवं सामंतों ने इस स्थिति में परिवर्तन कर मराठा शिविरों में महिला और नृत्यकियो के प्रवेश की अनुमति दे दी। यही कारण रहा कि मराठा पूर्ण रूप से युद्ध नहीं कर पाते थे और सेना का कुछ भाग शिविरों की सुरक्षा में लगाया जाता था पानीपत के तृतीय युद्ध में महाराजाओं की हार हुई जिससे शिविर और महिलाओं की स्थिति दर्दनाक दिखाई देती है इसी स्थिति का वर्णन काशीनाथ पंडित ने अपने शब्दों से किया है।*

Key Words–पानीपथ का युद्ध, मराठा, सदाशिवभाऊ, पार्वतीबाई, नाना फड़नवीस, पं. काशीराज पेशवा।

प्रस्तावना—मुगल सम्राटों के सैनिक अभियानों के समय सामान्यतः उनका हरम उनके साथ रहता था, किंतु इस विषय में स्वयं शिवाजी एक कठोर अनुशासन प्रिय व्यक्ति थे। मराठा शिविर में महिलाओं की उपस्थिति के विषय में उनका अनुशासन बेहद कड़ा था। शिवाजी के सैन्य शिविरों में महिलाओं का प्रवेश प्रतिबंधित था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के चिकित्सक जॉन फ्रेयर ने लिखा है कि— ''शिवाजी के सैन्य शिविर में नृत्यांगनाओं, व्याभिचारी महिलाओं अथवा वेश्याओं का प्रवेश वर्जित था।[1] किंतु शाहू के सामन्त, पेशवाओं और पेशवाओं के सामन्तों के काल में उनके सैन्य शिविर सदैव महिलाओं से भरे रहते थे। पेशवा बाजीराव (प्रथम—1720-1740 ई.) अक्सर अत्यधिक कष्टसाध्य और श्रमसाध्य सैनिक अभियानों में व्यस्त रहते थे। ये श्रमसाध्य सैनिक अभियान उसे थकावट से क्लान्त कर देते थे। अतः वह थकावट से चूर होने पर अवकाश के क्षणों में अपनी प्रयसी मस्तानी के आगोश में डूब जाते।[2] पेशवा बाजीराव का पुत्र बालाजी बाजीराव उर्फ नाना साहेब (1740-1761 ई.) सम्भवतः अपने पिता की अपेक्षा एक बेहतर ब्राह्मण था और वह अपने ब्राह्मत्व का पूर्ण पालन करते थे।[3]

शिवाजी के पश्चात्वर्षीय मराठा शासकों में सादगी, कर्मठता और कठोर अनुशासन के गुण नष्ट हो गए थे, और सैनिक अभियानों के समय मराठा सेनाओं के साथ उनका हरम भी साथ जाने लगा था। इस विषय में ईस्ट इंडिया कंपनी के फ्रॉप्स, ब्राउटन तथा मूर जैसे लेखक हैं कि—''मराठा पेश्वा राघोबा, दौलतराव सिंधिया तथा भाऊ परसरामपटवर्धन के शिविरों में रखेलों, नृत्यांगनाओं, तरूणियों तथा संदिग्ध आचरण की महिलाओं की भरमार रहा करती थी।[4] पेशवा विश्वासराव की माता गोपीकाबाई पानीपत के तृतीय युद्ध में अपने पुत्र के साथ एक सहकर्मी तथा सहयोध्या का दायित्व निभाने के लिए गई थी और उसने अपने दायित्व का भी भली-भांती पालन किया था।[5] किंतु सदाशिव भाऊ की सेना के साथ एक बड़ी संख्या में मराठा स्त्रियां और उनके अनुचर भी रहते थे। सदाशिवभाऊ जैसे प्रमुख सेनापति की पत्नी पार्वतीबाई भी इस मराठा हरम में सम्मिलित थी, जिसकी युद्ध उपरांत बड़ी दुर्दशा हुई और उसकी जान और अस्मिता पर भारी संकट उत्पन्न हो गया था। पानीपत के तृतीय युद्ध में मराठा हरम में जो स्त्रियां थी पराजय के पश्चात् उनकी भयानक दुर्दशा हुई थी।[6]

काशीराज पंडित पानीपत के तृतीय युद्ध में संस्मरण लेखक बतौर सम्मिलित थे और वह शुजा के शिविर में निवासरत थे। काशीराज पंडित मराठी और फारसी भाषा का ज्ञान रखते थे जो युद्ध के दौरान दुभाषिये का कार्य भी करते थे। उनकी आँखों देखा युद्ध संस्मरण इतिहास की अमूल्य धरोहर माने जाते हैं।

काशीराज पंडित मूलतः एक ब्राह्मण था। उन्होंने युद्ध के महत्वपूर्ण संस्मरणों को सहेजा था और पानीपत युद्ध के 20 वर्षों के बीत जाने के पश्चात् उन्होंने अपने संस्मरण तिथि वार लिखे थे किंतु काशीराज पंडित अपने संस्मरणों का प्रकाशन न कर सके और दुनिया से चल बसे।[7] सौभाग्यवश डॉ. उदय एस कुलकर्णी जो पेशे से एक फिजिशियंस और सर्जन रहे हैं, उन्होंने अथक परिश्रम से अपने स्वलिखित ग्रंथ— Solstice At Panipat 14 jan में पंडित काशीराज के युद्ध संबंधित संस्मरणों का प्रकाशन किया है, जो अपने आप में बेहद रोचक और प्रमाणित है।

पंडित काशीराज सदाशिवभाऊ की पत्नी की दुर्दशा के विषय में लिखते हैं कि पानीपत युद्ध आरंभ होने के पूर्व ही सेनापति सदाशिवभाऊ ने अपनी पत्नी पार्वती बाई को पूर्ण सुरक्षा में रखा था। भाऊ ने उसे अपने एक विश्वस्त सेनानायक बीसाजी कृष्णा जोगदंड की सुरक्षा में 500 घुड़सवारों की अभिरक्षा में रखा था। साथ ही भाऊ ने जोगदंड को इस बात की सख्त हिदायत दी थी कि वह उसकी पत्नी की पूर्ण मुस्तैदी के साथ रक्षा करें किंतु यदि वह पत्नी (पार्वतीबाई) की रक्षा न कर सके और वह शत्रु पक्ष के हाथ लग जाये तो उसे स्वतः ही मौत के घाट उतार देना।[8] किंतु युद्ध की भयावहता के कारण जोगदंड पार्वतीबाई की सुरक्षा करने में असमर्थ रहा और वह पार्वतीबाई को अपने हाल पर छोड़कर पलायन कर गया। ऐसी नाजुक और विकट स्थिति में जानू भिनटंडा नायक एक खिदमतगार ने पार्वतीबाई को अपनी पीठ पर लादकर युद्ध क्षेत्र से बाहर निकाला। तदुपरांत वीर सिंह वारावकर नामक एक सैनिक ने पार्वती बाई को घोड़े की पीठ पर लादकर लंबा सफर किया जहां से दिल्ली केवल 30 मील की दूरी पर रह गई थी। सौभाग्यवश उसी मध्य सूबेदार मल्हारराव होलकर (प्रथम) भी पेशवा कुल की महिलाओं की सुरक्षा में लगे हुए थे, उन्होंने भाऊ की पत्नी पार्वती बाई को सुरक्षित ग्वालियर पहुंचा दिया।[9]

पानीपत के तृतीय युद्ध में मराठों की हार से उन पर तो जैसे विपति के घनघोर बादल टूट पड़े थे। बलुचियों ने पराजित मराठा सैनिकों को मार कर उनके ढेर के ढेर लगा दिए थे। सैकड़ों मराठा सैनिकों के पास केवल लंगोटिया ही बची थी। नानासाहब पेशवा का पुत्र विश्वासराव गोली से मारा गया और सदाशिवभाऊ पर भाले का प्रहार होने से साथ ही उनकी जांघ में गोली लगने से वह भी मारे गए अफगान सिपाही उनका सिर काट कर ले गए।[10] जो मारे गए वे तो दुनिया से कूच कर गए किंतु युद्ध के दौरान बड़े नेता जो बच गए थे वह भी भारी विपति के शिकार हुए। ऐसी भारी विपत्ति ग्रस्त मराठा स्तंभ में नाना फड़नवीस के नाम उल्लेखनीय है। नाना फड़नवीस (1742-1800 ई.) का मूल नाम बालाजी जनार्दन भानु था और वह सतारा के मूल निवासी थे।'' नाना

पेशवा के वित्तीय प्रबंधक एवं कलम के वह धनी व्यक्ति थे, किंतु तलवार से उनका कभी पाला ही नहीं पड़ा था। सुरेन्द्रनाथ सेन नाना के विषय में लिखते हैं कि—'He was neither a swort man, nor a Moralist'[11]

पानीपत के युद्ध में नाना फड़नवीस दो कारणों से शामिल हुआ था प्रथम अकाउंट के जानकार, लेखा अधिकारी, बतौर और दूसरा यह कारण था कि नाना अपनी युवा पत्नी और वृद्ध माता को उत्तर भारत के तीर्थ स्थलों की यात्रा कराना चाहता था।[12] पंडित काशीराज नाना फड़नवीस के विषय में लिखते हैं, कि युद्ध के दौरान भयानक अफरा-तफरी मची हुई थी और उसी दौरान उनकी वृद्ध माता और पत्नी कहीं खो गए थे नाना को बदहवासी और घोर परेशानी में देखकर अनायास ही सिंधिया का मैनेजर रामाजी अनंत नाना को मिला। उसने नाना की जान बचाने के लिए यह सलाह दी कि आप अपने कीमती वस्त्र और अलंकार तथा घोड़े को तत्काल त्याग दें और केवल अपनी धोती को ही अपनी लंगोटी बनाकर यहां से पैदल ही छुपते-छुपाते दबे पैर निकल जाए। पठानों के झुंड के झुंड यहाँ वहाँ घूम रहे हैं यदि उनकी नजर आप पर पड़ गई तो आप खतरे में पड़ जाओगे। तब नाना अपना बचाव करते हुए लगभग 12 कोस तक पैदल चले। पठानों से बचने के लिए वह अक्सर ऊंची घास में छिप जाया करते थे। नाना घनी झाड़ियों और वृक्षों की और बिना रुके निरंतर 16 कोस (32 मील) तक निराहार रहकर जल और अन्य के अभाव में निरंतर चलते रहे। भूख लगने पर वह वृक्षों के पते खाकर अपनी भूख को मिटाते रहे।[13] नाना फड़नवीस निरंतर चलते रहे और दूसरे दिन उन्हें एक झोपड़ी दिखाई दी, वह झोपड़ी एक हिंदू कीर्तनकर गोसाकी की थी। गोसाकी ने उन्हें रात्रि विश्राम कराया और पेट भर भोजन करवाया पो-फटने पर उसने नाना को रवाना कर दिया।[14]

तीसरी रात एक व्यवसायी जो कि अपनी बैलगाड़ी से जयपुर जा रहा था, उस व्यापारी ने नाना को अपनी बैलगाड़ी में शरण दी और उसने नाना का अतिथि सत्कार किया। चौथे दिन नाना रायबीरी नामक ग्राम पहुंचे, ग्राम के धनपति रामाजीदास ने नाना का एक सप्ताह तक भरपूर सत्कार किया तत्पश्चात् उस धनी व्यक्ति ने नाना को पूर्ण सुरक्षा के साथ डीग पहुंचा दिया। उसी मध्य बीसोजी बुरहानपुरकर से नाना को यह पता चला कि उनकी पत्नी पूर्ण सुरक्षित है और वह नाना के एक रिश्तेदार नारोपंत गोखले के आश्रय में जिन्जी नामक नगर में है, नाना को यह जानकर बड़ा सुखद लगा। रास्ते में नाना को यह भी पता चला कि भगदड़ के दौरान नाना की वृद्ध माता मर चुकी है।[15] कुछ दिनों के पश्चात् नाना शोकाकुल होकर अपने गृह नगर पुणे पहुँचे। यह थी नाना की दर्दभरी दास्तां।

सन्दर्भ ग्रंथ सूचि

1. जॉन फ्रेयर–ए न्यू एकाउण्ट ऑफ दि ईस्ट इण्डिया एण्ड पर्शिया, हॉकलुयट सोसायटी लंदन वोल्यूम– 1, 1909 पृ. 174
2. सुरेन्द्रनाथ सेन–दि मिलिट्री सिस्टम ऑफ दि मराठाज, एल.जी.पब्लिशर, नई दिल्ली 2021, पृ. 132
3. सुरेन्द्रनाथ सेन–दि मिलिट्री सिस्टम ऑफ दि मराठाज, एल.जी.पब्लिशर, नई दिल्ली 2021, पृ. 59
4. एडवर्ड मूर–ए नेरोटिव्ह ऑफ दि ऑपरेशन्स ऑफ दि केप्टन लिटिल्स डिटेचमेन्ट, क्रियेटिव मिडिया पार्टनर, 2012 पृ. 78
5. सुरेन्द्रनाथ सेन–दि मिलिट्री सिस्टम ऑफ दि मराठाज, एल.जी.पब्लिशर, नई दिल्ली 2021, पृ. 132
6. यदुनाथ सरकार–फॉल ऑफ दि मुगलएम्पायर, अनुवादक डॉ. मथुरालाल शर्मा, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कं. (प्रा.) लि. जयपुर, 1961 पृ. 342
7. डॉ. उदय एस. कुलकर्णी– (Solstice At Panipat) 14 जनवरी 1761, मूलामूथा पब्लिशर, पूणे संस्करण 2011, पृ. 177
8. डॉ. उदय एस. कुलकर्णी– (Solstice At Panipat) 14 जनवरी 1761, मूलामूथा पब्लिशर, पूणे, संस्करण 2011, पृ. 212
9. एन.आर. पाठक एंड एस. पगड़ी—पानीपत संग्राम, मुम्बई मराठी ग्रथ संग्रहालय बाम्बे, 1961 पेज 13. 1961
10. यदुनाथ सरकार—फॉल ऑफ दि मुगलएम्पायर, अनुवादक डॉ. मथुरालाल शर्मा, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कं.(प्रा.) लि. जयपुर, 1961 पृ. 240
11. सुरेन्द्रनाथ सेन—मिलिट्री सिस्टम ऑफ दि मराठाज, एल.जी.पब्लिशर, नई दिल्ली 2021, पृ. 148
12. डॉ. उदय एस. कुलकर्णी—(Solstice At Panipat) 14 जनवरी 1761, मूलामूथा पब्लिशर, पूणे, पृ. 179
13. डॉ. उदय एस. कुलकर्णी— (Solstice At Panipat) 14 जनवरी, 1761, मूलामूथा पब्लिशर, पूणे, पृ. 214
14. डॉ. उदय एस. कुलकर्णी—(Solstice At Panipat) 14 जनवरी, 1761, मूलामूथा पब्लिशर, पूणे, पृ. 214
15. एन.आर.पाठक तथा एस. पगड़ी—पानीपत संग्राम तथा काशीराज पण्डित-एन एकाउण्ड ऑफ दि लास्ट बैटल ऑफ पानीपत, मुम्बई मराठी ग्रंथ संग्रहालय बाम्बे, 1961, P-1726

अंतिमा कनेरिया
सहायक प्राध्यापक (इतिहास)

दिनेश महाजन
देवी अहिल्या विश्व विद्यालय (इन्दौर)

स्त्री विमर्श का स्वरूप : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

• अरूण कुमार

शोध सारांश—*किसी सभ्य समाज एवं संस्कृति की अवस्था का सही आंकलन उस समाज में स्त्रियों की स्थिति के माध्यम से ज्ञात किया जा सकता है। वैश्विक परिप्रेक्ष्य में पुरुष सत्तात्मक व्यवस्था का साम्राज्य होने के कारण समाज में स्त्रियों की स्थिति हमेशा एक सी नहीं और इनके प्रति सामाजिक दृष्टिकोण कालानुसार परिवर्तित होता रहा है। जब से महिलाओं ने अपनी सामाजिक भूमिका को लेकर सोचना और विचार करना प्रारम्भ किया, तभी से स्त्री-विमर्श जैसे सन्दर्भों पर बहस आरम्भ हुयी। स्त्री विमर्श रूढ़ हो चुकी मान्यताओं व परम्पराओं के प्रति असन्तोष व इनसे मुक्ति का स्वर है। स्त्री विमर्श उस सत्य की परिचर्चा है, जो समय व परिस्थितियों में आये परिवर्तनों के माध्यम से स्त्री की सोच, प्रस्थिति, स्वाभाव व उसके व्यक्तित्व में बदलाव लाती है। इसका सरोकार जीवन व दर्शन में स्त्री मुक्ति के प्रयासों से है। स्त्री विमर्श का मुख्य उद्देश्य पित्तसत्तात्मक व्यवस्था का पुर्नमूल्यांकन करने के साथ ही, इस व्यवस्था द्वारा हासिए में फेंकी गयी स्त्री के सपनों को शब्द देना व यह स्पष्ट करना है कि अपनी आधारभूत संरचना में स्त्री भी उतनी ही मानवीय, संवेदनशील, विवेकशील है, जितना कि पुरुष/ स्त्री-विमर्श की अवधारणा स्त्रियों के प्रति विकृत सोच का प्रतिवाद करते हुये स्त्रियों के अधिकारों एवं उनके स्वतंत्र अस्तित्व की माँग करती है।*

मुख्य शब्द—स्त्री-विमर्श, अस्मिता, स्वतन्त्र अस्तित्व, लिंग-भेद, उत्पीड़न, पित्तसत्तात्मक व्यवस्था, स्त्री मुक्ति, आत्मगौरव।

प्रस्तावना—किसी व्यक्ति एवं समुदाय की समाज में पहचान एवं

अस्मिता का आधार उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा होती है। समाज में सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए अनुकूल परिस्थितियों का होना आवश्यक है, लेकिन वास्तविकता तो यह है कि वैश्विक समाज में कालान्तर से ही स्त्री-पुरुष के मध्य भेद किया गया एवं दोनों को अलग-अलग नजरिए से देखा गया। स्त्री को हमेशा कमजोर मानते हुये उसे अबला, दीन-हीन, जैसे विश्लेषणों से सम्बोधित किया गया है। वर्तमान परिदृश्य में स्त्री-पुरुष सम्बन्धी विश्लेषण विचारकों के अध्ययन एवं विचारों के केन्द्र बिन्दु बन चुका है। इन वैचारिक विश्लेषणों में मनुष्य की जिजीविषा और अस्तित्व के संघर्ष की बात की गयी थी। मानव का यह संघर्ष ही विमर्श है और विमर्श के सन्दर्भ में अस्तित्व एवं अस्मिता को सुरक्षित रखने की तनावपूर्ण स्थिति, शोषण के प्रति अक्रोश और संघर्ष के परिणामस्वरूप स्त्री, दलित, आदिवासी, उभयलिंगी, अल्पसंख्यक, पर्यावरण जैसे मुद्दे सामने आये।

विद्वानों के वैचारिक विश्लेषण सम्बन्धी मुद्दों में स्त्री-विमर्श एक मुख्य अवधारणा है जो रूढ़ हो चुकी मान्यताओं, परम्पराओं के प्रति असन्तोष व उससे मुक्ति का स्वर है। यह पितृसत्तात्मक समाज के दोहरे नियमों, समाज में व्याप्त मूल्यों व अन्तर्विरोधों को पहचानने व समझने की गहरी अन्तर्दृष्टि है। ''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता'' जैसे उद्बोधन के माध्यम से पुरुष समाज एक ओर स्त्री को दैवीय गुणों से युक्त शक्ति स्वरूपा सिद्ध करता है, लेकिन दूसरी ओर इस दैवत्व के बोझ के नीचे यही समाज निरन्तर उनके मनुष्यत्व को क्षीण करता है और उन्हें घुट-घुटकर दम तोड़ने पर मजबूर करता है तथा स्त्री इस बात का आभास भी नहीं कर पाती। स्त्री विमर्श कालान्तर से ही समाज में मौन संस्कृति को अभिव्यक्ति देता है और तथाकथित नैतिकता, पैतृक व्यवस्थाओं को छिन्न-भिन्न करता है जो स्त्री अस्तित्व की चेतना को प्रभावित करते है। यद्यपि यह सत्य है कि स्त्री शारीरिक रूप से भले ही कमजोर हो लेकिन मानसिक रूप से वह पुरुष से किसी भी स्तर पर कमजोर नहीं है। महादेवी वर्मा कहती है– ''नारी का मानसिक विकास पुरुषों के मानसिक विकास से भिन्न परन्तु अधिक तीव्र, स्वभाव अधिक कोमल और प्रेम घृणदिभाव अधिक तीव्र तथा स्थायी होते हैं। इन्हीं विशेषताओं के अनुसार उसका व्यक्तित्व विकास पाकर समाज में उन अभावों की पूर्ति करता रहता है जिनकी पूर्ति पुरुष स्वभाव द्वारा सम्भव नहीं। इन दोनों प्रकृतियों में उतना ही अन्तर है जितना बिजली और झड़ी में एक से शक्ति उत्पन्न की जा सकती है। विशाल कार्य किये जा सकते हैं, परन्तु प्यास नहीं बुझाई जा सकती। दूसरी से शान्ति मिलती है, परन्तु पशुबल की उत्पत्ति सम्भव नहीं। दोनों के व्यक्तित्व अपनी पूर्णता में

समाज के एक ऐसे रिक्त स्थान को भर देते हैं जिससे विभिन्न सामाजिक सम्बन्धों में सामंजस्य उत्पन्न होकर उन्हें पूर्ण कर देता है।''

स्त्री विमर्श वैश्विक चिन्तन में एक नई बहस को जन्म देता है, पैतृक प्रतिमानों व उनके सोचने की दृष्टि पर सवालिया निशान लगाता है कि आखिर क्यों महिलायें, अपने मुद्‌दों, अवस्थाओं, एवं समस्याओं के बारे में सोच नहीं सकती? क्यों वे साँचे में ढली निर्जीव मूर्तियाँ है? वास्तव में स्त्री का स्वयं के बारे में सोचना कभी भी पितृसत्ता को भाया नहीं। इसी सन्दर्भ में सीमोन द बुआ कहती है— ''स्त्री-पुरुष प्रधान समाज की कृति है। वह अपनी सत्ता को बनाये रखने के लिए स्त्री को जन्म से ही अनेक नियमों के ढाँचे में ढालता चला गया।'' जहाँ उसका व्यक्तित्व दबता चला गया।'' वास्तव में स्त्री-विमर्श अपनी अस्मिता एवं अस्तित्व की रक्षा के लिए, युगों की दासता, पीड़ा और अपमान के विरुद्ध स्त्री की सकारात्मक प्रतिक्रिया है। स्त्री-विमर्श की अवधारणा का स्वरूप भारतीय एवं पाश्चात्य सन्दर्भ में बिल्कुल अलग-अलग है। भारतीय सन्दर्भ में स्त्री 'मूल्य' है जबकि पाश्चात्य दृष्टिकोण में वह मात्र 'वस्तु' है। 1949 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'द सेकेण्ड सेक्स' में 'सीमोन द बोउआर' ने स्त्री को वस्तु के रूप में प्रस्तुत करने की स्थिति पर प्रहार किया। डेरोथी पार्कर का मानना है कि स्त्री को स्त्री के रूप में ही देखना होगा क्योंकि पुरुष और स्त्री दोनों ही मानव प्राणी है। 1960 में केट मिलेट ने पुरुष की रूढ़िवादी मानसिकता पर प्रहार किया और बाद में वर्जीनिया बुल्फ, जर्मन ग्रिवर आदि ने भी स्त्री के अधिकारों की बात की।

महिलाओं की समस्याओं एवं उनके प्रश्नों की जाँच करे तो इसकी जड़ें हमें 18वीं सदी के मानवतावादी दृष्टिकोण और औद्योगिक क्रान्ति में दिखाई देती है अर्थात् इस सदी की औद्योगिक क्रान्ति के समय अनेक प्रकार के संघर्षों में स्त्री-विमर्श भी एक था। धर्मशास्त्र और कानून के माध्यम से स्वयं को पुरुषों के मुकाबले शारीरिक एवं बौद्धिक धरातल पर कमजोर मानने से इन्कार करना, इसका केन्द्रीय स्वरूप था। पाश्चात्य चिन्तन में स्त्री-विमर्श की एक लम्बी परम्परा रही है और 18वीं सदी से पूर्व ही स्त्रियों के लिए व्यापक अवसर एवं अधिकार प्रदान किये जाने का स्वर उठ चुका था जिसमें पहला स्वर 'मैरी वोल्स्टोनक्राफ्ट' की पुस्तक 'The Vendication of Rights of Women' का था। तत्पश्चात् 1848 में एलिजाबेथ कैण्डी, स्टैण्टन, लुक्रसिया काफिनमोर आदि महिलाओं ने एक सम्मेलन आयोजित करके यह प्रस्ताव लिया कि स्त्री को सम्पूर्ण तौर पर समानता का अधिकार दिया जाये जिसमें शिक्षा का अवसर,

समान मजदूरी और मतदान का अधिकार शामिल था। उक्त प्रस्ताव एवं 1845 में आयी माग्रेट फुलर की पुस्तक 'Women in Nineteenth Century' ने समस्त यूरोपीय देशों में स्त्री समानता के आन्दोलन को प्रसारित किया, जिसके परिणामस्वरूप 1893 में न्यूजीलैण्ड तथा 1895 में दक्षिण आस्ट्रेलिया में महिलाओं को मतदान का अधिकार मिला। इसके बाद 1920 में अमरीका व 1928 में ग्रेट ब्रिटेन में भी महिलाओं को मताधिकार प्राप्त होता है।

इस प्रकार 19वीं सदी से प्रारम्भ मताधिकार आन्दोलन आदि के सिलसिलेवार संघर्षों से स्त्री अधिकार की चेतना निचले स्तर तक आयी। 1792 के फ्रांसीसी क्रान्ति के महिला मुक्ति आन्दोलनों से प्रभावित होकर अमरीका में महिलाओं ने 1857 में पुरुषों के समान वेतन को लेकर हड़ताले की थी। इसी घटना को कालान्तर में 'अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस' के रूप में मनाया जाता है। इस घटनाक्रम को स्त्री मुक्ति आन्दोलन की शुरूआत और पृष्ठभूमि कहा जा सकता है। 1936 में विश्वपटल पर एक अद्‌भुत वक्त का आगाज हुआ, जब मैडम क्यूरी (नोबेल पुरस्कार विजेता) सहित तीन महिलायें फ्रांस में पहली बार मंत्री बनी। 1946 में नारी दशा पर संयुक्त राष्ट्र ने एक आयोग गठित किया, जिसका दायित्व सम्पूर्ण विश्व की महिलाओं के लिए समान राजनीतिक, आर्थिक और शैक्षणिक अधिकार दिलाना था। इसके तहत 1948 में वैश्विक स्तर पर स्त्री-पुरुष समान अधिकार कानून पारित हुआ और 1951 में संयुक्त राष्ट्र की महासभा ने भारी बहुमत से महिलाओं के राजनीतिक अधिकारों का नियम पारित किया। यह अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर स्त्री अस्मिता की स्वीकृति का आरम्भिक बिन्दु था।

1972 में लिंग-भेद पर रोक लगाने की माँग को लेकर शर्ली किसोम, वेट्टी फ्राइमेन, ग्लोरिया स्टेनम आदि ने आन्दोलन किया, जिसके परिणामस्वरूप 1972 में ही समान अधिकार संशोधन विधेयक पास हुआ और राष्ट्रीय स्तर पर लिंग आधारित भेदभाव को प्रतिबन्धित किया गया। 1975 में संयुक्त राष्ट्र द्वारा वैश्विक स्तर पर महिलाओं को एकत्रित करने एवं उनकी समस्याओं से रूबरू होने के लिए विश्वस्तरीय सम्मेलन की शुरूआत की गयी, जिसका उद्देश्य विश्व स्तर पर उन्हें समान अधिकार प्रदान करता था। इसी आधार भूमि से 1975 में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर महिला वर्ष मनाया गया और 1985 में दूसरा व 1995 में तीसरा अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन क्रमशः नैरोबी एवं संघाई में सम्पन्न हुआ।

1990 के आस-पास भी पाश्चात्य जगत में स्त्रियों को घर एवं बाहर

दोयम दर्जे का माना जाता रहा है। उन्हें कभी भी अपने जुल्मों के बारे में बोलने का और अपने बजूद की अभिव्यक्ति प्रस्तुत करने का अवसर नहीं दिया गया। इसी वजह से इस समय स्त्रियों द्वारा एक प्रचलित संस्कृति के समक्ष एक उपसंस्कृति को विकसित किया गया, जहाँ स्त्रियाँ अपनी बातें, समस्यायें, शोषण, पितृसत्ता द्वारा उत्पीड़न, बलात्कार, भेदभाव और स्त्री सशक्तीकरण आदि पर अपनी बात रख सकती है।

अमरीकी सुप्रीम कोर्ट के जज के खिलाफ लगे यौन शोषण के आरोप के कारण स्त्री अस्तित्ववादी आन्दोलन को नई धार मिली। इस घटना के विरोध में 'रेबेका वॉकर' ने लिखते हुये अपने शीर्षक 'बीकमिंग द थर्ड वेब' में कहा "I am not Post Feminism, I am the third web"

वास्तव में यह दौर शोषण युक्त सामाजिक गतिविधियों की प्रतिक्रिया मात्र नहीं था बल्कि यह अपने आप में एक आन्दोलन था जिसमें सीधे तौर पर यह महसूस किया गया कि अभी भी समाज में संस्थागत पितृसत्ता है और आने वाले समय के लिए नारीवादी मूल्यों और लक्ष्यों को संयोजित किया जाना आवश्यक है।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में स्त्री मुक्ति का संघर्ष वर्षों पुराना रहा है। भारतीय समाज मूलतः पितृसत्तात्मक समाज है, जहाँ केवल पुरुष के अस्तित्व को ही महत्व दिया जाता है। स्त्री स्वतन्त्रता व अस्तित्व के लिए भारतीय समाज व संस्कृति में कोई स्थान नहीं है। भारतीय स्त्री को बचपन से ही घर और समाज की मर्यादाओं की पट्टी पढ़ाई जाती है। प्राचीन समय में बालिकाओं को एक स्तर तक ही शिक्षित किया जाता था। उसे घरेलू कामकाज में प्रशिक्षण दिया जाता था। उसके लिए अनेक प्रकार की पाबंदियाँ होती थी। हमारे शास्त्रों में उद्धृत है कि ''स्त्री न स्वातंत्रयम अर्हती।'' प्रायः यह स्वीकार किया गया कि स्त्री, पिता, पति व पुत्र के संरक्षण में ही सुरक्षित है। लेकिन हम यह अक्सर विस्मृत कर देते हैं कि वह भी मनुष्य है। उसके अन्दर भी भावनायें है। एक ओर पुरुष सत्तात्मक समाज उसे देवी कहकर सम्बोधित करता है। वहीं दूसरी ओर उसकी अवहेलना की जाती है। महादेवी वर्मा का मानना है कि ''यह नारी के देवत्व की कैसी बिडम्बना है।'' पुरुष के समान स्त्री भी इस समुदाय का भाग है तो फिर सारे बन्धन उसी के लिए क्यों?

वास्तव में भारतीय सांस्कृतिक वर्चस्व के मूल में स्त्री शोषण की धारणा निहित है। स्त्री को पराश्रित एवं पराधीन बनाकर रखने के लिए समाज में उसे

शिक्षा, कला, संस्कृति एवं ज्ञान विज्ञान से दूर रखा गया ताकि वह चेतनाहीन बनी रहे तथा पुरुष की सत्ता कायम रहे। इसी कारण पुरुषों ने स्त्रियों को प्रारम्भ से ही अपने ऊपर आश्रित रखा है। आर्थिक क्षेत्र हो या सामाजिक प्रत्येक क्षेत्र में पुरुष के बिना स्त्री का कोई अस्तित्व ही नहीं है। लेकिन स्त्री हो या पुरुष दोनों को अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए स्वतन्त्र होना आवश्यक है। जब कभी भी कोई व्यक्ति किसी के शोषण या अत्याचार का शिकार होता है तो वह उससे मुक्ति चाहता है और इसके लिए वह आन्दोलन करता है। स्त्री मुक्ति आन्दोलन पुरुष विरोधी आन्दोलन नहीं बल्कि उस व्यवस्था के प्रति प्रतिक्रिया है जिसमें स्त्री को दोयम दर्जा दिया जाता है और उसका शोषण व दमन होता है।

यद्यपि भारतीय संस्कृति के गौरवशाली दौर वैदिक काल में स्त्रियों को गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त था और इस काल में सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं साहित्यिक क्षेत्र में स्त्री सहभागिता थी। इस समय स्त्री को गृहस्थ का गुरूतर भार वहन करने की प्रेरणा के साथ-साथ यह भी आदेश दिया जाता था कि समय आने पर वीरता दिखानी होगी। निःसन्देह यह युग स्त्री की अस्मिता एवं अस्तित्व का स्वर्णिम युग था लेकिन पितृसत्तात्मक व्यवस्था के कारण वह शनैः शनैः बन्धनों में जकड़ती गई। विदेशी आक्रमणों के परिणामस्वरूप मध्यकाल में स्त्री शोषण एवं दमन के चक्रव्यूह में फंस गयी। पुनर्जागरण काल में राजाराम मोहन राय, स्वामी दयानन्द सरस्वती, गोविन्द रानाडे आदि चिन्तकों ने स्त्री को सचेत करने का प्रयास किया।

1818 में राजाराम मोहन राय ने सती प्रथा का विरोध किया, परिणामस्वरूप 1829 में सती प्रथा को गैर कानूनी घोषित किया गया। इसके साथ ही बाल विवाह बहुपत्नी प्रथा के विरुद्ध एवं विधवा विवाह के समर्थन में भी पक्षधारिता को समर्थन मिला। स्वामी दयानन्द सरस्वती व स्वामी विवेकानन्द ने स्त्री शिक्षा का पुरजोर समर्थन किया। स्त्री मुक्ति आन्दोलन की यात्रा में ज्योतिराव फुले व उनकी भार्या सावित्री बाई फुले का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। इन्होंने स्त्रियों के लिए अनेक सुधारात्मक कदम उठाये। सावित्री बाई फुले ने 'महिला सेवा मण्डल' की स्थापना की और दोनों ने लगभग 18 शिक्षण संस्थान खोले एवं उनको संचालित किया। इनका मानना था कि स्त्री-पुरुष जन्म से स्वतन्त्र है, इसलिए दोनों को समान अधिकार समान रूप से उपभोग करने का अवसर प्राप्त होना चाहिए। स्वावलम्बन एवं स्वतन्त्रता के साथ स्त्री शिक्षा एवं समान अवसर व समान वेतन आदि मुद्दों पर पण्डित रमाबाई संघर्षरत रही। 1882 में उन्होंने 'स्त्री धर्म नीति' नामक आलेख स्त्री

जाग्रति के लिए लिखा। 1883 में उन्होंने पितृसत्ता के खिलाफ 'द हाई कास्ट हिन्दू वोमेन' पुस्तक लिखी। विधवाओं एवं परिव्यक्ताओं के लिए 'शारदा सदन' की स्थापना की। 1882 में तारा बाई शिंदे ने 'स्त्री-पुरुष तुलना' नामक कृति द्वारा तत्कालीन समाज में स्त्री की वास्तविक स्थिति का चित्रण किया। इन्होंने लिंग के आधार पर स्त्री-पुरुष के अधिकारों में असमानता का तीव्र विरोध किया तथा विधवा पुर्नविवाह को मजबूती से स्वर दिया।

इन सुधारात्मक प्रयासों के कारण स्त्री-संघर्ष का दायरा न सिर्फ अपनी मुक्ति तक सीमित रहा बल्कि उसने पुरुष वर्चस्व की लक्ष्मण रेखा लांघते हुये भारी संख्या में स्वतन्त्रता संघर्ष में सहभागिता भी निभाई। वास्तव में 20वीं सदी के प्रारम्भ के साथ ही भारतीय स्त्रियों की राजनीतिक गतिविधियों में सक्रियता आरम्भ हो जाती है। 1920 में अखिल भारतीय महिला समिति जैसी संस्थाओं के माध्यम से बाल विवाह, पर्दा प्रथा व सती प्रथा का विरोध करना आदि। 1927 में गठित अखिल भारतीय महिला कॉन्फ्रेंस ने भारतीय महिलाओं को यह एहसास कराया कि संगठन में ही शक्ति है और यहीं से भारत में एक भारतीय नारीवादी सोच पनपनी शुरू हुयी। भारत के सन्दर्भ में एक बात अवलोकित है कि यहाँ स्त्री-मुक्ति के लिए कोई आन्दोलन नहीं हुआ और 20वीं सदी में प्रतिनिधि के रूप में भारतीय स्त्री ने राजनीति और सत्ता में दखल भी दी। इसका कारण यह था कि वैश्विक स्तर पर जिस समय स्त्री अधिकार अस्मिता, अस्तित्व आदि के लिए संघर्ष हो रहे थे। उस समय भारत स्वतन्त्रता के लिए आन्दोलनरत था। वैश्विक वातावरण का प्रभाव तो भारत पर पड़ ही रहा था, स्वतन्त्रता संघर्ष में स्त्री की सहभागिता भी समय की आवश्यकता थी। इस कारण हमारे देश में स्त्री-मुक्ति के लिए अलग से कोई विशेष संघर्ष न देते हुये भी स्त्री-संघर्ष स्वतन्त्रता के संघर्ष में समाहित था।

अपनी सांस्कृतिक विरासत को लिए भारतीय स्त्री, पुरुष से अपने अधिकारों को प्राप्त करने का प्रयास तो कर रही है, लेकिन वह पुरुषों में अच्छा व बुरा दोनों पाती है। बुराई या उत्पीड़न को परम्परा का हिस्सा स्वीकार करते हुये वह अपनी इस हीन दासत्व अवस्था के लिए पुरुष को दोषी नहीं मानती है। परिवार का एक अंग होने को महत्व देते हुये वह परिवार में रहकर स्वतन्त्रता को पाने का प्रयास कर रही है। आज भारतीय स्त्री निर्णय लेने की शक्ति और आर्थिक शक्ति प्राप्त करने में संलग्न है क्योंकि यही वह मन्त्र है जिससे वह स्वयं को पुरुष के समकक्ष ला सकती है। प्रभा खेतान लिखती है—''भारतीय स्त्री खुशी-खुशी समझौता कर लेती है,

इसे वह जीवन जीने का तरीका मानती है। उसकी इसी क्षमता के कारण भारत में स्त्री की हैसियत में जो परिवर्तन आया उसमें वह पुरुषों से सहयोग ले सकी है। समस्याओं को केवल स्त्री का मुद्‌दा न मानकर उन्हें अन्य व्यापक मुद्‌दों के साथ जोड़ना सम्भव हुआ।'' भारतीय स्त्री मिलकर साथ रहकर अपनी पहचान को प्राप्त कर रही है। भारत में पुरुष ने सदैव स्त्री पक्ष का विरोध नहीं किया है बल्कि वह स्त्री की प्रगति में सहायक रहा है।

निष्कर्ष—स्त्री समाज को अपने व्यक्तिगत अनुभवों से जोड़कर देखती है। वह जब से यह महसूस करने लगी कि वह पुरुष से किसी भी स्तर पर कम नहीं है तब से ही वह अपने अस्तित्व एवं अस्मिता के लिए स्वर बुलन्द करने लगी। स्त्री मुख्यतः लिंग केन्द्रित जड़ता को तोड़ना चाहती है। वस्तुतः स्त्री विमर्श के लिए कुछ समीक्षा आधार निर्धारित करना आवश्यक है। यद्यपि स्त्री विमर्श को प्रारम्भ में उजागर करने का प्रयास अवश्य ही पुरुषों ने किया था लेकिन उसकी दुर्दशा को व्यक्त करने में उसके मानवीय अधिकारों की माँगों को उठाने में असमर्थ रहे है। आज भी पुरुष सत्ता द्वारा मानसिक रूप से स्त्री को गुलाम बनाने की प्रक्रिया जारी है। कुल मिलाकर स्त्री-विमर्श स्त्री के मानवीय अधिकारों की संघर्षपूर्ण माँग करने वाला चिन्तन है जो आक्रामक होने के साथ-साथ पितृसत्तात्मक समाज की कड़ी आलोचना करता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. वर्मा, महादेवी (1999), 'शृंखंला की कड़ियाँ', लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
2. कस्तवार, रेखा (2013), 'स्त्री चिंतन की चुनौतियाँ', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. वर्मा, कल्पना (2011), 'स्त्री विमर्श : विविध पहलू, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
4. कुमार, राकेश (2004), 'नारीवादी विमर्श', आधार प्रकाशन, नई दिल्ली।
5. चतुर्वेदी, जगदीश्वर (2011), 'स्त्रीवादी साहित्य विमर्श', अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।
6. अग्रवाल, रोहिणी (2012), 'स्त्री लेखन स्वरन और संकल्प' राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
7. यादव, डॉ. वीरेन्द्र सिंह (2010), 'नई सहस्रास्दी का स्त्री विमर्श : साहित्यिक अवधारणा एवं यथार्थ', राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।

8. प्रमीत्ता, के.पी. (2015), 'स्त्री अध्ययन की बुनियाद', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
9. पाण्डे, मृणाल (1998), 'परिधि पर स्त्री', राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
10. सीमोन द बोडवार (2015), 'स्त्री उपेक्षिता', हिन्द पॉकेट बुक्स प्रकाशन, नई दिल्ली।
11. खेतान, प्रभा (2008), 'प्रगतिशील वसुधा', जुलाई-सितम्बर।
12. यादव, राजेन्द्र (2013), 'औरत : उत्तर कथा', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
13. कालिया, ममता (2015), 'स्त्री विमर्श का यथार्थ', किताब वाले, नई दिल्ली।
14. प्रीतम, अमृता (2020), 'औरत एक दृष्टिकोण', पेंग्बिन रेंडम हाउस इण्डिया, गुडगांव।
15. आशा रानी (2005), 'नारी शोषण : आईने व आयाम', नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
16. जैन, डॉ. अरविन्द (2016), 'औरत होने की सजा', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
17. मासीवाल, भावना (2016), 'स्त्री विमर्श का स्वरूप', www.apnimali.com
18. www.streekal.com

www.sagrika.blogspot.com

www.edumate.online

www.divyahimachal.com

www.apnimati.com

www.hindikunj.com

अरुण कुमार

असिस्टेंट प्रोफेसर

(राजनीति विज्ञान)

राजकीय महिला महाविद्यालय, झांसी

❑ ❑ ❑

हरिभाऊ उपाध्याय का साहित्यिक योगदान

• डॉ. वीरेन्द्र शर्मा

हरिभाऊ उपाध्याय का जन्म मध्य प्रदेश में उज्जैन जिले के भौंरोसा नामक गाँव में हुआ था। विद्यार्थी जीवन से ही इनके मन में साहित्य के प्रति चेतना जाग्रत हो गई थी। संस्कृत के नाटकों तथा अंग्रेजी के प्रसिद्ध उपन्यासों के अध्ययन के बाद वे उपन्यास लेखन की अग्रसर हुए। 'राष्ट्र' के शीर्षस्थ नेताओं की प्रथम पंक्ति में रहने वाले हरिभाऊजी अपने मित्रो, कार्यकर्ताओं आदि में सदैव आदरणीय 'दा' साहब ही बने रहे।

जब जमनालाल बजाज ने उन्हें राजस्थान में कार्य करने के लिए भेजा, तो उन्होंने केवल राजस्थान की राजनीति को ही नहीं, बापू के रचनात्मक कार्यक्रमों को भी पूरी तरह प्रभावित किया। खादी का कार्य हो या महिला जागरण का राष्ट्रभाषा हिंदी की प्रतिष्ठा का प्रश्न हो या शराब बन्दी का, अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष करना हो या देशी राजाओं से 'दा' साहब इन सभी कार्यों में आगे रहे करते थे। गांधीजी के सिद्धान्तों के तो वे प्रामाणिक भाष्यकार ही बन गये थे।

हरिभाऊ उपाध्याय के व्यक्तित्व पर प्रभाव

हरिभाऊ उपाध्याय के जीवन पर तीन महापुरुषों के कृतित्व और व्यक्तित्व का गहरा प्रभाव पड़ा था। वे थे श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी, अमर शहीद गणेश शंकर विद्यार्थी और महात्मा गांधी। 'सरस्वती', 'प्रताप', 'मालव मयूर' और खासकर गांधीजी के 'नवजीवन' आदि पत्रों में काम करने से उन्हें जो प्रेरणा मिली, उसी का प्रतिफलन उनके हाथों प्रकाशित और संपादित 'त्यागभूमि' नामक पत्रिका में हुआ था।

भाषा और साहित्य की समृद्धि और उसकी आमजन तक सहज पहुँच के उद्देश्य से 'दा' साहब ने अजमेर में 'सस्ता साहित्य मंडल' की स्थापना की। इसमें राष्ट्रीय नेताओं और साहित्यकारों की कृतियाँ सस्ते मूल्य पर मुद्रित कर वितरित की जाती थीं। कालांतर में यह संस्थान नई दिल्ली चला गया।

औदुम्बर का प्रकाशन

सन् 1911 में हरिभाऊ उपाध्याय अध्ययन के लिए काशी गये। वहाँ हरिरामचन्द्र दिवेकर की संगति में आकर हरिभाऊ जी के मानस को बल मिला और देश-सेवा के लिए जीवन अर्पित करने के इरादे पक्के होने लगे। हरिभाऊजी के काका अपनी औदुम्बर जाति की उस समय की गिरी हुई हालत से बड़े दुःखी रहते थे। अपनी जाति में जागृति फैलाने के उद्देश्य से उन्होंने काशी से एक मासिक पत्र 'औदुम्बर' का प्रकाशन शुरू किया। 'औदुम्बर' द्वारा हरिभाऊजी ने साहित्य और समाज की उल्लेखनीय सेवा की। श्री श्रीप्रकाशजी जैसे साहित्यकार 'औदुम्बर' द्वारा ही सर्वप्रथम प्रकाश में आये। काशी में ही हरिभाऊ उपाध्याय अनेक विद्वानों एवं राष्ट्रभक्तों जैसे पं. बालकृष्ण भट्ट, रामचन्द्र शुक्ल, डॉ. भगवानदास, जयशंकरप्रसाद, रामनारायण मिश्र, डॉ. श्यामसुन्दरदास, रामनारायण शुक्ल, स्वामी सत्यदेव तथा रामकृष्णदास आदि के सम्पर्क में आये।

हरिभाऊ उपाध्याय ने दिवेकरजी के परामर्श से पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी के नजदीक रहकर हिन्दी पत्रकारिता एवं अखबार नवीसी की तालीम लेने का निश्चय किया। उन दिनों द्विवेदीजी को 'सरस्वती' के लिए एक अच्छे सहायक की जरूरत थी जिसके लिए हरिभाऊ जी स्वयं प्रस्तुत हुए।[1]

'सरस्वती' से जुड़ाव

हरिभाऊ उपाध्याय को 'सरस्वती' पत्रिका में सहायक सम्पादक के रूप में नियुक्ति मिली। पहले एक मास तक वे प्रयाग में इण्डियन प्रेस में रह कर वहाँ के कार्य में दक्षता प्राप्त की। इसी दौरान डॉ. जगदीश चन्द्र बसु का एक विज्ञान संबंधी तथा महामहोपाध्याय हर प्रसाद शास्त्री का इतिहास सम्बन्धी व्याख्यान पर 'सरस्वती' के लिए टिप्पणी लिखी जिससे द्विवेदीजी हरिभाऊ जी अत्यंत संतुष्ट हुए।

महात्मा गांधी जी के सभापतित्व में होने वाले सन् 1918 के इन्दौर के हिन्दी साहित्य सम्मेलन अधिवेशन में बिना द्विवेदी जी की अनुमति के लंबी अवधि के लिए सम्मिलित होने तथा इससे सरस्वती का कार्य प्रभावित होने के कारण द्विवेदी जी से मनमुटाव हुआ और हरिभाऊजी ने इसके उपरांत नई राह पकड़ी। 'सरस्वती' छोड़ने के बाद वे इन्दौर चले गये।

नया संकल्प

हरिभाऊ उपाध्याय इन्दौर में रहकर साहित्य की सेवा और उसका प्रसार करना चाहते थे। पहले उन्होंने मध्य भारत हिन्दी साहित्य समिति के जरिये यह काम शुरू

करना चाहा, मगर राष्ट्रीय विचारधारा होने के कारण समिति के श्री सरजू प्रसाद से उनका मतैक्य न हो सका। तत्पश्चात श्री जीतमल लूणिया के सहयोग से उसी साल उन्होंने 'मध्य भारत हिन्दी पुस्तक एजेंसी' संस्था खोली। संस्था साझे में खोली गई थी, मगर घरेलू दिक्कतों के कारण हरिभाऊजी अपने हिस्से का पैसा न दे सके। इसलिए हरिभाऊजी के आग्रह पर लूणियाजी इस संस्था को चलाने लगे।

समिति से साझा टूटने पर हरिभाऊ उपाध्याय ने 'हिन्दी फाइनल स्कूल' में उप प्रधानाध्यापक का पद स्वीकार कर लिया और कुछ महीने वहीं काम किया। इसके बाद गणेश शंकर विद्यार्थी ने अपना निजी सहायक बनाकर हरिभाऊजी को कानपुर बुला लिया। यहाँ वे दैनिक 'प्रताप' और मासिक 'प्रभा' के सम्पादन में योगदान देने लगे। विद्यार्थी की श्रमशीलता, कर्त्तव्यनिष्ठा और मंझी हुई राष्ट्रीय विचारधारा का हरिभाऊजी पर बड़ा असर पड़ा। कुछ समय के उपरांत आंतरिक मतभेद के चलते हरिभाऊ उपाध्याय पुनः इन्दौर चले गये।

'मालव-मयूर' प्रसंग

इन्दौर में आकर हरिभाऊ जी ने मालवा में जागृति पैदा करने के लिए राष्ट्रीय विचारधारा का एक निडर हिन्दी मासिक 'मालव मयूर' निकालने की योजना बनाई। हरिभाऊ जी 'मालव मयूर' के पहले अंक का मजमून लेकर छपाने के लिए बनारस गये थे कि इन्दौर के उस समय के मुख्यमंत्री का हुक्म मिला कि बिना इजाजत लिए 'मालव मयूर' इन्दौर से न निकाला जाय। हालांकि उस समय इन्दौर में ऐसा कोई कानून नहीं था और यह हुक्म जानबूझकर 'मालव मयूर' को न निकलने देने और मालवा में जागृति न फैलने देने की नीयत से दिया गया था। फिर भी हरिभाऊ उपाध्याय ने इजाजत के लिए दरख्वास्त दे दी, मगर वे जानते थे कि इजाजत तो मिलने से रही।

तब उन्होंने इरादा किया कि एक साप्ताहिक अखबार खण्डवा से निकालकर मालवा में जागृति का कार्य किया जाय। उन दिनों महात्मा गांधी ने साबरमती अहमदाबाद से अंग्रेजी 'यंग इण्डिया' और गुजराती का 'नवजीवन' निकालना शुरू करके देश में जागरण का कार्य तेजी से शुरू कर दिया था। हरिभाऊजी ने सोचा कि खण्डवा से एक ऐसा साप्ताहिक हिन्दी में निकाला जाय, जिसमें 'यंग इण्डिया' और 'नवजीवन' से अनुवादित लेख व टिप्पणियाँ रहें और खबरें वगैरह अपनी रहें।[2] गांधीजी के दिव्य संदेशों से मालवा में जागृति फैलाने में बड़ी मदद मिलेगी। खण्डवा से अखबार निकालने के लिए आर्थिक सहयोग की आवश्यकता थी। इसके लिए उन्होंने गांधीजी को खत लिखा तो उनका जवाब आया कि यदि साबरमती या वर्धा से पत्र निकालना चाहते हो तो श्री जमनालाल जी से लिखा-पढ़ी करो। उनसे मेरी

बातचीत हो गई है। उन्होंने खुद बम्बई जाकर गांधीजी के दर्शन और जमनालालजी से मुलाकात करने का इरादा उन्होंने कर लिया। गांधीजी और जमनालालजी के नजदीक रहकर देश सेवा करने के विचार और दृढ़ संकल्प ने हरिभाऊजी में उत्साह भर दिया। इस मौके से उनके साहित्य, समाज और देश की सेवा करने के इरादों को ताकत मिली।

इस सम्बन्ध में श्री हरिभाऊ उपाध्याय ने लिखा है जब मैं मणि भवन में पहुँचा तो देवदास भाई (देवदास गांधी) मिले। उन्होंने कहा आपका खत खुद बापू ने पढ़ा है। उत्तरी हिन्दुस्तान वालों की लिखावट बड़ी खराब होती है, बापू से पढ़ी नहीं जाती। लेकिन आपका खत बड़ा अच्छा था, बापू पर अच्छा असर पड़ा है।[3] हरिभाऊ उपाध्याय ने जमना लाल जी के सुझाव पर वर्धा या खण्डवा की बजाय साबरमती में रहकर पत्र निकालना मंजूर किया। जमनालाल जी का झुकाव यों वर्धा की तरफ था, परन्तु 'यंग इण्डिया' व 'नवजीवन' के साथ ही 'हिन्दी नवजीवन' का अहमदाबाद से निकालना ही उन्हें सुविधाजनक प्रतीत हुआ।

'हिन्दी नवजीवन' का प्रकाशन

'हिन्दी नवजीवन' के शुरू के अंकों को निकालने में बड़ी दिक्कतों का सामना करना पड़ा। प्रथम अंक निकलते ही उसकी धूम मच गई। नतीजा यह हुआ कि गुजराती 'नवजीवन' की मांग कम हो गई।

'हिन्दी नवजीवन' का पहला अंक 19 अगस्त, 1921 को निकला था। गांधीजी के जेल चले जाने बाद 18 जून, 1922 से सम्पादक के रूप में गांधीजी की जगह हरिभाऊ जी का नाम आने लगा।[4]

इधर हरिभाऊ जी साबरमती आश्रम आ गये, उधर श्री जीतमल लूणिया बनारस में जाकर 'हिन्दी साहित्य मन्दिर' नाम से एक प्रकाशन संस्था चलाने लगे। उन्होंने वहाँ से मासिक 'मालव मयूर' निकालने का इरादा किया। उन्होंने इसका सम्पादन भार ग्रहण करने के लिए हरिभाऊजी को लिखा। हरिभाऊजी का तो एक पुराना संकल्प ही पूरा होने जा रहा था, इसलिए उन्होंने तुरंत मंजूरी दे दी। हरिभाऊ जी ने एक खोजपूर्ण लेख-माला 'प्राचीन मालव' निकाली, जो बड़े चाव और आदर से पढ़ी गई। यह लेख-माला उन्होंने गुजरात विद्यापीठ अहमदाबाद के विशाल पुस्तकालय में रात-दिन मेहनत करके तैयार की थी। हिन्दी में यह प्रामाणिक सामग्री पाठकों को पहली दफा ही मिली थी।[5]

'हिन्दी नवजीवन' से बापू, जमनालालजी, अन्य मित्रों व पाठकों को काफी सन्तोष रहा। हरिभाऊ जी ने गांधीजी की शैली को इतना आत्मसात् कर लिया था

कि वह गांधीजी को ही मालूम पड़ती थी जबकि हरिभाऊजी ही सम्पादकीय टिप्पणियाँ आदि लिखते थे। एक अखबार ने 'हिन्दी नवजीवन' की समालोचना करते हुए लिखा था मालूम पड़ता है कि बापू ही जेल से लिखकर लेख भेज देते हैं।[6]

'हिन्दी नवजीवन' द्वारा राजनीतिक व सामाजिक जागृति और 'मालव मयूर' द्वारा साहित्य की समृद्धि में हरिभाऊजी ने यथाशक्ति योगदान दिया। सम्पादन के साथ-साथ वे साहित्यिक और विचार प्रेरक रचनाएँ भी लिखते रहे। साबरमती में आकर उन्होंने कई मौलिक किताबें लिखी व कई महत्त्वपूर्ण किताबों के अनुवाद किये।

राजस्थान से जुड़ाव

सन् 1925 में बाबाजी नृसिंहदास अग्रवाल मद्रास से अपने भारी व्यवसाय को छोड़कर देश सेवा के उद्देश्य से राजस्थान में आ गये। वे हरिभाऊजी से भी राजस्थान में आकर काम करने के लिए आग्रह कर रहे थे। काका कालेलकर, श्री मगनलाल गांधी व श्री महादेव देसाई ने भी हरिभाऊजी को राजस्थान में सेवा करने की मंजूरी दे दी।

सन् 1924 के आखिर में फतहपुर में अग्रवाल महासभा का अधिवेशन हुआ। हरिभाऊजी भी जमनालाल जी के साथ वहाँ गये। अखिल भारतीय चरखा संघ के मंत्री श्री शंकरलाल बैंकर, जीतमल लूणिया, राजस्थानी नेता श्री जयनारायण व्यास और श्री मगनलाल गांधी भी उस समय वहाँ आये हुए थे।[7] एक अप्रेल, 1925 को सेठ जमनालालजी बजाज की प्रेरणा और श्री घनश्यामदास बिड़ला तथा महावीर प्रसाद पोद्दार आदि के सहयोग से हरिभाऊजी ने लूणियाजी के साथ अजमेर में 'सस्ता साहित्य मण्डल' की स्थापना की। 'मण्डल' द्वारा साहित्य प्रकाशन का काम शुरू हुआ।[8]

सस्ता साहित्य मण्डल

सेठ जमनालालजी बजाज की प्रेरणा ने हरिभाऊ उपाध्याय की रचनात्मक वृत्ति को जन्म दिया। गुजराती में 'सस्तु साहित्य वर्धक कार्यालय' नामक संस्था ने सस्ते तथा उदात्त साहित्य के प्रचार में बड़ा काम किया है। हरिभाऊजी को लगा कि हिन्दी में भी इस प्रकार की संस्था की आवश्यकता है। जमनालालजी ने इस विचार का समर्थन किया और उनके सहयोग और सहायता से हरिभाऊ उपाध्याय ने सन् 1925 में 'सस्ता साहित्य मण्डल' की स्थापना की।[9]

हरिभाऊजी के अलावा सेठ जमनालाल बजाज, घनश्याम दास बिड़ला,

महावीर प्रसाद पोद्दार, रामकुमार भुवालका, डॉ. अम्बालाल शर्मा व जीतमल लूणिया इसके संस्थापकों में थे। उस समय बिड़लाजी 'मण्डल' के सभापति व लूणियाजी मंत्री बनाये गये। ग्रंथों के सम्पादन व व्यवस्था का भार हरिभाऊ उपाध्याय को सौंपा गया। 'तिलक स्वराज्य फण्ड' से 'मण्डल' को दान स्वरूप 25000 रुपये दिलाये गये। इसी राशि से 'मण्डल' का काम शुरू हुआ। जल्दी ही 'मण्डल' लोकप्रिय हो गया। 'मण्डल' ने काफी तादाद में उच्च कोटि के साहित्य का प्रकाशन किया। 1927 में हरिभाऊजी के सम्पादन में हिन्दी मासिक पत्रिका 'त्यागभूमि' का प्रकाशन 'मण्डल' ने शुरू किया, जो 1930 में साप्ताहिक रूप में निकली।

'मण्डल' की बढ़ोतरी के साथ ही अंग्रेज सरकार की नजर भी टेढ़ी हुई। 'मण्डल' को 'बगावत की जगह' समझा जाने लगा। आखिर में सरकार ने 'मण्डल' के आठ प्रकाशन जब्त कर लिये। हरिभाऊजी की पुस्तक 'युगधर्म' भी इनमें से एक थी। 1932 में सरकार ने 'मण्डल' के दफ्तर व 'सस्ता साहित्य प्रेस' में भी ताला डाल दिया। संचालकों के जेल में रहने व महीनों तक काम बन्द रहने से 'मण्डल' को बड़ा नुकसान हुआ। 'मण्डल' के ज्यादातर संचालक व अन्य सहयोगी राष्ट्रीय कार्यकर्ता थे, इसलिए समय-समय पर उनको जेल जाना पड़ता था, यह एक गंभीर समस्या 'मण्डल' के सामने थी। इससे काम ठीक तरह से नहीं हो पाता था। दिल्ली में छपाई, प्रकाशन व व्यावसायिक सहूलियतें होने के कारण 'मण्डल' का प्रधान कार्यालय दिल्ली ले जाया गया। 1940 में 'मण्डल' द्वारा मासिक 'जीवन साहित्य' का प्रकाशन शुरू किया गया। देश के आजाद होने पर 'मण्डल' का काम तेजी से आगे बढ़ा। 'मण्डल' ने गांधी साहित्य के अतिरिक्त विनोबा भावे, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, जवाहर लाल नेहरू आदि का भी साहित्य प्रकाशित किया।

गांधी आश्रम

सन् 1922-23 में जब बापू ने खादी, ग्रामोद्योग, छुआछूत-निवारण आदि रचनात्मक कार्यक्रम पेश किया तो जमनालाल जी का विचार हुआ कि इस कार्यक्रम को सुचारू रूप से चलाने के लिए राजस्थान में एक आश्रम की स्थापना होनी चाहिए। जब हरिभाऊ उपाध्याय रचनात्मक कार्य के लिए राजस्थान आ गये तो उन्होंने भी आश्रम की योजना में हाथ बँटाया। अजमेर से 7 मील दूर हटूंड़ी गाँव के नजदीक बाबा नृसिंहदास अग्रवाल की मदद से आश्रम के लिए उपयुक्त जगह चुनी गई। एक अगस्त, 1927 को गांधी आश्रम की स्थापना हुई। इसमें जमनालालजी की मूल प्रेरणा व हरिभाऊजी का प्रमुख हाथ रहा। स्थापना होते ही 'सस्ता साहित्य मण्डल' के ज्यादातर कार्यकर्ता आश्रम में आ गये। यहीं से 'त्याग-भूमि' निकली और हरिभाऊजी के बहुत से

साहित्यिक व राजनीतिक साथी सहयोगी जैसे—बाबा नृसिंहदास, बैजनाथ महोदय, बाबा सेवादास, लादूराम जोशी, रामनाथ सुमन, चन्द्रभान शर्मा तथा हरिकृष्ण प्रेमी वगैरह सहित और भी बहुत से कार्यकर्ता आश्रम में रहने लगे। इस प्रकार आश्रम का अपना एक बड़ा परिवार बन गया। राजस्थान व मध्यभारत में इसी आश्रम के कार्यकर्ताओं द्वारा रचनात्मक तथा अन्य प्रवृत्तियाँ चलाई जाने लगीं। जल्दी ही आश्रम स्वतन्त्रता संग्राम का एक सुदृढ़ गढ़ बन गया। नमक सत्याग्रह तथा भारत छोड़ो आन्दोलन में हरिभाऊजी व आश्रम के सभी कार्यकर्ताओं ने हिस्सा लिया और अधिकांश जेल गये।

गीता का अनुवाद

पहली बार (1930) की जेल यात्रा में हरिभाऊ जी ने हिन्दी गीता तैयार की थी। समश्लोकी अनुवाद गीता का किया था। जेल से बाहर जाने पर वह खो गया तो फिर भारत छोड़ो आन्दोलन में दुबारा वह अनुवाद किया जो बाद में प्रकाशित भी हुआ। हिन्दी में सम्भवत: यह पहला ही समश्लोकी अनुवाद था।

जेल जीवन में ही उन्होंने हिन्दी में भागवत धर्म या कृतार्थ जीवन नामक महत्त्वपूर्ण पुस्तक के 23 अध्याय लिखे थे जिसमें से 18 अध्याय का पहला भाग प्रकाशित भी हो चुका था। दूसरा भाग (पूरे 31 अध्याय) जेल से छूट जाने पर धीरे-धीरे तैयार हुआ।

1930 की जेल यात्रा में हरिभाऊजी ने एक और पुस्तक लिखने की शुरूआत की थी, जो बाद में पूरी होकर 'स्वतन्त्रता की ओर' के नाम से सस्ता साहित्य मण्डल से प्रकाशित हुई।

राजस्थान सेवक संघ का मुख पत्र 'तरुण राजस्थान' जब श्री माणिकलाल कोठारी के सुपुर्द हुआ तब कुछ वर्षों तक हरिभाऊजी इसके सम्पादक रहे थे। उन्होंने सन् 1962 में पुन: चुनाव लड़ा तथा राजस्थान के शिक्षा मन्त्री बने। 4 मार्च 1965 को आपने मन्त्री पद से स्वेच्छा से त्यागपत्र दे दिया। वर्ष 1965-72 तक वे अपने आश्रम में ही रहे तथा अहिंसा पंचायत की स्थापना की व काव्य सृजन करते रहे। मन्त्री पद से त्याग पत्र के बाद उनकी निम्न रचनाएँ प्रकाशित हुईं, मेरे हृदय देव 1965, गांधी युग के संस्मरण, 1966, भागवत् धर्म (द्वितीय भाग), 1969, बापू कथा, 1969, बदलते संदर्भ और साहित्यकार, 1976 (मरणोपरांत)। उन्होंने जवाहर लाल नेहरू की 'मेरी कहानी' और पट्टाभिसीतारमैया द्वारा लिखित 'कांग्रेस का इतिहास' का भी हिन्दी

में अनुवाद किया। हरिभाऊ उपाध्याय की अनेक पुस्तकें आज हिन्दी साहित्य जगत को प्राप्त हो चुकी हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं 'बापू के आश्रम में', 'स्वतंत्रता की ओर', 'सर्वोदय की बुनियाद', 'श्रेयार्थी जमनालाल जी', 'साधना के पथ पर', 'भागवत धर्म', 'मनन', 'विश्व की विभूतियाँ', 'पुण्य स्मरण', 'प्रियदर्शी अशोक', 'हिंसा का मुकाबला कैसे करें', 'दूर्वादल' (कविता संग्रह), 'स्वामी जी का बलिदान', 'हमारा कर्त्तव्य और युगधर्म'।

हरिभाऊ जी की रचनाएँ भाव, भाषा और शैली की दृष्टि से बड़ी आकर्षक हैं। इनमें रस है, मधुरता और उज्ज्वलता है। इनमें सत्य और अहिंसा की शुभ्रता है, धर्म की समवयबुद्धि है और लेखनी की सतत साधना और प्रेरणा है।

संदर्भ

1. हिन्दी साहित्य कोश, भाग-2, संपादनः डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, भारतकोश पुस्तकालय, 1986, पृ. 673
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास, भाग 1, डॉ. संजय गुप्ता, ओम साई टेक्स्ट बुक्स, दिल्ली, 2019, पृ. 92
3. कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी, अंक 60, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, 1974, पृ. 527-28,
4. सम्पूर्ण गांधी वांगमय, अंक 43, 1958, पृ. 432
5. मध्यप्रदेश जिला गजेट : इंदौर, 1971, पृ. 690
6. राजशिखा उपाध्याय (शोधार्थी) स्थान जिला गजेट, झुंझुनूं, 1962, राजस्थान सरकार पृ. 27
7. फ्रीडम मूवमेंट इन राजस्थान, विद स्पेशल रेफरेंस टू अजमेर-मेरवाड़ा, इंदिरा व्यास, यूनिवर्सिटी ऑफ मिशिगन, 2004, पृ. 176
8. इंडियन आर्काइव रिपोर्ट, वॉल्यूम 24, 1975 पृ. 76
9. जमना लाल बजाज : ए ब्रीफ स्टडी ऑफ हिज लाइफ एण्ड करेक्टर-टी वी परवाते 1962, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, बंबई, पृ. 148

डॉ. वीरेन्द्र शर्मा

सहायक आचार्य इतिहास

राजकीय कन्या महाविद्यालय, अजमेर

❑❑❑

गवरी बाई : मीरा की परंपरा और सगुण निर्गुण समन्वय

• डॉ आशाराम भार्गव

मीरा भक्तिकाल की ऐसी रचनाकार हैं जिनकी आत्माभिव्यक्ति, सामाजिक भूमिका, कृष्ण के प्रति समर्पण और विरह इतना प्रभावी रहा कि उनके बाद जिस स्त्री भक्त या कवयित्री में समर्पण, विरह, वेदना या कृष्ण प्रेम का कुछ हिस्सा ही रहा तो भी उन्हें मीरा कहा गया। वागड़ की मीरा, मारवाड़ की मीरा, मत्स्य की मीरा और आधुनिक काल तक आते-आते महादेवी वर्मा को भी आधुनिक काल की मीरा कहा गया।

मैनेजर पांडेय लिखते हैं—जो आलोचक कविता को इतिहास के संदर्भ और सामाजिक जीवन के अनुभवों से स्वतंत्र मानते हैं वे महादेवी वर्मा की कविता में तरह-तरह के रहस्यवाद खोजते हैं। इस प्रक्रिया में कविता और कवि दोनों का मिथकीकरण हुआ है। कविता अध्यात्म साधन की अभिव्यक्ति बन गई है और महादेवी वर्मा मीरा बना दी गई है। ...विद्रोह करने वाली मीरा नहीं निरीह भाव से भगवान का भजन करने वाली मीरा।[1] कमोबेश रूप से यह विचार इन सब कवयित्रियों के संदर्भ में लागू होता है। विचारणीय है कि इन सब में मीरा के सारे गुण नहीं मिलते, फिर भी मीरा का प्रभाव इतना गहरा था कि इन्हें भी क्षेत्र और समय की विशिष्टता के साथ मीरा ही कहा गया।

गवरी बाई को वागड़ की मीरा कहा जाता है। गवरी बाई पर मीरा की माधुर्य भक्ति के साथ निर्गुण काव्यधारा का प्रभाव भी स्पष्ट दिखाई देता है। कहा जा सकता है कि गवरी बाई का काव्य निर्गुण-सगुण का समन्वय है। इनके काव्य में जहां एक तरफ सगुण भक्तों की तरह राम, कृष्ण और शिव की भक्ति, अवतार व लीला के पद मिलते हैं वहीं दूसरी ओर निर्गुण के परिचायक इड़ा-पिंगला, सुषुम्ना, अनहद नाद, भंवर गुफा आदि शब्द भी मिलते हैं। साथ ही सगुण-निर्गुण दोनों काव्यों में समान रूप से पाए जाने वाले गुरु महिमा, संसार

असार, माया प्रभाव, ईश्वर की सर्वव्यापकता, पाखंड विरोध, हरिनाम स्मरण आदि का भी वर्णन मिलता है।

संवत 1815 (1759 ई.) में वागड़ क्षेत्र में जन्मी गवरी बाई में मीरा की परंपरा के तत्त्व या भाव साम्य परमेश्वर को पति मानने और माधुर्य भक्ति के स्तर पर दिखाई देते हैं। 'कल्याण' के नारी अंक में भी इनका वर्णन मिलता है। वहां इन्हें गुजरात की संत बताया गया है गुजरात की सती देवियों में गौरीबाई बहुत प्रख्यात हैं।[2] वहां भी इन्हें चमत्कारी, साधिका, वचनसिद्ध बताया गया है और विवाह, वैराग्य, साधना आदि के साथ विविध जीवन प्रसंगों का वर्णन मिलता है।

मीरा की तरह गवरी बाई को भी पति वियोग सहना पड़ा। कहा जाता है कि इनका विवाह 5-6 वर्ष की अवस्था में हुआ और विवाह के सप्ताह भर में पति की अज्ञात रोग से मृत्यु हो गई। इन्होंने भी मीरा की तरह कृष्ण को अपना पति मान लिया।

पति वियोग या वैधव्य के बारे में प्रश्न पूछे जाने पर इनके उत्तर का उल्लेख करते हुए मथुरादास अग्रवाल और ज्योतिपुंज लिखते हैं—जदी कोई के'ता के थारो सुवामी हमेसा रे वास्ते नीं रियो तो सरल भाव उं जवाब मिलतो—मा'रो सुवामी पति तो परमेसर, अजर अमर मूं किस्तर विधवा। कुण के म'ने विधवा?[3] 'मेरा स्वामी पति तो अजर अमर परमेश्वर है, मैं कैसे विधवा?' कहकर गवरी बाई ने परमेश्वर को पति माना। जैसे मीरा ने कहा मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई।

मीरा और कृष्ण उपासकों के साथ अन्य भक्ति धारा के भक्तों-संतों ने भी परमात्मा के प्रति प्रणय निवेदन किया है, माधुर्य भक्ति के पद रचे हैं। भक्तिकाल के बाद तो अनेक संप्रदाय चल पड़े थे जिनमें साधकों द्वारा स्वयं को कृष्ण प्रिया और सखी मानते हुए भक्ति की गई।

गवरी बाई कृष्ण की माधुर्य भक्ति करती हैं। गवरी बाई को भी मीरा की तरह गिरधर से प्रेम है। गिरधर से लौ लगने और चांद-चकोर के प्रतीकों के माध्यम से उन्होंने प्रेम-माधुर्य को अभिव्यक्त किया है। मीठा लागो छो रे गिरधारी/मोर मुकुट कटि पीताम्बर बनी चंदन की खोर.......दिन दिन प्रेम अधीक लग्यो री बांध्यो नेह को पुर/गवरी गिरधर लाल सु लौ लागी जैसे चंद चकोर।[4]

मीरा कहती हैं—मैं तो सांवरे के रंग राची/साजि सिंगार बांध पग घुंघरू

लोकलाज तज नाची...उण बिन जग खारो लागत और बात सब काची/मीरा गिरधर लाल सु भगती रसीली जांची।[5] मीरा रसीली भक्ति अर्थात् माधुर्य भक्ति की घोषणा करती है तो गवरी बाई भी कृष्ण प्रेम को अभिव्यक्त करती हैं।

मीरा की तरह गवरी बाई भी कृष्ण के दर्शन की आकांक्षा करती है। हालांकि दर्शन की अभिलाषा तो हर भक्त-संत ने की है पर मीरा, गवरी और ऐसी ही अनेक स्त्री भक्त स्वयं को बावरी, कृष्ण की दासी और दीवानी कहते हुए दर्शन-मिलन की आकांक्षा करती हैं। मीरा कहती हैं—ए री मैं तो दरद दीवानी मेरो दरद न जाने कोय......गगन मंडल में सेज पिया की किस विध मिलना होय।[6] इसी तरह 'दासी मीरा लाल गिरधर' कहकर स्वयं को कृष्ण की दासी भी कहती है। गवरी बाई कृष्ण की दिवानी होकर जगत का उपहास सहते हुए दर्शन की प्रार्थना करते हुए कहती है—प्रभु मौकूं एक बेर दरसन दइये/तुम कारण मैं भई रे दीवानी/ उपहास जगत की सहियै।[7]

मीरा, रसखान और अनेक भक्तों की तरह गवरी बाई को भी कृष्ण के बदले हीरे, माणिक्य, मोती के भंडार नहीं चाहिए। रसखान कृष्ण सामीप्य के लिए अष्ट सिद्धि और नव निधि बिसारने और लकुटि और कामरिया पर तीन लोक का राज त्यागने को तैयार हैं। गवरी बाई कृष्ण को हृदय में बसाए रखना चाहती हैं—हाथ लकुटिया कांधे कमलिया मुख पर मुरली बजैये/हीरा मानिक गरथ भंडारा माल नहीं चाहियै/गवरी के ठाकर सुख के सागर मेरे उर अंतर रहियै।[8]

भक्ति और प्रेम मार्ग में बाधक तत्त्वों और व्यक्तियों की चर्चा लगभग सभी संतो-भक्तों ने की है। मीरा को इस मार्ग में परिजन और सामाजिक मान्यताएं बाधक लगती हैं इसलिए मीरा ने परिजनों के बारे में कहा–'सास लड़े म्हारी ननद खिजावै' तो सामाजिक भूमिका को स्पष्ट करते हुए वे कहती हैं–'लोग कहे मीरा भई बावरी/न्यात कहे कुलनासी रे।' इसी तरह 'लोग कहे बिगड़ी'। फिर भी मीरा भयभीत नहीं हुई। भगवान कृष्ण के प्रति सर्वात्म भाव से समर्पित मीरा को लोगों ने बिगड़ी कहा, सगे संबंधियों ने रोका-टोका पर मीरा निर्भीक भाव से कृष्ण भक्ति में लीन रही। तत्कालीन सामंतशाही शासन व्यवस्था और राज प्रतिष्ठा की अहमन्यता को चुनौती दी व साधु-संतों के बीच बैठ भगवद् चर्चा करती थी। इस तरह लोकलाज को तिलांजलि दी।[9]

भक्ति में बाधक परिजन और समाज को त्यागने हेतु भी संतों भक्तों ने कहा है। सूर ने कहा—तजौ मन हरि विमुखन को संग/जिनके संग कुबत उपजत है

 ISSN 2278-4632

परत भजन में भंग। तुलसी कहते हैं—जाके प्रिय न राम वैदेही तजिए तिन्हे कोटि बैरी सम जदपि परम सनेही। गवरी बाई इसी परंपरा का निर्वहन करते हुए कहती हैं–समझ रे मन भाई इस जग में जुठी सगाइ/सगु समंधी कलत्र कुटंब सब स्वारथ को मल्यो आइ।....जुठी रे काया जुठी रे माया जुठे ब्हेन और भाई, अंत काल कोई संगी न साथी हंस अकेले जाई।[10]

इसी तरह गवरी गिरधर कु तजि करे जगत से हेत/तीन लोक में ठोर नहीं अंते होय फजेत। '.....' गवरी गिरधर कु तजी प्रीत करै परिवार/उनकी मत कु कहा कहुं वारंवार धिक्कार।[11] यहां विचारणीय यह है कि मीरा का विरोध और त्याग प्रत्यक्ष और व्यावहारिक था जबकि गवरी बाई का भावजगत पर और परंपरा का निर्वहन था।

मीरा बंधन के खंडन पर विश्वास करती है। मीरा के बारे में प्रभाकर श्रोत्रिय लिखते हैं–कविता के ही नहीं अक्षरशः जीव बंध के सारे छंद तोड़ दिए हैं। उसने समाज वर्जित प्रेम किया है कृष्ण से। कृष्ण की भागवत आवृत्ति मीरा की देह और देहोत्तर वाक् में हुई है।[12]

प्रेम के संदर्भ में यह भी महत्त्वपूर्ण है कि गवरी बाई के प्रेम में निर्गुण धारा की तरह ध्यान साधना से प्रेम प्रकट होने का वर्णन भी है। गवरी गुफा समार के धरे एकंतर ध्यान/ प्रेम अंतर प्रगटिया बिना सब ही फीको जान[13] वे नाम स्मरण में प्रेम की प्रतीति जरूरी बताते हुए कहती हैं–प्रेम प्रतीत हिरदे नहीं आवत/रात दिवस कहा गावे रे नाम।[14]

गवरी बाई मानती हैं कि प्रेम के बिना प्रभु नहीं रीझते। प्रेम से ही परमात्मा की प्राप्ति संभव है। प्रेम से मन को नियंत्रित करने और भक्त के भगवान में लीन होने का वर्णन करते हुए कहती हैं—प्रेम बिना रीझे नहीं पूरण परी ब्रह्म राय/प्रेमे प्रभुजी पाइए मन मतंग गल जाय/मन मतंग गल जाय जद प्रेमे प्रभु जी पाइ/प्रेमे गोपी गल गई ज्यूं उदकै लूण समाइ।[15] यहां प्रेम की सामान्य प्रतीति है। संतों ने भी प्रेम को अभिव्यक्त किया पर मीरा का संपूर्ण काव्य कृष्ण प्रेम के इर्द-गिर्द ही है। मीरा ने जो कुछ कहा उनकी आंतरिक अनुभूति की तीव्रता के कारण रागमय होकर गीत रूप में निकला।[16] मीरा का प्रेम कृष्ण को अपने समीप मानते हुए था।' मीरा गिरधर हाथ बिकानी' कहकर वे सर्वस्व समर्पण कर प्रेम करती हैं। वहां ज्ञानावेग नहीं भावावेग है, सांसारिक बोध से परे। वहां प्रेम इस पराकाष्ठा में है कि दुनियावी बोध अतार्किक हो उठता है।[17]

गवरी बाई के काव्य में मीरा से साम्यता के साथ सगुण भक्त सूर,

रसखान, तुलसीदास आदि का भी प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। वे केवल मीरा तक ही सीमित नहीं रही। उन्होंने तुलसीदास की तरह राम और सूरदास, रसखान की तरह कृष्ण के लीला पद भी रचे हैं।

राम जन्मोत्सव पर गवरी बाई 'आज अजोध्यापुर में आनंद'[18] और 'राजा दशरथ ने घेर आनंद भयो री आज प्रकट्या पूरण ब्रह्म'[19] लिखती हैं तो सूरदास, रसखान आदि कृष्ण भक्तों की तरह कृष्ण जन्म पर 'आज तो नंदजु के द्वार भाइ हरख बधाई'[20] लिखती हैं। बाल लीला के अंतर्गत कौशल्या द्वारा राम को गोद खिलाने का वर्णन करते हुए गवरी बाई कहती हैं 'कौसल्या हरि कूं गोद खिलावै'[21] तो यशोदा द्वारा कृष्ण का दुलार करने पर 'जसोदा रानी अपने लाल कुं लड़ावै प्रेम के गोद पर प्रभु कुं खेलावे'[22] और पालने में झुलाने पर 'पारणे झुले श्री गोपाल'[23] लिखती हैं।

लीलागान में भक्तों ने होली या फाग खेलने का भी वर्णन मिलता है। फाग के संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि भक्ति काल के परवर्ती रचनाकारों ने राम के फाग खेलने का भी वर्णन किया। गवरी बाई कृष्ण लीला में होली के पद 'नीको लागै सामरो होरी खेलीए हो'[24], और 'होरी खेले मदन गोपाल'[25] रचती हैं तो राम के भी फाग खेलने के पद रचती हैं—'हेरी जल कैसे जाऊं रघुनाथ खेलै फाग'[26] इसी प्रकार 'हेरी रघुनंदन मेरी होरी खेले सरज्यू के तीर'।[27]

सगुण भक्ति से साम्य के संबंध में यह भी उल्लेखनीय है कि सगुण भक्तिधारा अवतार पर विश्वास करती है और इसी क्रम में मीरा के साथ सभी सगुण भक्तों ने विभिन्न अवतारों की लीलाओं का गान भी किया। मीरा ने कहा—मन रे परस हरि के चरण .....जिन चरण प्रहलाद भेट्यो इंद्र पदवी धरण/ जिन चरण ध्रुव अटल कीनै राखि अपनी शरण/जिन चरण ब्रह्मांड भेंट्यो नख शिख श्री भरण/जिन चरण प्रभु परसि लीनै तरि गौतम घरण।[28]

विभिन्न अवतारों की लीलाओं का गान सूर तुलसी ने भी किया। सगुण भक्तों की तरह गवरी बाई ने भी विभिन्न अवतारों के साथ भगवान के भक्तवत्सल, कृपा निधान और मुक्तिदाता रूप का वर्णन किया है। अहिल्या, द्रोपदी और पांडवों की सहायता के प्रसंगों का वर्णन करते हुए गवरी बाई कहती हैं हरी भज हरि भज हरि भज भाई....नाम प्रताप सल्या तर जाई/गौतम नारी श्राप से मिटाई/ द्रुपद सुता समर्या यदुराई द्वारका से धाए चीर बढ़ाई/पांच पांडव की कीनी सहाय/ लाखा ग्रहथी लिना बचाई।[29]

इसी तरह गवरी बाई ने विभिन्न अवतारों में भक्तों की संकट से मुक्ति का

दृष्टांत देते हुए अपनी मुक्ति कामना भी की है। कुण मेरो जनम सुधारे प्रभु बिना/ अजामिल सुत हेते तार्यो गज ग्राह थीं छोडायो रे/द्रुपद सुता की लज्जा रख्वी द्वारका से वेगे धायो रे/भारत में प्रण भीष्म का रख्वा अमरीष श्राप न लाग्यो रे/ भगत कारन सुदरसन भेजा दुरवासा जाये भाग्यो रे/गवरी कहे भवसागर तारो केसव तुंही खेवैयो रे।[30]

गवरी बाई के पदों पर कबीर आदि निर्गुण संतों का प्रभाव भी स्पष्ट दिखाई देता है। इन्होंने अनहद नाद, ब्रह्म रंध्र, भंवर गुफा, सुरत-निरत, इड़ा पिंगला, षट् चक्र आदि यौगिक शब्दों का प्रयोग किया है। सुन वे संत ग्यानी को अनहद धुनी, गगन मंडल में बाजा बाजै/मुरली सुनी प्राण कुं बंधकर पवन बंध में लाया /चंद्र सूरज एकी घरु मिलाया, गंगा यमुना उलटी बही/ झलक मोती घट में उजाला भया झलहल/ज्योति पांचु सखी अमीरस पीवै झिलमिल/मधुकर विलंब्यो है जहां कमल की कली/गवरी सतगुरु चरन ध्यान उनमनी घरी/घट घट सचराचर में निरखत हरी।[31]

हठयोग की तरह पवन बंध लगाने, चंद्र सूर्य (स्वर या नाड़ी) को मिलाने, गंगा जमुना को उल्टे बहाने, ज्योति, अमृतरस पान करने आदि प्रतीकों का प्रयोग निर्गुण भक्ति का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित करता है। हां निर्गुण से जो अंतर दिखाई देता है वह यह है कि इन्हें जो ध्वनि सुनाई देती है वह मुरली की है।

मीरा लोकलाज और पर्दे का त्याग करती है जबकि गवरी बाई के पदों में साधना के स्तर पर लोकलाज के पर्दे का त्याग है। मीरा का विरोध और त्याग प्रत्यक्ष था। गवरी बाई ने कल्पना की है। सप्त भूमी का अजब झरोखे हरी का दरसन पाउं रे/लोक लाज का पड़दा में तोहे तो अलग फगाऊं रै/नाभ कमल से ल्हर चढ़ाऊं उलटा पवन बहाऊं रे/हद छांड़ी बेहद में रहणा अनहद नाद सुनाऊं रे/इंगला पिंगला सुषुम्ना साधी त्रिवेणी के तट न्हाऊं रे।/भमर गुफा में आप बिराजे जहां से सुरत लगाऊं रे।[32]

यहां लोकलाज के पर्दे को फैंकने का वर्णन तो है पर वह साधना के स्तर पर है। लोकलाज त्याग कर नाभि चक्र से लहर चढ़ा कर, उलटी पवन बहाकर, अनहद नाद सुनते हुए, इड़ा पिंगला सुषुम्ना को साधकर त्रिवेणी तट पर स्नान कर, भंवर गुफा में विराजने वाले प्रभु में सुरत लगाने की बात है। जैसे निर्गुण संत परमात्मा से आध्यात्मिक मिलन के समय, पूरी तरह समर्पण की भावना से तन मन रत करने को कहते हैं। कबीर कहते हैं 'रामदेव मोरे पाहुने आए मैं जोबन में माती..... कहे कबीर हम ब्याहि चले हैं पुरुष एक अविनाशी।[33]

भक्ति काव्य में स्त्री भक्तों-संतों के साथ पुरुष भक्तों-संतों में भी भाव जगत में प्रेम और समर्पण दिखाई देता है। मैनेजर पांडेय भक्तों के भाव जगत और भौतिक जगत के अंतर को स्पष्ट करते हुए कहते हैं–कबीर जायसी व सूर के सामने चुनौतियां व कठिनाइयां भाव जगत की थी। मीरा के सामने भाव जगत से अधिक भौतिक जगत की, सीधे पारिवारिक और सामाजिक जीवन की चुनौतियां व कठिनाइयां थी।[34]

मीरा कहती है 'अपने घर का पर्दा कर ले/ मैं अबला बौरानी' तो गवरी बाई यूटोपिया रचती है। शरीर में ही स्थित ऐसा लोक जहां आत्म का लीला विस्तार है, भ्रमर का गुंजार है, अनहद नाद है गोप गोपी होली गाते हैं, माया नहीं है, हर ओर हरि है। जहां गोपी कान्हा में लीन हो जाती है वहां न केवल पर्दे का त्याग है बल्कि वर्ण अवर्ण भेद मिटने का भी जिक्र है। –अष्ट कमलदल फुले सार आतम निज करे क्रीड़ा अपार/सुरत निरत धरी देखो मुजार भ्रमर करे शब्द गुंजार/अनहद शब्द बाजे जहां तुर कोई प्होंचे विरला शुर/गोप गोपी मिली होरी गाये जहां मनसा मेरी रही लुभाए /दिन दिन बढ़ी है अधिक प्रीत वहां नहीं रहीवे कुछ भी रीत/वरणावर्ण का रल गया भान एक लीन भई गोपी कान/माया मोह दीसे नहीं काय/जीत देखुं तित हरी हरी होय/गवरी दिया परदा कुं त्याग ग्यान गुलाले खेलत है फाग।[35]

कबीर, रैदास, मीरा आदि की तरह गवरी बाई एक आध्यात्मिक लोक की कल्पना करती हैं। जहां जन्म और जरा नहीं है, जहां एक ही जाति और वर्ण है, जहां गोपी और गोपाल वसंत रमण करते हैं। गवरी बाई वहां बसना चाहती है चलो हंसा जइये वसो विदेश/जहां जनम जरा नहीं उन देश जहां रवि शशी को नहीं परवेस .....नहीं वरणा वरण जहां आश्रम/एक वरण एक जात सोहाये...गवरी जहां नहीं जीव जंत रे /गोपी गोपाल रमे वसंत रे।[36]

ये पद सगुण निर्गुण भक्ति धारा के समन्वय के उदाहरण है। निर्गुण परिचायक शब्द अनहद नाद, सुरत निरत, अष्ट कमलदल, ज्ञान गुलाल से फाग खेलने जैसे शब्दों के साथ अनहद नाद में मुरली की धुन, गोपी का कान्हा में लीन होने और 'उस देश' में गोपी गोपाल का रमण निर्गुण सगुण समन्वय का उदाहरण है।

कबीर ने गगन घटा घहरानी, संतो आई ज्ञान की आंधी के माध्यम से ज्ञान का महत्त्व बताया था। गवरी बाई ने भी ज्ञान घटा का जिक्र किया है और इस घटा से ध्रुव, प्रहलाद, कबीर, रैदास आदि सगुण निर्गुण दोनों के रस पीने का उल्लेख किया है। ज्ञान घटा घेरानी अब देखो/सतगुरु की किरपा भई मुझ पर

शब्द ब्रह्म पहचानी ....../ध्रुव, प्रहलाद, कबीर, रोहीदास रस पीये शंकर ग्यानी/गवरी अनुभव स्वयं प्रकासा आप में आप समानी।[37]

गवरी बाई के पदों में निर्गुण सगुण भक्तों से साम्यता या प्रभाव ग्रहण के साथ मौलिकता के संदर्भ में मथुरा प्रसाद अग्रवाल और ज्योतिपुंज कहते हैं–गवरी बाई रचित पदों पे संत कबीर, सूर, मीरा आद भक्त कवियां रो प्रभाव स्पष्ट पर मौलिकता री कमी नीं। सहज, सरलता, तन्मयता अर लय भरपूर। लय रे बिना तो कोई भी उद्गार काव्यमय कदी नीं वे'ई सके।[38]

गवरी बाई के काव्य में राम, कृष्ण, शिव आदि के संदर्भ में विचारणीय है कि भक्ति काल में अनेक संतों ने ऐसा किया है। स्वयं कबीर ने भी राम, हरि, विट्ठल, गोपाल आदि विभिन्न नामों से निर्गुण ब्रह्म को संबोधित किया है। संत मावजी, दुर्लभ रामजी और गवरी बाई का उल्लेख करते हुए डॉ. एल.डी. जोशी लिखते हैं—ये संत भक्त कृष्ण के उपासक हैं परंतु ब्रह्मा विष्णु महेश या किसी अन्य देवी-देवता का कहीं विरोध नहीं है। राम और श्याम को एक ही मूलतत्त्व का विभिन्न रूप माना है।[39]

गवरी बाई के काव्य में निर्गुण कवियों की तरह चित चेतन को अंग, हिरदा शुद्धि को अंग, सतगुरु कृपा को अंग, मिथ्या आचरण को अंग, गोविन्द प्राप्ति को अंग शीर्षक से पद है। सतगुरु महिमा, संसार की असारता, माया से दूरी, प्रेमरस पान, चित् चेतन, ध्यान, हृदय शुद्धि, ज्ञान का महत्त्व, पाखंड विरोध, शिव भक्ति आदि विषयों पर भी गवरी बाई ने पद रचना की है।

संदर्भ

1. मैनेजर पांडेय संकलित निबंध, पृ. 227, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया ('शृंखला की कड़ियां-मुक्ति की राहें' निबंध)
2. कल्याण, नारी अंक, पृ. 843, गीता प्रेस गोरखपुर, सं. 2072
3. गवरी बाई (भारतीय साहित्य रा निरमाता)—मथुरा प्रसाद अग्रवाल एवं ज्योतिपुंज, साहित्य अकादमी, 1996, पृष्ठ 10
4. वही पृ. 16 (गुजरात वर्नाक्यूलर सोसायटी संग्रे, पद 68)
5. मीरा पदावली, शंभुसिंह मनोहर, पृ. 106, रिसर्च पब्लिकेशंस, जयपुर 1969
6. वही पृ. 142
7. गवरी बाई (भारतीय साहित्य रा निरमाता)—मथुरा प्रसाद अग्रवाल एवं ज्योतिपुंज, साहित्य अकादमी, 1996, पृ. 20 (गुजरात वर्नाक्यूलर सोसायटी संग्रे, पद 557)

8. वही
9. मीरा का काव्य, भगवान दास तिवारी, पृ. 72, साहित्य भवन, इलाहाबाद
10. गवरी बाई (भारतीय साहित्य रा निरमाता)—मथुरा प्रसाद अग्रवाल एवं ज्योतिपुंज, साहित्य अकादमी, 1996, पृ. 56, संकलित पद (गुजरात वर्नाक्यूलर सोसायटी संग्रे पद 287)
11. वही पृ. 69, संकलित पद (गुजरात वर्नाक्यूलर सोसायटी संग्रे 396 में साखियां गोविन्द प्राप्ति को अंग)
12. कवि परंपरा तुलसी से त्रिलोचन, प्रभाकर श्रोत्रिय, भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली 2009 पृ. 47 (मीरा पांच सौ बरस की युवती)
13. गवरी बाई (भारतीय साहित्य रा निरमाता)—मथुरा प्रसाद अग्रवाल एवं ज्योतिपुंज, साहित्य अकादमी, 1996, पृ. 63, संकलित पद (गुजरात वर्नाक्यूलर सोसायटी संग्रे 395/5)
14. वही पृ. 65, संकलित पद (गुजरात वर्नाक्यूलर सोसायटी संग्रे पद 313)
15. वही पृ. 63, संकलित पद (गुजरात वर्नाक्यूलर सोसायटी संग्रे 395/4)
16. मीरा पदावली, परशुराम चतुर्वेदी, पृ. 86, हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, 2002
17. कवि परंपरा तुलसी से त्रिलोचन, प्रभाकर श्रोत्रिय, भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली 2009 पृ. 49 (मीरा पांच सौ बरस की युवती)
18. गवरी बाई (भारतीय साहित्य रा निरमाता)—मथुरा प्रसाद अग्रवाल एवं ज्योतिपुंज, साहित्य अकादमी, 1996, परिशिष्ट गुजरात वर्नाक्यूलर सोसायटी संग्रे पद 17
19. वही, पद 19
20. वही, पद 133
21. वही, पद 21
22. वही, पद 135
23. वही, पद 140
24. वही, पद 89
25. वही, पद 117
26. वही, पद 27
27. वही, पद 28
28. मीरा पदावली, शंभुसिंह मनोहर, पृ. 97, रिसर्च पब्लिकेशंस, जयपुर 1969

29. गवरी बाई (भारतीय साहित्य रा निरमाता)—मथुरा प्रसाद अग्रवाल एवं ज्योतिपुंज, साहित्य अकादमी, 1996, पृ. 59, संकलित पद (गुजरात वर्नाक्यूलर सोसायटी संग्रे पद 373)
30. वही, भूमिका में (गुजरात वर्नाक्यूलर सोसायटी संग्रे, पद 534)
31. वही, पृ. 21 (गुजरात वर्नाक्यूलर सोसायटी संग्रे पद 487)
32. वही, पृ. 66, संकलित पद (गुजरात वर्नाक्यूलर सोसायटी संग्रे पद 462)
33. कबीर ग्रंथावली, डॉ. श्यामसुंदर दास, पृ. 68, नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी सं. 2057
34. भक्ति आंदोलन और सूर का काव्य, मैनेजर पांडेय, पृ. 41
35. गवरी बाई (भारतीय साहित्य रा निरमाता)—मथुरा प्रसाद अग्रवाल एवं ज्योतिपुंज, साहित्य अकादमी, 1996, पृ. 17
36. वही, पृ. 79, संकलित पद(गुजरात वर्नाक्यूलर सोसायटी संग्रे पद 421)
37. वही, पृ. 14 (गुजरात वर्नाक्यूलर सोसायटी संग्रे पद 531)
38. वही, पृ. 22
39. राजस्थान का संत साहित्य, संपा. डॉ. वसुमती शर्मा, कमल किशोर सांखला, पृ. 340, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर, 2002 (डॉ. एल. डी. जोशी का लेख बागड़ में संत परंपरा निष्कलंक संप्रदाय और उसके उत्तराधिकारी गादिपति आचार्य)

डॉ आशाराम भार्गव

सहायक आचार्य हिंदी

चौ. बल्लूराम गोदारा राजकीय कन्या महाविद्यालय, श्रीगंगानगर

❑❑❑

राजस्थान की कृषि संस्कृति का आधार स्तम्भ : ला प्रथा

• देवेन्द्र कुल्हार

सारांश :

राजस्थान की कृषि संस्कृति का आधार स्तम्भ *'ला प्रथा'* है। यह अद्वितीय परम्परा है जो राजस्थान की गौरवपूर्ण इतिहास का शिखर बिन्दू है। इस प्रथा को राजस्थान के अलग-अलग भागों में ल्हास, लाह या ला नाम से पुकारा जाता है। *'ला'* के अनेक प्रकार जैसे *संगाला ला, सिरोली ला, रावली ला, फाटी ला, हेला ला, आधी ला और पिड़ बड़ी ला* प्रमुख है। *ला प्रथा* के समय किसानों के उत्साह बना रहे इसलिए जोशीले गीत गाये जाते थे, जिनको *'भणत'* कहा जाता था। भणत लोकगीत आपसी भाई-चारे और समरस्ता के प्रतीक होते थे। 20वीं शताब्दी तक सम्पूर्ण राजस्थान में *'ला'* की आवाज गुंजती थी। वर्तमान समय में यह प्रथा केवल पश्चिमी राजस्थान के कुछ जिलों तक सिमट के रह गयी है।

कूट शब्द : *कृषि संस्कृति, ला, भणत, लहासिये, सगाला और सिरोली ला*

हमारा इतिहास पत्थर के महलों में नहीं वरन् खेत की मिट्टी में दफन है। ऋषि और कृषि भारतीय इतिहास की धुरी रही है। जहाँ ऋषियों ने संस्कृति को जीवित रखा, वहीं कृषि ने सभ्यता को जीवित रखा। सम्पूर्ण भारतीय इतिहास में राज्य की आय का प्रमुख स्त्रोत् कृषि भू-राजस्व रहा है। यही भू-राजस्व कृषि इतिहास का मील का पत्थर है। जब तक शासक की कृषि व्यवस्था अच्छी रही है, राज्य का शासन अच्छा रहा है। जब कृषि व्यवस्था का स्वरूप बिगड़ा है तो राज्य का स्वरूप ही बिखर गया है। खेत में कृषि करते किसान के बदन से टपकती पसीने की बूँद, खून से लथपथ तलवार से गिरती बूँद से कम नहीं थी।

 ISSN 2278-4632 जनवरी-जून 2023

जहाँ लहराती तलवारों ने राज्य का विस्तार किया तो वहीं खेत में लहराती फसल ने राज्य की नींव को मजबूत रखा।[1]

राजस्थान का इतिहास त्याग, बलिदान एवं शौर्य की एक अनुपम प्रस्तुति रही है। राजस्थान की मिट्टी का कण-कण इस यशोगाथा का गुणगान करता है। राजस्थान की रंग बिरंगी संस्कृति इस धरा को रंगीलो राजस्थान के नाम से सुशोभित करती है।[2] यह धरा धन्य है जो साम्प्रदायिकता सौहार्द की मिसाल, ऋषियों की तपोभूमि व कृषकों की कर्मभूमि रहीं है।[3] कृषकों की स्नेह, समता और सहयोग की भावनाओं का उत्कृष्टतम रूप आज भी देखने को मिलती है। राजस्थान में आज भी सृजन और सहकारिता के ताने-बाने से बुनी एक प्रथा है– *ला प्रथा*। यह प्रथा सामाजिक सहयोग की एक अप्रितम मिसाल है।

इस शोध पत्र में राजस्थानी कृषि संस्कृति की अद्वितीय परम्परा 'ला' का विवेचन किया जायेगा। ला प्रथा का सम्पूर्ण विवेचन हम तीन भागों में बाँट कर अध्ययन करेंगे। प्रथम :–*ला प्रथा* की प्रक्रिया, द्वितीय :–*ला प्रथा* के प्रकार व तृतीय :– *ला प्रथा* में गाये जाने वाले गीत–भणत।

राजस्थान में *'ला प्रथा'* को अलग-अलग नामों से पुकारा जाता है। पश्चिमी राजस्थान में इसे ला कहा जाता है। शेखावाटी क्षेत्र में इसे *'ल्हास'* कहा जाता है।[4] इतिहासकार जहूर खाँ मेहर के अनुसार ''शुष्क मरूस्थल के वासियों की गले की कम्पन्न विस्तार की झिल्ली मोटी होने के कारण उनकी जिह्वा शब्दों का जल्दी-जल्दी उच्चारण नहीं कर पाती है। अत: कई शब्द के कुछ अक्षर कम हो जाते है। लाभ से *'लाह'* शब्द बना है और धीरे-धीरे 'ह' शब्द का लोप हो गया और केवल *'ला'* शेष रह गया।''[5] शेखावाटी क्षेत्र में *'ल्हास'* शब्द *'लापसी'* से बना है। ल्हास करते समय उस समय किसान के घर का स्वादिष्ट भोजन केवल *'लापसी'* को माना जाता था। लापसी का अपभ्रंस ल्हास हो गया।[6] *'ला'* की जरूरत या आवश्यकता क्यों रही होगी? इसका भौगोलिक एवं सामाजिक दोनों कारण प्रतीत होते है। भौगोलिक कारणों में जहाँ मरुस्थल होने के कारण मजदूर उपलब्ध नहीं होते थे व सामाजिक कारणों में उस समय सभी लोग कृषि कार्यों से जुड़े हुए थे और कृषि परिश्रम योग्य परिवार के कम सदस्य होते थे इसलिए आपसी भाईचारे और सहकारिता की भावना ने जन्म लिया।

'ला' का आयोजन से पूर्व जिस कृषक के खेत में *'ला'* होती थी, वह गाँव के प्रत्येक घर में सूचना देता था कि अमुख दिन मेरे खेत में *'ला'* है। कृषक *'ला'* का प्रकार भी बताता था या कहे कार्य की प्रकृति बताता था कि जैसे अनाज की बालियाँ काटनी है, निनाण करता है, सूड़ करना है, लाटा निकालना

है, खारीया काटना आदि। निश्चित दिन सुबह की पौ फटते ही गाँव के समस्त परिश्रम योग्य पुरुष *'ला'* के निर्धारित स्थान पर पहुँच जाते थे। कार्य की प्रकृति की पूर्व जानकारी होने पर प्रत्येक व्यक्ति अपने साथ कृषि उपकरण ले जाता था। *'ला'* में शामिल होने वाले कृषक को पश्चिमी राजस्थान में *'लाया'* और शेष राजस्थान में *'ल्हनसिया'* कहा जाता था।[7]

युद्ध में हरावल के सूरमां जैसे शत्रुओं पर टुट पड़ता है वैसे ही 'लाये' खेत में पहुँचते ही धावा बोल देते है। *'लाये'* कभी भी आलस्य नहीं करते है। इस संदर्भ में एक कहावत है *''ल्हासिया बड़िये सू बिवणो कारज साजै''* अर्थात् ल्हासिया मजदूर से ज्यादा काम करता है। *'लायो'* के बीच काम का वितरण कर दिया जाता है जिससे *'लायो'* आलस्य नहीं कर पाता है। जो *'लायो'* सबसे ज्यादा काम करता है उनके पैरों या हंसिया पर घुंघरू बाँध दिया जाता था। घुंघरू और *'लाये'* द्वारा गाया जाने वाला लोक गीत *'भणत'* के बीच एक खास लय निकलती है जिससे शरीर में स्फूर्ति बन रहती है। सभी *'लाये'* दोपहर तक तेज धूप निकलने तक काम में जुटे रहते है। मेजबान के द्वारा दोपहर का भोजन की व्यवस्था करी जाती थी जिसे सीरावन/दोपहरी[8] कहा जाता था। इस भोजन के अन्दर खाटा[9], सोगरा[10], लापसी[11] या गुड़ का हलवा होता था। भोजन के बहाने लहासियों को विश्राम करने का अवसर मिला जाता था। भोजन करने के समय कुछ कामचोर लोग भी आ जाते थे जो *'ला'* का निमन्त्रण की तो हाँ भर लेते थे परन्तु फिर न आने के बहाने तैयार रखते थे। इन्हें जन साधारण भाषा में *'पलाय'* कहा जाता था। *'पलाय'* के संदर्भ में राजस्थान में एक कहावत प्रचलित है *''काम सरै लाया रै पाण पेट पलै पलायां रो''*[12]

दोपहर का भोजन करने के बाद *'ल्हासियों'* में थकान आना स्वाभाविक होता था। इस समय ल्हासियों द्वारा एक लोकगीत गाया जाता था जिसे *'भणत'* कहा जाता था। जिस कृषक को भणत याद होती थी उसे भणतिया कहा जाता था। भणतिया काम करते हुए भणत बोलना शुरू कर देता था तो पीछे-पीछे 'लाये' भी विशेष लय के रूप में साथ में *'भणत'* बोली जाती थी।[13] भणत से ल्हासियों में जोश का संचार होता था जिससे वे तेजी से खेत में काम करते थे। यहाँ कुछ 'भणत' का जिक्र करना आवश्यक है जैसे—

''करै बोळाळो रै बोळे ओ भाई
ठंडी रै वेळा रे बोळे ओ भाई
थोड़ोक मीठो बोळे रै भाई.....''[14]

''सामळे धैरे-हाळ भाई
चढ़ी रे पिरौसों बोळ भाई
पौडिड़ो पिळासौ बोळ भाई
काँवड़ो (पुत्र) जगमाळ भाई....''[15]

''भळौ जो मिळियो मेळ ओ भाई
सळियों रे करणो काम ओ भाई
ओ अपणै सेंणा रो है खेत भाई
सावण बूढ़ा ळैवे है जो भाई....''[16]

भणत बहुत लंबी-लंबी होती थी, हम यहाँ केवल शोध पत्र अनुसार उल्लेख किया है, बाकी पूर्ण *भणत* शोध पत्र के अंत में है।

भणत किसी भी साधारण से साधारण स्तर के व्यक्ति के समझ में आने वाली लोकगीत है। इन *भणतों* में कृषक समाज के भोलेपन व निष्कपट आत्मा का प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है। भाइयों एकता रखो, मृदभाषी बनो, सत्य बोलो आदि प्रकार की बातें *भणत* में होती थी। उत्साह और स्पर्धा में *ल्हासिये* सायंकाल तक सारा कार्य सम्पन्न कर देते थे और रात्री का भोजन अपने घर पर करते थे।

लाह के अनेक प्रकार प्रचलित थे। इसमें *उठाऊ लाह सगला लाह, सिरोली लाह, रावली लाह, फाटी लाह, हेला लाह, आधी लाह और पिड़ बड़ी* आदि प्रमुख थी। *उठाऊ लाह* के अन्तर्गत दूरदराज के किसी परिचित को लाह का जिम्मा देना और उसके माध्यम से *लाह* करवाना *उठाऊ लाह* कहा जाता था।[17] *सगाला लाह* के अन्तर्गत अपने समधी के कार्य को निपटाने के लिए गाँव के लोगों को *सगोजी* (समधी) बुलाता है। इस लाह में भोजन की विशेष खातिर होता है।[18] इस *लाह* को सामान्यत: सगा *लाह* भी कहा जाता है।[19] *सिरोली लाह* जिसे *साझे की लाह* भी कहते है। इसमें वर्षा पूर्व गाँव के सूखे तालाब को खोदने का काम किया जाता था। इस लाह में स्त्रियाँ और बच्चे भी शामिल होते थे। इस लाह का आयोजन गाँव के चौधरी कामदार या कोठारी करवाते थे।[20] *रावली लाह,* लोकप्रिय जमींदार बेगार की अपेक्षा *'लाह'* को करवाते थे। रावली *लाह* में गाँव का नाई और ढोली विशेष उत्साह से काम करते थे। इस *लाह* में काम सम्पन्न होने के बाद शराब की महफिल होती थी।[21]

हेला लाह में खेत का मालिक आस-पास के किसानों के *हेला* (ऊँची

आवाज में बोलकर पुकारना) करता था।[22] इस *लाह* में *लहासिए* अपने भोजन की व्यवस्था स्वयं करते थे। वे अपने साथ *सोगरे की रोटी* और *प्याज* ले जाते थे। इसी *लाह* से संबंधित *पिंड़ बड़ी लाह* होती थी। *पिंड़ बड़ी लाह* में जिस कृषक के यहाँ हेला लाह कर के आया था वह उसके इस अहसान को किसी भी दिन उतार कर आता था उसे बड़ी *पिंड़ लाह* कहा जाता था। *फांटी लाह* एक अश्लील *लाह* होती थी जिसमें केवल गाँव के नवयुवक ही शामिल होते थे। इस *लाह* में भेड़ और ऊँट की ऊन उतारने का काम किया जाता था। जब ऊँट की जट उतारी जाती थी तो उसे *आधी लाह* भी कहा जाता था।[23]

लाह के अन्दर जो लोक गीत गाये जाते है उन्हें *'भणत'* कहते है। ये *भणत* गाने वाले को *भणतीया* कहा जाता है। *भणत* गीत कृष्ण वेला का लोकगीत है जिसे खसी या हंसिये पर घुंघरू बांध कर गाया जाता है। *भणत* बहुत ही सरल होती थी किंतु ये बड़ी होती थी, जो कई घण्टों गायी जाती थी। यही कारण था कि *लाह* के अन्दर *भणतियों* का विशेष महत्व होता था। *भणत* अलग-अलग क्षेत्र की अलग-अलग होती थी। पश्चिम राजस्थान के कुछ जिलों में आज भी *भणत* की गुंज सुनाई देती है।

कुछ महत्वपूर्ण *भणत* निम्न है—

''सामळे धौरे हाळ भाई।
चढ़ीरे पिरौसो बोळ भाई।
पोड़िडों पिळासौ बोळ भाई।
काँवड़ो (पुत्र) जगमाळ भाई।
बौधण फेन्टो ळाळ भाई।

चढ़णै तेळी तोड़ भाई।
मगरौं में बोळे मौर भाई।
थोळे बळध री जोड़ भाई।
काळे बळध री जोड़ भाई।
ळेवणों होवे तो बोळ भाई।
कर थोळे रो मोळ भाई।
ळेवणों रा नौ ळाख भाई।
सिधाढ़ी रा साठ भाई।
सिधाढ़ी रा साठ भाई।

 ISSN 2278-4632

कोनो रा करोड़ भाई।
पूछड़ी रा पचास भाई।
ळेवणों होवे तो बोळ भाई।
कड़ियों री नवळी खोळ भाई।
औ धोळे रो मोळ भाई।''[24]

''भळो जो मिळियों मेळ ओ भाई
सळियों रे करणो काम ओ भाई
ओ अपने सेणा रो खेत भाई
सावण बूढ़ा ळैवे है ओ भाई
भादवे रो धोर ओ भाई
धुर में चमके आ बीज ओ भाई
धुर ने सब भरिया डैर ओ भाई
मिळ ने रै सब बोळो रे भाई
जाणो रे धुरियौ ढोळ ओ भाई
चाँदणकी रै घट रात ओ भाई
सळिया रे करदो काम ओ भाई
छोटे के कण रो धान ओ भाई
जूनों रे मिळियों हमें मेळ ओ भाई
आँसू औ तपिया तावड़ै ओ भाई
जोगी रे होग्या जाट अे भाई
जोगी रे बणिया जंजाळ अे भाई
खंचिया रे म्हे सुरचाण अे भाई

घूघरिया जड़ावे रे ओ भाई
रमळी रे मटकी रो दाब है भाई
भळै रे करजो काम ओ भाई
भळां रो है बरवाण ओ भाई
जवानी रा दिन चार ओ भाई
बुढ़ापों पण है त्यार ओ भाई
काळे रे केसां काम ओ भाई

ळळकारों ळगावे है रे भाई
सेढ़े रो सेढ़ाणों है रे भाई''25

''करै बोळाळो रै बोळे ओ भाई
ठंडी रै वेळा रे बोळे ओ भाई
थोड़ोक मीठो बोळे रै भाई
गहरो रै गर्वो बोळे ओ भाई
भीरू रे भेळो बोळे आ भाई
थोड़ोक मधरो बोळे ओ भाई''26

पश्चिम राजस्थान में *अमलीड़ो*[27] को भी भणत के रूप गाया जाता है। एक प्रसिद्ध अमलीड़ो है—

''अमलीड़ो बणजारो रे भाई
छोटा कूड़ी लाई रै अमली
भर-भर कूड़ा पाई रै अमली''28

'लाह' के अन्तर्गत कुछ ऐतिहासिक भणत भी गायी जाती थी। सुप्रसिद्ध डिंगल कवि करणीदान का प्रसिद्ध गीत है, जो बड़ली के लाल सिंह ने मराठा आक्रमण के समय दिखाई गयी वीरता के ऊपर लिखा था। इस गीत में 'लाह' को युद्ध क्षेत्र की उपमा देकर रुपक बांधा है:—

पौहौ कीरत बीज खेत राजपूती, दाह सत्रां उर खाद दियौ
हळ भालौ करतां बड़ हाळल, करसण आरम्भ गजब कियौ।
कांकळ कंदळ बाहणी काढै, महपत सबळ घणा मळ माण
सत्रहर डगळ किया सह सूंधा, दळ चांवर फेरे देवाण।
अरि चारौ जड़ हूंत उपाड़ै, साकुर धोरी हांक सर
ल्हास करै फोजों बड़ लंगर, कीध निनांण हमर कर।
लंगर बंध दुलावत लाला, सुपह दात परसी कर सार
सर डूंचण दुसहां नवसहसा, बड़ करसा झौका बड़वार।
पाहड़हरा अवर कुण पूगै, जग थारा हासल रै जोड़
रस आई जाणी रजवाड़ा, रजवट री खेती राठौड़।

इस गीत का राजस्थानी भाव इस प्रकार है—

हे लालसिंघ थूं वैरियां रै हीयैं में अग्नि रूपी खाद दे अर रजवट रूपी खेत

में कीर्ति रूपी बीज वायौ है। हे महाकिसान हळ रूपी भालौ लै र थूं अजब ई खेती करी। जुद्ध में हळ सूं जड़ी री बाहणी काढी, हे महपत थूं मोटी मोटी अबखायां नै उखाड़ फेंकी। वैरी रूपी डगळां नै सवां कर नै सत्रु दल में चांवर फेर दी। अस्व रूपी बैलां नै हांक अर वैरी रूपी घास नै जड़ामूळ सूं उखाड़ फेंकियौ। वैरी री जंगी फौज में *ल्हास* कर नै थूं निदाण रूपी हमलै सूं वैरी री फोज रौ पाप इज काट दियौ। थें वैरियां रा माथ काट दिया, हे महाकिसान थनै घणा घणा धिन। हे, पहाड़सिंह रा पोता थूं जो हासल लियौ उण री जोड़ में कुण पूग सकै। थारी करणी सूं देखियौ कै थारै वंस नै राजपाट रूपी खेती सागेड़ी रास आई है।[29]

वर्तमान समय में *लाह* प्रथा केवल पश्चिमी राजस्थान के बाड़मेर, जोधपुर और जैसलमेर तक सिमट गई है। पूर्वी राजस्थान में पूर्णतः लुप्त हो गई है। शेखावाटी क्षेत्र में यह प्रथा अपना अस्तित्व के साथ संघर्ष कर रही है। नागौर क्षेत्र के आस-पास गाँवों में आज भी *'लाह'* होती है परन्तु दुर्भाग्य है की *'भणत'* के स्थान पर आधुनिक डीजे के गानों का प्रयोग होने लगा है। जोधपुर क्षेत्र में लाह आज भी विद्यमान है। जोधपुर क्षेत्र में लाह की दो लोक किदंवतीयाँ आज भी प्रचलित है। जोगियों वाली लाह[30] और भाखर वाले गाँव की लाह।[31] निष्कर्ष में कहा जा सकता है कि राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास अद्वितीय है। इस सांस्कृतिक इतिहास का एक मील का पत्थर कृषि संस्कृति की *लाह* प्रथा हैं। लाह केवल कृषि कार्यों में नहीं होती थी, यह गाँव के प्रत्येक काम के लिए होती थी। किसान के घर बनाने झोपड़ी बनाने, शादी विवाह और पारिवारिक संस्कारों के निर्वहन में लाह का आयोजन होता था। लाह की प्रमुख विशेषता थी की इसमें कभी-कभी जाति को आधार नहीं बनाया जाता था। सभी किसान मिलकर काम करते थे।[32] नाममात्र की लागत से और आपसी भाई चारे से सारा काम सुलझा लिया जाता था। एकता और अपनत्व व स्नेहभाव के रीति रिवाजों ने ही राजस्थानी लोगों को कठिन परिस्थितियों में सम्मिलित प्रयत्न करने की प्रेरणा और अपनी सांस्कृतिक धरोहर की रक्षार्थ सब कुछ बलिदान करने का बल प्रदान किया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. कुल्हार, देवेन्द्र : *शेखावाटी क्षेत्र की कृषि व्यवस्था* : झुंझुनूं जिले के विशेष संदर्भ में (18वीं-19वीं शताब्दी), शोध प्रबंध ग्रंथ, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (2023), पृ. सं. xi

02. व्यास, डॉ. राम प्रसाद : *आधुनिक राजस्थान का वृहद् इतिहास*, खण्ड-1, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2019, पृ. vi

03. शेखावत, सुरजन सिंह : *शेखावाती प्रदेश का प्राचीन इतिहास*, सुरजन सिंह शेखावत स्मृति संस्थान, झाझड़ (झुंझुनूं) पृ. 1

04. *साक्षात्कार, कामराज सरपंच, जाति-जाट, निवासी-कुहाड़वास (झुंझुनूं)* उम्र-60, दिनांक 18.07.2020

05. *साक्षात्कार, प्रो. जहूर खाँ मेहर, इतिहासकार, निवासी-जोधपुर,* उम्र-81, दिनांक 28.08.2021

06. *साक्षात्कार, कामराज सरपंच,* पूर्वोक्त

07. मेहर, जहूर खाँ : *राजस्थान संस्कृति का अछूता पक्ष-ला,* संस्कृति पत्रिका, अप्रैल-सितम्बर, 1987, वर्ष 29, पृ. 19-20

08. सुबह के भोजन को *'कलेवा'* कहा जाता है, दोपहर से पहले के भोजन को 'सीरावन' या दोपहरी कहा जाता है। रात्री के भोजन को *'ब्यालू'* कहा जाता है।

09. *खाटा :* बाजरे के आटे और मोठ के आटे को मिलाकर बनाया जाने वाला पेय पदार्थ जिसे स्थानीय भाषा *'कढ़ी'* भी कहा जाता है।

10. *सोगरा* : बाजरे की रोटी

11. *लापसी* : पश्चिमी राजस्थान में लापसी बाजरे से निर्मित होती थी। शेखावाटी क्षेत्र में लापसी गेहूँ के आटा और गुड़ से निर्मित होती थी। दोनों जगहों पर अन्तर की वजह सम्भवतः बाजरे एवं गेहूँ की उपलब्धता रहा है।

12. *मेहर, जहूर खाँ* : पूर्वोक्त, पृ. 20

13. वहीं

14. *साक्षात्कार, जोगराम सारण,* इतिहासविद्, निवासी गिरल (बाड़मेर) उम्र- 40 वर्ष, दिनांक 27.12.2022

15. *साक्षात्कार, सुन्दर देवी,* जाति–मेघवाल, निवासी, छीला गाँव (फलोदी) उम्र-58 वर्ष, दिनांक 13.12.2022

16. *साक्षात्कार, जहूर खाँ मेहर,* पूर्वोक्त

17. *बाड़मेर पत्रिका, बाड़मेर संस्करण,* दिनांक नवम्बर, 2022, पृ. 1

18. मेहर, जहूर खाँ : *राजस्थान संस्कृति का अछूता पक्ष-ला,* पूर्वोक्त, पृ. 20

19. बाड़मेर पत्रिका, पूर्वोक्त

20. मेहर, जहूर खाँ : पूर्वोक्त, पृ. 20

21. वहीं

22. बाड़मेर पत्रिका : पूर्वोक्त

23. मेहर, जहूर खाँ : पूर्वोक्त, पृ. 20-21

24. साक्षात्कार, सुन्दर देवी, जाति-मेघवाल, निवासी-छीला गाँव (फलोदी) उम्र–58, दिनांक 13.12.2022

25. मेहर, जहूर खाँ : धर मजलां धर कोसां, राजस्थानी ग्रंथागार जोधपुर, 2018, पृ. 47-48

26. साक्षात्कार, जोगाराम सारण, पूर्वोक्त

27. अमलीड़ो : अफिम लेने वाला व्यक्ति

28. साक्षात्कार, जोगाराम सारण, पूर्वोक्त

29. मेहर, जहूर खाँ : *धर मजलां धर कोसां*, पूर्वोक्त, पृ. 53

30. *जोगियों वाली लाह* : किसी गाँव में राईके (गड़रिये) ने लाह का आयोजन किया। गाँव की अधिकांश आबादी जोगियों की थी। लाह की पूर्व संध्या निमंत्रण मिलने पर उन्होंने जुलाव से पेट साफ कर खाने की तैयारी कर ली। राईके का खेत गाँव से काफी दूरी पर था। प्रात: जोगियों की टोली गाँव से प्रस्थान किया। मार्ग में विश्राम करते-करते काफी दिन चढ़े खेत में पहुँचे। थोड़ी देर काम का दिखावा किया और फिर भोजन का समय हो गया। सभी जोगियों की खुराक भी सवाई थी। बेचारे राईके का भोजन समाप्त हो गया। भाग-दौड़ कर उसने गाँव से नई सामग्री का आयोजन किया। अव्यवस्था होने के कारण गो-धूलि (शाम) तक मुश्किल से भोजन संबंधी कार्यवाही पूरी हो सकी। जोगियों की काम करने की इच्छा प्रारंभ से ही नहीं थी। इसलिए खाने के बाद अंधेरा होने का बना कर लहासिये नौ-दौ-ग्यारह हो गये। बेचारा राईके को बर्तन इत्यादि लेकर अर्द्धरात्री तक अपने घर पहुँचा। इसी के बाद यह *'जोगियों वाला लाह'* सर्वत्र प्रसिद्ध हो गई।

31. *भाखर वाले गाँव की लाह* : लाह के अन्तर्गत जो व्यक्ति सबसे पीछे रहता था उसके कृषक औजार (उपकरण) पर बंधा घुंघरू खोल दिया जाता था। घुंघरू खोल देना यानी एक प्रकार से अपमान का प्रतीक माना जाता था। जोधपुर के पास भाखर गाँव का एक चौधरी काफी बलवान था। अनेकों बार देरी से आने के बाद भी वह अपना काम इतनी फुर्ती से करता था कि अपने औजार के घुघरू नहीं खुलने देता था। एक लाह के अवसर पर किसी अत्यावश्यक काम के कारण देरी से पहुँचा तो अधिकांश लहासिये अपना काम पूरा कर चुके थे, कई लहासियों का काम अंतिम छोर पर था। एक व्यक्ति जो थोड़ा कमजोर था वह लगभग आधा कार्य ही कर पाया था। चौधरी ने अपना कृषि औजार उठाया और शीघ्रता से कार्य शुरू किया। जल्द ही वह उस व्यक्ति के समीप पहुँच गया। संयोग से उस कमजोर

व्यक्ति की पत्नी वहाँ आई हुई थी। उसने देखा की पति की कार्य करने की गति कम है और गाँव वालों के सामने पति के कृषि औजार के घुंघरू खोले जायेंगे। पत्नी ने आव देखा न ताव, पति के हाथ से हंसिया छीन कर इतनी फुर्ती से काम किया की चौधरी के औजार के घुंघरू खुलवा दिये। उस दिन गाँव का सबसे करारा व्यक्ति एक स्त्री से मात खा गया। उस दिन से भाखर गाँव में कृषि औजार के घुंघरू बांधने की प्रथा समाप्त हो गई। यही *लाह भाखर वाले गाँव की लाह* नाम से प्रसिद्ध हो गयी।

32. साक्षात्कार, तमेग पंवार, सहायक आचार्य, राजस्थान विश्वविद्यालय निवासी— जैसलमेर, दिनांक 29.12.2022

देवेन्द्र कुल्हार

शोधार्थी

इतिहास विभाग

जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

Email : devendra130694@gmail.com

Mob. : 9460054225

❑❑❑

समाज तथा संस्कृति का बदलता स्वरूप : वाराणसी प्रेस के सन्दर्भ में

• डॉ. विनोद कुमार

सारांश

19वीं शताब्दी के दौरान वाराणसी के समाज में प्रचलित विभिन्न प्रथाओं, मान मर्यादाओं तथा रीति रिवाजों की प्रासंगिकता वर्तमान समाज में आज भी है फिर चाहे वह बाल विवाह हो या विधवा पुनर्विवाह, स्त्रियों की शिक्षा तथा अधिकारों की बात हो या हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिक तनाव, गौ-वध का प्रश्न हो या अल्पसंख्यकों की अस्मिता की बात, समाज में जातीय भेदभाव तथा अस्पृश्यता की भावना हो अथवा विभिन्न गैर-कानूनी धार्मिक स्थलों एवं धार्मिक विश्वास का विषय या त्यौहारों के प्रचलन में आते परिवर्तन का प्रश्न। ये सभी विषय जो वर्तमान समाज में बार-बार उठते हैं इनकी पृष्ठभूमि किसी न किसी रूप में 19वीं तथा आरम्भिक 20वीं शताब्दी से जुड़ी हैं जिसकी चर्चा वाराणसी की प्रेस में बारम्बार की जाती थी।

वाराणसी के राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य पर 1962 ई. में मोतीचन्द्र, 1983 में सी.ए.बेली, 1988 में नीता कुमार, 1989 में सेन्ड्रिया बी. फ्रिटेग तथा 1997 में वसुधा डालमिया आदि कई विद्वानों ने कार्य किए हैं किन्तु इस क्षेत्र की 1845 से लेकर 1920 तक की सामाजिक परिस्थितियों को यहाँ की प्रेस के माध्यम से समझने का प्रयास अभी तक उपेक्षित है।

वाराणसी के प्रेस की संक्षिप्त रूपरेखा—वाराणसी पूरे हिन्दी प्रदेश का एक ऐसा क्षेत्र था जहाँ से पत्रकारिता का प्रारम्भ हुआ। 1845 ई. में यहाँ से शिव प्रसाद के संरक्षण में *बनारस अखबार* पत्र प्रकाशित किया गया। बनारस अखबार के बाद *सुधाकर* (1850), *जारीन-ए-हिन्द* (1850) *बनारस हरकारा* (1851), *आफताब-ए-हिन्द* (1852) तथा *काशी वार्ता* (बांग्ला, 1852)

आदि कई पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ किन्तु इन प्रारम्भिक पत्र-पत्रिकाओं के उपरान्त सर्वाधिक प्रभावी तथा प्रसारित पत्रिका थी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा सम्पादित *कविवचन सुधा*।

कविवचन सुधा के प्रकाशन (1867) से लेकर 1884 के बीच बनारस से *हरिश्चन्द्र मैगज़ीन* (1873), *बाला बोधिनी* (1874) *आनन्द लहरी* (1875), *काशी पत्रिका* (1878), *काशी पंच* (1880), *बनारस समाचार* (1882), *वैष्णव पत्रिका* (1883), *काशी समाचार* (1883) तथा *भारत जीवन* (1884) आदि कई पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हुई किन्तु इन सब में सर्वाधिक लम्बा जीवन (लगभग 42 वर्ष) भारत जीवन पत्र का रहा था।

इस पत्र के प्रकाशन पश्चात् वाराणसी से *मित्र* (1888), *ब्राह्मण हितकारी* (1892), *सुदर्शन* (1898), *सेन्ट्रल हिन्दू कालेज मैगज़ीन* (1901) तथा *भारतेन्दु* (1904) आदि पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित की गई। 20वीं शताब्दी के आरम्भिक दो दशकों में वाराणसी से विभिन्न भाषाओं में लगभग 66 पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ, जिनमें *सनातन धर्म* (1905), *विनोद वाटिका* (1906), *खत्री हितकारी, इन्दु* (1909), *सारस्वत, नवजीवन* (1909), *राजभक्त, हलवाई वैश्य संरक्षक* (1914), *भूमिहार ब्राह्मण* (1916), *औदुम्बर, मर्यादा* (1920) तथा *आज* पत्र (1920) प्रमुख थे।

इस तरह 1845 से शुरू हुए पत्र-पत्रिकाओं का सफर 1920 तक कई गतिरोध तथा ठहराव के बाद भी जारी रहा। 150 से अधिक पत्र-पत्रिकाएँ इस समयावधि (1845-1920) के दौरान विभिन्न भाषाओं में वाराणसी से प्रकाशित हुई तथा इसके बाद तो इस क्षेत्र में पत्र-पत्रिकाओं की बाढ़-सी आ गई। 1920 से 1947 अर्थात् आगे के 27 वर्षों में यहाँ से 70 और पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन किया गया। इस तरह प्रेस का यह सफर यहाँ निरन्तर चलता रहा।

वाराणसी का समाज—प्राचीन समय से लेकर वर्तमान तक वाराणसी में कई परिवर्तन देखने को मिले, किन्तु जो परिवर्तन ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के दौरान आए, वे लम्बे समय तक स्थायी रहे। 18वीं शताब्दी के अन्त में ब्रिटिश आधिपत्य के पश्चात् लगभग सभी स्तर पर चाहे वह राजनीतिक हो, धार्मिक हो, सामाजिक अथवा सांस्कृतिक सभी स्तरों पर कुछ न कुछ परिवर्तन अवश्य आया, जिन्हें विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में देखा जा सकता है।

गंगा के बायें किनारे अवस्थित, हिन्दुओं के प्रमुख तीर्थ स्थान के रूप में प्रसिद्ध काशी (या बनारस, और वाराणसी) के समाज पर आरम्भ से ही **ब्राह्मण जाति** का प्रभुत्व रहा। समाज के उच्च, मध्यम तथा निम्न वर्ग पर इनकी पकड़ थी। वाराणसी में होने वाले प्रत्येक हिन्दू पर्व एवं त्यौहार में इस जाति की प्रमुख भूमिका रहती थी जिनके बदले इन्हें भरपूर दान-दक्षिणा प्राप्त होती थी। विभिन्न जातियों (मुख्यतः व्यापारी) के बीच ये लोग मध्यस्थ के रूप में जाने जाते थे। राजाओं, महाराजाओं, व्यापारियों एवं विभिन्न कारीगरों के संरक्षण तथा उनके द्वारा की जाने वाले विभिन्न धार्मिक-सांस्कृतिक गतिविधियाँ (हवन, पूजा, आरती आदि) इस वर्ग के बिना अधूरी थीं। किन्तु 18वीं शताब्दी के अन्तिम दशकों के दौरान वाराणसी पर ब्रिटिश आधिपत्य के पश्चात् ब्राह्मणों के प्रभुत्व में कमी आने लगी जिसके कई कारणों में से एक कारण ब्रिटिश नीतियाँ अर्थात् अंग्रेजी शिक्षा तथा सरकारी नौकरियों में सभी जाति के लिए समान अवसर थे। प्रभुत्व के साथ-साथ प्रतिष्ठा में आते परिवर्तन के प्रमाण कविवचन सुधा पत्रिका तथा भारत जीवन पत्र रहे थे जिनमें इस वर्ग के अनैतिक कार्यों की आलोचना की जाती थी।

18वीं शताब्दी से कुछ भूमिहार परिवार तथा बाद में अग्रवाल, बनिया, खत्री तथा मेहरा आदि वैश्य समाज के लोगों का आर्थिक स्तर जैसे-जैसे ऊपर उठता गया, वैसे-वैसे वाराणसी की सामाजिक तथा सांस्कृतिक संरचना में भी परिवर्तन आता गया, जिसे पत्रकारिता के क्षेत्र में भी देखा जा सकता था। मोतीचन्द्र के अनुसार भी बनारस के महाजनों में अधिकतर गुजराती, बनिये, खत्री तथा अग्रवाल थे।

18वीं शताब्दी में मुगलों के पतन तथा विदेशी आक्रमणों के दौरान गुजराती, अग्रवाल, खत्री, मारवाड़ी, मेहरा तथा राजपूत आदि जातियों का बनारस प्रवसन हुआ। हिन्दुओं के पवित्र शहर के रूप में प्रसिद्ध बनारस की इस पवित्र पहचान ने इस प्रवसन को और बल दिया। इस प्रवसन ने बनारस की धार्मिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक पहचान को और मजबूत किया। ब्राह्मणों को संरक्षण, मन्दिरों तथा घाटों का पुनर्निर्माण, सांस्कृतिक उत्सव तथा त्यौहारों को भव्य स्तर पर मनाना आदि सब इस व्यापारी जातियों के प्रवसन से ही सम्भव हो पाया। 'राजा' शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' *(बनारस अखबार)*, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र *(कविवचन सुधा)*, देवकी नन्दन खत्री *(सुदर्शन)*, बालकृष्ण भट्ट् *(हिन्दी प्रदीप)* तथा जगन्नाथ दास रत्नाकर इसी व्यापारी समाज के अमीर तबके की कुछ विभूतियाँ रहीं जिनका न केवल वाराणसी के सामाजिक तथा

सांस्कृतिक इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है अपितु विभिन्न क्षेत्रों की पत्रकारिता में भी इनकी उल्लेखनीय भूमिका रही है।

19वीं शताब्दी के दौरान महिलाओं की स्थिति में भी परिवर्तन आने लगा। सरस्वती पत्रिका के सम्पादक महावीर प्रसाद द्विवेदी के अनुसार रीतिकाल, श्रृंगार रस तथा नायिकावादी दृष्टिकोण अभी भी स्त्री समाज के लिए प्रयुक्त होता था किन्तु पश्चिमी शिक्षा से मिली चुनौती तथा पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति के बढ़ते प्रभाव ने समाज सुधारकों तथा प्रेस को स्त्रियों की स्थिति में सुधार के लिए सचेत किया। अब भारतीय महिलाओं को आदर्शवादी स्त्री तथा कर्तव्यपरायण गृहणी के रूप में प्रदर्शित किया जाने लगा। उनकी भारतीय परिवेश में शिक्षा-दीक्षा की बात की जाने लगी। यह विचारधारा प्रचलित होने लगी कि एक शिक्षित नारी ही भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता का मूल्य समझ सकती है इसलिए स्त्री शिक्षा पर बल दिया जाने लगा। पश्चिमी सभ्यता के जवाब में भारतीय नारी की आदर्शवादी तस्वीर प्रस्तुत की जाने लगी जिसका प्रबल समर्थन *सरस्वती, सी.एच.सी.एम.* तथा मर्यादा पत्रिका द्वारा किया गया।

इसी सन्दर्भ में स्त्रियों से सम्बन्धित कुरीतियों के विरुद्ध पहल अब पहले से तेज हो गई। स्त्री समाज में सुधार हेतु बाल विवाह के खिलाफ प्रतिक्रिया तेज हो गई। लड़कियों को शिक्षित करना, बाल विधवा पुनर्विवाह तथा वेश्यावृत्ति के खिलाफ एक परिपक्व विचारधारा बनने लगी। इस तरह 20वीं शताब्दी के आरम्भिक दो दशकों में स्त्री समाज के प्रति दृष्टिकोण पहले से काफी परिवर्तित हो गया। भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता की प्रतिष्ठा एवं आदर्शवादिता को बनाये रखने के लिए समाज विशेषकर स्त्री समाज में तथा विभिन्न त्यौहारों में सुधार की प्रवृत्ति गति पकड़ने लगी। हिन्दू संस्कृति का गढ़ होने के कारण बनारस में सुधार की यह मांग अधिक प्रखर थी, जिसके प्रत्यक्ष उदाहरण *कविवचन सुधा, हरिश्चन्द्र मैगज़ीन, भारत जीवन, मर्यादा, इन्दु* तथा *सरस्वती* आदि पत्र-पत्रिकाएँ रहीं थीं। 19वीं तथा 20वीं शताब्दी में विभिन्न त्यौहारों के मनाये जाने की प्रवृत्ति में भी परिवर्तन आने लगे। बनारस की रामलीला जहाँ राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रसिद्ध हो रही थी, वही बुढ़वा मंगल, होली तथा नकक्टैया जैसे पर्वों में बढ़ती अश्लीलता तथा अभद्रता (शराब सेवन, गालियां देना तथा स्त्रियों से छेड़छाड़) के चलन ने इन्हें आलोचना के घेरे में ला दिया।

19वीं शताब्दी तथा 20वीं शताब्दी का एक ज्वलंत विषय रहा था हिन्दी-उर्दू भाषा विवाद, किन्तु आगे चलकर हिन्दी-उर्दू भाषा एक विवाद नहीं अपितु दो समुदाय की पहचान का प्रश्न बन गया। उर्दू की तरफ से अलीगढ़ तथा

हिन्दी की ओर से बनारस वह केन्द्र थे, जो अपने पक्ष की बात अपनी पत्र-पत्रिकाओं में करते थे। यह अवश्य है कि प्रकाशन (पत्र-पत्रिकाओं तथा साहित्य) तथा भाषा बोलने वालों की संख्या के आधार पर हिन्दी, उर्दू से आगे थी। साथ ही शिक्षा के क्षेत्र में आ रहे मौलिक परिवर्तन तथा पारम्परिक शिक्षा को आधुनिक शिक्षा की चुनौती, इसी 19वीं शताब्दी में आरम्भ हो चुकी थी। 18वीं शती से आरम्भ हुई परिवर्तन की ये लहर 19वीं शताब्दी के बनारस में हर स्तर पर दिखायी दे रही थी।

1845 से 1867 के बीच सामाजिक तथा सांस्कृतिक रूप से समाचार पत्रों द्वारा मुख्य रूप से जिन विषयों पर प्रकाश डाला गया था, वह थे समाज में यूरोपियनों की जातीय श्रेष्ठता की भावना, हिन्दी-उर्दू भाषा विवाद तथा सरकार का समाज की धार्मिक क्रियाकलापों में बढ़ता हस्तक्षेप।

यह बात स्पष्ट थी कि भारतीयों को द्वितीय श्रेणी का नागरिक समझा जाता था। तत्कालीन समाचार पत्रों से भी इस बात को समर्थन मिलता है कि श्वेतों पर अश्वेतों का बोझ सिद्धान्त समाज में प्रचलित था। यूरोपियनों द्वारा पैरों से भारतीय मजदूरों, किसानों तथा नौकरों को पीटना, बुरी तरह जख्मी करना, मृत्यु तक हो जाना, डॉक्टरों तथा न्यायधीशों द्वारा यूरोपियनों का पक्ष लेना सामान्य बात हो चुकी थी। प्रेम नारायण के अनुसार मुख्य बात यह थी कि समाज का शिक्षित भारतीय वर्ग भी इस भावना से ग्रस्त था कि उनकी द्वितीय श्रेणी है तथा अंग्रेज हर क्षेत्र में उनसे श्रेष्ठ हैं। इस विषय की चर्चा वाराणसी के *आफताब-ए-हिन्द* तथा *भारत जीवन* पत्र द्वारा भी की गई।

ब्रिटिश सरकार की सुधार की नीति के तहत् भारतीय जनमानस का रोष समाचार पत्रों द्वारा व्यक्त किया जाता था। 19वीं शती मध्य में सती प्रथा पर रोक, विधवा पुनर्विवाह को कानूनी मान्यता, बाल विवाह को कानूनी दायरे में लाना तथा धार्मिक रीति रिवाज़ों पर नियम कानून आदि कुछ ऐसे कदम थे, जिस कारण समाज में सरकार के प्रति भारी रोष था। सरकार द्वारा तीर्थ यात्रा पर कर लगाने पर हुई आलोचनाओं ने यह साबित कर दिया था कि नार्थ वेस्ट प्रोविन्स (आगे चलकर संयुक्त प्रान्त) का समाज अभी इस तरह के सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिवर्तनों के लिए तैयार नहीं था। *भारत जीवन, सरस्वती, सी.एच.सी.एम.* से यह स्पष्ट होता है कि विधवा पुनर्विवाह की बात 19वीं शताब्दी के अन्त तक भी सामान्य रूप से स्वीकार नहीं की गई।

हिन्दी भाषी स्थान होने के बावजूद भी वाराणसी या नार्थ वेस्ट प्रोविन्स में

हिन्दी भाषा के पत्रों को लेकर कोई विशेष उत्साह नहीं था। पाठक वर्ग के अभाव में बहुत कम पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन होता था। हिन्दी भाषा बोलने वाले लोगों की संख्या के मुकाबले हिन्दी पत्रों का प्रकाशन बहुत ही कम था किन्तु 1867 के पश्चात् जिस तेजी से हिन्दी भाषायी पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन में तेजी आयी, उसका इससे पूर्व अनुमान भी नहीं लगाया जा सकता था।

अपने आरम्भिक काल (1867 से पूर्व) में वाराणसी की पत्रकारिता हिन्दी उर्दू के प्रश्न पर एकमत न हो सकी तो दूसरी ओर हिन्दी के स्वरूप पर वाद विवाद का प्रश्न भी आ खड़ा हुआ। एक ओर फ्रांसीसी विद्वान गार्सा द तासी हिन्दी के विरोध में थे तो दूसरी ओर सर पिन्काट हिन्दी के कट्टर समर्थक थे। शिवप्रसाद की फारसी मिश्रित हिन्दी का पक्ष दुर्बल पड़ता जा रहा था तथा बहुमुखी व्यक्तित्व के धनी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की परिष्कृत हिन्दी ने इस विवाद को और गहरा कर दिया। इस समय आरम्भ हुए भाषायी विवाद ने समाज के उच्च शिक्षित वर्ग को दो भागों में विभाजित कर दिया। एक वर्ग ब्रिटिश सरकार के सहयोग से देवनागरी लिपि तथा उर्दू मिश्रित भाषा का समर्थन कर रहा था तो दूसरा इसका विरोध। 1885 में कांग्रेस की स्थापना के समय तक आते-आते यह हिन्दी-उर्दू विवाद किताबों के रूप में व्यवसायिक लाभ के साथ बाजार में बिकने लगा था, जिसका प्रचार भारत जीवन में प्रकाशित होता था। 19वीं शताब्दी के मध्य के दौरान प्रकाशित पत्रों में स्थानीय भाषा के स्पर्श का अभाव था। समाज की आम भाषा का जिस तरह भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपनी पत्रिकाओं में प्रयोग किया, उसका इस युग (1845-1867) की पत्रकारिता में अभाव था।

भारतेन्द्र हरिश्चन्द्र (1850-1885) के उदय के पूर्व पत्र-पत्रिकाओं के विकास का एक दौर (1845 से 1867 तक) बनारस में पूरा हो चुका था। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के उदय साथ ही इस क्षेत्र की पत्रकारिता में तीव्रता आई। उनकी पत्रिकाओं ने जिस तरह अपने समय के बनारस के समाज का वर्णन किया तथा तत्कालीन सामाजिक समस्याओं को समाज में रखा, वह अवश्य ही अपने समय का प्रथम प्रयास था। शेरिंग द्वारा 19वीं शताब्दी के दौरान बनारस के समाज में आ रहे जिस जातीय परिवर्तन की चर्चा की गई थी, उसे *कविवचन सुधा, हरिश्चन्द्र मैगज़ीन* तथा *बाला बोधिनी* में देखा जा सकता है। साथ ही कुछ निम्न जातियों की बढ़ती आर्थिक स्मृद्धि तथा इस स्मृद्धि के साथ-साथ उनमें बढ़ती उच्च सामाजिक पहचान की भूख ने उन्हें धीरे-धीरे सामाजिक तथा राजनीतिक स्तर पर संगठित करना आरम्भ कर दिया था। 19वीं शताब्दी के

अन्तिम दशकों तथा 20वीं शताब्दी के आरम्भ में बने विभिन्न सामाजिक संगठन इसके उदाहरण थे जिसमें बनारस में विशेषकर अहिर, भर, गौंड ब्राह्मण, कलवार, कायस्थ, मल्लाह, नैस तथा साहु वैश्य जातियाँ प्रमुख थी। साथ ही विभिन्न व्यापारी जातियों का बाजार तथा वाराणसी के समाज पर बढ़ता प्रभुत्व इस समय की मुख्य विशेषता थी। इस व्यापारी वर्ग द्वारा प्रेस को एक साधन के रूप में प्रयोग किया गया। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से लेकर रामकृष्ण खत्री, प्रतापनारायण मिश्र, देवकीनन्दन खत्री, बालकृष्ण भट्ट आदि सभी लोग इस बात का प्रमाण थे।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा प्रकाशित पत्रिकाओं (1867 में *कविवचन सुधा*, 1873 में *हरिश्चन्द्र मैगज़ीन* तथा 1874 में प्रकाशित *बाला बोधिनी* पत्रिका) में स्त्री समाज से सम्बन्धित विभिन्न कुरीतियों की आलोचना की जाती थी। पत्रिकाओं में कही जाने वाली 'नारिनर सम हौहि' की बात अभी प्रत्यक्ष रूप से प्रभावी नहीं थी किन्तु स्त्री पुरुष समानता, स्त्रियों को आदर तथा सम्मान देना, उनकी पढ़ाई लिखाई पर जोर देना, प्राचीन साक्ष्यों (महाभारत तथा रामायण) में स्त्रियों की प्रतिष्ठा दिखाकर वर्तमान समाज में उनके यथोचित आदर की बात करना, बाल विवाह पर कुठराघात आदि विषयों की चर्चा होने लगी थी। यह अवश्य था कि अभी इसके परिणाम आने बाकी थे। स्त्रियों को पुरुषों की सेविका समझना, उन्हें शिक्षा से वंचित रखना तथा स्त्री के नाम पर उनका शोषण आदि विषयों की चर्चा यह अवश्य बताती थी कि कहीं न कहीं ये सब बनारस के समाज में प्रचलित थे तथा इनका विरोध भी होना आरम्भ हो चुका था।

समाज में चर्चित हिन्दी-उर्दू विवाद में अब वाराणसी देवनागरी लिपि के प्रमुख समर्थकों में आ गया था। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा उनकी मंडली (प्रताप नारायण मिश्र, बदरीनारायण चौधरी, जगमोहन सिंह तथा बालकृष्ण भट्ट आदि) द्वारा प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं के कारण हिन्दी अब पहले से मजबूत स्थिति में आ गई थी। हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं के साथ-साथ हिन्दी पुस्तकों के बढ़ते प्रकाशन से उर्दू का पक्ष कमजोर पड़ने लगा था।

19वीं शताब्दी के अन्त में बनारस से तीन हिन्दी, एक अंग्रेजी तथा एक उर्दू का अखबार प्रकाशित होता था जिनमें हिन्दी भाषा में ***भारत जीवन*** पत्र प्रमुख माना जाता था। 1884 से प्रकाशित साप्ताहिक समाचार पत्र भारत जीवन लगभग 1925-26 ई. तक अस्तित्व में रहा। इस पत्र द्वारा दी गई जानकारी के अनुसार बनारस के सामाजिक जीवन में काफी भिन्नता थी।

जातिवाद, छुआछूत तथा सामाजिक मान-मर्यादा का विशेष ध्यान रखा जाता था। पत्र में प्रयुक्त अहिर, धोबी, कुनबी, चमारीन, पंडित तथा महापंडित, पंड़ाईन, खत्री तथा ब्राह्मण एवं महाब्राह्मण शब्द समाज में प्रचलित जातीय विशिष्टता को इंगित करते थे। उच्च वर्ग के लोग अपने जातीय अभिमान को प्रदर्शित करने का कोई अवसर नहीं जाने देते थे। जिस तरह भारतेन्दु हरिश्चन्द्र अपनी पत्रिका *कविवचन* सुधा में अपने वैश्य वर्ण में अग्रवाल जाति को तथा विष्णु पूजा को विशिष्ट प्रदर्शित करते थे, वैसे ही भारत जीवन पत्र के सम्पादक रामकृष्ण खत्री अपने पत्र द्वारा अपनी खत्री जाति की उच्चता को समाज में बनाए रखते थे। इस तरह *भारत जीवन* पत्र के सम्पादक भी इसका अपवाद नहीं थे।

पत्रकारिता के क्षेत्र में वैश्य वर्ग के प्रभुत्व तथा ब्राह्मण वर्ग की अपनी उच्च तथा विशिष्ट सामाजिक तथा सांस्कृतिक मान्यता के कारण ब्राह्मण तथा वैश्य वर्ण से सम्बन्धित गतिविधियाँ पत्रों में अधिक प्रकाशित होती थीं। काशी के ऐतिहासिक नाम तथा इसके पुण्य क्षेत्र की पहचान के कारण यहाँ विभिन्न स्थानों से लोगों का आवागमन पूरे वर्ष भर रहता था। घाटों पर मनाये जाने वाले मेलों तथा त्यौहारों की भीड़ यहाँ पूरे साल बनी रहती थी। काशी के ब्राह्मणों को दी गई दान-दक्षिणा की विशेष मान्यता थी जिस कारण यहाँ के ब्राह्मण वर्ग से सम्बन्धित समाचार, घटनाएँ तथा खबरें पत्रों में अक्सर प्रकाशित होते रहते थे। उनके वैदिक कर्मकाण्ड के अलावा अनैतिक कार्य भी काफी चर्चित रहते थे। ब्राह्मण वर्ग के कुछ लोग जो धन लोभ के कारण तथा बिना वेद-शास्त्रों के ज्ञान के पंडित बन जाते थे, उनकी गतिविधियाँ समाज तथा पत्र दोनों में बनी रहती थी।

व्यापारिक गतिविधियों में संलग्न रहने वाले वैश्य समुदाय ने जितनी तेजी से धन कमाया, उतनी ही तेजी से उन्हें सामाजिक प्रतिष्ठा भी प्राप्त हुई। इस कारण सामाजिक तथा सांस्कृतिक स्तर पर इस वर्ग में अन्य वर्गों की अपेक्षा अधिक सक्रियता थी। इन्होंने विभिन्न मेलों एवं त्यौहारों जैसे बुढ़वा मंगल, रामलीला, जन्माष्टमी तथा गणेशोत्सव आदि पर्वों को संरक्षण दिया। इसके साथ ही इनकी जातीय पहचान पर बने समुदाय, भवन, स्कूल, कमेटियाँ तथा इनके अधिवेशन इनमें उद्देश्यपरक एकता तथा चेतना के प्रतीक रहे थे, जिनमें कायस्थ कान्फ्रेस, क्षत्रोदय सभा, भूमिहार अधिवेशन, खत्री-सारस्वत विद्यालय, वैष्णव हितकारी सभा तथा खत्री जातीय संगठन प्रमुख थे। हिन्दू समुदाय अपनी धार्मिक पवित्रता को लेकर काफी सजग तथा संवेदनशील था। यहाँ हिन्दू समुदाय का

अर्थ ब्राह्मण तथा व्यापारिक वर्ग से अधिक था क्योंकि स्वयं को सामाजिक स्तर पर सक्रिय रखने तथा अपनी पहचान को बनाए रखने के लिए ये दोनों ही वर्ग गौरक्षा, भाषा विवाद, विभिन्न धार्मिक उत्सवों तथा सांस्कृतिक गतिविधियों में सक्रिय रहते थे।

बनारस का मौसम इस समय गर्मी में अधिक गर्म तथा बारिश में अधिक वर्षा से प्रभावित रहता था। *कविवचन सुधा* तथा *भारत जीवन* के जून-मई के अंकों से पता चलता है कि इस समय की गर्मी तथा लू प्राणघातक होती थी तथा बारिश एवं आंधी के कारण मकानों के गिरने से जान-माल की हानि भी हुआ करती थी। घाटों पर जाने के लिए बने रास्तों पर गन्दगी इस समय की बड़ी समस्या बनी हुई थी। बिन्दूमाधव तथा दशाश्वमेध इस समस्या से अधिक ग्रस्त थे तथा अक्सर चर्चा में रहते थे। **हैजा, प्लेग, ज्वर** तथा **शीतला** (चेचक) जैसी बीमारियों का प्रकोप बनारस में अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा अधिक था। यहाँ की परम्परा तथा विश्वास इस प्रकोप को और विकराल बनाते थे जिसकी चर्चा डेविड आरनोल्ड द्वारा भी की गई है।

व्रत, मेलों तथा त्यौहारों पर स्त्रियों की सुरक्षा विभिन्न समुदायों की प्रमुख समस्या थी। पत्र-पत्रिकाओं में छेड़खानी तथा छींटाकसी की चर्चा आम हो चुकी थी। मध्यम तथा उच्च वर्ग की स्त्रियाँ पर्दे में रहा करती थीं जो कि उनके परिवार एवं समाज दोनों के लिए सम्मान तथा प्रतिष्ठा की बात थी। पुरुष प्रधान वाराणसी का समाज स्त्रियों के मान सम्मान को लेकर काफी संवेदनशील था। *कविवचन सुधा, हरिश्चन्द्र मैगज़ीन, बाला बोधिनी, भारत जीवन, सी.एच.सी.एम (सेन्ट्रल हिन्दू कालेज मैगजीन), इन्दु, मर्यादा* तथा *सरस्वती* आदि पत्र-पत्रिकाओं में स्त्रियों से सम्बन्धित सुधार की बातें मुख्यतः पुरुषों द्वारा ही की जाती थी। इनके लेखों से एक बात स्पष्ट होती थी कि विधवा विवाह को अभी तक स्वीकृति नहीं मिली थी तथा इसे समाज, सभ्यता तथा संस्कृति के खिलाफ माना जाता था। समाज में बाल विवाह प्रचलन में था तथा स्त्री-पुरुष वैवाहिक सम्बन्ध में प्रशासनिक हस्तक्षेप जैसे 1891 का सम्मति अधिनियम आदि स्वीकार नही किया गया। 19वीं शताब्दी के अन्त तक वेश्यावृत्ति को लेकर समाज का दृष्टिकोण उतना सख्त नहीं था जितना 20वीं शताब्दी में हो गया।

इस तरह 19वीं शताब्दी के अन्त के बनारस में सामाजिक तथा सांस्कृतिक स्तर पर कई विभिन्नताएँ देखने को मिलती थी। यहाँ सामाजिक तथा धार्मिक स्तर पर सौहार्दता (मुसलमानों के कहने पर हिन्दुओं द्वारा बुढ़वा मंगल न

मनाना तथा न कोई बड़ा साम्प्रदायिक दंगा होना) थी तो तनाव भी था विशेषकर तब, जब दीवाली तथा मुहर्रम एक ही तारीख पर पड़ जाते थे। जातीय स्तर पर वर्ण व्यवस्था के प्रति रूढ़िवादी दृष्टिकोण था तो वहीं स्त्रियों की गरिमा के प्रति संवेदनशील रवैया भी। भिन्न-भिन्न प्रकार की अराजकताएँ (हत्या, लूटमार, छेड़खानी, धनलोलुपता तथा बीमारियों के प्रति धार्मिक विश्वास) प्रचलित थी तो उनके समाधान की कोशिश भी जारी थी।

20वीं शताब्दी में राजनीतिक सरगर्मियाँ अधिक सक्रिय हो गई। महात्मा गाँधी के स्वतन्त्रता आन्दोलन में पदार्पण के साथ ही समाचार पत्रों में सामाजिक तथा सांस्कृतिक गतिविधियों का स्थान राजनैतिक गतिविधियों ने ले लिया। 1903 में प्रकाशित *सरस्वती* पत्रिका की विषयवस्तु जहाँ राजनीतिक लेखों से रहित रही थी, वहीं 1920 में इसमें रासबिहारी घोष, दादाभाई नौरोजी तथा फिरोजशाह मेहता जैसे राजनीतिक व्यक्तियों के जीवन परिचय प्रकाशित किए। साथ ही महात्मा गाँधी के विचारों को यह पत्रिका विशेष रूप से प्रकाशित करती थी। अब पत्रों का स्वर भी राजनैतिक अधिक हो गया, किन्तु फिर भी वाराणसी तथा प्रयाग की कुछ पत्र-पत्रिकाएँ *(सेन्ट्रल हिन्दू कालेज मैगज़ीन, इन्दु, मर्यादा, आर्य महिला* तथा *सरस्वती* पत्रिका तथा आज पत्र) यहाँ के सामाजिक तथा सांस्कृतिक स्वरूप को प्रकाशित करती रहीं।

20वीं शताब्दी में राजनैतिक स्तर पर गाँधी जी की भारतीय राजनीति में सक्रियता ने समाज के हर वर्ग को प्रभावित किया। बनारस भी इसका अपवाद नहीं था। बनारस का महिला समाज तथा उससे सम्बन्धित विषय समाज सुधारकों तथा प्रेस दोनों की नजर में ही मुख्य विषय थे। महिलाओं को पश्चिमी शिक्षा की जगह भारतीय सांस्कृतिक शिक्षा देना, उन्हें गृहस्थ कार्यों में दक्ष करना तथा एक आदर्शवादी पत्नी तथा कर्त्तव्यपरायण गृहणी बनाना, इस समय के समाज तथा प्रेस (भारत जीवन प्रेस, इंडियन प्रेस, नवल किशोर प्रेस तथा गीता प्रेस) आदि का कर्त्तव्य था।

स्त्री शिक्षा के प्रति जितनी चेतना इस समय चित्रित की गई, उतनी 19वीं शताब्दी में नहीं थी। इस समय प्रत्येक पत्र-पत्रिका में स्त्री शिक्षा की बात की जाती थी। साथ ही उनकी शिक्षा में बाधक कई सामाजिक रीति-रिवाजों जैसे बाल विवाह तथा बाल विधवा निषेध की आलोचना भी की जाने लगी थी क्योंकि इसके कारण वेश्यावृत्ति तथा अनाचार का चलन भी बढ़ रहा था। विधवा पुनर्विवाह की बात भी दबी आवाज में की जाने लगी थी किन्तु पर्दा प्रथा समाज में अभी भी संस्कृति तथा सम्मान का प्रतीक बना हुआ था। पत्र-

पत्रिकाओं के अध्ययन से ज्ञात होता है कि 20वीं शताब्दी के समाज की कुछ निम्न जातियों द्वारा, उच्च जातियों की तरह संगठित होकर, अपने जाति विशेष के सुधार के लिए विभिन्न कार्यक्रम आरम्भ कर दिये गए थे। दूसरी तरफ हर दस वर्ष के अन्तराल पर होने वाली जनगणना में मुसलमानों की बढ़ती संख्या ने हिन्दुओं को चिंतित कर दिया, जिस कारण हिन्दू समाज अपने समाज में सुधार (शिक्षा, बाल विवाह निषेध, विधवा पुनर्विवाह) के प्रति और संवेदनशील हो गया।

सांस्कृतिक स्तर पर त्यौहारों को भव्य स्तर पर मनाना अब अधिक प्रचलन में आ गया। रामनगर की रामलीला और अधिक भव्य हो गई तथा अपने सांस्कृतिक महत्व (रामचरित मानस पर आधारित होने) के कारण काशी के रईसों में उसे संरक्षण तथा अनुदान देने की होड़ लग गई। सामाजिक-सांस्कृतिक सुधार तथा राष्ट्रीयता के इस नए दौर में विभिन्न उत्सवों जैसे होली, बुढ़वा मंगल तथा नक्कटैया की रामलीला पर होने वाली अश्लीलता तथा अभद्रता के प्रति एक तीव्र आक्रोश समाज में देखने को मिला जिस कारण जहाँ बुढ़वा मंगल मेला बन्द हो गया, वहीं होली पर महिलाओं तथा नौजवानों को इस त्यौहार में शामिल न होने की अपील की गई। इन पर्वों पर समाज की निम्न जातियों के शराब सेवन, अभद्र शब्दों के प्रयोग, झगड़ों तथा आचारहीनता की कटु आलोचना की जाने लगी। *भारत जीवन, आज* तथा *सेन्ट्रल हिन्दू कालेज मैगज़ीन* में यह आलोचना अधिक प्रखर होती थी।

इस तरह 1845 से 1920 तक की समयावधि में वाराणसी की प्रेस द्वारा उठाये गये विभिन्न सामाजिक तथा सांस्कृतिक विषयों का निम्नलिखित संक्षिप्त निष्कर्ष था :

हिन्दी–उर्दू भाषा विवाद जो धीरे-धीरे विभिन्न समुदाय की पहचान बन गया। यदि तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं तथा पुस्तकों के प्रकाशन सम्बन्धी आंकड़ों के आधार पर देखें तो उर्दू की अपेक्षा हिन्दी का पक्ष अधिक मजबूत था तथा हिन्दी बोलने वालों की संख्या भी उर्दू बोलने वालों से अधिक थी। शोध की परिकल्पना के अनुसार ही यह हिन्दी–उर्दू विवाद इस समयावधि के दौरान हमेशा पत्र-पत्रिकाओं में बना रहा।

इस विवाद का नेतृत्व करने वाले **व्यापारी वर्ग** का प्रभुत्व न केवल प्रेस पर था अपितु राजा-महाराजा तथा ब्राह्मण वर्ग भी इस वर्ग विशेष की प्रमुखता स्वीकार करते थे। आर्थिक सम्पन्नता के कारण मिली सामाजिक तथा

सांस्कृतिक पहचान को इस व्यापारी वर्ग ने विभिन्न त्यौहारों तथा **ब्राह्मण वर्ग** को संरक्षण देकर और मजबूत किया। वाराणसी के ब्राह्मण वर्ग की महत्वपूर्ण पहचान तथा उनकी प्रतिष्ठा को विभिन्न ब्रिटिश नीतियों तथा विभिन्न जातियों के विकास ने चुनौती देना आरम्भ कर दिया। साथ ही कुछ ब्राह्मणों की पथभ्रष्टता तथा अनैतिक कार्यों ने इस वर्ग विशेष की आलोचनाओं को और बढ़ा दिया।

आलोचनाओं का सामना उन रीतियों तथा कुरीतियों को भी करना पड़ा, जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से **स्त्री वर्ग** से सम्बन्धित थी। बाल विवाह की आलोचना, विशेष परिस्थितियों में विधवा विवाह को स्वीकृति, मध्यम तथा उच्च परिवार में पर्दा प्रथा की बाध्यता तथा महिलाओं को भारतीय संस्कृति की सम्माननीय तथा गौरवशाली पहचान बनाने की मुहिम प्रचलन में थी।

विभिन्न **सांस्कृतिक त्यौहारों** में एक तरफ रामनगर की रामलीला जहाँ राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रसिद्ध हो चुकी थी, वहीं होली, बुढ़वा मंगल तथा नक्कटैया की रामलीला अश्लीलता एवं अभद्रता के कारण आलोचनाओं का शिकार हो रही थी। वाराणसी शहर की 'पवित्र' पहचान, विशिष्ट धार्मिक मान्यता तथा आस्था के कारण भी विभिन्न बीमारियाँ, यहाँ प्रचंड रूप ले लेती थीं। **हैजा, प्लेग, ज्वर तथा शीतला** जैसे रोगों में आस्था को उपचार मानने से इन बीमारियों के प्रकोप ने पूरे बनारस को प्रभावित किया, जिसका वर्णन *भारत जीवन* तथा *सरस्वती* में किया गया। इस तरह 1845 से लेकर 1920 तक वाराणसी प्रेस समाज में हो रहे सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिवर्तनों की न केवल साक्षी रही बल्कि समाज में हो रही विभिन्न गतिविधियों, परिवर्तनों तथा घटनाओं की सूचक भी रही थी।

सन्दर्भ :

प्राथमिक स्रोत

- **Benares Recorder,** 1846 - 1847, Messrs. Cooper & Co. (Publisher) Serampore/Benares.
- **कविवचन सुधा,** 1872-1884, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (संरक्षक), लाइट प्रेस, बनारस.
- **हरिश्चन्द्र मैगज़ीन,** 1873-1885, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (संरक्षक), मेडिकल हाल प्रेस, बनारस.

- **भारत जीवन,** 1884-1902, रामकृष्ण वर्मा (संरक्षक), भारत जीवन प्रेस, बनारस.
- **भारतेन्दु,** 1886, ब्रज भूषण (सम्पादक), मशीन प्रेस, स्थान अज्ञात.
- **काशी पत्रिका,** 1888, लक्ष्मी शंकर मिश्र (सम्पादक), चन्द्रप्रभा प्रेस, बनारस.
- **Central Hindu College Magazine,** 1900 – 1914, Annie Besent (Patron), The Manager, Central Hindu College, Benares City.
- **सरस्वती पत्रिका,** 1901-1922, महावीर प्रसाद द्विवेदी (सम्पादक), इंण्डियन प्रेस, प्रयाग.
- **इन्दु पत्रिका**, 1910-1913, अम्बिका प्रसाद गुप्त (सम्पादक), बनारस.
- **मर्यादा पत्रिका,** 1914-1922, बद्रीप्रसाद पाण्डेय/सम्पूर्णानन्द (सम्पादक), अम्युदय प्रेस, प्रयाग/ज्ञानमण्डल यन्त्रालय, काशी.
- **आज पत्र,** चयनित अंक 1920-1940, शिवप्रसाद गुप्त (संरक्षक), ज्ञानमण्डल यन्त्रालय, काशी.

प्रशासनिक रिपोर्ट

- *Educational Report of India*, Government Press, Calcutta,
- *Census of the NWP and UP, 1865/1871/1881/1891/1901/1911/1921/1931*, Government Press, Allahabad.
- *Administrative Report of NWP,* 3[1st] March 1901, Government Press, Allahabad, 1902.
- *Varanasi Division Records, 1901-29.*

अन्य प्राथमिक स्रोत

- Nevill, H.R., 1909, *Benares: A Gazetteer*, Vol. XXVI, Government Press, United Provinces, Allahabad.
- Prinsep, James, {1830}1996, *BENARES ILLUSTRATED,* Vishwavidyalaya Prakashan, Varanasi.
- Sherring, M.A., {1868}1990, *BENARES, The Sacred City of The Hindus, in Ancient and Modern Times*, Low Price Publications, Delhi.
- वर्मा, बालमुकुन्द, 6 मई 1935, काशी या बनारस,

द्वितीयक स्रोत

अंग्रेजी भाषा की पुस्तकें

- Bayly, C.A., 1983, *Rulers, Townsmen and Bazaars: North Indian Society in the age of British Expansion (1770-1870)*, Cambridge University Press, Cambridge.
- Bhanawat, Sanjeev, 2000, *History of Journalism and Media of Mass Communication*, University Publication, Jaipur.
- Bhatnagar, Ramratan, 2003, *The Rise and Growth of Hindi Journalism:1829-1945*, Vishwavidyalaya Prakashan, Varanasi.
- Chandramouli, K., 1995, *KASHI: The City Luminous*, Rupa & Co. Calcutta.
- Coelho, Lvo, 2010, *Brahman & Person: Essay by Richard De Smet*, Motilal Banarsidas Pub. Pvt. Ltd, Delhi.
- Cohn, Bernard S., 1987, *An Anthropologist among the Historians and Other Essays*, Oxford University Press,Delhi
- Dasgupta, Satadal, 1983, *Caste, Kinship and Community: Social System of a Bengal Caste*, University Press, Calcutta.
- **Dodson, Michael S.,** 2012, *Banaras: Urban Forms and Cultural Histories*, Publisher Routledge India, Delhi.
- Dalmia, Vasudha, 1997, *The Nationalization of Hindu Traditions: Bhartendu Harishchandra and Nineteenth-Century Banaras*, Oxford University Press, Delhi.
- Eck, Diana, L., 1992, *BANARAS: City of Light*, Penguin Books, New Delhi.
- Freitag, Sandria B., 1989, *Culture and Power in Banaras: Community, Performance and Environment* (1800-1980), Oxford University Press, New York.
- Kumar, Nita, 2000, *Lessons from Schools: The History of Education in Banaras*, Sage Publications, New Delhi.
- Lannoy, Richard, 1999, *Benares Seen from within*, Indica Books, Varanasi.
- Levine, Philippa, 2003, *Prostitution, Race and Politics: Policing Venereal Disease in the British Empire*, Routledge Publication, London.

- Lutt, Von Jurgen, 1970, *Hindu-Nationalismus in Uttar Prades, 1867-1900*, Ernst Klett Verlag Stuttgart, Germany.
- Renold, Leah, 2005, *A Hindu Education: early years of the Banaras Hindu University*, Oxford University Press, Delhi.
- Singh, Rana P.B., 2009, *BANARAS, The Heritage City of India*, Indica Books, Varanasi.

हिन्दी भाषा की पुस्तकें

- मोतीचन्द्र, 1962, काशी का इतिहास, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी.
- उपाध्याय, पं. बलदेव, 1983, काशी की पाण्डित्य परम्परा, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी.
- वाजपेयी, अम्बिकाप्रसाद, 1986, समाचार पत्रों का इतिहास, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, द्वितीय संस्करण, सन्त कबीर मार्ग, वाराणसी.
- व्यास, लक्ष्मीशंकर, 1988, हिन्दी पत्रकारिता के युग निर्माता, व्यास प्रकाशन, वाराणसी.
- जाटव, डी. आर., 1988, बाबासाहेब डॉ. बी.आर. अम्बेडकर : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, समता साहित्य सदन, जयपुर.
- शर्मा, रामविलास, 1989, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और हिन्दी नवजागरण की समस्याएं, चतुर्थ संस्करण, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली.
- लाल, वंशीधर, 1992, भारतेन्दुयुगीन हिन्दी पत्रकारिता, कानपुर.
- हरिशंकर, 1996, काशी के घाट: कलात्मक एवं सांस्कृतिक अध्ययन, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी.
- वैदिक, वेद प्रताप, 1997, हिन्दी पत्रकारिता के विविध आयाम, हिन्दी बुक पब्लिकेशंस, दिल्ली
- कुमार, विनोद, 2016 वाराणसी का सामाजिक तथा सांस्कृतिक अध्ययन, लो प्राइस पब्लिकेशंस, दिल्ली

युलरिक स्टार्क, 2007, एम्पायर आफ बुकस्; स्टार्क ने लखनऊ की नवल किशोर प्रेस की स्थापना तथा उसके 19वीं शताब्दी तक के विकास पर शोध कार्य किया है।

डॉ. विनोद कुमार

भारतीय इतिहास अनुसन्धान परिषद्, नई दिल्ली

ईमेल: bhu.vinod@gmail.com

❑❑❑

पश्चिमी राजस्थान की प्राकृतिक धरोहर एवं पर्यटन

• हरिमोहन मीना

• डॉ. चंद्रशेखर कछावा

पर्यटन भारतीय संस्कृति का एक अभिन्न अंग रहा है। सभ्यता की शुरूआत ही मानव जाति के जंगलों में या प्राकृतिक आवास में रहने से हुई है। मनुष्य अपने सामान्य एवं दैनिक दिनचर्या के कार्यों से निजात पाकर कहीं घूमने, भ्रमण कर मनोरंजन करने की इच्छा रखता है। इसके लिए या तो ऐतिहासिक स्थल—जैसे पुराने किले, महल, हवेलियाँ या धार्मिक स्थलों की सैर कर प्रसन्नता का अनुभव करता है या किसी प्राकृतिक स्थल या बाग-बगीचों की सैर से अधिक प्रसन्नता अनुभव की जा सकती है। इसलिए यहाँ राष्ट्रीय उद्यानों एवं अभयारण्यों का वर्णन करना भी यथोचित है।

प्राकृतिक धरोहर–राष्ट्रीय उद्यान एवं अभयारण्य

राजस्थान वह रंगीला प्रदेश है जो इतिहास में न केवल अपने शृंगार एवं वीरता के कारण अपनी खास जगह रखता है, अपितु संस्कृति और प्राकृतिक सुन्दरता में भी अपना अद्वितीय स्थान रखता है। रंग, उल्लास और मैत्रीपूर्ण व्यवहार से ओत-प्रोत रहना देश के इस भाग की विशेषता है। राजस्थान की प्रत्येक वस्तु अभिभूत करती है—मीलों तक फैली सुनहरी रेत से लेकर अद्‌भुत किलें, कलात्मक राजप्रसाद और सुंदर हवेलियां प्रत्येक की अपनी अनूठी वास्तुशिल्प संरचना है और अपनी एक अलग गाथा। पहाड़ी शृंखलाओं के साथ व्यवस्थित ढंग से बने आकर्षक बगीचे और झीलें दर्शकों को अपनी ओर खींचती हैं। अपनी समृद्ध कला, हस्तशिल्प, विविधता लिए बाजार और रंग बिरंगे कपड़ों में सजे लोग अपनी एक अलग पहचान बनाते हैं। राजस्थान के शहरों ने अभी तक मध्ययुगीन विशेषता की शाश्वत परंपरा को जीवन्त बनाए रखा है। बस एवं कारों के अतिरिक्त ऊँट, गाय, बैल तथा हाथी—यातायात के आम साधन हैं—आधुनिकता एवं परंपरा का अनूठा मिश्रण। अपने उल्लासपूर्ण लोकनृत्यों, संगीत-गाथा एवं भव्य उत्सवों के कारण यहां भूमि जीवन्त हो उठती

 ISSN 2278-4632 जनवरी-जून 2023

है। किसी प्रदेश की सभ्यता, इतिहास, जीवन एवं चरित्र पर भूमि, जलवायु एवं विश्व मानचित्र पर उसकी भौगोलिक स्थिति का अत्यधिक प्रभाव होता है।

जिस प्रकार सदियों से उत्तर में हिमालय पर्वत, दक्षिण-पूर्व में बंगाल की खाड़ी और दक्षिण-पश्चिम में अरब सागर भारत के प्राकृतिक सीमारक्षक हैं, उसी प्रकार थार का मरुस्थल भी न केवल राजस्थान का वरन् पश्चिमोत्तर भारत का सीमान्त प्रहरी रहा है।[1] भूगोलवेत्ताओं के अनुसार राजस्थान का थार मरुस्थल अफ्रीका और अरब के मरुस्थलों का ही एक भाग है। यह रेतीला शुष्क प्रदेश राजस्थान में अरावली पर्वत के पश्चिमी ढाल से भारत-पाकिस्तान की अन्तर्राष्ट्रीय सीमा तक विस्तृत है। इसमें राजस्थान के कुल क्षेत्रफल का 3/5 भाग आता है तथा राज्य की 30: जनसंख्या इस क्षेत्र में निवास करती है।[2]

प्राचीन साहित्य में भी जन-जन को गतिशील रहने के लिये प्रेरित किया गया है। गति ही जीवन का पर्याय माना गया है। इन दिनों भी पर्यटन अत्यन्त लोकप्रिय हो रहा है। लगातार शारीरिक श्रम और मानसिक दबाव में रहने वाला व्यक्ति पर्यटन के माध्यम से स्वयं में नई ऊर्जा एवं नई शक्ति का संचार करता है। इससे वह अपनी थकान से मुक्त होकर दुगुने उत्साह के साथ पुनः अपने कार्य में संलग्न हो पाता है। इस प्रकार प्राकृतिक सौन्दर्य को देखने के लिए, स्वास्थ्य लाभ के लिए, नैसर्गिक स्थानों पर जाने, धार्मिक स्थलों के दर्शन करने, ऐतिहासिक जगहों के ज्ञान का कौतूहल विभिन्न क्षेत्रों के लोक जीवन तथा सांस्कृतिक गतिविधियों की जानकारी प्राप्त करने के लिए ही मुख्यतः पर्यटन के लिये जाते हैं।

रेगिस्तानी पर्यटन

पर्यटन उद्योग एक बहुत अच्छा व्यवसाय है जो भारत में बहुत ही तेजी से आगे बढ़ रहा है। भारत तथा विश्व के अन्य प्रदेशों में प्रकृति आधारित पर्यटन अब कोई नया विषय नहीं रह गया है। वस्तुतः मनुष्य जाति के लिये यह प्रकृति का अद्वितीय उपहार है जो संसार के सभी पर्यटकों को अपनी ओर आकर्षित कर रहा है।[3] उसके आकर्षण के क्षेत्र पर्वत, नदियां, घाटियां, समुद्री किनारे, बर्फीले स्थल, वन तथा वन्य जीवन आदि अनेक उपकरण हो सकते हैं। प्रायः अधिकांश पर्यटक इन सबके प्रति अपना बहुआयामी पक्ष ध्यान में रखकर ही पर्यटन स्थलों का भ्रमण करने के लिये आते हैं किन्तु कुछ पर्यटकों का उद्देश्य केवल प्राकृतिक सौंदर्य का आनन्द मात्र उठाना ही होता है। पारिस्थितिक पर्यटन एक प्रकार से प्रकृति आधारित पर्यटन का ही एक नवीन स्वरूप है।[4]

राष्ट्रीय मरू उद्यान जैसलमेर-बाड़मेर[5]

थार मरुस्थल के जैव विविधता बाहुल्यता वाले क्षेत्र को एवं मरुस्थलीय पर्यावरण तंत्र को संरक्षित रखने की आवश्यकता को देखते हुए ही राष्ट्रीय मरु उद्यान अभयारण्य की स्थापना की गई।

थार मरुस्थल के अक्षांश 25°47 से 26°46' N एवं रेखांश 70°15 S 70°45' E के बीच जैसलमेर एवं बाड़मेर जिले के मरुस्थलीय भाग को चिह्नित कर लगभग 3150.66 वर्ग कि.मी. क्षेत्र को राजस्थान सरकार के राजस्व ग्रुप-8 विभाग की अधिसूचना दिनांक 48-80 को राजस्थान राजपत्र के दिनांक 6.8.80 के असाधारण अंक में प्रकाशित कर वन्य जीव (सुरक्षा) अधिनियम की धारा 18 (1) के अन्तर्गत राष्ट्रीय मरु उद्यान अभयारण्य की स्थापना की गई। इस अभयारण्य क्षेत्र को (वर्तमान में कुल क्षेत्रफल 3187.94 वर्ग कि. मी. वन विभाग के ताजा आंकड़ों के अनुसार) में से जैसलमेर जिले में 1788.2 वर्ग कि. मी. तथा बाड़मेर जिले में 1399.92 वर्ग कि. मी. क्षेत्र स्थित है।

इसमें जैसलमेर जिले के 34 गाँव स्थित है जिनकी वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार 27581 जनसंख्या है तथा 140163 पशुधन है। अभयारण्य क्षेत्र में बाड़मेर जिले के 39 ग्राम स्थित है, जिनकी वर्ष 2001 की जनगणना अनुसार 27574 जनसंख्या एवं 72342 पशु संख्या थी।

थार मरुस्थल के इस प्राकृतिक वास में दूर-दूर तक फैले चलीयमान एवं स्थिर रेत के टीब्बे, इनके बीच विस्तृत भू-भाग, पथरीला भू-भाग, क्षारीय समतल मैदान आदि है। यह एक मनमोहक एवं भंगुर पारिस्थितिकी तंत्र है।

जैसलमेर से 14 कि.मी. दक्षिण-पश्चिम दिशा में स्थित यह क्षेत्र अत्यन्त कम वर्षा वाले क्षेत्रों में से है। यहाँ का दिन का तापमान बहुत अधिक रहता है, रात्रि अपेक्षाकृत ठण्डी होती है। गर्मियों में तेज धूलभरी आँधियाँ-80 से 100 किलोमीटर प्रति घण्टा की रफ्तार से चलती है शुष्क एवं कठोर जलवायु तथा अनउर्वरक मृदा होने के कारण यहाँ की वनस्पति शुष्क प्रकृति की है एवं बहुत दूर-दूर स्थित होने के कारण इसका घनत्व काफी कम है। यहाँ रेत के टीबों पर सेवग घास प्रचुर मात्रा में पाई जाती है। अन्य पादप जातियों में खींप, सिणिया, जल, फोग, बुई, भूरठ, केर, बेर, लाना घास, आक, झाऊ, गुगल, रोहिड़ा, कुमटिया आदि वृक्ष तथा धामग घास आदि पाई जाती है।

भारतीय वन्य जीव संस्थान देहरादून तथा बॉम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसाइटी

के अध्ययन के अनुसार यहाँ 48 कुल (फेमिलिज) के 168 प्रकार की वनस्पति प्रजातियों की मौजूदगी चिन्हित की गई है। अभयारण्य में राज्य वृक्ष खेजड़ी तथा राज्य पक्षी गोडावन की उपस्थिति इस क्षेत्र की विशेषता दर्शाते हैं।

भारतीय प्राणी सर्वेक्षण विभाग (ZSI- Zoological Survey of India) द्वारा वर्ष 1994 से 1998 तक के अध्ययन के अनुसार इस क्षेत्र में वर्टीब्रेट तथा हनवर्टीब्रेट (कशेरूकी की एवं अकशेरूकी) प्राणियों की 227 प्रजातियाँ पाई जाती है, जिनमें से 11 प्रजातियाँ राजस्थान में प्रथम बार इसी क्षेत्र में मौजूद होना पाया गया। यहाँ 107 प्रजातियों के पक्षी समय-समय पर देखे गये हैं एवं स्तन धारी mammals की 21 से अधिक प्रजातियों की उपस्थिति दर्ज की गई है।

वन्य प्राणियों की प्रजातियाँ राज्य पशु चिंकारा, हिरण, मरु लोमड़ी, भारतीय लोमड़ी, डेजर्ट हेयर, मरू बिल्ली, रोजड़ा (नील गाय), झाऊ चूहा तथा जरबिल्स आदि मुख्य प्रजातियाँ है। पक्षियों में राज्यपक्षी गोडावण, विभिन्न प्रकार के गिद्ध, ईगल फाल्कन, बजर्ड, सेण्ड ग्राउज, किंग फिशर, डेजर्ट विटियर, तीतर, बटेर, लार्कस तथा सर्दियों में प्रवास पर आने वाले पक्षियों में तिलोर, ब्लेक ईगल, सिनेटियर वल्चर, बजर्ड आदि प्रमुख है। उभयचर जन्तु समूह में यहाँ टोड की मात्र एक प्रजाति एण्डरसन्स टोड और मेढकों की पाँच प्रजातियाँ ही पाई जाती है।

सरीसृप की 43 प्रजातियाँ यहाँ पाई जाती है, जिनमें डेजर्ट मोनीटर, लिजार्ड, इण्डियन मोनीटर लिजार्ड, स्पाइनी टेल लिजार्ड (सांडा) क्रेट, रसल्स, वाइपर व अन्य प्रकार के सर्प आदि प्रमुख है। सौ स्केल्ड वाइपर, रसल्स वाइपर, कोबरा एवं पीवणा सांप यहाँ के सरीसृपों में मुख्य रूप से है। रसल्स वाइपर का रंग रेत के रंग से इतना मिलता जुलता है कि बिल्कुल उसके पास जाकर भी उसके होने का आभास नहीं होता। पीवणा सांप की पहचान हालांकि सिण्ड क्रेत के रूप में की जा चुकी है, फिर भी इसके बारे में पूरे मरूस्थल में यह किंवदंती अभी भी प्रचलित है कि ये सोये हुए मनुष्य की सांस खींच लेता है, जिससे मनुष्य की मृत्यु हो जाती है। कीट समूह में यहाँ दीपक की 17 प्रजातियाँ पाई जाती है। विभिन्न प्रकार की रंगीन तितलियाँ इस क्षेत्र की शोभा बढ़ाती है। यहाँ का गर्म रेतीला क्षेत्र टिड्डियों के दल और ग्रासहोपर्स के लिए अत्यन्त अनुकूल है। डंग बीटल द्वारा अपने आकार से बड़े गोबर आदि के टुकड़े को लुढकाते हुए देखना अपने आप में एक अनूठा दृश्य होता है।

यहाँ के प्रमुख पक्षियों में राजस्थान का राज्य पक्षी गोडावण (ग्रेट इण्डियन बस्टर्ड) है, जिसकी ऊँचाई करीब एक मीटर होती है। इसका रंग ऊपर

से भूरा पीला, गर्दन व नीचे से सफेद है। इसकी मादा नर की तुलना में छोटी तथा वजन में हल्की होती है। नर बहुगामी (Polygamous) होता है। यह वनस्पतियाँ, कीड़े-मकोड़े, अनाज आदि खाता है। इसकी संख्या तेजी से घटती जा रही है। यदि समय रहते इस पक्षी का संरक्षण नहीं किया गया तो यह प्रजाति भविष्य में विलुप्त हो सकती है। वर्तमान में यह केवल राजस्थान में कुछ भागों तथा गुजरात एवं महाराष्ट्र के कुछ भागों में ही पाया जाता है।

काला हिरण (ब्लैक बक)—घास के मैदानों में झुण्ड में रहने वाला यह भारतीय मृग है। इसकी लम्बाई करीब 100 से 500 से. मी. तक होती है। नर काले सफेद रंग का तथा लम्बे घुमावदार सींगवाला होता है। मादा थोड़ी छोटी बिना सींगों वाली भूरे रंग की होती है।

तिलोर (हुबार बस्टर्ड)—रेगिस्तान में सर्दियों में आने वाला पक्षी है। इसके ऊपर मिट्टी जैसा भूरा लाल रंग जिस पर काले रंग की धारियाँ एवं धब्बे होते हैं। इसके गर्दन पर दोनों तरफ काली पट्टी होती है। अवैध शिकार की वजह से इसकी संख्या तेजी से घट रही है। इसका मांस अरब के लोगों को बहुत प्रिय है।

रोजड़ा (ब्ल्यू बुल)—करीब घोड़े जितना आकार का मृग (एन्टीलोप) प्रजाति का सबसे बड़ा प्राणी है, जिसे नील गाय कहते हैं। इसके नर के पाँच से आठ इंच लम्बे सींग होते हैं तथा यह धूसर नीले रंग का तथा इसकी मादा बिना सींगों वाली व भूरे रंग की होती है। वे खेतों के आस-पास मंडराते रहते हैं, तथा फसल नष्ट करते हैं।

कुंज (कोमन क्रेन)—यह सारस प्रजाति का पक्षी है लेकिन लम्बाई में कुरंजा से बड़ा होता है। हल्के स्लेटी रंग पर काले पंख तथा गर्दन काली सफेद होती है। यह सर्दियों में रेगिस्तानी क्षेत्र में प्रवास करता है।

कुरजा (डेमोसाइल क्रेन)—यह भी सर्दियों में प्रवास पर आती है। इसकी चोंच व गर्दन काली होती है। यह भी सारस प्रजाति का है। इसका रगं धूसर होता है। यह फलौदी के खिंचन में अधिक देखे जाते हैं।

रेगिस्तानी लोमड़ी (डेजर्ट फोक्स)—गर्मियों में स्लेटी भूरे रंग की तथा सर्दियों में हल्के लाल रंग की दिखाई देने वाली लोमड़ी दो से तीन किलो भार वाली तथा सिर व शरीर 50 से. मी. व पूँछ 30 से. मी. तक लम्बी होती है। इसकी पूँछ का सिरा सफेद रंग का तथा कान पीछे से काले रंग के होते हैं।

लोमड़ी (इंडियन फोक्स)—यह धूसर रंग की तथा रेगिस्तान लोमड़ी से कद में थोड़ी छोटी होती है। इसकी पूँछ का अंतिम सिरा काला होता है।

आकल वुड फॉसिल पार्क—जैसलमेर से 15 किलोमीटर, बाड़मेर रोड पर स्थित है एवं 21 हैक्टेयर क्षेत्र में फैला हुआ है। यह प्रकृति का एक अद्‌भुत करिश्मा है कि लाखों वर्ष पूर्व पाये जाने वाले पेड़ पौधे एवं जीवों के एवं सागरीय जीवन के जीवाश्म यहाँ हैं। इसमें 25 वुड फॉसिल विद्यमान हैं जिनमें से 10 फॉसिल का काफी भाग पृथ्वी की सतह से ऊपर अनावृत है। सबसे बड़े फॉसिल की लम्बाई 7 मीटर है एवं परिधि करीब डेढ मीटर है। यह विदेशी एवं भारतीय, सभी पर्यटकों एवं वैज्ञानिकों के लिए आकर्षण का केन्द्र हैं। अभयारण्य या नेशनल पार्क/राष्ट्रीय उद्यान में मुख्य रूप से ऐसी परिस्थितियाँ एवं वातावरण के सृजन पर बल दिया जाता है, जिसमें वहाँ की विभिन्न प्रजातियाँ स्वतन्त्र रूप से प्रजनन कर सके एवं प्राकृतिक रूप से रह सके। इसके लिए 'न्यूतनम हस्तक्षेप का सिद्धान्त' पर बल दिया जाता है।

मरुस्थलीय वनस्पति, वन्यजीव समूह, दूर-दूर तक फैले रेत के टीबे एवं विभिन्न प्रकार के पक्षी पर्यटकों के लिए आकर्षण का केन्द्र हैं।

बीकानेर क्षेत्र के अभयारण्य

गजनेर वन्य अभयारण्य

बीकानेर से 32 किलोमीटर दूर स्थित गजनेर अभयारण्य में पशु-पक्षियों का स्वछंद विचरण देश-विदेश के पर्यटकों के लिए आकर्षण बना हुआ है। इस अभयारण्य में अधिकतर हर्गीबोरस वन्य प्राणी हैं, जिनमें काला हिरण, चिंकारा, नीलगाय, जंगली सूअर, सांभर, सियार, मरुस्थलीय लोमड़ी एवं खरगोश आदि हैं। अभयारण्य लगभग 80 किलोमीटर में फैला हुआ है। पशु-पक्षियों को देखने के लिए पर्यटकों को कई बार लम्बे समय तक प्रतिक्षा करनी पड़ती है और विशाल अभयारण्य के कारण आदमी कई बार मार्ग भटक जाता है। अभयारण्य की पूर्वी सीमा गजनेर गांव, कोडमदसेर, गजनेर रोड, पश्चिमी सीमा गोनी तथा चोनी गाँव तक उत्तर में कोडमदेसर गाँव तथा दक्षिण में बीकानेर कोलायत रेल्वे स्टेशन तक लगती है। गजनेर यातायात सेवाओं से जुड़ा हुआ है। देशी पक्षियों के अतिरिक्त विदेशी पक्षियों के झुण्ड हजारों किलोमीटर की उड़ान भरकर मध्य एशिया की कंपकंपाती सर्दी से बचने के लिए इस अभयारण्य में पहुंचते हैं। अभयारण्य में झील भी है जो रंग-बिरंगे पक्षियों से और भी रमणीक लगती है।

ज्यों ही सूर्योदय होता है पक्षी घोंसलों से संगीतमय कूच करते हैं और शाम को अपनी दिनचर्या पूरी कर घोंसलों में लौटते हैं।

अभयारण्य में हर साल नवम्बर दिसम्बर में विदेशी पक्षी आते हैं और फरवरी के मध्य लौटने लग जाते हैं। विदेशी पक्षियों में रेडमेस्टेड पोर्च, टफटेड पोर्च, व्हाइट आई पोर्च, गढ़ने विनटेड डक, शावलर, डोमेसल क्रेन आदि शामिल हैं। घुमक्कड़ पक्षी कोमन सैण्ड प्राठज, कुडस डबचिक, बिललाड, पेड कामोनें पिंक हेडेड डकटाल्स, ग्रेट इंडियन बस्टर्ड ग्राउज भी डेरा डाले हुए रहती है। गजनेर अभयारण्य में एम्पीरियल सेन्डग्राउज विशिष्ट विदेशी मेहमान पक्षी हैं जो हजारों की संख्या में आते हैं। इन पक्षियों का प्रातः लगभग साढ़े आठ बजे झील के ऊपर मंडराते हुए पानी पीने का मनोहारी दृश्य देखते ही बनता है। इस पक्षी का यहाँ वही महत्व है जो भरतपुर पक्षी विहार में साइबेरियाई सारस का है।

गजनेर झील पशु पक्षियों को पानी सुलभ कराने का स्थायी केन्द्र है, गजनेर झील की क्षमता पांच करोड़ घन फीट पानी की है। सन् 1934 की भयंकर बाढ़ से इस झील को खतरा पैदा हो गया था तब महाराजा गंगासिंह ने इसे नष्ट होने से बचाने के लिए एक ब्रिटिश इंजीनियर को बुलाया और झील के सम्पूर्ण जलग्रहण क्षेत्र 129.5 वर्ग किलोमीटर का शानदार प्रबन्ध कराया था, इस दौरान आठ वाटर चैनल्स तथा स्थान-स्थान पर गेट और बांध बनाये गये। इस अभयारण्य को पहले गजनेर शिकारगाह के नाम से जाना जाता था। गंगासिंह ने शाही मेहमानों के मनोरंजन एवं शिकार के लिए इस अभयारण्य को स्थापित किया था। बीकानेर नरेशों द्वारा यहाँ डूंगर निवास, शक्तिनिवास, गुलाब निवास तथा सरदार निवास नामक सुन्दर महल बनवाये गये थे।[6]

पयर्टकों की सुविधा हेतु यहाँ पर गुलाबी रंग से नहाया हुआ सुंदर महल है जो वर्तमान में हैरिटेज होटल में परिवर्तित हो चुका है। यह सुंदर महल यहाँ आने वाले पर्यटकों के लिये सबसे अधिक आकर्षण का केन्द्र होता है। गजनेर अभयारण्य घूमने के लिये बीकानेर से सड़क मार्ग द्वारा सरलता से पहुँचा जा सकता है। यहाँ घूमने का सही समय सितम्बर से मार्च के बीच का होता है।

जोहड़ बीड़

जोहड़ बीड़ बीकानेर जिले का एक अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण आरक्षित वन क्षेत्र है जो बीकानेर-नापासर मार्ग पर बीकानेर से 16 किलोमीटर दूर पड़ता है। इसका क्षेत्रफल 75 वर्ग किलोमीटर है। यह एक विशिष्ट प्रकार का रेगिस्तानी

क्षेत्र है, जहाँ के प्राकृतिक परिवेश में छोटी-छोटी झाड़ियां, मिट्टी, कंकरीली जमीन तथा बालू के टीबे पाये जाते हैं। यहाँ की जलवायु शुष्क तथा भूमि बंजर है जिसके कारण यहाँ पर हरियाली बहुत कम नजर आती है। यहाँ के पेड़ का आवरण भी अधिक नहीं है। यहाँ की बरसात का वार्षिक औसत तीन सौ मिलीमीटर के लगभग है तथा गर्मी का मौसम आने पर मई-जून के महीनों में यहाँ का तापमान 48 डिग्री सेल्सियस तक पहुँच जाता है।

इस प्राकृतिक प्रदेश में चिंकारे, रेगिस्तानी लोमड़ियां और बिल्लियां तथा नील गायें प्रचुर संख्या में पाई जाती है। यहाँ पर जंगली सूअरों की भी भरमार है।

कृष्णमृग अभयारण्य, तालछापर

जिला मुख्यालय से 90 किलोमीटर दक्षिण-पूर्व में एशिया के सुप्रसिद्ध काले हिरणों का अभयारण्य तालछापर में स्थित है। बीकानेर महाराजा गंगासिंह के समय यह अभयारण्य दो हजार हेक्टेयर में फैला हुआ था। वर्तमान में यह 722 हैक्टेयर में फैला हुआ है। मई, 1993 की गणना में इस अभयारण्य में 1482 कृष्ण मृग, 86 खरगोश, 13 लोमड़ियां तथा 7 बिलाव पाये गये थे। इस अभयारण्य में 127 प्रजातियों के पक्षी आते हैं, जिनमें चीन, अफगानिस्तान, पाकिस्तान, साइबेरिया आदि देशों के पक्षी सम्मिलित हैं। डमोइनल क्रेन (कुरजां तथा बार हैडड गूज) भी बड़ी संख्या में देखा जा सकता है। एक खारे पानी की झील भी है जिससे नमक प्राप्त किया जाता है।[7]

सन् 1962 में जब यह क्षेत्र बीकानेर के भूतपूर्व महाराजा द्वारा राजस्थान सरकार को स्थानांतरित किया गया तो उस समय यहाँ के काले हिरणों और खरगोशों की संख्या लगभग 250 थी। सन् 1971 में इस क्षेत्र को 'अभयारण्य' घोषित किया गया। ताल छापर ने इस सुदूरवर्ती क्षेत्र के प्रति प्रकृति प्रेमी पर्यटकों का ध्यान सदैव आकर्षित किया है। यहाँ पर अनेक पक्षियों और नवजात शिशुओं से घिरा हुआ एक नर पक्षी तथा उसी वर्ग के सभी दल बहुत ही निकटता से देखे जा सकते हैं। जुलाई-अगस्त की बरसाती बौछारों के चमत्कार से जब यहाँ की घास अत्यधिक हरी-भरी होकर बढ़ जाती है तो यहाँ के खरगोशों को मनचाहा चारा मिल जाता है। आजकल अंग्रेजी बबूल नामक विजातीय घास ने इस प्रदेश पर मानो एक प्रकार से आक्रमण सा कर रखा है। यहाँ का पानी खारा है तथा इस अभयारण्य के चारों ओर नमक के गड्ढ़े देखे जा सकते हैं। यहाँ पर भैसललावा तथा डुगोलावा नाम की दो छोटी-छोटी झीलें भी विद्यमान हैं।

ताल-छापर प्रवासी कुरजों और सारसों के आश्रयस्थल के रूप में भी प्रसिद्ध है। ये पक्षी सितम्बर में आकर झील के चारों ओर मंडराते हैं और मार्च तक यहीं रहते हैं। यह अभयारण्य पक्षियों की लगभग 150 प्रजातियों का आवास क्षेत्र है जिसमें सिरघुटी बतखें, कई प्रकार के उल्लू, छोटे-बड़े बगुले, उकाब, गुड़गुड़ियां तथा पनडुब्बियां आदि अनेक पक्षी निवास करते हैं। यहाँ पर फनवाले जहरीले सांपों की जातियां तथा रेंगने वाले जंतुओं की अनेक प्रजातियां भी पायी जाती हैं जिनमें कोबरा और वाइपर सांप तथा अनेक किस्मों की छिपकलियां और गिरगिट प्रमुख हैं।

जोधपुर

कुर्जा पक्षियों के लिये प्रसिद्ध खीचण गाँव

जोधपुर जिले में फलौदी के निकट खीचण गांव में कुर्जा (कुरजा) पक्षियों के झुण्ड प्रति वर्ष प्रवास करने आते हैं। यहाँ नदी, झील अथवा चारागाह जैसी कोई सुविधा नहीं है। प्राकृतिक आवास के नाम पर केवल एक छोटा तालाब, रेत के धोरे और कंकरीला मैदान स्थित हैं। फिर भी ये पक्षी सदियों से इस गांव में आ रहे हैं। कुर्जा पक्षी, सारस प्रजाति का सदस्य है जिसे अंग्रेजी में 'डेमोजल क्रेन' कहते हैं। शीतकाल में जब उत्तरी रूस, यूक्रेन तथा कजाकिस्तान में बर्फ जमने लगती है तो वहाँ निवास करने वाले हजारों-लाखों कुर्जा पक्षी पश्चिमी भारत में स्थित राजस्थान तथा गुजरात राज्यों के लिये उड़ जाते हैं। सितम्बर अक्टूबर माह में कुर्जा पक्षियों के झुण्ड पश्चिमी राजस्थान के छह जिलों के सत्रह स्थानों पर पड़ाव डालते हैं। इनमें से पन्द्रह से बीस हजार कुर्जा खीचण गांव में आकर बसेरा करते हैं। इन पक्षियों के झुण्ड गांव के पूर्व की तरफ बने तालाब के पेटे में उतरते रहते हैं। जब ग्रामीणों को इन पक्षियों के आगमन की जानकारी होती है तो वे इन अतिथि पक्षियों की आवभगत में पलक पांवड़े बिछा देते हैं। गांव के पश्चिम में बनाये गये चुगाघर का गोदाम अनाज से भर दिया जाता है।

निष्कर्षत: पश्चिमी राजस्थान की प्राकृतिक धरोहर राष्ट्रीय उद्यान एवम् अभयारण्यों को पर्यटक देखकर अभिभूत होते है। अत: उद्यान एवं अभयारण्यों का भी पर्यटन के क्षेत्र में महत्ती योगदान है।

सन्दर्भ

1. के.के. सहगल, *राजस्थान डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स-बीकानेर*, गवर्नमेंट प्रेस, जयपुर, 1972, पृ. 1-5

2. मेघाराम गढ़वीर, अंजु सुथार, *पर्यटन दशा एवं दिशा*, लिटरेरी सर्किल, जयपुर, 2012 पृ. 104
3. एम.ए.खान, *इंट्रोडक्शन टू टूरिज्म*, अनमोल पब्लिकेशन, 2005, पृ. 15-20
4. सुरेश चन्द्र बंसल, *थ्योरीज ऑफ टूरिज्म एंड ट्रेवल फंडामेंटल*, 2006, पृ. 34
5. मेघाराम गढ़वीर, अंजु सुथार, *पर्यटन दशा एवं दिशा*, पृ. 104
6. मोहनलाल गुप्ता, *बीकानेर सम्भाग का जिलेवार सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक अध्ययन*, जोधपुर, 2011, पृ. 151-164
7. मोहनलाल गुप्ता, पूर्वोक्त, पृ. 172-73

हरिमोहन मीना
शोधार्थी (इतिहास)
राजकीय डूंगर महाविद्यालय,
(एम.जी.एस.यू.) बीकानेर

डॉ. चंद्रशेखर कछावा
शोध निर्देशक
प्रोफेसर, इतिहास विभाग
राजकीय डूंगर महाविद्यालय, बीकानेर
(महाराजा गंगासिंह विश्वविद्यालय, बीकानेर)

❑❑❑

मारवाड़ी लोकोक्तियों व लोक गीतों में जल

● डॉ. उषा लामरोर

मारवाड़ में लोगों के पीढ़ी दर पीढ़ी के अनुभव और पर्यावरण के प्रति चेतना के कारण ही इन लोकोक्तियों की रचना हुई। लोगों का प्रकृति के साथ सहजीवन, जीव-जन्तुओं में व्यावहारिक परिवर्तनों एवं प्राकृतिक शक्तियों के संकेतों के आधार पर रचित ये लोकोक्तियां आज भी प्रासंगिक हैं।

परवाई बाज'र पिछम घिरे, तो घर बैठी पिणयार्‌यां पाणी भरे।[1]

अर्थात्—पूर्व दिशा से चल रही हवा की दिशा विपरीत होकर पश्चिम दिशा से चलने लगे तो वर्षा होने की पूर्ण संभावना होती है। अर्थात् पणिहारियों को अब पनघट पर जाने की आवश्यकता नहीं, वे घर बैठे ही पानी भर लेंगी।

सावण बाजे सुर्‌यो, भादुड़े परवाई।
आसोजा पिछवा चाले तो, भर भर गाडा ल्याई।।[2]

अर्थात्—श्रावण मास में सुरयो (उत्तर-पश्चिम दिशा से चलने वाली एक स्थानीय हवा) चले और भाद्रपद मास में परवाई (पूर्व दिशा से चलने वाली हवा), अश्विन मास में पिछवा (पश्चिम दिशा से चलने वाली हवा) चले तो अच्छी फसलें होती है। अर्थात् सुकाल पड़ेगा।

परभात पपयो बोले, सिंज्या बोले मोर।
इन्दर बरसण आवियो, नाड़्यां तोड़े धोर।।[3]

अर्थात्—यदि प्रात:काल पपैया और सायंकाल में मोर बोलते है तो इतनी वर्षा होती है कि तालाबों के किनारे टूट जाते हैं।

उगते रेसा रे सलो, बढ़ते री है भोज।
भियो कहे रे भड़ली, इन्दर बरसे रोज।।[4]

अर्थात्—सूर्योदय के समय बादल और सूर्यास्त के समय बादलों में लालिमा छा जाती है तो अच्छी वर्षा के संकेत है।

तितर पंखी बादळी, विधवा काजळ रेख।
आ बरसे बा घर करे, इणमें मीन न मेख।।[5]

अर्थात्—आसमान में तितर के पंखों की आकृति जैसे बादल और विधवा की आंखों में काजल लगा दिखे तो बादल तो बरसते है और विधवा, पुनर्विवाह कर नया घर बसाती है।

धुर बरसालै लूंकड़ी, ऊँची घुरी खिणन्त।
भेली होयर खेल करै, तो जळधर अति बरसंत।।[6]

अर्थात्—वर्षा ऋतु के आरम्भ में लोमड़िया अपनी घुरी ऊँचाई पर खोदें तथा परस्पर मिलकर क्रीड़ा करें तो जानो वर्षा भरपूर होगी।

पांड्या जोसी के मेह कद होसी, पवन फिर्या मेह होसी।[7]

अर्थात्—पाण्डे और जोशी (पंचांग देखकर वर्षा का योग बताने वाले) से जब पूछा जाता कि वर्षा कब होगी? तब वे उत्तर देते है कि हवा की दिशा में परिवर्तन होने पर ही वर्षा का योग है।

वर्षा के सम्बन्ध में लक्षण आधारित भविष्यवाणियां

सूरज की लालिमा और किरणें तेज हो, चांद पर जिळेरी (जाले जैसी बनावट), तारों का खींचना अर्थात् तेज चमक, हवा की दिशा में परिवर्तन तथा गति कम या होना, बादलों की बनावट तथा उनका रंग जैसे—काले बादल, गुदले बादल, भूरे बादल, पक्षी अपने घोंसले जमीन पर बनाते है तो अकाल की संभावना और ऊँचाई पर बनाते हैं तो अधिक वर्षा योग, पक्षियों का मिट्टी में नहाना—वर्षा योग, आड़ंग (बहुत अधिक उमस का होना), चींटियों का अण्डे लेकर चलना यानि जल्दी बारिस आने वाली है।

मैवां सुधारे बीजळी, सरवर सुधारे पाळ।
बाप सुधारे डीकरो, तो घर सुधारे नार।।

वर्षा की सुन्दरता बिजली चमकने से बढ़ती है, सरवर या तालाब की सुन्दरता उसकी पाळ से है। बाप की इज्जत उसके बेटे से बढ़ती है तो घर की शोभा पत्नी से बढ़ती है। इसी कारण तपती लुओं की लपटें तथा सूर्य की गर्मी में भी पसीना पौंछता हुआ राजस्थानी लोक जीवन कह उठता है कि—

दुसमण री किरपा बुरी, भली सैण री त्रास।
जद सूरज गर्मी करै, तद बरसण री आस।।[8]

मारवाड़ी लोक गीत आमजन के मन के भावों का प्रकटीकरण है जो सदियों पुरानी परम्पराओं व रीतियों को पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ाने का काम कर रहे हैं। लोक गीत लोक जीवन में व्रत, त्योहार, ऋतु, उत्सव, हर्ष, शोक, विरह, मिलन सभी अवसरों पर गाए जाते है। आनंद और उल्लास के अवसर पर लोक ने गीत गा-गा कर खुशियां मनाई है तथा दुःख और अवसाद के अवसर पर सहन करने की शक्ति प्राप्त की है। इस प्रकार लोक गीत मानव जीवन की अमूल्य निधि है। असंख्य कंठों से गाए हुए गीत जनजीवन में इतने गहरे बैठ गए हैं कि जनमानस का अविच्छिन्न अंग बन गए हैं। लोक जीवन इन गीतों के दर्पण में शताब्दियों से अपनी कामनाओं का प्रतिबिंब देखता आया है। वह अपनी दबी इच्छाओं को गीतों में गा कर अपार हर्ष का अनुभव करता है तो दूसरी ओर अपनी प्रियतमा के वियोग में गा-गा कर विरह को सहन करने की क्षमता प्राप्त करता है।

नारी के उद्गारों की खुलकर अभिव्यक्ति का साधन तो केवल लोकगीत ही है। राग विराग, घृणा, प्रेम और दुःख-सुख की जिन भावनाओं को नारी स्पष्ट कह नहीं पाती, उनको गीतों द्वारा गा गा कर सुना दिया है। वह न रुकी, न झिझकी है और न ही सरमाई है। लोक गीतों में नारी ने अपने अंतस्तल को खोल कर रख दिया है। ये गीत महिलाओं के हृदय की झंकार, कामना की शब्द मूर्ति और भावनाओं के रेखाचित्र है। लोक गीत प्राणवान, मधुर और नैसर्गिक है।

पानी सदियों से मरुस्थल के लिए महत्वपूर्ण संसाधन रहा है। इसी कारण यहां के जन मानस में पानी के उपयोग को लेकर अति संवदेनशीलता देखी जा सकती है जो लोक गीतों के माध्यम से बार-बार प्रकट होती है। पानी को यहां हमेशा ही सहेज कर रखा जाता था। कुंआ, कुई, तालाब, झालरा, झील, नाडी, नाडिया, होद व टांका इत्यादि स्रोतों में पानी को संचित कर सुरक्षित रखा जाता था। इन जलीय स्रोतों से प्रत्येक घर तक पानी पहुंचाने का कार्य मुख्यतः पणिहारियों द्वारा किया जाता रहा है। पनघट पर आते-जाते महिलाओं द्वारा अपने मनोभावों व उद्गारों को विभिन्न गीतों के माध्यम से प्रकट किया जाता रहा है जो इस प्रकार है—

1. ऊँडे कुए रो पाणी

सासु आठ बज्यां पाणी चाली, मैं तो नौ बज्यां घर आई ऐ, सासु ऊँडे कुए रो पाणी.....

 ISSN 2278-4632

सासु बालटी रो नावं नारंगी, सिंचणिये रो नाव हजारी...

सासु घी ढुल्योड़ो घणों होरो, ओ तो पाणीड़ो ढुळे तो जीवड़ो दोरो ऐ, सासु ऊँडे कुए रो पाणी....

सासु कोरा कोरा कागज थांरा, रूपयां री थेली मारी रे ......

सासु छोटा थका बेटा थांरा ऐ तो भरी जवानी भर मांरा रे .....

गीत में बहू अपनी सासू को संबोधित करते हुए कहती है कि आठ बजे पानी लेने कुए पर गई और नौ बजे घर वापस आई हूँ, क्योंकि कुंआ बहुत ही दूर व गहरा है। अतः कुए से पानी निकालने में बहुत अधिक समय एवं श्रम लगता है। पानी निकालना तथा उसे घर तक लाना एक श्रम साध्य कार्य था इसलिए बहू, सास से कहती है कि अगर घी बिखर जाए तो कोई बात नहीं पर पानी बिखर जाए तो मेरा मन (जी) जलता है।

2. बेड़लो म्हारो जल रो भर्यो[9]

अरे जावे जावे पाणीने तलाब, बेड़लो म्हारो जल रो भर्यो
अरे जावे जावे भीम तलाब, बेड़लो म्हारो जल रो भर्यो
बेड़लो मारो हीवड़े रो हार, बेड़लो म्हारो जल रो भर्यो
भरीयो डूबेनी रे बेड़लो म्हारो रे, इंडोणी तो तिर तिर ज्याय
मोटोड़ी छांटांळो भरसे मेह, बेड़लो म्हारो जल रो भर्यो

बेड़लो यानी जल का बर्तन या घड़ा जिसका घर व तालाब के बीच पानी लाने में उपयोग किया जाता है और जिससे पानी की घर पर आपूर्ति होती रहती है। बेड़ला पणिहारी के गले का हार है जिसे तालाब में डूबोकर भरा गया, तब तक इंडाणी तैरकर गहरे पानी में चली गई। बड़ी-बड़ी बूंदों वाली बारिस हो रही है और बेड़ला पानी से भर गया है।

3. जळ जमना रो पाणी

जळ जमना रो पाणी कियां ल्याऊं ओ रसिया,
पतळी कमर म्हारी लूळ लूळ ज्याय-2
छोटकी नणद म्हारी पाणी कोनी ल्यावे
बा घर बैठी हुकम चलावे ओ रसिया
पतळी कमर म्हारी लूळ लूळ ज्याय-2
माथे माते मटकी, मटकी ऊपर घड़लो

मटकी ऊपर चाड़्यो कोनी हाले ओ रसिया
पतळी कमर म्हारी लूळ लूळ ज्याय-2
ऊँची ऊँची पाळ घड़ो नी डूबे ओ रसिया
उंडी जांऊँ तो डर लागे ओ रसिया
पतळी कमर म्हारी लूळ लूळ ज्याय-2

इस लोक गीत में नायिका अपने पति से शिकायत करती है कि पानी के घड़े के भार से मेरी पतली कमर लचक जाती है अतः तालाब से पानी कैसे लेकर आऊँ? मेरी छोटी ननद पानी नहीं लाती है और बैठी मुझे आदेश देती रहती है। मेरे सिर पर मटका, मटके पर घड़ा तथा घड़े पर छोटा कुल्हड़ इतना भार लेकर मुझसे चला नहीं जाता। तालाब की पाल बहुत ऊँची और पानी गहरा है तथा गहरे पानी में जाऊँ तो मुझे डर लगता है।

4. पणिहारी[10]

काळी कळायण उमटी ऐ पिणयारी जिएलो मिरगा नैणी जिएलो।
मोटोड़ी छांटांळों भरस्यो मेह बालाजो-2
सात सहेल्यां रो झूलणों ऐ पिणयारी जिएलो बाला राणी जिएलो।
पाणीडे. ने चाली रे पिणयार बालाजो, पाणी ने गई पिणयार बालाजो।
ओरां के काजळ टिकियां ऐ पिणयारी जिएलो मिरगा नैणी जिएलो।
थारोड़ा फीका-फीका नैण बालाजो, थारोड़ा फीका-फीका नैण बालाजो।
ओरां रा परण्यां घर बसे रे पिणयारी जिएलो बाला राणी जिएलो ।
मारोड़ा बसे रे परदेस बालाजो, मारोड़ा बसे रे परदेस बालाजो।
एक ओटिड़ो म्हाने इस्यो मिल्यो ऐ पिणयारी जिएलो मिरगा नैणी जिएलो।
पूछे म्हारे मनडे. री बात बालाजो, पूछे म्हारे मनडे. री बात बालाजो ।
किणजी सरीखो डिगो पातळो ऐ पिणयारी जिऐलो बाला राणी जिएलो।
किणजी सरीखो उणियार बालाजो, किणजी सरीखो उणियार बालाजो ।
देवरजी सरीखो डिगो पातळलो ऐ पिणयारी जिऐलो मिरगा नैणी जिएलो।
नेनकड़ी नणदल रे उणियार बालाजो, लाडकड़ी नणदल रे उणियार बालाजो।
थे तो बहू जी म्हारा भोळा घणा ओ पिणयारी जियलो बाला राणी जिएलो।
ऐ तो थांरोड़ा भरतार बालाजो, ऐ तो थांरोड़ा भरतार बालाजो ।
काळी कळायण उमटी ऐ पिणयारी जिएलो मिरगा नैणी जिएलो।
मोटोड़ी छांटांळों भरस्यो मेह बालाजो, गेहरोड़ी छांटांळों भरस्यो मेह बालाजो।[11]

 ISSN 2278-4632 जनवरी-जून 2023

काले बादलों की घटाएं छा गई हैं और बड़ी-बड़ी बूंदो वाली वर्षा हो रही है। सात सहेलियों की टोली पानी लेने जा रही है। सभी सहेलियां सजी-धजी है, लेकिन नायिका की आंखें मायूस है, क्योंकि उसका पति परदेश में रहता है। नायिका कहती है कि एक अजनबी मुझे मिला जो मेरे मन की बात पूछ रहा था। सहेलिया पूछती हैं कि वह कैसा था? तब नायिका बताती है कि मेरे देवर जैसा लम्बा और पतला था तथा छोटी ननद के जैसा उसका चेहरा था। तब नायिका की सासू कहती है कि मेरी बहू बहुत भोली है जो उसको पहचान ही नहीं पाई। वह तो इसका पति ही था। पणिहारी राजस्थानी सर्वोत्कृष्ट लोक गीतों में से है।[12]

5. ईतळ पीतळ रो बेवड़ो

ईतळ पीतळ रो भर लाई बेवड़ो रे झांझरिया मारा सेण।
कोई खाक मांयला टाबरिया री आण रे मैं जांऊँ रे जांऊँ पीवरिये।
सासू बोल जी माने बोलणा रे झांझरिया मारा सेण।
कोई बाईसा देवे माने गाळ रे मैं जांऊँ जांऊँ पीवरिये।
आया बीरोसा माने लेवबा रे झांझरिया मारा सेण।
ज्यांरी कांई कांई करूं मनवार रे मैं जांऊँ रे जांऊँ पीवरिये।
थारी मनाई देवर ने मानूं रे झांझरिया मारा सेण।
थारे बडोड़े बीरोसा ने मेल रे मैं जांऊँ रे जांऊँ पीवरिये।
काळी पड़गी रे मन री कामळी रे झांझरिया मारा सेण।
मारे आलीजा पे मारो साचो जीव मैं जांऊँ रे जांऊँ सासरिये।

बार-बार तालाब से पानी लाकर पणिहारी परेशान हो जाती है, तब अपने बच्चे की सौगन्ध खाकर कहती है कि मैं अपने पीहर चली जाऊँगी। सासू मुझे ताने दे रही है और ननद मुझे गाली दे रही है। मेरा भाई अब मुझे लेने आया है सो उसकी क्या खातिरदारी करूँ? रूठी नायिका को मनाने उसका देवर जाता है तो नहीं मानती लेकिन जब उसका पति मनाता है तो वह मान जाती है और कहती है कि अब मैं पीहर नहीं जाऊँगी।

6. कुवे पर अेकली[13]

कुए पर ऐकली ऐ.....
घड़लो घड़े पर टोकणी ऐ, घड़लो घड़े पर टोकणी ऐ।
ऐ माई म्हारी गई गई समंद तळाव, ऐ माई म्हारी गई गई समंद तळाव।
कुए पर ऐकली ऐ....

घड़लो तो डूबे ना टोकणी ऐ घड़लो तो डूबे ना टोकणी ऐ

ऐ माई म्हारी इंडुणी तो तिर तिर जाए ऐ माई म्हारी इंडुणी तो तिर तिर जाए।

कुए पर ऐकली ऐ....

नणद भोजाई पाणीने नीसरी ऐ माई म्हारी गई गई समंद तळाव

कुए पर ऐकली ऐ....

भोजाई भर पाछी बावड़ी ऐ माई म्हारी नणदुली ने मिल गयो श्याम।

गेले तो जावण वाळा छोकरा रे, म्हारो भरियो घड़लो उठाय।

भरियो तो घड़लो उठावस्यां ऐ गोरी तू एक बात बताय।

कुए पर ऐकली ऐ....

रात घणी अणखावंणी ऐ गोरी ऐ दे दियो पीव छिटकाय

रात घणी अणखावंणी ऐ छैला म्हारो पर्णयो बसे परदेश

कुए पर ऐकली ऐ....

कुण के तो आया छैला पावणा रे कुण जी रे आया लणिहार

सुसरो जी रे आया गोरी पावणा, ऐ गोरी थांरा तो आया लणिहार।[14]

कुए पर ऐकली एक विरह गीत है जिसमें नायिका पानी भरने कुए पर जाती है और अपने पति की याद में खो जाती है। वह घड़ा पानी पर रखकर बैठ जाती है जो डूबता नहीं है और इंडाणी तैरकर आगे चली जाती है। ननद और भाभी दोनों पानी लेने गई थीं। भाभी पानी लेकर वापस घर आ गई लेकिन ननद को वहीं उसका प्रेमी मिल गया। नायिका रास्ते चलते राहगीर से अपना घड़ा उठवाने को कहती है तो राहगीर कहता है कि घड़ा तो उठवा दूंगा लेकिन तू अपने मन की बात तो बताओ? इतनी परेशान क्यों हो? नायिका की रातें विरह में कट रही है क्योंकि उसका पिया उसे छोड़कर परदेश चला गया है।

7. डिगी मारे सरवरिये री पाळ[15]

आंगणीये खुदाऊँ कुआ बावड़ी रे बीरा म्हारा डिगी मारे सरवरिये री पाळ

पाळ चढूं निची ऊतरूं रे बीरो म्हारो म्हासुं टळियो जाए।

यह एक विरह गीत है जिसमें नायिका कहती है कि सरवर जाकर पानी लाना बड़ा कठिन कार्य है, क्योंकि सरवर की पाल बहुत ही ऊँची है। अत: घर के आंगन में ही कुआ या बावड़ी खुदवा दो। नायिका अपने भाई का इंतजार करती हुई कभी सरवर की पाल चढ़ती तो कभी नीचे उतरती है और कहती है कि उसका भाई उसको लेने नहीं आ रहा है।

8. सागर पाणीड़े ने जाऊँ सा नीजर लग ज्याय।[16]

नीजर लग ज्याय जुलम होय जाए.....
म्हारी सोसनी साड़ी रो रंग उड़ जाए।[17]

पणिहारी कह रही है कि सागर पानी लेने गई तो नजर लग जाएगी और मेरी साड़ी का रंग उड़ जाएगा।

9. इंडाणी[18]

म्हारी सवा लाख री लूम गम गई इंडाणी।
म्हारी काळजिये री कोर.....
इंडाणी के कारण मैं छोड़या माय अर बाप
म्हारी मासी कात्यो सूत....
इंडाणी बड़ी सरूप गम गई इंडाणी
इंडाणी के कारणे मैं मरूं कटारी खाय....
पेर ओढ पाणी गई कोई छल से लिनी चुराय...
इंडाणी बड़ी सरूप गम गई इंडाणी
इंडाणी के कारणे म्हारी सासू बोले बोल....
म्हारी नळदल नाते जाए, गम गई इंडाणी

पणिहारी पनघट पर पानी भरने जाती तो अपने सिर एवं घड़े के बीच में इंडाणी रखती है जिससे घड़ा सिर में चुभे नहीं। पणिहारी पानी लेने जाती है तो उसको साथ लेकर जाती है। इंडाणी को सूत, गोटा, तारे, मोती, लूम, लटकन व अन्य कई प्रकार के सामान का उपयोग कर बहुत ही कलात्मक ढंग से गोल व घेरदार बनाया जाता है।[19] इंडाणी को अपनी पुत्रियों को कलश आदि बर्तनों के साथ दहेज में दिया जाता है। इस गीत में पणिहारी पानी के लिए जाती है। इसी बीच घड़ा भरते समय उसकी इंडाणी खो जाती है तो पणिहारी अपनी सास, ननंद, देवरानी व जेठानी से कलह मोल ले लेती है। तब पणिहारी कहती है कि सवा लाख की लूम उसमें लगी हुई थी और इंडाणी मेरा दिल का टुकड़ा थी। इसके लिए तो मैंने अपने मां-बाप को छोड़ दिया था। इसको बनाने के लिए मेरी मौसी ने सूत काता और बहुत ही सुदर बनाया था। इंडाणी के लिए मैं कटारी खाकर मर जाऊँगी। इंडाणी को मेरी पड़ोसन या किसी ने छल से चुरा लिया, जो बहुत सुन्दर थी। इंडाणी के कारण मेरी सासु मुझको ताने दे रही है और ननंद

नाते जाने का कह रही है। अतः इंडाणी को हर हाल में वापस ढूंढ़ कर लेकर आओ।[20]

मारवाड़ी लोकोक्तियों में लोक जीवन का अनुभव है, जिसके आधार पर वर्षा के बारे में सटीक भविष्यवाणियाँ लोगों द्वारा की जाती रही है। अपने अनुभव व सूक्ष्म निरीक्षण द्वारा वायु की गति व दिशा तथा पृथ्वी पर जीव-जन्तुओं के व्यवहार के सदियों के अवलोकन के आधार पर इन लोकोक्तियों का लोक जीवन में सृजन हुआ। वहीं दूसरी ओर लोक गीतों की रचनाएं की गई। इन लोक गीतों के माध्यम से पानी, पनघट एवं पणिहारी तीनों पहलुओं का बहुत ही बारीकी से चित्रण किया गया है। पानी की उपलब्धता, मात्रा, उपयोग, गुण एवं संसाधनों के साथ ही पणिहारी व पनघट के आपसी समन्वय की सुंदर अभिव्यक्ति इन गीतों के माध्यम से की गई है। गीतों में पणिहारी के माध्यम से जो कि पानी की वाहक है, मनोभावों यथा विरह, प्रेम, ईर्ष्या, समर्पण एवं त्याग की सुंदर अभिव्यक्ति है। इस प्रकार ये लोकोक्तियाँ एवं लोक गीत हमारे लोक जीवन के अनुभव, यथार्थ एवं मनोभावनाओं का एक अद्भुत मिश्रण एवं अभिव्यक्ति है।

संदर्भः

1. साक्षात्कार रामदेव चौधरी, गांव भदाणा, जिला नागौर, राजस्थान।
2. सुरेश कुमार, 'राजस्थान की लोक-कहावतों में निहित परम्परागत मौसम विज्ञान', राजस्थान हिस्ट्री कांग्रेस, प्रोसीडिंग्स वॉल्युम-33, जोधपुर, फरवरी, 2019, पृ. 225
3. उपर्युक्त, पृ. 226
4. उपर्युक्त, पृ. 226
5. प्रोफेसर नवदीप बैंस, युगपक्ष समाचार पत्र, 9 जून, 2021.
6. उपर्युक्त।
7. वार्ता सुगनी देवी, गांव भदाणा, जिला नागौर, राजस्थान।
8. हनुमंतसिंह देवड़ा, राजस्थानी लोकगीत भाग-3, साहित्य संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर, पृ. 18
9. चंपा मेथी, राजस्थानी लोक गीत, युकी राजस्थानी हिट्स।
10. देवीलाल सामर, राजस्थान का लोक-संगीत, भारतीय लोक कला मंडल, उदयपुर, 1957, पृ. 138

11. पूर्णिमा गहलोत, राजस्थान गाता है, किताब महल, जयपुर, पृ. 131-32
12. रानी लक्ष्मी कुमारी चूंडावत, राजस्थानी लोकगीत, राजश्री प्रिन्टर्स, जयपुर, 1957, पृ. 127
13. विजयदान देथा, गीतों की फूलवाड़ी, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, 2014, पृ. 63
14. सीमा मिश्रा, राजस्थानी लोक गीत, वीणा म्युजिक।
15. चंपा मेथी, राजस्थानी लोक गीत, आर. आर. राजस्थानी।
16. जयसिंह नीरज एवं शर्मा, राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 1999, पृ. 122
17. हरदान हर्ष, राजस्थानी भाषा, साहित्य और संस्कृति, आशीर्वाद पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2000, पृ. 191
18. रवि प्रकाश नाग, राजस्थानी गीतां रो गजरो, साहित्यगार, जयपुर, 1987, पृ. 61
19. हरदान हर्ष, उपर्युक्त, पृ. 191
20. मोहनलाल शास्त्री, राजस्थानी लोकगीत भाग-4, साहित्य संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर, पृ. 53

डॉ. उषा लामरोर
सहायक आचार्य इतिहास
राजकीय डूँगर महाविद्यालय, बीकानेर, राजस्थान

❑❑❑

उदार लोकतंत्र और इतिहास का अंत

• डॉ. मोहम्मद कामरान खान

लोकतंत्र वह प्रक्रिया है जहाँ सार्वजनिक नीतियों का निर्धारण करने वाली राजनीतिक शक्ति जनता में निहित होती है। लोकतंत्र को 'जनता के शासन' के रूप में परिभाषित किया जाता हैं परन्तु 'जनता' शब्द का अर्थ मानव के राजनीतिक इतिहास में कभी 'स्थिर' नहीं रहा हैं। यूनानी नगर राज्यों में विद्यमान लोकतंत्रों में जनता की परिभाषा में महिलाएं, दास और विदेशी नागरिक शामिल नहीं थे। इसी तरह ब्रिटिश और अमेरिकी लोकतंत्र अपने शुरूआती दौर में महिलाओं, सम्पत्तिहीन वर्गों तथा अफ्रीकी मूल को लोकतंत्र की प्रक्रिया में सम्मिलित नहीं करते थे, परन्तु अब जनता के अर्थ में सभी वयस्क नागरिकों को शामिल किया जाता हैं जो राजनीतिक सहभागिता में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते है। लोकतांत्रिक प्रणाली समाज के सभी वर्गों को सार्वजनिक निर्णयों में भाग लेने का अवसर प्रदान करती हैं। शासन प्रणाली के रूप में लोकतंत्र की वैधता इतनी स्वीकार्य है कि कोई भी शासन प्रणाली अपने आप को अलोकतांत्रिक कहने का जोखिम नहीं उठा सकती हैं। फासीवाद और साम्यवाद की साख खत्म हो चुकी है। इस्लामी धर्मतंत्र सिर्फ कुछ कट्टरपंथियों को ही आकर्षित करता है। व्यापक विश्व में राजनीतिक वैधता का एकमात्र स्रोत सिर्फ लोकतंत्र ही हैं।[1]

लोकतंत्र के कई रूप है परन्तु लोकतंत्र का उदार स्वरूप ही लोकतंत्र का एक मात्र वैध और प्रमाणिक स्वरूप माना जाता है। उदार लोकतंत्र को बहुलतंत्र की संज्ञा भी दी जाती हैं। उदार लोकतंत्र शासन की व्यापक अधिकारिता पर अकुंश लगाने के साथ व्यक्तिगत स्वतंत्रता और अधिकारों को भी मान्यता प्रदान करता हैं। उदार लोकतंत्र की व्यवस्था स्वतंत्र, निष्पक्ष और निश्चित समयावधि पर होने वाले चुनावों की व्यवस्था को ही सुनिश्चित नहीं करती हैं बल्कि कानून का शासन, शक्ति पृथक्करण, संपत्ति, धर्म, अभिव्यक्ति और संघ बनाने की बुनियादी स्वतंत्रताओं के संरक्षण की भी गांरटी देती हैं। उदार लोकतंत्र सरकार

 ISSN 2278-4632

के चयन के स्वरूप को ही निर्धारित नहीं करता हैं बल्कि सरकार के उद्देश्यों को भी निर्धारित करता हैं।[2]

यद्यपि उदारवाद और लोकतंत्र दो पृथक् अवधारणाएँ है और पश्चिमी जगत में इन दोनों अवधारणाओं का पृथक् विकास हुआ हैं उदारवाद का केंद्रीय विषय मानवीय स्वतंत्रता है जिसे ज्यादातर साम्यवादी दार्शनिकों ने या तो अनदेखा किया गया या इसे महत्वहीन माना हैं।[3] व्यक्ति की स्वतंत्रता को केंद्रीय महत्त्व देते हुए उदारवाद, व्यक्ति के अधिकार को महत्त्व देता हैं साथ ही इसकी रक्षा हेतु राजनीतिक सत्ता को सीमित और नियंत्रित करने की मांग करता हैं। जबकि लोकतंत्र की मांग यह है कि राजनीतिक शक्ति पर नागरिकों का अधिकार होना चाहिए। शासन में सहभागिता उदारवादी अधिकार हैं, यही कारण है कि उदारवाद लोकतंत्र से अभिन्न रूप से जुड़ जाता हैं। अब लोकतंत्र एक प्रक्रिया से आगे बढ़कर एक मूल्य में बदल जाता है। यह सम्भव है कि कोई देश उदार हो मगर लोकतांत्रिक ना हो जैसे 18वीं शताब्दी का ब्रिटेन, और यह भी सम्भव हैं कि कोई देश लोकतांत्रिक हो मगर उदारना हो जैसे इस्लामिक रिपब्लिक आफ ईरान।[4] आधुनिक युग में उदारवाद और लोकतंत्र दोनों का ऐसा सम्मिश्रण हो चुका हैं जिसे अब अलग कर पाना सम्भव नहीं है। लोकतंत्र, एक स्थिर अवधारणा है जिसे उदारवाद ने गतिशीलता प्रदान की है। वस्तुत उदार लोकतंत्र आधुनिक राजनीति का समानार्थी है।

1989 में अमेरिकी सामाजिक विश्लेषक और राजनीतिक व्याख्याकार फ्रांसिस फुकुयामा ने उदार लोकतंत्र के सम्बन्ध में नेशनल इंटरेस्ट जर्नल में एक लेख लिखा। अपने लेख में फुकुयामा ने यह तर्क दिया कि शासन की एक व्यवस्था के रूप में उदार लोकतंत्र के प्रति सहमति बढ़ती जा रही हैं और इसने अपनी विरोधी विचारधाराओं जैसे वंशानुगत राजतंत्र, फासीवाद और साम्यवाद पर विजय प्राप्त कर ली है। उदार लोकतंत्र मानव जाति के विचारधारात्मक विकास का अंतिम बिंदु हैं। इससे पूर्व की शासन व्यवस्थाओं में अपनी कमियाँ और अबौद्धिक तत्व विद्यमान थे जबकि उदार लोकतंत्र अपने सभी अंतर्विरोधों से मुक्त हैं और इस रूप में इतिहास का अंत हैं।[5] आगे चलकर फ्रांसिस फुकुयामा ने अपनी पुस्तक The End of History and the Last Man (1992) में अपने तर्को का विस्तार से उल्लेख किया। फुकुयामा के तर्को ने शैक्षिक जगत में व्यापक हलचल पैदा की। इसे सोवियत संघ के विघटन के पश्चात् उदार पूंजीवादी लोकतंत्र की विश्वविजय की घोषणा के रूप में देखा गया।

सबसे पहली बात यह समझने की है कि इतिहास का अंत सम्बन्धी विचार फ्रांसिस फुकुयामा के अपने मौलिक विचार नहीं हैं वरन् यह हीगल के दर्शन पर आधारित हैं। परम्परागत अर्थ में इतिहास का अर्थ हम जो समझते हैं वह हैं घटनाओं की क्रमबद्ध श्रृंखला, परन्तु हीगल के अनुसार इतिहास एकल, सुसंगत और विकासवादी प्रक्रिया हैं जो एक नियत दिशा की ओर अग्रसर है। कार्ल मार्क्स भी इतिहास को एकल, सुसंगत और विकासवादी प्रक्रिया मानते हैं जो एक निर्धारित परिणीति की और अग्रसर हैं। मार्क्स के अनुसार इतिहास का अंत साम्यवादी समाज में होगा जबकि हीगल के अनुसार इतिहास का अंत 'उदार राज्य' से होगा। इतिहास के अंत का अर्थ यह नहीं हैं कि जीवन, मृत्यु और घटनाओं का प्राकृतिक चक्र समाप्त हो जाएगा बल्कि संस्थाओं और उसके सिद्धान्तों की प्रगति का अंत हो जाएगा क्योंकि सभी व्यापक प्रश्नों को हल कर लिया जाएगा। हीगल और मार्क्स दोनों मानते हैं कि इतिहास घटनाओं का अंधा संयोजन नहीं है बल्कि एक सार्थक सम्पूर्ण है जिसमें एक न्यायसंगत सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था की प्रकृति के बारे में मानवीय विचार विकसित और कार्यरत होते हैं।[6]

फुकुयामा लिखते है कि यूरोप में 19वीं शताब्दी की शुरूआत युद्ध और क्रांति से हुई थी परन्तु फिर भी यह शांति और समृद्धि की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण सदी थी। इसके पीछे दो कारण थे— 1. आधुनिक विज्ञान जिसने बीमारी और गरीबी पर विजय प्राप्त कर मानवीय जीवन में सुधार किया। 2. स्वतंत्र लोकतांत्रिक सरकारों की स्थापना। लेकिन 19वीं शताब्दी का यह आशावाद 20वीं शताब्दी में निराशावाद में बदल गया। दो विश्व युद्ध, यहूदी नरसंहार, हिंसक हथियारों का आविष्कार, फासीवाद और साम्यवाद जैसी दो सर्वसत्तावादी विचारधाराओं के उदय ने इस निराशावाद में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। मनुष्य के जीवन के सभी पक्षों का नियंत्रित करने वाली सर्वसत्तावादी राजनीतिक व्यवस्थाएँ जल्द ही वैधता के संकट से जुझने लगी क्योंकि यह जनता की समस्याएं सुलझाने में असक्षम सिद्ध हुई। वैधता के संकट का अर्थ जनता में अलोकप्रिय होना नहीं है वरन् शासक वर्ग के प्रति जनता के इस विश्वास का अभाव हैं कि वह जनता की समस्याओं को सुलझा सकते हैं।

फुकुयामा के अनुसार पूर्णसत्तावादी व्यवस्थाएँ सामाजिक विकास की प्राकृतिक और सावयव प्रक्रिया को थोड़ी देर के लिए रोक सकते हैं इसकी जगह बलात् क्रांति को ऊपर से थोप सकते हैं। पुरानी सामाजिक व्यवस्था को ध्वस्त कर तीव्र औद्योगिकीकरण को बढ़ावा दे सकते हैं। फिर भी मनुष्य की

आकांक्षाओं को पूरा करने में असमर्थ हैं। यही कारण हैं कि साम्यवाद की वैचारिक चुनौती करीब-करीब समाप्त हो चुकी हैं। उसकी स्थिति उन राजतंत्रात्मक व्यवस्थाओं की तरह हो चुकी हैं जो 20वीं शताब्दी में भी अपना अस्तित्व बनाये रखने में संघर्षरत है, सिर्फ एक समन्वित विचारधारा है उदार लोकतंत्र जिसकी विश्वव्यापी वैधता विद्यमान हैं। इसी वैधता के संकट ने ही साम्यवाद जैसी पूर्णसत्तावादी विचारधारा को उदार लोकतंत्र की तुलना में अप्रासंगिक बना दिया है।

'इतिहास के अंत' की उद्घोषणा मानव जाति के सार्वभौमिक इतिहास पर निर्भर हैं अक्सर हम इतिहास को किसी जाति, धर्म और राष्ट्र के इतिहास में वर्गीकृत करते हैं। ऐसे में प्रश्न उठता है कि क्या इतिहास भी कोई सार्वभौमिक व्याख्या हो सकती है जो सभी मनुष्यों पर समान रूप से लागू हो? फुकुयामा इस बात को स्वीकार करते हैं कि मानव जाति का सार्वभौमिक इतिहास सम्भव हैं और वह एकल दिशा में कार्यरत है साथ ही इसकी एक प्रेरक या मूल शक्ति भी है। मानव जाति के सार्वभौमिक इतिहास का उद्देश्य मानवीय समाजों के अर्थपूर्ण प्रतिरूप को समझना है। फुकुयामा के शब्दों में मानव का पहला सार्वभौमिक इतिहास पश्चिम जगत में ईसाइयत के माध्यम से अस्तित्व में आया। ईसाइयत ने पहली बार यह अवधारणा प्रस्तुत की कि ईश्वर की दृष्टि से सभी मनुष्य समान हैं और सभी एक नियत भाग्य के साझेदार हैं। इसी तरह 16वीं शताब्दी में वैज्ञानिक पद्धति के माध्यम से इतिहास के लौकिक संस्करण लिखने के प्रयास किये गए। इस दौरान यह माना गया कि मनुष्य प्रकृति को जानकर उस पर विजय प्राप्त कर सकता हैं। आगे चलकर मानव के सार्वभौमिक इतिहास तथा उसकी प्रेरक शक्ति को जानने का गम्भीर प्रयास जर्मन आर्दशवादी परम्परा का प्रमुख तत्व बना। इस दृष्टि से एमानुएल काण्ट की रचना Idea For A Universal History From A Cosmopolitan Point Of View (1784) महत्वपूर्ण हैं।[7]

जर्मन आदर्शवाद की परम्परा में हीगल का स्थान महत्वपूर्ण है। हीगल के अनुसार सम्पूर्ण इतिहास विचारों का इतिहास हैं जो बौद्धिक चिन्तन के स्वविकास को प्रदर्शित करता हैं। ऐतिहासिक प्रक्रिया एक युक्तियुक्त प्रक्रिया है। इतिहास में जो विकास होते हैं आकस्मिक नहीं वरन् आवश्यक हैं। द्वंद्ववाद के अनुसार ही ऐतिहासिक प्रक्रिया विकसित होती हैं। हीगल पर अक्सर यह आरोप लगता हैं की वह राज्य और उसकी सत्ता का उपासक हैं तथा लोकतंत्र और उदारवाद का विरोधी है। इसके उलट हीगल स्वतंत्रता का दार्शनिक हैं जो

इतिहास को ऐसी प्रक्रिया के रूप में देखता हैं जिसमें स्वतंत्रता का वास्तविकीकरण मूर्त राजनीतिक और सामाजिक संस्थाओं के माध्यम से होता है।[8] हीगल के अनुसार मानवीय स्वतंत्रता का अवतरण संवैधानिक राज्य में होता हैं जिसे हम उदार राज्य भी कह सकते हैं। स्वतंत्रता और समानता दो प्रमुख सिद्धांतों पर आधारित उदार राज्य का कोई वैकल्पिक सामाजिक व राजनीतिक संगठन अस्तित्व में नहीं हैं इसलिए यह 'इतिहास का अंत' हैं। हीगल के अनुसार यूरोप में इतिहास का अंत 1806 की जेना के संघर्ष में हुआ। 1806 के जेना के युद्ध में नेपोलियन ने प्रशिया के राजतंत्र को हराया तथा फ्रांसिसी क्रांति के सिद्धांतों का जर्मनी में प्रसार किया।

हीगल की तरह कार्ल मार्क्स ने भी मानव जाति के सार्वभौमिक इतिहास की बात की है मगर मार्क्स उदार राज्य को मानव इतिहास का चरम बिन्दु नहीं मानते हैं। मार्क्स के अनुसार उदार लोकतंत्र अपने अंतर्विरोध को सुलझा पाने में समर्थ नहीं है और ना ही स्वतंत्रता का सार्वभौमिक प्रतिनिधित्व करता है। मार्क्स के अनुसार वर्गविहीन, राज्यविहीन समाज इतिहास के अंत तथा उदार लोकतंत्र के उच्चतर स्वरूप का प्रतिनिधित्व करता है। अब प्रश्न यह उठता है कि यदि इतिहास एक नियत दिशा की ओर अग्रसर है तो इतिहास की प्रेरक या मूल शक्ति क्या हैं जो उसे नियत दिशा की ओर अग्रसर करती है।

फुकुयामा मानते है कि एक ही तत्व है जो इतिहास को दिशा प्रदान करता हैं वह है प्राकृतिक जगत का ज्ञान जो हमें विज्ञान के माध्यम से प्राप्त होता हैं प्रकृति की वैज्ञानिक समझ न तो चक्रीय हैं और ना बेतरतीब। कोई अधिनायक या संसद प्रकृति के कानून को बदल नहीं सकता है। यद्यपि प्राकृतिक विज्ञानों का विकास यूरोप में हुआ हैं मगर एक बार विकसित हो जाने पर यह मानव जाति के सार्वभौमिक स्वामित्व में आ गए है। विज्ञान के विकास ने आर्थिक क्षेत्र में पूंजीवाद और राजनीतिक क्षेत्र में उदार लोकतंत्र की स्थापना की हैं। फुकुयामा लिखते हैं कि आधुनिक प्रगतिशील विज्ञान की प्रक्रिया को उल्टा नहीं जा सकता हैं तथा साथ ही जो सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक परिणाम इससे जुड़े है, उन्हें भी उल्टा नहीं जा सकता।[9]

अब यह प्रश्न उठना स्वभाविक हैं कि यदि सभी समाज एक सार्वभौमिक ऐतिहासिक प्रक्रिया की ओर अग्रसर है तो दूसरे, तीसरे विश्व समाज इतने विकसित क्यों नहीं हो पाये जितने पश्चिम के देश। इसका कारण फुकुयामा यह बताते है कि इन देशों में औद्योगिकीकरण देर से प्रारम्भ हुआ साथ ही कुछ

सांस्कृतिक कारण जैसे अभिरुचियाँ, धर्म, परम्पराएं, सामाजिक संस्थान तथा सरकारी नीतियाँ जिम्मेदार हैं। इन देशों में पूंजीवाद की स्थापना के गम्भीर प्रयास नहीं किए गए। प्रगतिशील आधुनिक विज्ञानों की नियति पूंजीवाद की तरफ हैं क्योंकि पूंजीवाद ही मनुष्य का आर्थिक स्वहित स्पष्ट रूप में देख सकता हैं। फुकुयामा सिमोन लिप्सेट के अनुभवात्मक अध्ययन का उदाहरण देते हुए लिखते हैं कि मजबूत लोकतंत्र और आर्थिक विकास का निकट संबंध है इसका पहला कारण यह है कि आधुनिक अर्थव्यवस्था में उत्पन्न विपरीत हितों के अंर्तजाल में मध्यस्थता केवल लोकतंत्र के माध्यम से ही की जा सकती हैं। आधुनिक अर्थव्यवस्था लोकतंत्र को जन्म देती है। वैज्ञानिक पद्धति का विकास उन्हीं समाजों में होता है जहाँ विचारों के आदान-प्रदान की स्वतंत्रता होती है। उदार लोकतंत्र जटिल आधुनिक समाज में विवादों का निपटारा परस्पर सहमति से करता है।

हीगल के अनुसार इतिहास की प्रेरक शक्ति ना तो प्राकृतिक विज्ञान है ना शक्ति की लालसा। इसकी जगह पहचान या मान्यता का संघर्ष है। हीगल ने अपनी पुस्तक 'Phenomenology of Mind 1807' में आदिम मनुष्य के रूप में 'फर्स्ट मैन' या प्रथम पुरुष का उल्लेख किया है। यह 'फर्स्ट मैन' हाब्स लाक, रूसो के संविदा दर्शन में व्यक्त मनुष्य से भिन्न हैं। हीगल के अनुसार आदिम 'फर्स्ट मैन' स्वतंत्र और अनिश्चित है मगर इतना सक्षम हैं कि स्वयं इतिहास की दिशा निर्धारित कर सकता है। 'फर्स्ट मैन' में पशुओं की तरह कुछ मूल प्रवृतियाँ जैसे खाना, सोना, आश्रय और अपने जीवन का सरंक्षण विद्यमान है परन्तु उसकी एक और इच्छा है जो पूरी तरह गैर भौतिकवादी हैं और वह है पहचान या मान्यता की इच्छा। एक सामाजिक प्राणी के रूप में मानव का आत्मसम्मान और पहचान इस बात पर निर्भर होती हैं कि दूसरे लोग उसे किस रूप में देखते हैं।[10] हीगल के अनुसार सिर्फ मनुष्य की ही यह विशेषता है कि वह उन विषयों की आकांक्षा रख सकता है जो उसके लिए जीवशास्त्रीय दृष्टिकोण से महत्वहीन हैं। पहचान या मान्यता की इच्छा सभी मनुष्यों में विद्यमान होती हैं इसलिए यह मनुष्यों को प्रतिष्ठा के संघर्ष की ओर ले जाती हैं।

इस संघर्ष के तीन परिणाम हो सकते है :

1. दोनों प्रतिद्वंद्वी की मृत्यु
2. एक प्रतिद्वंद्वी की मृत्यु, परन्तु जीतने वाला फिर भी असंतुष्ट होता हैं क्योंकि उसको कोई मान्यता देने वाला जीवित नहीं रहता है।

3. यह संघर्ष स्वामी और दास के रूप में भी समाप्त हो सकता हैं जहाँ एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की दासता स्वीकार कर लेता है।[11]

हाब्स और लाक के दर्शन में भी युद्ध की स्थिति है मगर उसका अंत सामाजिक समझौता और एक शांतिपूर्ण नागरिक समाज की स्थापना से होता है। हीगल के दर्शन में यह स्वामी और दास की स्थिति में समाप्त होता है।

हीगल के अनुसार स्वतंत्रता सिर्फ मनोवैज्ञानिक आभास नहीं हैं। स्वतंत्रता और प्रकृति एक दूसरे के विपरीत है। स्वतंत्रता वहाँ से शुरू होती हैं जहाँ प्रकृति समाप्त होती है। मानवीय स्वतंत्रता की शुरुआत तभी होती है जब मनुष्य अपने प्राकृतिक और पशु अस्तित्व से परे जाकर अपने स्वयं का निर्माण करता हैं। 'पहचान' का संघर्ष पहला प्राथमिक व्यवहार हैं। हीगल और हाब्स दोनों मानते हैं कि मनुष्य को मृत्यु का भय किसी सत्ता के समक्ष आत्मसमर्पण को मजबूर करता है। पहचान के संघर्ष की बात पाश्चात्य दर्शन में प्लेटो और हाब्स के दर्शन में भी पाई जाती है। प्लेटो के दर्शन में यह THYNOS या SPIRITEDNESS के रूप में मिलता है। जो अभिभावक वर्ग का मूल लक्षण हैं। प्लेटों के अनुसार THYNOS मनुष्य की आत्मा का तीसरा भाग हैं। जिसमें क्रोध और साहस दोनों सम्मिलित हैं।[12] प्लेटो ने अभिभावक वर्ग की तुलना उस कुलीन/उदात कुत्ते के रूप में की है जो अपने शहर की सुरक्षा के लिए पूर्ण साहस के साथ अपरिचितों से लड़ता हैं।[13] THYNOS मनुष्य की वह प्रकृति है जो मनुष्य को आत्मगौरव के साथ जीना सिखाती हैं और किसी भी तरह की तानाशाही का विरोध कर उदार लोकतंत्र का मार्ग प्रशस्त करती है। क्रांति तब तक नहीं हो सकती है जब तक कुछ लोग पर अपने जीवन को संकट में नहीं डाले। आगे चलकर उदारवाद ने मनुष्य की THYNOS प्रवृत्ति की जगह लालसा (DESIRE) की प्रवृत्ति को महत्व दिया। हीगल के अनुसार स्वामी और दास का संबंध स्थायी नहीं है क्योंकि इसमें ना तो स्वामी संतुष्ट होता हैं और न दास। स्वामी-दास संबंधों में स्वामी की स्थिति दास की तुलना में बेहतर है। स्वामी दास की तुलना में कुछ संदर्भों में अधिक मनुष्य हैं क्योंकि वह अपनी जीवशास्त्रीय प्रकृति से परे जाकर गैर जीवशास्त्रीय उद्देश्य 'पहचान' को प्राप्त करने में सफल होता है। अपने जीवन को खतरे में डालकर वह स्वतंत्रता प्राप्त करता है। दूसरी और दास अपने जीवशास्त्रीय प्रकृति से ऊपर नहीं उठ पाता है। मृत्यु का भय उसे किसी के समक्ष आत्मसमपर्ण को मजबूर करता है। दास स्वतंत्रता के अभाव में मनुष्य नहीं है। यह स्थिति दास को संतुष्टि नहीं दे सकती है। वही स्वामी भी संतुष्ट नहीं होता हैं क्योंकि स्वामी की पहचान दास के

माध्यम से होती है जो स्वयं सही अर्थो में मनुष्य नहीं है क्योंकि वह सिर्फ स्वामी की इच्छा पूर्ति का यंत्र या वस्तु है।

हीगल ने कुछ विचारधाराओं को दास विचारधाराओं की संज्ञा दी है। जिसमें ईसाइयत प्रमुख है, यह दास विचारधाराएँ दासों की आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करती है। भले ही वास्तविक रूप में उसकी प्राप्ति में असफल है।

हीगल के अनुसार आधुनिक उदार राज्य फ्रांसिसी क्रांति के फलस्वरूप अस्तित्व में आये तथा इसने दास स्वामी संबंधों का अंत किया। हीगल स्वयं फ्रांसिसी क्रांति के मूल्यों का समर्थक था। हीगल के अनुसार फ्रांसीसी क्रांति वह घटना थी जिसने स्वतंत्रता और समानता के ईसाई आदर्शो को पृथ्वी पर साकार किया। हीगल के अनुसार उदार राज्य पारस्परिक समझौता हैं जिसमें नागरिक एक दूसरे की पहचान और गरिमा को मान्यता देते हैं। यह स्थिति स्वामी दास सम्बन्धों में बेहतर है। उदार राज्य व्यक्ति के जीवन के साहस और लालसा दोनों पक्षों को सतुंष्ट करता है।

फ्रांसिसी क्रांति से पूर्व राजशाही और कुलीनतंत्र व्यवस्था विद्यमान थी जो एक व्यक्ति या कुछ व्यक्तियों की पहचान को ही मान्यता देती थी। यह व्यवस्थाएँ संकीर्ण और सीमित थी, साथ ही अतार्किक भी। इसके विपरीत उदार राज्य मनुष्य की गरिमा को पारस्परिक आधार पर मान्यता देता हैं जो प्राकृतिक हैं। उदारवादी राज्य मनुष्य के अधिकार को मान्यता देता हैं। बदले में मनुष्य राज्य की सत्ता और उसके नियमों में स्वीकार करता हैं। यह आशा व्यक्त की गयी कि यदि एक बार समांगी उदार राज्य में स्वामी-दास संबंधों का अंत हुआ तो अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में भी स्वामी-दास संबंधों का अंत हो जाएगा साथ ही युद्ध व साम्राज्यवाद का भी अंत हो जाएगा। हीगल के व्याख्याकार अलेक्जेंडर कोजिवे (Alexender Kojeve) के अनुसार इतिहास के अंत का अर्थ द्वंद्व और हिंसक क्रांतियों का अंत है। क्योंकि अब मनुष्य के पास संघर्ष का कोई कारण नहीं होगा। इतिहास का अंत केवल इतिहास का अंत नहीं वरन् कला और दर्शन का भी अंत हैं। दर्शन के अंत का अर्थ यह हैं कि सत्य की खोज बन्द हो जाएगी क्योंकि सत्य मानवीय समाजों ने प्राप्त कर लिया होगा। कला के अंत का अर्थ मनुष्य परिस्थितियों के बारे में कुछ नया नहीं कह पायेंगे। कोई भी कला उस दौर में मनुष्य की उच्चतम आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व नहीं कर पाएगी।[14] फुकुयामा के अनुसार उदार लोकतंत्र मानवीय और व्यवहारिक रूप में मानवीय समाजों को संगठित करने का सर्वश्रेष्ठ तरीका है।

फ्रांसिस फुकुयामा की उदार लोकतंत्र के रूप में इतिहास के अंत की प्राकल्पना आकर्षक, मानवीय स्वतंत्रता और समानता जैसे मानवीय मूल्यों से परिपूर्ण और सरल लग सकती है मगर इसमें एक प्रकार का नियतिवाद (यद्यपि फुकुयामा इसे कमजोर नियतिवाद मानते है।) विद्यमान है जो कई आशंकाओं और प्रश्नों को जन्म देता है। यदि हम उदारवाद के इतिहास का अध्ययन करें तो यह पाते है कि उदारवाद अपने शुरूआती दौर से स्वतंत्रता और समानता का समर्थन करने वाली निष्पाप अवधारणा नहीं रही है।

डोमिनिको लुसुरडो ने अपनी पुस्तक Liberalism ‘A Counter History 2005 (उदारवाद ‘एक वैकल्पिक इतिहास’) में लिखते है कि उदारवाद अपनी उत्पत्ति से ही दासता, शोषण, उपनिवेशवाद, नरसंहार, नस्लवाद और वर्गदंभ से जुड़ा हुआ है। ब्रिटेन, अमेरिका में शुरूआती उदारवादी अपनी नस्लीय श्रेष्ठता बोध से ग्रस्त थे और वही नस्लीय श्रेष्ठता का सिद्धांत पश्चिमी देशों ने अपने उपनिवेशो पर बर्बरता पूर्वक लागू किया।

उदार लोकतंत्र की शुरूआती समीक्षा हमें मार्क्स और एंगेल्स की रचनाओं में मिलती है। मार्क्स के अनुसार पूंजीवादी व्यवस्था ना तो प्राकृतिक व्यवस्था है ना यह मनुष्य की मूल प्रवृति से सृजित होती है बल्कि यह ऐतिहासिक प्रक्रिया के विशिष्ट चरण में उत्पन्न हुई है। कार्ल मार्क्स अपने शुरूआती दौर में उन स्वतंत्रताओं के समर्थक है जिन्हें हम उदारवादी स्वतंत्रताओं के नाम से जानते हैं। प्रशिया के सेंसरशिप ने मार्क्स को स्वतंत्र प्रेस और संसदीय प्रतिनिधित्व के विस्तार का समर्थक बनाया।[15] मार्क्स के अनुसार और मनुष्य प्रकृति और समुदाय का चेतन प्राणी है और स्वतंत्रता मानव का सार है। एंगेल्स ने लोकतंत्र और साम्यवाद को अभिन्न माना है।[16] मार्च 1848 में कार्ल मार्क्स और एंगेल्स ने जर्मन कम्युनिस्ट पार्टी की मांगों में, जो मांग की थी उसमें जर्मनी को एक गणतंत्र घोषित करने तथा 21 वर्ष की आयु के व्यक्ति को मत देने और निर्वाचित होने का अधिकार देने की मांग को शामिल किया था। अपने शुरूआती दौर में मार्क्स और एंगेल्स को लोकतंत्र के संसदीय मार्ग पर विश्वास था। परन्तु लोकतंत्र और लोकतंत्रवादियो के प्रति मार्क्स और एंगेल्स का यह विश्वास शीघ्र ही खण्डित हो गया। उदारवादियो या लोकतंत्रवादियो के लक्ष्य समाज के सर्वहारा वर्ग से अलग थे। उदारवादी औद्योगिकीकरण को बढ़ाने तथा मुक्त व्यापार हेतु प्रतिबंधों को हटाने की माँग कर रहे थे जबकि सर्वहारा वर्ग मुक्त व्यापार और प्रतिस्पर्द्धा से उत्पन्न आर्थिक अराजकता से भयभीत था। फ्रांस और इंग्लैण्ड की लोकतांत्रिक क्रांतियों ने उदार मध्यम वर्ग को रियासते और

राजनीतिक प्रतिनिधित्व तो दिया मगर सर्वहारा वर्ग को अपने हाल पर छोड़ दिया गया। यही वह समय था जिसने मार्क्स और एंगेल्स को उदारवादी मार्ग के विपरीत अपना वैकल्पिक मार्ग खोजने पर मजबूर कर दिया। आगे चलकर मार्क्स व एंगेल्स मजदूर वर्ग को एकमात्र क्रान्तिकारी वर्ग के रूप में देखते हैं तथा लोकतंत्र को शुद्ध बूर्जुआ वर्ग के हितो के साथ जोड़ते हैं। जब तक राज्य रहेगा लोकतंत्र का कोई अर्थ नहीं है और सच्चे लोकतंत्र में राज्य की आवश्यकता नहीं है।

मार्क्स के अनुसार लोकतंत्र पूंजीवादी राज्य का उच्चतम स्वरूप है। हीगल के अनुसार राज्य और समाज अलग-अलग है परन्तु मार्क्स इन्हें एक ही मानते है तथा दोनों में एक छिपा संबंध देखते हैं। मार्क्स के अनुसार लोकतंत्र लाना है तो राज्य को खत्म करना होगा। मार्क्स राज्य की सार्वभौमिकता को नकार कर एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग का शोषण का उपकरण मानते हैं। मार्क्स फ्रांसीसी क्रांति के स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व के नारे को बहुत ज्यादा महत्त्व नहीं देते है जबकि फ्रांसीसी क्रांति और उसके निहित सिद्धांत उदारवादी दर्शन का मूल हैं। मार्क्स के अनुसार फ्रांसीसी क्रांति के मूल दर्शन में निहित स्वतंत्रता की परिभाषा ने समानता और भ्रातृत्व की प्राप्ति को असम्भव बना दिया। यहाँ स्वतंत्रता खुद को नीजि संपत्ति और मुक्त बाजार की स्वतंत्रता तक ही सीमित कर देती हैं। यहाँ लोग स्वतंत्र नहीं होते बल्कि पूंजी सांमती बंधनों से मुक्त होती हैं। समानता को शोषण की स्वतंत्रता की स्थिति में प्राप्त नहीं किया जा सकता ना ही प्राकृतिक स्वार्थ के स्वयंसिद्ध सिद्धांत से भ्रातृत्व की भावना उत्पन्न हो सकती हैं।[17] एंगेल्स ने 1846 में लिखा हैं कि बूर्जुआ समानता संपत्ति के अलावा हर प्रकार की समानता हैं और संपत्ति की यही असमानता सभी पक्षों की असमानता की ओर ले जाती है ईसाइ मत में स्वर्ग में सभी मनुष्य समान हैं मगर धरती पर असमान हैं। इसी तरह राष्ट्र का प्रत्येक व्यक्ति राजनीतिक विश्व के स्वर्ग में समान है मगर समाज की वास्तविक परिस्थितियों में असमान हैं।[18] मार्क्स के शब्दों में स्वतंत्रता की प्राप्ति वास्तविक विश्व में वास्तविक साधनों से ही हो सकती हैं।

इसी तरह उदारवादी मूल्यों पर आधारित संसदीय व्यवस्था की व्याख्या अक्सर विरोधी हितो में मध्यस्थ के रूप में होती हैं। संसद एक ऐसा मंच हैं जहाँ परस्पर विरोधी हितो की अभिव्यक्ति और उनमें मध्यस्थता की जाती है। मार्क्स के अनुसार विरोधी हितों में मध्यस्थता सम्भव नहीं। विधायिका मध्यस्थता का क्षेत्र नहीं वरन् अंतर्विरोध का अवतार हैं। मध्यस्थता केवल संघर्ष विहीन समाज

की संरचना पर आधारित होती हैं। बूर्जुआ वर्ग के लिए संसदीय प्रजातंत्र वर्ग शासन को बनाए रखने का सुविधाजनक रूप है जिसका उपयोग तब तक हो सकता हैं जब तक वह उसके उद्देश्यों को पूरा करता हैं।[19] लोकतंत्र में राजनीतिक प्रभाव एक वस्तु बन जाती हैं जिसका उपयोग वही करते हैं जो उसका भुगतान कर सकता हो। मार्क्स के अनुसार शासक और शासित के हित एक जैसे नहीं हो सकते हैं। उदारवाद 'व्यक्ति की इच्छा क्या हैं' पर आधारित हैं जबकि मार्क्सवाद 'व्यक्ति के लिए क्या शुभ है' पर आधारित हैं।

मार्क्स उदारवादियों के इस तर्क का भी विरोध करते हैं कि पूंजीवादी व्यवस्था में ही वैज्ञानिक विकास सम्भव हैं। मार्क्स के अनुसार एक समय आता हैं जब बूर्जुआ विचार समाज की वैज्ञानिक समझ को आगे नहीं बढ़ा पाता और आगे का वैज्ञानिक विकास बूर्जुआ मान्यताओं से असंगत हो जाता है। ऐसी स्थिति में वैज्ञानिक विकास उन लोगो द्वारा ही सम्भव है जो बूर्जुआ मूल्यों और मानको से परे हो। समाजवाद में ज्ञान का प्रयोग सामाजिक संस्थाओं की पुर्नसंरचना तथा वैज्ञानिक प्रगति का उपयोग श्रम के भार को कम करने तथा गरीबी घटाने के लिए किया जाता है।

उदारवाद के महत्वपूर्ण मूल्य संविधानवाद पर चर्चा करते हुए मार्क्स लिखते है कि संविधानवाद का उपयोग किसी सामाजिक समूह की राजनीतिक शक्ति की वैद्यता को स्थापित करने तथा उसे संगठित करने के लिए किया जाता हैं। मार्क्स के अनुसार लिखित संविधानों में स्पष्टता का अभाव पाया जाता हैं और यह व्याख्याकारों पर निर्भर हैं। लिखित संविधान उन्हीं अंतर्विरोधो को अभिव्यक्त करते हैं जो समाज में पहले से मौजूद होते हैं। 1848 के फ्रांसीसी रिपब्लिक के संविधान पर अपना मत व्यक्त करते हुए मार्क्स ने लिखा है कि हर सामान्य स्वतंत्रता को सीमित उपबंधों द्वारा खत्म कर दिया गया है।[20]

मार्क्सवाद के अनुसार पूंजीवाद में आर्थिक अराजकता मगर राजनीतिक व्यवस्था विद्यमान हैं जबकि साम्यवाद में आर्थिक व्यवस्था मगर राजनीतिक अराजकता विद्यमान है। अराजकता का अर्थ यहाँ किसी भी बल प्रयोग की संस्थाओं का अभाव हैं। समाजवाद प्रगति का अंत नहीं है वरन् पूर्व इतिहास का अंत और इतिहास की स्वतंत्र तथा वास्तविक दिशा में शुरुआत है।[21]

मार्क्स और एंगेल्स ने जो उदारवादी लोकतंत्र की जो समीक्षा प्रस्तुत की हैं वह अपने आप में महत्त्वपूर्ण है परन्तु हम यह नहीं भूलना चाहिए कि मार्क्स और एंगेल्स जिस उदारवादी लोकतंत्र की समीक्षा कर रहे है, वह उदारवादी

लोकतंत्र अभी अपने शुरुआती अवस्था में है। जहाँ मताधिकार का अभी विस्तार नहीं हुआ है तथा औद्योगिक संस्थानों में मजदूर वर्ग की दशा अभी तक शोचनीय है। उदारवादी लोकतंत्र अभी समाज के सबसे निचले वर्ग में कोई आशा नहीं जगा पाया है।

यहाँ यह बात ध्यान रखने की है कि मार्क्सवाद और उदारवाद दोनों ही पश्चिम के प्रबोधन परियोजना के उत्तराधिकारी है। यह वह सांस्कृतिक आन्दोलन था जिसने 18वीं शताब्दी के बाद से मानवीय क्रियाकलाप और विवेक के माध्यम से मानवीय जीवन की गुणवत्ता में सुधार को अपना लक्ष्य निर्धारित किया।[22] उदारवाद का प्रारम्भिक संघर्ष रूढ़िवाद से था नाकि मार्क्सवाद से तथा मार्क्सवाद और उदारवाद दोनों में प्रगतिशीलता का तत्व विद्यमान है।

विखण्डनवादी दार्शनिक जाक देरिदा, फुकुयामा की इतिहास के अंत की घोषणा के आलोचक है। उनके अनुसार इतिहास का अंत एक अवधारणा के रूप में कोई अर्थ नहीं रखता हैं। देरिदा को इतिहास के अंत की घोषणा में ईसाई इंजीलवादी प्रतिध्वनि सुनाई देती है। उनके अनुसार पूंजीवाद के विजय की घोषणा कभी इतनी विखण्डित धमकी भरी, गंभीर और कुछ संदर्भों में इतनी विनाशकारी और शोक संतप्त नहीं रही है।[23] देरिदा अपनी पुस्तक 'Spectres of Marx (1993) में साम्यवादी घोषणा पत्र के उस कथन को उद्धृत करते हैं जिसमें कहा गया है कि यूरोप को एक भूत आंतकित कर रहा है, वह है साम्यवाद का भूत। देरिदा लिखते हैं कि साम्यवाद को पश्चिम चेतना से निष्कासित करना आसान नहीं है। मार्क्स का संदेश एक भूतिया साये के रूप में हमेशा मंडराता रहेगा। एक भूत कभी नहीं मरता और वह लौटकर आता है। मार्क्सवाद की मृत्यु की घोषणा के सदंर्भ में देरिदा लिखते है कि कई बार मृत जीवित की तुलना में ज्यादा शक्तिशाली होता है।[24] देरिदा के शब्दों में तथ्य और आदर्श के सार का अंतर केवल धर्मतंत्र और सैन्य तानाशाही जैसी सरकार के आद्यरूपों में ही नहीं दिखता है। यह विफलता और अंतराल पश्चिम के सबसे पुराने और स्थिर लोकतंत्रो में विद्यमान हैं।[25]

सोवियत संघ के विघटन के बाद साम्यवाद को एक व्यवहार्य राजनीतिक व्यवस्था के रूप में मानने की प्रवृत्ति समाप्त हो गई है। फुकुयामा की यह घोषणा इतिहास के अंत की घोषणा राजनीति के अंत की भी घोषणा हैं क्योंकि यह सभी राजनीतिक विमर्शों और वैकल्पिक राजनीतिक व्यवस्थाओं की प्रासंगिकता को भी सिरे से खारिज कर देती है। यह उदार लोकतंत्र को एक

विचारधारा के स्तर से उठाकर धर्मशास्त्र की स्तर पर पहुँचा देती है जिस पर चलकर ही समस्त मानव समाज की मुक्ति सम्भव है जबकि स्थिति दूसरी है।

साम्यवाद के विघटन के पश्चात् होना तो यह चाहिए था कि पूरे विश्व में उदार लोकतंत्र का प्रसार होता मगर वास्तविक धरातल पर स्थिति दूसरी है। पूरे विश्व में वैश्विक स्वतंत्रता का मूल्यांकन करने वाले फ्रीडम हाउस ने 2022 की वार्षिक रिपोर्ट The Global Expansion of Authoritarian Rule (सर्वसत्तावादी शासन का वैश्विक विस्तार) शीर्षक के तहत प्रकाशित की है जिसमें कहा गया है कि पिछले 16 वर्षों में विश्व में लोकतंत्र में कमी आयी है। प्रतिवेदन में कहा गया है कि लम्बे समय से स्थापित लोकतंत्र वाले देशों में आंतरिक शक्तियों ने अपनी व्यवस्था की कमियों का दोहन किया है। नफरत, हिंसा और अमर्यादित शक्ति को बढ़ावा देने के लिए राष्ट्रीय राजनीति को विकृत किया है। लोकतंत्र और सर्वसत्तावाद के मध्य संघर्ष वाले देशों में संघर्ष सर्वसत्तावाद के पक्ष में झुक रहा है। 2005 में जहाँ विश्व की 46 प्रतिशत आबादी उदार लोकतंत्र के तहत शासित थी वही 2022 में यह 20 फीसदी रह गई थी।[26] दुनिया में हर पाँच में से सिर्फ एक व्यक्ति उदार लोकतंत्र के अधीन है और इसमें भी कमी आ रही है।

रूसी राष्ट्रपति व्लादिमीर पुतिन ने फाइनेंशियल टाइम्स में 2019 में दिए गये अपने साक्षात्कार में कहा है कि अब उदारवाद अप्रसांगिक हो गया है साथ ही यह आबादी के विशाल बहुमत के हितो के खिलाफ संघर्ष में आ गया है। उदार विचार ने अपने उद्देश्यों को समाप्त कर दिया हैं क्योंकि जनता आव्रजन, खुली सीमाओं और बहुसंस्कृतिवाद के खिलाफ हो गई है। पुतिन ने यह बात अमेरीका और यूरोप में उभरते राष्ट्रीय लोक लुभावनवादी आन्दोलनों के सन्दर्भ में कही हैं।[27]

ऐसी स्थिति में जब विकल्प समाप्त होने की घोषणा हुए तीन दशक में अधिक समय बीत चुका है। उदार लोकतंत्रों का निरन्तर पतन एक गम्भीर घटना है। उदार लोकतंत्र वर्तमान में गम्भीर चुनौती का सामना कर रहे हैं और यह चुनौती बाहर से नहीं आई है बल्कि उदार लोकतंत्र के भीतर ही जन्मी है। ऐसी स्थिति में उदार लोकतंत्र इस चुनौती का सामना करने में असफल सिद्ध होता है तो इसका अर्थ यही निकलेगा कि अभी इतिहास का अंत नहीं हुआ है और साम्यवाद का भूत एक साये की तरह हमारी संगठनात्मक और तकनीकी कुशलता और प्रगति पर मंडराता रहेगा और उसे निरन्तर प्रश्नांकित करता रहेगा।

यद्यपि उदार लोकतंत्र का जन्म कुछ विसंगति और कमियों के साथ हुआ हैं मगर इसके मूल में दो तत्व हमेशा विद्यमान रहे है जिसने इस अवधारणा को निरन्तर मजबूती दी है एक है मानवीय अस्तित्व को केंद्रीय स्थान प्रदान करना तथा दूसरा सुधार की प्रवृत्ति, जैसे ही समय बदला उदार लोकतंत्र की अवधारणा पर संकट आया इसने अपने आप में सुधार कर बदली हुई परिस्थितियों के अनुकुल स्वयं को ढाला है। यह उदारवाद की उत्तरजीविता का महत्त्वपूर्ण कारण है। उदारवाद की यह क्षमता खत्म हो जाती हैं तो यह धारणा भी अप्रासंगिक भी हो जाएगी। आवश्यकता हैं कि इसे एक निरन्तर प्रगतिशील विचारों के समूह के रूप में देखा जाए ना कि विश्वविजयी धर्म शास्त्रीय आख्यान के रूप में। आधुनिक राजनीति के समानर्थक रूप में ना कि इतिहास के अंत में।

सन्दर्भ

1. जकारिया, फरीद 'द फयूचर ऑफ फ्रीडम' इन लिबरल डेमोक्रेसी एट होम एण्ड एब्राड', वाइकिंग पेन्गुइन बुक्स इण्डिया, नई दिल्ली 2003 पृष्ठ 13
2. वही पृष्ठ 19
3. लुसुरडो, डेमिनिको, 'लिबरलिज्मः ए काउटर हिस्ट्री' वेरसो, यूके लन्दन 2006 पृष्ठ 1
4. फुकुयामा, फ्रांसिस, द एण्ड ऑफ हिस्ट्री एण्ड द लास्ट मैन', पेन्गुइन रैडंम हाऊस, यूके 2020 पृष्ठ 44
5. फुकुयामा वही पृष्ठ IX
6. फुकुयामा वही पृष्ठ 51
7. फुकुयामा वही पृष्ठ 57
8. फुकुयामा वही पृष्ठ 60
9. फुकुयामा वही पृष्ठ 88
10. फुकुयामा वही पृष्ठ 146
11. फुकुयामा वही पृष्ठ 147
12. फुकुयामा, फ्रांसिस 'आइडेंटिटी': कन्टमपरेरी आइडेंटिटी पालिटिक्स एण्ड द स्ट्रगल फार रिकगनाइजेशन, प्रोफाइल बुक्स लिमिटेड लंदन 2019 पृष्ठ 18
13. फुकुयामा वही पृष्ठ 163
14. फुकुयामा वही पृष्ठ 311
15. लेविन, माइकल मार्क्स एंगेल्स एण्ड लिबरल डेमोक्रेसी, पालग्रेव मैकमिलन, न्यूयार्क 1989 पृष्ठ 15

16. लेविन, माइकल वही पृष्ठ 19
17. लेविन, माइकल वही पृष्ठ 65
18. लेविन, माइकल वही पृष्ठ 66
19. लेविन, माइकल वही पृष्ठ 92
20. लेविन, माइकल वही पृष्ठ 59
21. लेविन, माइकल वही पृष्ठ 138
22. सिम, स्टूअर्ट, 'देरिदा एण्ड द एंड ऑफ हिस्ट्री', पोस्टमार्डन एनकाउन्टरर्स आइकोन बुक्स यूके, 1999 पृष्ठ 45
23. सिम, स्टूअर्ट, वही पृष्ठ 7
24. सिम, स्टूअर्ट, वही पृष्ठ 62
25. सिम, स्टूअर्ट, वही पृष्ठ 53
26. सराह रेपुकी एण्ड एमी सलीपोविट्ज, 'द ग्लोबल एक्सेपेंशन ऑफ आथिरिटेरियन रूल फ्रीडम हाऊस वेबसाइट 2022 1-Accessed 6 September 2022 https://freedomhouse.org/report/freedom-world/2022/global-expension - authoritarian rule
27. 1-Vladimir Putin says Liberalism has become obsolete, फाइनेंशियल टाइम्स June 2019 https://www ft.com/content/670039ec-98f3-11e9-9573-ee5cbb98ed36

डॉ. मोहम्मद कामरान खान
सहायक प्रोफेसर
सम्राट पृथ्वीराज चौहान राजकीय
महाविद्यालय, अजमेर

❑❑❑

निर्मितिवाद उपागम पर आधारित शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया का शिक्षार्थियों के उपलब्धि स्तर पर प्रभावशीलता का अध्ययन

आशु शर्मा • डॉ. गिरिराज भोजक

सारांश : प्रस्तुत प्रयोगात्मक शोध का मुख्य उद्देश्य निर्मितिवादी उपागम पर आधारित शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया का विद्यार्थियों की विज्ञान विषय में उपलब्धि स्तर पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना था। राजस्थान राज्य के जयपुर जिले में स्थित 2 राजकीय एवं 2 निजी विद्यालयों में अध्ययनरत कक्षा सात में अध्ययनरत 12 से 15 वर्ष आयु-वर्ग के औसत बुद्धि-लब्धि वाले 120 विद्यार्थियों (60 राजकीय विद्यालयों से एवं 60 निजी विद्यालयों से) का चयन किया गया। इन विद्यार्थियों में से 60 विद्यार्थियों (30 राजकीय विद्यालयों से एवं 30 निजी विद्यालयों से) को प्रायोगिक समूह में सम्मिलित किया गया तथा 30 विद्यार्थियों (30 राजकीय विद्यालयों से एवं 30 निजी विद्यालयों से) को नियंत्रित समूह में सम्मिलित किया गया। प्रायोगिक समूह के विद्यार्थियों को निर्मितिवाद आधारित शिक्षा-अधिगम प्रक्रिया से उपचारित किया गया तथा नियंत्रित समूह के विद्यार्थियों को परंपरागत शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया से उपचारित किया गया। आंकड़ों के विश्लेषण हेतु टी-टेस्ट (paired) का प्रयोग किया गया है। शोध से निष्कर्ष प्राप्त हुआ कि प्रायोगिक समूह के विद्यार्थियों ने शैक्षिक उपलब्धि के सभी आयामों में नियंत्रित समूह के विद्यार्थियों की तुलना में सार्थक रूप से श्रेष्ठ प्रदर्शन किया।

प्रमुख शब्द निर्मितिवाद, शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया, उपलब्धि स्तर, शैक्षणिक उपलब्धि।

प्रस्तावना :

शिक्षा के पारंपरिक दृष्टिकोण तथ्यों के प्रत्यास्मरण, सामान्यीकरण, संप्रत्यय का परिभाषीकरण, एवं प्रक्रियाओं की अनुपालना पर ध्यान देते हैं (Almala, 2005)। शिक्षण के अनेक उपागम हैं, डाल्टन उपागमए हर्बर्ट उपागमए भारतीय उपागम आदि। ये सभी उपागम शिक्षार्थी के पूर्व अनुभवों पर आधारित हैं। इन सभी उपागमों की क्रमशः कुछ सीमायें भी है जैसे—'शिक्षण समग्र के अंश से प्रारंभ होता है', 'अधिगम बहुत अधिक क्रियाशील प्रक्रिया नहीं है', 'उत्पाद/परिणाम महत्वपूर्ण है जबकि ज्ञान निश्चित है' आदि। दूसरी ओर, निर्मितिवाद उपागम अधिगम को वर्तमान समझ एवं नवीन ज्ञान के मध्य अंतः क्रिया के रूप में देखता है। (Perkins, 1993)

निर्मितिवादी उपागम अधिगम को एक सक्रिय प्रक्रिया के रूप में देखता है जिसमें अधिगमकर्ता सक्रिय रहकर ज्ञान का निर्माण उसी रूप में करता है जैसा कि वह वास्तविक जीवन में देखने का प्रयास करता है। शिक्षा समग्र से प्रारंभ होती है, तत्पश्चात इसका विस्तार समग्र के खण्डों में होता है, शिक्षार्थियों के प्रश्नों एवं रुचियों के आधार पर इसकी पाठ्य सामग्री, सहायक सामग्री एवं शिक्षण विधि का निर्धारण होता है।

संबंधित साहित्य का अध्ययन

Jack, (2017) द्वारा माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धि और रसायन विज्ञान के प्रति उनके दृष्टिकोण पर निर्मितिवादी प्रतिमान पर आधारित के प्रभाव का अध्ययन किया गया। विश्लेषित आंकड़ों से निष्कर्ष प्राप्त हुए कि- अधिगम चक्र का रसायन विज्ञान में विद्यार्थियों की उपलब्धि पर सार्थक प्रभाव पाया गया। विद्यार्थियों के अधिगम एवं शैक्षिक उपलब्धि पर पर निर्मितिवादी उपागम का सार्थक धनात्मक प्रभाव पाया गया। निर्मितिवादी प्रतिमान का विद्यार्थियों के विज्ञान के प्रति .ष्टिकोण पर भी सार्थक सकारात्मक प्रभाव पाया गया।

Osondu, (2018) द्वारा नाइजीरिया के अबिया राज्य में विद्यार्थियों की कंप्यूटर अध्ययन में शैक्षिक उपलब्धि पर निर्मितिवादी अनुदेशन युक्तियों के प्रभाव का अध्ययन किया गया। निष्कर्षों से ज्ञात होता है कि—माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों की कंप्यूटर अध्ययन में शैक्षिक उपलब्धि पर निर्मितिवादी अनुदेशन पद्धतियों के सार्थक सकारात्मक प्रभाव पाया गया।

Xie, Wang, & Hu, (2018) द्वारा किये गए एक समीक्षात्मक अध्ययन में भूमि चीन में स्थित विद्यालयों में अध्ययनरत माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के

गणित विषय में प्रदर्शन पर निर्मितिवादी अनुदेशन पद्धतियों एवं समुचित के प्रदर्शन पर रचनात्मक निर्देशात्मक मॉडल और ज्ञान के हस्तांतरण के श्रेष्ठ प्रतिमानों के प्रभाव का अध्ययन किया गया। इन अध्ययनों में ज्ञान के हस्तांतरण हेतु सात प्रतिमानों का अध्ययन किया गया है और ज्ञात हुआ कि सभी सात प्रतिमान विद्यार्थी की शैक्षिक उपलब्धि पर सार्थक प्रभाव डालते हैं।

Lkama & Dabo, (2019) द्वारा योबे स्टेट, नाइजीरिया में तकनीकी कॉलेजों में धातुकर्म में विद्यार्थियों के शैक्षणिक प्रदर्शन पर निर्मितिवादी शिक्षण पद्धति के प्रभाव का अध्ययन किया गया। अध्ययन में पाया गया कि प्रायोगिक समूह के विद्यार्थियों ने नियंत्रण समूह की तुलना में धातुकर्म विषय सार्थक रूप से उच्च प्रदर्शन किया।

Mercy, Grace, & Michael, (2019) द्वारा रिवर स्टेट के अहोदा ईस्ट स्थानीय निकाय के राजकीय क्षेत्रों में रासायनिक-बंध प्रकरण में विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि पर निर्मितिवादी अनुदेशात्मक उपागम की प्रभावशीलता का अध्ययन किया गया। अध्ययन के परिणाम से ज्ञात हुआ कि जिन विद्यार्थियों ने निर्मितिवादी रणनीति का उपयोग किया, उनकी रसायन विज्ञान में उच्च उपलब्धि थी।

शोध की आवश्यकता एवं महत्त्व

विज्ञान की शिक्षा के क्षेत्र में अनेक शोध कार्य हुए हैं जिनसे यह निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं कि विद्यालय विषय के रूप में विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति अनुदेशन पद्धति से प्रभावित होती है। (Chang & Tsai, 2005; Parker & Gerber, 2000)

विज्ञान विषय में उपलब्धि हेतु विषय के प्रति शिक्षार्थियों की अभिवृत्ति, एवं प्रत्यक्षीकरण आवश्यक है। विषय का ज्ञान तब तक अपूर्ण है जब तक कि सैद्धान्तिक ज्ञान के साथ-साथ व्यावहारिक ज्ञान भी पर्याप्त ना हो।

सैद्धान्तिक ज्ञान सैद्धान्तिक परीक्षाओं से परिलक्षित होता है जबकि व्यावहारिक ज्ञान अनुप्रयोग के माध्यम से परिलक्षित होता है। प्रस्तुत अध्ययन में शोधकर्त्री द्वारा विज्ञान विषय के सन्दर्भ में शिक्षार्थी की शैक्षिक उपलब्धि का अध्ययन किया गया।

शोध के उद्देश्य

1. निर्मितिवाद उपागम पर आधारित शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया का शिक्षार्थियों की विज्ञान विषय में शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव का अध्ययन करना।

शोध परिकल्पना

- निर्मितिवाद उपागम पर आधारित शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया विद्यार्थियों की विज्ञान विषय में शैक्षिक उपलब्धि के आयाम 'सामान्य-उपयोगिता' को सार्थक रूप से प्रभावित नहीं करती है।
- निर्मितिवाद उपागम पर आधारित शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया विद्यार्थियों की विज्ञान विषय में शैक्षिक उपलब्धि के आयाम 'उत्पाद विकास' को सार्थक रूप से प्रभावित नहीं करती है।
- निर्मितिवाद उपागम पर आधारित शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया विद्यार्थियों की विज्ञान विषय में शैक्षिक उपलब्धि के आयाम 'समस्या की पहचान' को सार्थक रूप से प्रभावित नहीं करती है।
- निर्मितिवाद उपागम पर आधारित शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया विद्यार्थियों की विज्ञान विषय में शैक्षिक उपलब्धि के आयाम 'कारणों की खोज' को सार्थक रूप से प्रभावित नहीं करती है।
- निर्मितिवाद उपागम पर आधारित शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया विद्यार्थियों की विज्ञान विषय में शैक्षिक उपलब्धि के आयाम 'जिज्ञासा' को सार्थक रूप से प्रभावित नहीं करती है।
- निर्मितिवाद उपागम पर आधारित शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया विद्यार्थियों की विज्ञान विषय में शैक्षिक उपलब्धि के आयाम 'परिणाम का अनुमान' को सार्थक रूप से प्रभावित नहीं करती है।

न्यादर्श

शोधकार्य हेतु राजस्थान राज्य के जयपुर शहर में स्थिति 2 राजकीय एवं 2 निजी विद्यालयों की कक्षा सात में अध्ययनरत समान बुद्धि-लब्धि के 12 से 15 वर्ष आयु-वर्ग के 30-30 विद्यार्थी चयनित करते हुए कुल 120 में से प्रत्येक विद्यालय से यादृच्छिक रूप से 15-15 विद्यार्थियों को प्रायोगिक समूह (कुल 60) एवं 15-15 विद्यार्थियों को नियंत्रित समूह (कुल 60) में सम्मिलित किया गया।

शोध के चर

1. स्वतंत्र चर

- परंपरागत शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया
- निर्मितिवाद आधारित शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया

2. आश्रित चर

शैक्षिक उपलब्धि के विभिन्न आयाम—

- ➢ सामान्य उपयोगिता ➢ उत्पाद विकास ➢ समस्या की पहचान
- ➢ कारणों की खोज ➢ जिज्ञासा ➢ परिणाम का अनुमान

उपकरण

प्रस्तुत शोध को पूर्ण करने हेतु शोधकर्त्री द्वारा निम्नांकित उपकरणों का प्रयोग किया गया है—

1. बुद्धिलब्धि परीक्षण (मानकीकृत)–सामूहिक मानसिक योग्यता परीक्षा (Tandon 2008)
2. उपलब्धि परीक्षण (स्वनिर्मित)–प्रयोगात्मक अनुसन्धान से पूर्व एवं अनुसन्धान के पश्चात् शिक्षार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का मूल्यांकन करने हेतु।
3. स्वनिर्मित पाठ-योजनायें–निर्मितिवाद उपागम एवं परंपरागत उपागम पर आधारित पाठ-योजनायें, विद्यार्थियों को उपचारित करने हेतु।

विधि

शोधकार्य हेतु प्रयोगात्मक शोध आकल्प का उपयोग किया गया जिसके अंतर्गत नियंत्रित-प्रायोगिक समूह, पूर्व-पश्च परीक्षण विधि का प्रयोग करते हुए 20 दिवस तक नियंत्रित समूह को परंपरागत शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया से उपचारित किया गया तथा प्रायोगिक समूह के विद्यार्थियों को निर्मितिवाद आधारित शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया के माध्यम से उपचारित किया गया।

सांख्यिकीय विश्लेषण

तालिका संख्या 1

उपलब्धि परीक्षण के आयाम	समूह	मध्यमान		मानक विचलन		टी मान	प्रायिकता मान (P)
		पूर्व परीक्षण	पश्च परीक्षण	पूर्व परीक्षण	पश्च परीक्षण		
सामान्य उपयोगिता	नियंत्रित समूह	12.38	12.42	1.29	1.05	0.16	0.88
	प्रायोगिक समूह	12.42	13.90	1.05	0.71	13.16	0.00

n=60 DF=59 α=0.05 Confidence Level=95%

तालिका संख्या 1 नियंत्रित एवं प्रायोगिक समूह के विद्यार्थियों की

शैक्षिक उपलब्धि के आयाम 'सामान्य-उपयोगिता' पर उपचार-विधि के प्रभाव से संबंधित है। तालिका के अवलोकन से स्पष्ट है कि नियंत्रित समूह की शैक्षिक उपलब्धि के आयाम 'सामान्य-उपयोगिता' में उपचार के पश्चात उपचार से पूर्व की तुलना में सार्थक वृद्धि नहीं पाई गई (P>0.05) जबकि प्रायोगिक समूह के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि के आयाम 'सामान्य-उपयोगिता' में उपचार से पूर्व की तुलना में सार्थक रूप से अधिक पाई गई (P>0.05)।

तालिका संख्या 2

उपलब्धि परीक्षण के आयाम	समूह	मध्यमान		मानक विचलन		टी मान	प्रायिकता मान (P)
		पूर्व परीक्षण	पश्च परीक्षण	पूर्व परीक्षण	पश्च परीक्षण		
उत्पाद विकास	नियंत्रित समूह	12.53	12.63	1.24	0.96	0.49	0.63
	प्रायोगिक समूह	12.60	14.00	0.98	0.58	13.44	0.00

n=60 DF=59 α=0.05 Confidence Level=95%

तालिका संख्या 2 नियंत्रित एवं प्रायोगिक समूह के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि के आयाम 'उत्पाद विकास' पर उपचार-विधि के प्रभाव से संबंधित है। तालिका के अवलोकन से स्पष्ट है कि नियंत्रित समूह की शैक्षिक उपलब्धि के आयाम 'उत्पाद विकास' में उपचार के पश्चात उपचार से पूर्व की तुलना में सार्थक वृद्धि नहीं पाई गई P>0.05 जबकि प्रायोगिक समूह के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि के आयाम 'उत्पाद विकास' में उपचार से पूर्व की तुलना में सार्थक रूप से अधिक पाई गई P>0.05।

तालिका संख्या 3

उपलब्धि परीक्षण के आयाम	समूह	मध्यमान		मानक विचलन		टी मान	प्रायिकता मान (P)
		पूर्व परीक्षण	पश्च परीक्षण	पूर्व परीक्षण	पश्च परीक्षण		
समस्या की पहचान	नियंत्रित समूह	12.30	12.33	0.96	1.20	0.17	0.86
	प्रायोगिक समूह	12.33	14.00	1.20	0.61	13.33	0.00

n=60 DF=59 α=0.05 Confidence Level=95%

तालिका संख्या 3 नियंत्रित एवं प्रायोगिक समूह के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि के आयाम 'समस्या की पहचान' पर उपचार-विधि के प्रभाव से संबंधित है। तालिका के अवलोकन से स्पष्ट है कि नियंत्रित समूह की शैक्षिक उपलब्धि के आयाम 'समस्या की पहचान' में उपचार के पश्चात उपचार से पूर्व की तुलना में सार्थक वृद्धि नहीं पाई गई (P>0.05) जबकि प्रायोगिक समूह के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि के आयाम 'समस्या की पहचान' में उपचार से पूर्व की तुलना में सार्थक रूप से अधिक पाई गई (P>0.05)।

तालिका संख्या 4

उपलब्धि परीक्षण के आयाम	समूह	मध्यमान		मानक विचलन		टी मान	प्रायिकता मान (P)
		पूर्व परीक्षण	पश्च परीक्षण	पूर्व परीक्षण	पश्च परीक्षण		
कारणों की खोज	नियंत्रित समूह	12.30	12.33	0.96	1.20	0.17	0.86
	प्रायोगिक समूह	12.33	14.00	1.20	0.61	13.33	0.00

n=60 DF=59 α=0.05 Confidence Level=95%

तालिका संख्या 4 नियंत्रित एवं प्रायोगिक समूह के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि के आयाम 'कारणों की खोज' पर उपचार-विधि के प्रभाव से संबंधित है। तालिका के अवलोकन से स्पष्ट है कि नियंत्रित समूह की शैक्षिक उपलब्धि के आयाम 'कारणों की खोज' में उपचार के पश्चात उपचार से पूर्व की तुलना में सार्थक वृद्धि नहीं पाई गई (P>0.05) जबकि प्रायोगिक समूह के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि के आयाम 'कारणों की खोज' में उपचार से पूर्व की तुलना में सार्थक रूप से अधिक पाई गई (P>0.05)।

तालिका संख्या 5

उपलब्धि परीक्षण के आयाम	समूह	मध्यमान		मानक विचलन		टी मान	प्रायिकता मान (P)
		पूर्व परीक्षण	पश्च परीक्षण	पूर्व परीक्षण	पश्च परीक्षण		
जिज्ञासा	नियंत्रित समूह	12.35	12.28	1.13	0.99	0.36	0.72
	प्रायोगिक समूह	12.32	13.87	1.02	0.68	16.09	0.00

n=60 DF=59 α=0.05 Confidence Level=95%

तालिका संख्या 5 नियंत्रित एवं प्रायोगिक समूह के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि के आयाम 'जिज्ञासा' पर उपचार-विधि के प्रभाव से संबंधित है। तालिका के अवलोकन से स्पष्ट है कि नियंत्रित समूह की शैक्षिक उपलब्धि के आयाम 'जिज्ञासा' में उपचार के पश्चात् उपचार से पूर्व की तुलना में सार्थक वृद्धि नहीं पाई गई (P>0.05) जबकि प्रायोगिक समूह के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि के आयाम 'जिज्ञासा' में उपचार से पूर्व की तुलना में सार्थक रूप से अधिक पाई गई (P>0.05)

तालिका संख्या 6

उपलब्धि परीक्षण के आयाम	समूह	मध्यमान		मानक विचलन		टी मान	प्रायिकता मान (P)
		पूर्व परीक्षण	पश्च परीक्षण	पूर्व परीक्षण	पश्च परीक्षण		
परिणाम का अनुमान	नियंत्रित समूह	12.35	12.28	1.13	0.99	0.36	0.72
	प्रायोगिक समूह	12.32	13.87	1.02	0.68	16.09	0.00

n=60 DF=59 α=0.05 Confidence Level=95%

तालिका संख्या 6 नियंत्रित एवं प्रायोगिक समूह के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि के आयाम 'परिणाम का अनुमान' पर उपचार-विधि के प्रभाव से संबंधित है। तालिका के अवलोकन से स्पष्ट है कि नियंत्रित समूह की शैक्षिक उपलब्धि के आयाम 'परिणाम का अनुमान' में उपचार के पश्चात उपचार से पूर्व की तुलना में सार्थक वृद्धि नहीं पाई गई (P>0.05) जबकि प्रायोगिक समूह के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि के आयाम 'परिणाम का अनुमान' में उपचार से पूर्व की तुलना में सार्थक रूप से अधिक पाई गई (P>0.05)

निष्कर्ष

1. निर्मितिवाद उपागम पर आधारित शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया का विद्यार्थियों की विज्ञान विषय में शैक्षिक उपलब्धि के आयाम 'सामान्य-उपयोगिता' पर सार्थक प्रभाव पाया गया।
2. निर्मितिवाद उपागम पर आधारित शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया का विद्यार्थियों की विज्ञान विषय में शैक्षिक उपलब्धि के आयाम 'उत्पाद विकास' पर सार्थक प्रभाव पाया गया।

3. निर्मितिवाद उपागम पर आधारित शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया का विद्यार्थियों की विज्ञान विषय में शैक्षिक उपलब्धि के आयाम 'समस्या की पहचान' पर सार्थक प्रभाव पाया गया।
4. निर्मितिवाद उपागम पर आधारित शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया का विद्यार्थियों की विज्ञान विषय में शैक्षिक उपलब्धि के आयाम 'कारणों की खोज' पर सार्थक प्रभाव पाया गया।
5. निर्मितिवाद उपागम पर आधारित शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया का विद्यार्थियों की विज्ञान विषय में शैक्षिक उपलब्धि के आयाम 'जिज्ञासा' पर सार्थक प्रभाव पाया गया।
6. निर्मितिवाद उपागम पर आधारित शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया का विद्यार्थियों की विज्ञान विषय में शैक्षिक उपलब्धि के आयाम 'परिणाम का अनुमान' पर सार्थक प्रभाव पाया गया।

सन्दर्भ

Almala, A. (2005). A Constructivist Conceptual Framework for a Quality Learning Environment. *Distance Learning*, 2(5), 9-13.

Chang, C.-Y., Tsai, C.-C. (2005, May 28). The Interplay Between Different Forms of CAI and Students' Preferences of Learning Environment in the Secondary Science Class. *Wiley Periodicals*, pp. 707-724.

Jack, G. U. (2017, April). The effect of learning cycle constructivist-based approach on students' academic achievement and attitude towards chemistry in secondary schools in north-eastern part of Nigeria. *Educational Research and Reviews,* 12(7), 456-466. doi:10.5897/ERR2016.3095

Lkama, J. D., Dabo, U. Y. (2019). Effect of Constructivist Teaching Method on Students' Academic Performance in Metalwork in Technical Colleges in Yobe State, *Nigeria. International Journal of Scientific and Research Publications,* 9(6), 484-493. doi:10.29322/IJSRP.9.06.2019.p9070

Mercy, O., Grace, K., Michael, Y. S. (2019). Effectiveness of a Constructivist Instructional Approach on Student Academic Achievement in Chemical Bonding in Ahoada East Local Government Area of Rivers State. *International Journal of Education and Evaluation,* 5(3), 42-55.

Osondu, S. I. (2018, December). Constructivist instructional strategy and students' academic achievement in computer studies in Abia state, Nigeria. *Scholars Journal of Engineering and Technology,* 6(12), 387-393. doi:10.21276/sjet.2018.6.12.3

Parker, V., Gerber, B. (2000, May 22). Effects of a Science Intervention Program on Middle-Grade Student Achievement and Attitudes. *Willy Online*, 100(5), pp. 236-242.

Perkins, D. (1993). Teaching for Understanding, American Educator. *The professional Journal of the American Federation of Teachers*, 17(3), 28-35.

Tandon, R. K. (2008). *Samoohik Mansik Yogyata Pareeksha (2/ 70). Moradabad: K.* G. K College.

Xie, C., Wang, M., Hu, H. (2018, October 9). Effects of constructivist and transmission instructional models on mathematics achievement in mainland china: A meta-analysis. *Frontiers in Psychology*, 9, 1-18. doi:10.3389/fpsyg.2018.01923

आशु शर्मा
शोद्यार्थी (शिक्षा विभाग)
जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनूँ

डॉ. गिरिराज भोजक
सहायक आचार्य (शिक्षा विभाग)
जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनूँ

❑❑❑

असंगठित श्रमिकों में सफाई कर्मकारों के आर्थिक विकास में सरकार द्वारा चलाई जा रही योजनाओं के योगदान का अध्ययन

• इमरान मेमन

• डॉ. के. एल. टाण्डेकर

प्रस्तुत शोध अध्ययन में असंगठित श्रमिकों के अंतर्गत जो सफाई कर्मकार आते हैं उन सफाई कर्मकारों का विकास किस प्रकार किया जा रहा है तथा उन सफाई कर्मकारों के विकास के लिए कौन-कौन सी योजनाएं सरकार द्वारा चलाई जा रही है इसके संबंध में अध्ययन किया गया है तथा इन योजनाओं के माध्यम से छत्तीसगढ़ राज्य के धमतरी जिले में पिछले कुछ वर्षों में लगभग कितने असंगठित श्रमिक (सफाई कर्मकार) लाभान्वित हुए हैं इसका भी अध्ययन किया गया है प्रस्तुत अध्ययन में उन योजनाओं की पात्रता, शर्तों एवं देयलाभ आदि का भी वर्णन किया गया है जो सरकार द्वारा सफाई कर्मकारों के लिए चलाई जा रही है।

प्रस्तावना :

ऐसे श्रमिक जो संगठित नहीं है जिनके पास ना तो सुरक्षित रोजगार है और ना ही कार्य करने के घंटे निश्चित है और ना ही उनके लिए किसी प्रकार की प्रोविडेंट फंड की सुविधा है ऐसे श्रमिकों को ही असंगठित श्रमिक कहा जाता है इन असंगठित श्रमिकों में ठेका श्रमिक, हमाल श्रमिक, दर्जी, धोबी, नाई एवं सफाई कर्मकार आदि श्रमिक आते हैं प्रस्तुत शोध अध्ययन में असंगठित श्रमिकों में जो सफाई कर्मकार आते हैं उनका अध्ययन किया गया है इसके साथ ही सफाई कामगारों के लिए सरकार द्वारा जो योजनाएं चलाई जा रही है उसका भी अध्ययन किया गया है चूँकि इन असंगठित श्रमिकों की स्थिति अत्यंत दयनीय होती है इसलिए सरकार इनके

विकास के लिए विभिन्न योजनाएं चलाती है ताकि इन योजनाओं के माध्यम से इन असंगठित श्रमिकों का विकास किया जा सके।

शोध अध्ययन के उद्देश्य :

1. सफाई कर्मकारों हेतु छत्तीसगढ़ शासन श्रम विभाग द्वारा चलाई जाने वाली योजनाओं के संबंध में अध्ययन करना।
2. सफाई कर्मकारों हेतु छत्तीसगढ़ शासन श्रम विभाग द्वारा चलाई जाने वाली योजनाओं की कमियों का पता लगाना।
3. सफाई कर्मकारों के विकास में छत्तीसगढ़ शासन श्रम विभाग द्वारा चलाई जाने वाली योजनाओं के योगदान का अध्ययन करना।
4. सफाई कर्मकारों के विकास के लिए छत्तीसगढ़ शासन श्रम विभाग द्वारा चलाई जाने वाली योजनाओं की स्थिति का अध्ययन करना।
5. सफाई कर्मकारों के विकास के लिए छत्तीसगढ़ शासन श्रम विभाग द्वारा चलाई जाने वाली योजनाओं की सफलता एवं असफलता का अध्ययन करना।
6. सफाई कर्मकारों के विकास के लिए छत्तीसगढ़ शासन श्रम विभाग द्वारा चलाई जाने वाली योजनाओं से छत्तीसगढ़ के धमतरी जिले में पिछले कुछ वर्षों में कितने हितग्राही लाभान्वित हुए हैं इसका अध्ययन करना।
7. सफाई कर्मकारों के विकास के लिए छत्तीसगढ़ शासन श्रम विभाग द्वारा और कौन-कौन सी योजनाएं चलाई जा सकती है इसके संबंध में सुझाव देना।

शोध परिकल्पना :

1. सफाई कर्मकारों के विकास में श्रम विभाग द्वारा चलाई जाने वाली योजनाओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।
2. श्रम विभाग द्वारा चलाई जाने वाली योजनाओं से सफाई कर्मकारों का विकास संभव है।

शोध विधि :

प्रस्तुत शोध अध्ययन हेतु प्राथमिक एवं द्वितीयक समंको का प्रयोग किया गया है प्राथमिक समंको के संग्रहण हेतु छत्तीसगढ़ के धमतरी जिले के श्रम विभाग के अधिकारियों से मौखिक साक्षात्कार के माध्यम से योजनाओं के संबंध में तथा अन्य जानकारी प्राप्त की गई है तथा द्वितीयक समंको के संग्रहण के लिए संबंधित शोध प्रबंध, रिसर्च पेपर, विभाग द्वारा प्रकाशित पुस्तिका, जर्नल, समाचार-पत्र, पत्रिकाएं आदि का अध्ययन किया गया है।

शोध अध्ययन का क्षेत्र :

प्रस्तुत शोध अध्ययन हेतु अध्ययन का उद्देश्य, परिकल्पना व शोध विधि के निर्धारण करने के पश्चात अध्ययन के क्षेत्र को निर्धारित करना भी अत्यंत आवश्यक हो जाता है प्रस्तुत शोध कार्य हेतु छत्तीसगढ़ राज्य के धमतरी जिले को अध्ययन के क्षेत्र के रूप में लिया गया है तथा छत्तीसगढ़ राज्य के धमतरी जिले के श्रम विभाग के पदाधिकारियों से मौखिक साक्षात्कार के माध्यम से जानकारी प्राप्त की गई है।

छत्तीसगढ़ शासन श्रम विभाग द्वारा सफाई कर्मकारों हेतु चलाई जाने वाली योजनाओं का विवरण :

(1) सफाई कर्मकार कौशल उन्नयन योजना (2015-16 से लागू) :

पात्रता :

1. मंडल द्वारा 18 वर्ष से अधिक आयु के पंजीकृत सफाई कर्मकारों को योजना में शामिल किया जावेगा।
2. यदि कोई कर्मकार राज्य शासन के समानांतर किसी अन्य योजना से लाभ प्राप्त कर रहा है तो इस योजना के लिए अपात्र होगा।

देय लाभ :

योजना के अंतर्गत पंजीकृत सफाई कर्मकार एवं परिवार के सदस्यों को सीएसएसडीए द्वारा चिन्हांकित व्यवसायों में व्ही.टी.पी. के द्वारा प्रशिक्षण दिया जायेगा। मंडल द्वारा प्रशिक्षणरत कर्मकार को श्रम विभाग के द्वारा अकुशल श्रमिक के लिए निर्धारित न्यूनतम वेतन की दर से प्रत्येक दिन हेतु मानदेय प्रदाय किया जावेगा।

(2) सफाई कर्मकार पुत्र/पुत्री सायकल सहायता योजना (2015-16 से लागू) :

पात्रता :

1. यदि पंजीकृत सफाई कर्मकार के पुत्र/पुत्री शाला/विश्वविद्यालय में अध्ययनरत है तथा उन्हें शिक्षा विभाग से सायकल सहायता योजना का लाभ प्राप्त नहीं हुआ है, तभी उन्हें सायकल सहायता योजना का लाभ प्रदान किया जावेगा।

देय लाभ :

पंजीकृत सफाई कर्मकार के शाला/विश्वविद्यालय में अध्ययनरत पुत्र/पुत्री (दो संतान तक) को सायकल प्रदाय किया जावेगा।

(3) सफाई कर्मकार के पुत्र/पुत्री हेतु विशेष कोचिंग योजना (2015-16 से लागू) :

पात्रता :

1. पंजीकृत सफाई कर्मकारों के अध्ययनरत 02 पुत्र/पुत्रियों को विशेष कोचिंग का शुल्क प्रदान किया जावेगा।
2. यदि कोई छात्र/छात्रा अन्य शासकीय विभाग/संस्था की अन्य योजनांतर्गत सहायता प्राप्त कर रहा है जो उसके लिए हितकर/लाभप्रद है तो वह इस योजना के लिए अपात्र होंगे।

देय लाभ :

कक्षा दसवी एवं उससे उच्च कक्षाओं में अध्ययनरत पुत्र/पुत्री (दो संतानों) को इंजीनियरिंग, चिकित्सा, सीए, एमबीए अथवा अन्य व्यावसायिक शिक्षा में प्रवेश हेतु विशेष कोचिंग हेतु लगने वाला शुल्क मंडल द्वारा देय होगा।

(4) सफाई कर्मकार बाह्य रोगी चिकित्सा सहायता योजना (2015-16 से लागू) :

पात्रता :

1. 18 से 60 वर्ष के पंजीकृत सफाई कर्मकार एवं उनके परिवार के सदस्य (पति/पत्नि, पुत्र एवं पुत्री) जिनका उल्लेख पंजीयन कार्ड में है।
2. शासकीय चिकित्सालय के चिकित्सक द्वारा प्रमाणिक देयक की प्रतिपूर्ति (उन्हीं दवा के देयक जो शासकीय चिकित्सालय में उपलब्ध नहीं है।) की जावेगी। योजना का लाभ दो संतान तक ही मिलेगा।

देय लाभ :

पंजीकृत सफाई कर्मकार अथवा उनके परिवार के सदस्य को स्वास्थ्य परीक्षण सहायता राशि रुपये 2000 तक चिकित्सा सहायता दवाई क्रय हेतु प्रतिवर्ष प्रदाय की जावेगी।

(5) सफाई कर्मकार के बच्चे हेतु छात्रवृत्ति योजना (2015-16 से लागू) :

पात्रता :

1. पंजीकृत सफाई कर्मकार के कक्षा 1 से स्नातकोत्तर पीएच.डी. तक अध्ययनरत पुत्र/पुत्रियों को छात्रवृत्ति की पात्रता होगी।

2. यांत्रिकी या चिकित्सा शिक्षा हेतु महाविद्यालय/पॉलिटेक्निक अथवा अन्य पाठ्यक्रम के पश्चात् न्यूनतम 01 वर्ष अध्ययन की अनिवार्यता होगी। 01 वर्ष के बीच सत्र में अध्ययन रोक देने की स्थिति में छात्रवृत्ति की राशि वापस जमा करनी होगी।
3. यदि कोई छात्र/छात्रा अन्य शासकीय विभाग/संस्था की अन्य योजनांतर्गत छात्रवृत्ति राशि प्राप्त कर रहा है जो उसके लिए हितकर/ लाभप्रद है तो वह इस योजना के लिए अपात्र होंगे।

देय लाभ :

रुपये 1000/- से रुपये 15000/- तक पंजीकृत सफाई कर्मकारों के अध्ययनरत 02 पुत्र/पुत्रियों को कक्षावार वार्षिक छात्रवृत्ति एकमुश्त प्रदाय की जायेगी।

(6) सफाई कर्मकार प्रसूति सहायता योजना (2015-16 से लागू) :

पात्रता :

1. पंजीकृत सफाई कर्मकार महिला को योजना का लाभ केवल दो बार प्रसव हेतु देय होगा।
2. सार्वजनिक एवं शासकीय संस्थाओं में नियमित कार्यरत सफाई कर्मकारों की पत्नी अपात्र होगी।

देय लाभ :

पंजीकृत सफाई महिला कर्मकार को गर्भधारण के प्रथम तिमाही (तीसरे माह में) रुपये 5,000/- एवं तृतीय तिमाही (आठवें माह) रुपये 5,000/- प्रसूति लाभ देय होगी।

(7) सफाई कर्मकार हेतु आवश्यक उपकरण सहायता योजना (2015-16 से लागू) :

पात्रता :

1. पंजीकृत सफाई कर्मकार 18 से 60 वर्ष की आयु वाले हितग्राही योजना अंतर्गत लाभ प्राप्त करने हेतु पात्र होगे।
2. राज्य शासन के समानांतर किसी अन्य योजना से लाभ प्राप्त कर रहा है तो उसे इस योजना का लाभ नहीं मिलेगा।

देय लाभ :

पंजीकृत हितग्राही को आवश्यक उपकरण गमबूट, दस्ताने, मास्क एवं एप्रेन प्रतिवर्ष रुपये 1000/- तक सामग्री प्रदाय करने का निर्णय लिया गया है।

(8) सफाई कर्मकार गंभीर बीमारी चिकित्सा सहायता योजना (2018-19 से लागू) :

पात्रता :

1. 18 से 60 वर्ष की आयु के सफाई कर्मकार जो मंडल में कम से कम 90 दिवस पूर्व पंजीकृत हो।
2. राज्य शासन के समानांतर किसी अन्य योजना से लाभ प्राप्त कर रहा है तो उसे इस योजना का लाभ नहीं मिलेगा।

देय लाभ :

पंजीकृत सफाई कर्मकार को किडनी, केंसर, सिकलिंग (सिकलसेल इनीमिया), हृदय रोग, एड्स एवं लकवा रोग के ईलाज हेतु 50000/- रूपये की चिकित्सा सहायता अथवा ईलाज में हुये वास्तविक व्यय जो भी कम हो प्रदाय किया जायेगा।

सफाई कर्मकारों के लिए छत्तीसगढ़ शासन श्रम विभाग द्वारा चलाई जाने वाली योजनाओं से लाभान्वित श्रमिकों (धमतरी जिले के अंतर्गत) की योजनावार व वर्षवार रिपोर्ट (2015-16 से 2020-21 तक) :

(ग्राफ द्वारा प्रदर्शन) :

स्त्रोत :- कार्यालय श्रम पदाधिकारी जिला : धमतरी (छ.ग)

समस्या :

1. प्रस्तुत शोध अध्ययन में यह समस्या देखने को मिली कि बहुत से श्रमिकों को श्रम विभाग की योजनाओं की जानकारी ना होने के कारण वे योजनाओं का लाभ नहीं उठा पा रहे हैं।
2. बहुत से असंगठित श्रमिक अशिक्षित होने के कारण श्रम विभाग की योजनाओं का लाभ नहीं उठा पा रहे हैं।
3. बहुत से असंगठित श्रमिकों के बैंक संबंधी दस्तावेज पूरे नहीं होने के कारण वे योजनाओं का लाभ नहीं उठा पा रहे हैं।

सफाई कर्मकारों के लिए छत्तीसगढ़ शासन श्रम विभाग द्वारा चलाई जाने वाली योजनाओं से लाभान्वित श्रमिकों (धमतरी जिले के अंतर्गत) की योजनावार व वर्षवार रिपोर्ट (2015–16 से 2020–21 तक) :–

क्र.	योजना का नाम	2015–16	2016–17	2017–18	2018–19	2019–20	2020–21	योग
1	सफाई कर्मकार कौशल उन्नयन योजना (2015–16 से लागू)	28	–	–	–	–	–	28
2	सफाई कर्मकार पुत्र/पुत्री सायकल सहायता योजना (2015–16 से लागू)	19	8	24	37	–	–	88
3	सफाई कर्मकार के पुत्र/पुत्री हेतु विशेष कोचिंग योजना (2015–16 से लागू)	–	–	–	–	–	–	–
4	सफाई कर्मकार बाह्य रोगी चिकित्सा सहायता योजना (2015–16 से लागू)	–	–	–	–	–	–	–
5	सफाई कर्मकार के बच्चे हेतु छात्रवृत्ति योजना (2015–16 से लागू)	47	117	107	188	160	80	699
6	सफाई कर्मकार प्रसूति सहायता योजना (2015–16 से लागू)	1	7	14	16	17	60	115
7	सफाई कर्मकार हेतु आवश्यक उपकरण सहायता योजना (2015–16 से लागू)	200	37	156	300	–	–	693
8	सफाई कर्मकार गंभीर बीमारी चिकित्सा सहायता योजना (2018–19 से लागू)	–	–	–	–	–	–	–
	योग	295	169	301	541	177	140	1623

{स्त्रोत :– कार्यालय श्रम पदाधिकारी जिला :– धमतरी (छ.ग.)}

(ग्राफ द्वारा प्रदर्शन) :–

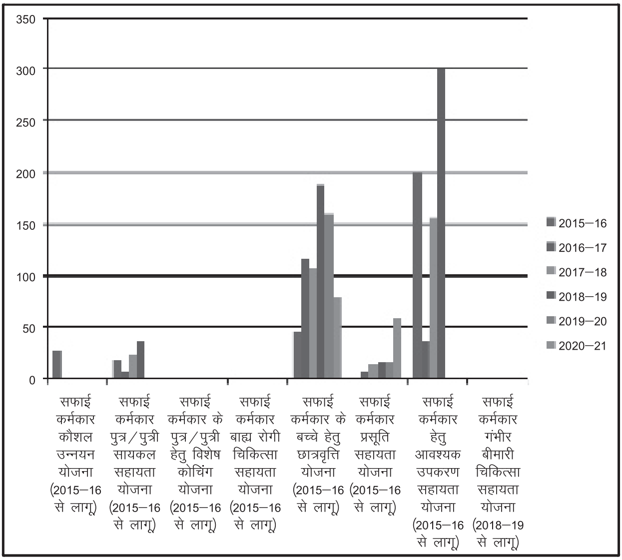

{स्त्रोत :– कार्यालय श्रम पदाधिकारी जिला :– धमतरी (छ.ग.)}

4. बहुत से असंगठित श्रमिक अपने श्रमिक कार्ड का समय पर नवीनीकरण नहीं कराने के कारण उनका पंजीयन रद्द हो जा रहा है जिसके कारण वे श्रम विभाग की योजनाओं का लाभ नहीं उठा पा रहे हैं।
5. बहुत से असंगठित श्रमिकों का पंजीयन तो हुआ है लेकिन इसका लाभ किस प्रकार उठाया जाए इसके संबंध में जानकारी नहीं है जिसके कारण वे श्रम विभाग की योजनाओं का लाभ नहीं उठा पा रहे हैं।

सुझाव :

1. श्रम विभाग द्वारा समय-समय पर जगह-जगह शिविर लगाकर सफाई कर्मकारों हेतु चलाई जाने वाली योजनाओं के संबंध में जानकारी प्रदान की जानी चाहिए।
2. जिन कारणों से सफाई कर्मकार श्रम विभाग की योजनाओं का लाभ नहीं उठा पा रहे हैं उन कारणों का पता लगाकर उनकी समस्याओं को दूर करके श्रम विभाग द्वारा उन्हें योजनाओं का लाभ प्रदान करने का प्रयास करना चाहिए।
3. जिन कारणों से सफाई कर्मकारों के पंजीयन रद्द हो जा रहे हैं उन कारणों का पता लगाकर उन समस्याओं को दूर करना चाहिए।
4. ऐसी श्रमिक जो अशिक्षित है उनसे मिलकर उन्हें योजनाओं के बारे में जानकारी प्रदान करके उन्हें योजनाओं से लाभान्वित किया जाना चाहिए।
5. सफाई कर्मकारों को बैंक संबंधी दस्तावेजों की भी पूर्ण जानकारी प्रदान की जानी चाहिए ताकि उन्हें योजनाओं का लाभ सही तरीके से मिल सके।

निष्कर्ष :

प्रस्तुत शोध अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि छत्तीसगढ़ शासन श्रम विभाग द्वारा सफाई कर्मचारियों के लिए अलग-अलग प्रकार की जो योजना चलाई जा रही है उन योजनाओं का सफाई कर्मचारियों के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान रहा है प्रस्तुत शोध अध्ययन में छत्तीसगढ़ के धमतरी जिले में पिछले कुछ वर्षो में लाभान्वित सफाई कर्मकारों की योजनावार वार्षिक रिपोर्ट (2015-16 से 2020-21 तक) प्रस्तुत किया गया है जिसमें देखा गया कि कुल = 1623 सफाई कर्मकारों ने छत्तीसगढ़ शासन श्रम विभाग की योजनाओं का लाभ उठाया है जिसमें से 28 श्रमिकों ने सफाई कर्मकार कौशल उन्नयन योजना (2015-16 से लागू) का लाभ

उठाया है, 88 श्रमिकों ने सफाई कर्मकार पुत्र/पुत्री सायकल सहायता योजना (2015-16 से लागू) का लाभ उठाया है, 699 श्रमिकों ने सफाई कर्मकार के बच्चे हेतु छात्रवृत्ति योजना (2015-16 से लागू) का लाभ उठाया है, 115 श्रमिकों ने सफाई कर्मकार प्रसूति सहायता योजना (2015-16 से लागू) का लाभ उठाया है, एवं 693 श्रमिकों ने सफाई कर्मकार हेतु आवश्यक उपकरण सहायता योजना (2015-16 से लागू) का लाभ उठाया है जिससे इन सफाई कर्मकारों का आर्थिक विकास हुआ है इस प्रकार सफाई कर्मकारों के विकास में श्रम विभाग की विभिन्न योजनाओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा है तथा यह भी कहा जा सकता है कि श्रम विभाग की योजनाओं से सफाई कर्मकारों का विकास संभव है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. मेमन, इ., – टाण्डेकर, ड. क. (2022). असंगठित श्रमिकों में ठेका श्रमिक, घरेलू महिला कामगार एवं हमाल श्रमिकों के आर्थिक विकास में सरकार द्वारा चलाई जा रही योजनाओं के योगदान का अध्ययन स्वदेशी रिसर्च फाउंडेशन एंड पब्लिकेशन जबलपुर (मध्यप्रदेश), 144-148.
2. कार्यालय श्रम पदाधिकारी जिला : धमतरी (छ.ग)
3. श्रम विभाग की प्रकाशित पुस्तिका
4. http://cglabour.nic.in/
5. http://labour.gov.in/

इमरान मेमन
शोधार्थी
वाणिज्य विभाग,
शासकीय दिग्विजय स्वशासी
स्नात्तकोत्तर महाविद्यालय
जिला : राजनांदगांव (छत्तीसगढ़)
bcsimran96@gmail.com
मोबाइल 7049570320

डॉ. के. एल. टाण्डेकर
सह-लेखक
(शोध निर्देशक)
प्राचार्य,
शासकीय दिग्विजय स्वशासी
स्नात्तकोत्तर महाविद्यालय
जिला : राजनांदगांव (छत्तीसगढ़)

शोधार्थी के पत्र-व्यवहार का पता :
इमरान मेमन
राम सागर पारा रिसाई माता मंदिर के पास
धमतरी छत्तीसगढ़ (पिनकोड-493773)

मोहनदास करमचंद गांधी से महात्मा गांधी तक की यात्रा

• डॉ. अनिल कुमार मिश्र

''परहित सरिस धर्म नहिं भाई, पर पीड़ा सम नहिं अधमाई'' पंक्ति भारतीय संस्कृति के मानवतावादी दृष्टिकोण का निचोड़ है। संपूर्ण भारतीय वाङ्मय जन कल्याण को समर्पित ऋषियों के आख्याानों से भरा पड़ा है। यह परंपरा ऋषियों के बाद बुद्ध, महावीर, नानक, कबीर, आदि से होती हुई आधुनिक युग में मानवता के सबसे बड़े पुजारी, संरक्षक महात्मा गांधी तक पहुँचती है। मध्यकालीन भक्त कवि नरसी मेहता का पद ''वैष्णव जन को तैने जे कहिए जे पीड़ पराई जाने रे''—परपीड़ा के प्रति गहन संवेदना के कारण गांधीजी को सर्वप्रिय थी। 'पराई पीर' के प्रति इसी गहरी संवेदना ने उन्हें मोहनदास करमचंद गांधी से 'महात्मा गांधी' में रूपांतरित कर दिया। व्यक्तित्व-रूपांतरण की इस प्रक्रिया में उनके पारिवारिक परिवेश की भी महती भूमिका रही। इसके लिए हमें गांधीजी के जीवन को बाल्यकाल से खंगालना पड़ेगा।

मोहनदास करमचंद गांधी का जन्म दो अक्टूबर, 1869 ई. को वर्तमान गुजरात के पोरबंदर नामक स्थान पर हुआ था। पुतलीबाई और करमचंद इनके माता-पिता थे। पिता करमचंद रियासत के दीवान तो माता गृहणी, परंतु परम धार्मिक महिला थीं। माता की अस्तिकता के प्रभाव से परिवार में भोजन की सात्विकता और आचरण की पवित्रता पर विशेष ध्यान दिया जाता था। इसका प्रभाव गांधीजी के जीवन पर भी पड़ा, जो आजीवन रहा। 'बैरिस्टरी की पढ़ाई हेतु ब्रिटेन जाते समय उनकी माता जी—'गांधी सदाचारी बने रहेंगे' को लेकर सशंकित थीं। उनकी इस समस्या का हल उनके पारिवारिक शुभचिंतक और परामर्शदाता जैन साधु बेचर जी ने निकाला। उन्होंने बालक मोहनदास को सदाचारी रहने की शपथ दिलवाई। उसी समय गांधीजी ने अपने जीवन की तीन

महत्त्वपूर्ण प्रतिज्ञाएं कीं-'मांस और मदिरा नहीं छूएंगे, परस्त्री-गमन नहीं करेंगे।'[1] माँ मान गईं, उनके बैरिस्टर बनने का मार्ग खुल गया।

बैरिस्टरी की परीक्षा पास करने के उपरांत सन् 1891 ई. में गांधीजी वापस भारत आए और राजकोट तथा बंबई में वकालत करने लगे, परंतु असफलता ही हाथ लगी। इसी बीच संघर्षरत मोहनदास को पोरबंदर के व्यापारी दादा अब्दुल्ला के फर्म का वकील बनकर दक्षिण अफ्रीका जाने का आमंत्रण मिला। इस आमंत्रण को उन्होंने धनार्जन व ज्ञानार्जन के एक अवसर के रूप में देखा और दक्षिण अफ्रीका चले गए।[2] वास्तव में यही अवसर उनके मोहनदास करमचंद गांधी से उनके 'महात्मा गांधी' और 'राष्ट्रपिता' के रूप में रूपांतरण का बीज-बिंदु बना।

दक्षिण अफ्रीका पहुँचकर अपने मुवक्किल दादा अब्दुल्ला से मिलकर मोहनदास मुकदमे की पैरवी हेतु डरबन से ट्रेन द्वारा प्रिटोरिया रवाना हुए। उनकी इसी यात्रा के साथ मोहनदास करमचंद से 'महात्मा गांधी' की रूपांतरण-यात्रा भी प्रारम्भ हो जाती है। इस यात्रा ने गांधीजी का मनुष्य की सबसे घृणित सोच और व्यवहार-'रंगभेद और गुलामी' से परिचय कराया।

ट्रेन का प्रथम श्रेणी का टिकट होने के बावजूद गोरों द्वारा ट्रांसवाल की राजधानी मेरिट्सवर्ग में उनके विपरीत देह रंग-'काला' होने के कारण गांधीजी को जबरन ट्रेन से उतार दिया गया। अंग्रेजों जैसी योग्यता, वेशभूषा होने के बावजूद उनके उपनिवेश भारत का नागरिक होने किन्तु उनके विपरीत रंग अर्थात् काला होने के लिए हुआ यह अपमान गांधी के मानस में चुभ गया। मेरिट्सवर्ग की कड़ाके की ठंड भरी रात और गोरों के बर्बर, अमानवीय व्यवहार से उनके हृदय में मानवता के प्रति अन्याय करने वालों के विरुद्ध संघर्ष का अंकुर फूट पड़ा। उनके मन में दक्षिण अफ्रीका के भारतीय गिरमिटिया समुदाय को उनके शोषण और अपमान के प्रति जागरूक करने का संकल्प उदित हो गया।[3] यहाँ उन्हें यह अनुभव हो चुका था—परतंत्रता सभी अमानवीय कृत्यों की जननी होती है, वह मानवता का गला घोंटती है। परतंत्र व्यक्ति की कोई श्रेष्ठता, कोई विद्वता और कोई अधिकार नहीं होता। अपने कार्य को संपादित कर लेने के बाद उन्होंने प्रिटोरिया में भारतीयों की एक सभा बुलाई। मानव-मुक्ति-यज्ञ के क्रम में उनकी यह पहली सभा थी। जिसमें उन्होंने भारतीय हिन्दुओं और मुसलमानों के सम्मुख विचार व्यक्त करते हुए चार बातों पर जोर दिया—''व्यापार में भी सत्य बोलो, सफाई से रहने की आदत डालो, जाति-पांति भूल जाओ, धार्मिक भेदभाव भूल

जाओ और अंग्रेजी सीखो।''[4] गांधीजी के ये वक्तव्य वास्तव में भविष्य में उनके द्वारा संचालित किए जाने वाले मानव-मुक्ति-आंदोलन के दर्शन-सूत्र की ही अभिव्यक्ति थे।

गांधीजी को यह अहसास हो चुका था मनुष्य की उन्नति उसकी आत्मिक और चारित्रिक उन्नति तथा सामाजिक एकता के बिना संभव नहीं है। उनको यह भी ज्ञात हो चुका था कि मानव से मानव के भेद की प्रवृत्ति ही मानवता की दुश्मन है। इस भेद-प्रवृति के विकास के अनेक कारण हैं—आर्थिक, धार्मिक, प्रजातीय और राजनैतिक आदि। व्यक्ति की अर्थलिप्सा उसे शोषण के मार्ग पर अग्रसर करती है। धार्मिक श्रेष्ठता और नस्लीय श्रेष्ठता की मनोवृत्ति दूसरे धर्मों और नस्लों के प्रति हेय दृष्टि का विकास करती है। नस्लीय श्रेष्ठता का नशा व्यक्ति को मानवता के सबसे बड़े शत्रु के रूप में परिवर्तित कर देता है। अंग्रेजों ने, जिनके शासन में कभी सूर्य अस्त नहीं होता था, अपने उपनिवेशों के गैर ब्रिटिश नागरिकों से स्वयं को श्रेष्ठ मानकर सदैव उनसे घृणित व्यवहार किया। जिसकी अनुभूति स्वयं गांधीजी को दक्षिण अफ्रीका में हो चुकी थी।[5] गांधीजी ने मानवभेद की इस अमानवीय, वैश्विक परिपाटी के खिलाफ संघर्ष प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने यह अनुभव कर लिया था कि सभी जटिल बुराइयों का पोषण राजनैतिक, धार्मिक व सामाजिक व्यवस्थाओं द्वारा होता है। अतः उन्होंने मानव-कल्याण इन सभी व्यवस्थाओं के खिलाफ संघर्ष का विगुल बजा दिया।

इसका प्रारम्भ उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में ही कर दिया। कार्य समाप्ति के पश्चात् आयोजित अपने विदाई समारोह में 'नेटाल मर्करी' पत्र से गांधीजी को दक्षिण अफ्रीका की नेटाल सरकार के उस काले कानून का, जिसमें नेटाल विधानमंडल के सदस्यों के चयन में भारत वंशियों के मताधिकार को निरस्त करने का प्रावधान था, की सूचना मिली। अपने उद्बोधन में गांधीजी ने सभी से इस कानून का कड़ा विरोध करने की सलाह दी, परंतु गुलामी की जंजीरों में जकड़ा, मृतप्राय, आत्मविश्वास-रहित गिरमिटिया समुदाय उनके बिना इस विरोध में स्वयं को असमर्थ पा रहा था। सभा में आये सभी लोगों ने एक स्वर से इस विरोध-आंदोलन का नेतृत्व करने के लिए गांधीजी से आग्रह किया। गांधीजी ने इसे स्वीकार कर लिया।[6] इस स्वीकृति के साथ मोहनदास करमचंद गांधी ने 'महात्मा गांधी' की रूपांतरण-यात्रा पर प्रथम कदम रख दिया। दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों के मौलिक अधिकारों के लिए उनका संघर्ष भारत आकर स्वाधीनता आंदोलन से जुड़कर और वृहत्तर हो गया। जिसके मूल में मानव-कल्याण निहित था। गांधी ''पराधीन सपनेहुं सुख नाहीं'' की धारणा के पोषक थे, तभी तो

स्वाधीनता आंदोलन के चरम पर कई बार उन्होंने अराजकता की स्थिति में भी अंग्रेजों से भारत छोड़ने की बात कही।[7]

सत्य के प्रति गांधीजी की अटूट आस्था थी। उनका मानना था— 'सत्यनिष्ठा' अदम्य साहस से ही संभव है। अपनी गलतियों को समाज के सम्मुख अनावृत करना बहुत ही कठिन है। गांधीजी के व्यक्तित्व में साहस कूट-कूट कर भरा था। इसी कारण वे यावत्जीवन सत्यनिष्ठ रहे। उनके सत्य-व्रत पालन की अनेक झलकियाँ उनकी आत्मकथा 'सत्य के प्रयोग' में उपलब्ध हैं। जहाँ उन्होंने अपनी चारित्रिक दुर्बलताओं को भी उजागर किया है। जैसे— ''जिज्ञासावश एवं अनुभव हेतु मांस-भक्षण[8], सिगरेट पान[9], वेश्यालय जाने का[10], सिगरेट हेतु नौकर के पैसे चुराने का[11], मरणासन्न पिता की सेवा पर पत्नी-संसर्ग को वरीयता देना।''[12], आदि अनेक प्रसंग उनकी आत्मकथा में भरे पड़े हैं। सत्य के प्रति उनकी यह आसक्ति ''सत्य को ही भगवान मानने की उनकी धारणा'' का परिणाम है।[13] इसी सत्यनिष्ठता और अदम्य साहस के बल पर वे मानवोत्थान की लड़ाई लड़ सके।

गांधीजी के जीवन-दर्शन का दूसरा महत्त्वपूर्ण बिंदु 'अहिंसा' है। सनातन भारतीय संस्कृति के मूल में ''अहिंसा परमो धर्मः''[14] का सिद्धांत निहित है। बुद्ध, महावीर सभी ने मानव व सृष्टि के कल्याण के लिए अहिंसा के सिद्धांत को पोषित किया। अहिंसा के व्रत पालन में सृष्टि और मानवता के प्रति मनसा-वाचा-कर्मणा स्नेह का आशय छिपा है। गांधीजी के सभी आंदोलनों की मूल आत्मा ''अहिंसा'' ही थी। वे अहिंसा को वीरों का शस्त्र बताते थे, कायरों का नहीं। वे कायरता और अहिंसा में भेद करते थे। गांधीजी लिखते हैं—''मैं मानता हूँ जहाँ कायरता और हिंसा में से किसी एक को चुनना हो तो मैं हिंसा के पक्ष में राय दूँगा।[15]'' उनके अनुसार—''अहिंसा व्यक्ति के आत्मोथान का वह चरण है, जिसमें वह संपूर्ण मानवता व सृष्टि के लिए संवेदित हो उठता है।'' वे कहते थे—''मरने के लिए मेरे पास बहुत से कारण हैं, किंतु मेरे पास किसी को मारने का कोई कारण नहीं है।''[16] अहिंसा को गांधीजी समस्त सामाजिक वैमनस्य की दवा मानते थे। इसकी ताकत पर उन्हें अटूट भरोसा था। तभी तो वे इसे परमाणु बम से भी अपराजित मानते थे—''किसी ऐसे देश अथवा समूह, जिसने अहिंसा को अपनी अंतिम नीति बना लिया है, उसे परमाणु बम भी अपना दास नहीं बना सकता।'' आज के वैश्विक परिवेश में जहाँ तृतीय विश्व युद्ध के मुहाने पर खड़ी, परमाणु अस्त्रों के विध्वंसक क्षमता से भयाक्रांत दुनिया में गांधी के

सिद्धांतों को प्रायोगिक तौर पर परखने की आवश्यकता है, परंतु उसके लिए गांधी के जैसा अटूट विश्वास और अदम्य साहस अपेक्षित है।

गांधीजी राष्ट्रीय और सामाजिक उन्नति का मार्ग व्यक्ति की आत्मिक उन्नति से होकर जाते देखते थे। जनसाधारण को इसके लिए प्रेरित करने हेतु उन्होंने स्वयं को भारतीय ऋषियों की आत्मनिग्रह-परम्परा में साधा। इसके लिए उन्होंने कुछ व्रतों का संकल्प लिया। ये हैं—''शाकाहार, ब्रह्मचर्य और सादगी।'' शाकाहार तो उनका पारिवारिक-परिवेश प्रदत्त गुण था, परंतु उन्होंने इसे अपने जीवन में स्वानुभवों के बाद ही पूर्णतया स्थायी बनाया। जिसे प्रगाढ़ किया साल्ट की पुस्तक 'अन्नाहार की हिमायत' (Plea for Vegetarianism) ने। वे लिखते हैं—''सॉल्ट की किताब पढ़ी। मुझ पर अच्छा असर पड़ा। यह पुस्तक पढ़ने के बाद मैं स्वेच्छा से अर्थात् विचारपूर्वक अन्नाहार (शाकाहार) का कायल हुआ। माता से की हुई प्रतिज्ञा अब मेरे लिए विशेष आनंददायक हो गई....अब स्वयं अन्नाहारी रह कर दूसरों हो भी वैसा बनाने का लोभ उत्पन्न हुआ।''[17] एच. एस. सॉल्ट की यह पुस्तक उन्हें लंदन के एक वेजिटेरियन रेस्तरां में मिली थी। गांधीजी ने शाकाहार के सर्मथन में लेखन भी किया। इनके ये लेख लंदन के वेजिटेरियन सोसाइटी के प्रकाशन 'द वेजिटेरियन' में छपे। गांधीजी ने शाकाहार का सर्मथन आर्थिक दृष्टिकोण से भी किया। उनका मानना था कि शाकाहार शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति तो करता ही है, साथ मांसाहार की तुलना में सस्ता होने के कारण आर्थिक बचत भी करता है। अर्थात् गांधीजी का शाकाहार के प्रति झुकाव परम्परा और व्यावहारिक दोनों दृष्टि से संगत रहा।[18]

गांधीजी के जीवन का दूसरा महत्त्वपूर्ण व्रत-ब्रह्मचर्य रहा। इसके पीछे मुख्यतया दो बातें थीं—पहली, माता को दिया गया वचन—जिसमें विदेश में पढ़ाई के समय परस्त्री से दूरी रखना था।[19], इस वचन ने इस अवधि में गांधी के सामने सदैव परकोटे का काम किया। अपनी आत्मकथा में गांधीजी ने इस बात का उल्लेख किया है।[20] उनके ब्रह्मचर्य-व्रत पालन के पीछे दूसरा और प्रमुख कारण—उनके जीवन में घटी एक घटना और उसका पश्चाताप था। जब वे सोलह वर्ष के थे, तब उनके पिता की तबियत बहुत खराब थी। पिता की बीमारी के समय वे हमेशा उनके पास उपस्थित रहते थे, क्यों कि अपने माता-पिता के प्रति उनका समर्पण असीम था। एक दिन उनके चाचा जी आ गए उनकी उपस्थिति में पिता की देखभाल चाचा जी पर छोड़कर, चाचा के सो जाने के बाद वे रात में पत्नी पास के शयनकक्ष में चले गए। पत्नी-सानिध्य प्राप्त किया ही था कि नौकर से पिता के मृत्यु की सूचना मिली। इस घटना ने उन्हें झकझोर

 ISSN 2278-4632

दिया, उनका अन्तर्मन गहरे अपराध-बोध से भर गया। अपनी इस दुर्बलता के लिए उन्होंने स्वयं को कभी माफ नहीं किया। वे लिखते हैं—''अपनी जिस शर्म का संकेत मैंने पिछले प्रकरण में किया है वह यही है—सेवा के समय भी विषय की इच्छा। इस काले धब्बे को मैं आज तक धो न सका, भूल न सका और सदा यह मानता रहा हूँ कि माता-पिता के प्रति मेरी भक्ति असीम थी, उसके लिए मैं सब कुछ छोड़ सकता था, पर उस सेवा के समय भी मेरा मन विषय को नहीं छोड़ सका था। यह उस सेवा में अक्षम्य त्रुटि थी।[21] उनके इस महाव्रत में उनकी पत्नी कस्तूरबा गांधी का भी सर्मथन था। वे लिखते हैं—''व्रत लेने के समय मैंने धर्मपत्नी से सलाह नहीं की थी, पर लेते समय की। उसकी ओर से कोई विरोध नहीं हुआ।''[22] गांधीजी ब्रह्मचर्य को मन की गांठें कसने वाला महाव्रत मानते थे।[23] उन्होंने ब्रह्मचर्य के संपूर्ण पालन का अर्थ 'ब्रह्मदर्शन' बताया। वे इसे ईश्वर के समीप आने और स्वयं को पहचानने का प्राथमिक आधार मानते थे। उनके लिए ब्रह्मचर्य का तात्पर्य था—''इन्द्रियों के अन्तर्गत विचारों, शब्द एवं कर्म पर नियंत्रण।''[24]

इस आत्मनियंत्रण शक्ति के बल पर वे अपने जीवन में मितव्ययिता और सादगी से रह सके। और न्यूनतम साधनों के साथ जनसेवा को समर्पित हो सके। उनका चरखा और खादी इस बात का उदाहरण हैं। खादी वस्त्र से स्वावलंबन और सादगी का प्रतीक बन गया। कीमती जूतों, वस्त्रों और पगड़ी से सज्जित मोहनदास का जब अपने देश की नंगी, वस्त्र-विहीन जनता से सामना हुआ तो उन्हें ये वस्त्र चुभने लगे, उन्होंने देश के प्रत्येक व्यक्ति को वस्त्र न उपलब्ध होने तक एक ही धोती में आधी पहनने और आधी ओढ़ने का विराट संकल्प लिया।[25] गांधी की मितव्ययिता और सादगी के अनेक किस्से मशहूर हैं—वे ब्रिटेन गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने लिए आधी धोती और चप्पल पहन कर गये थे। बाद में किसी पत्रकार ने उनसे पूछा कि बर्मिंघम पैलेस में इस पोशाक में जाना उचित था क्या? तब गांधीजी ने जवाब दिया—''बादशाह इतने कपड़े पहने हुए थे कि हम दोनों के लिए काफी थे।''[26] उनके सयंम और बचत से जुड़ी एक दूसरी घटना-एकबार एक मारवाड़ी उनसे मिलने आये। गांधीजी को बिना टोपी के देखकर उन्होंने गांधीजी से कहा—'बाहर लोग आपके नाम पर 'गांधी टोपी' पहनते हैं, पर आप तो टोपी पहनते ही नहीं।' गांधीजी ने उनके सिर पर बंधी पगड़ी देखकर कहा—''आपने इतनी बड़ी पगड़ी पहनी है, जिसमें बीस टोपियाँ बन सकती हैं, आपकी पगड़ी में लगे उन्नीस टोपियों के कपड़ों की भरपाई के लिए मुझे नंगे सिर रहना पड़ता है।''[27]

भारतीय सभ्यता और संस्कृति के कलंक छुआछूत को गांधीजी ने अस्वीकार करते हुए 'अस्पृश्यता को ईश्वर के प्रति अपराध' कहा। दलित समाज के इस अमानवीय बहिष्कार से वे इतने व्यथित थे कि उन्होंने घोषणा की—''यदि मेरे सामने यह सिद्ध हो जाए कि अस्पृश्यता हिंदू धर्म का आवश्यक अंग है, तो मैं अपने को ऐसे धर्म के प्रति विद्रोही घोषित कर दूँगा।'' गांधी इस सामाजिक कुष्ठ के उपचारार्थ मनसा-वाचा-कर्मणा जुट गए। अपना सर्वस्व इसके उन्मूलन में दाँव पर लगा दिया। जिसका प्रमाण है—अस्पृश्य दानी बहन और उनके परिवार को साबरमती आश्रम में रखकर, उनको सबके समान भोजन-पान में सहभागी बनाया। एक अछूत कन्या लक्ष्मी को अपनी पुत्री बनाया। उनका मानना था—'अस्पृश्यता कभी भी प्रारम्भिक हिंदू धर्म का अंग नहीं रही।' अस्पृश्यों को सम्मान देने के लिए उनको 'हरिजन' नाम दिया। उनके दुखों और संताप की अनुभूति के लिए अछूत के रूप में पुनर्जन्म की इच्छा व्यक्त की। साथ ही, इस इच्छापूर्ति से पहले अस्पृश्यता की अनुभूति हेतु इसी जन्म में अस्पृश्य की भाँति रहने लगे। अछूतों की पवित्रता प्रदर्शित करने के लिए, उनके कर्म की शुचिता सिद्ध करने के लिए साबरमती आश्रम में मैला उठाने और शौचालय की सफाई जैसे कार्य स्वयं करने लगे। परिणाम यह हुआ कि उनके संगी-साथी सब साथ हो गए। अब अछूत कोई भी नहीं रहा, क्यों कि बिना छूत-छात के विचार से हर कोई अछूत का काम कर रहा था।[29] गांधीजी स्वराज के लिए दलित-मुक्ति आवश्यक मानते थे। इसके समर्थन में उन्होंने 25 मई, 1921 के यंग इंडिया पत्र में लिखा—'' यदि हम भारत के पाँचवें अंग को सतत् गुलामी में रखते हैं, तो स्वराज्य अर्थहीन है।'' उनके प्रयास से, दबाव से, मंदिरों और कुओं को दलितों के लिए खोल दिया गया। देश भर में सुधार और प्रायश्चित की लहर चल पड़ी। उनके उपवास एवं दबाव से यद्यपि अस्पृश्यता नहीं मिटी परंतु इसके बाद सार्वजनिक रूप से अस्पृश्यता का समर्थन क्षीण होता गया।[30]

मानव के सभी शोषण और गुलामी से मुक्ति के लिए वे शिक्षा को एक सशक्त हथियार मानते थे। गांधीजी देश के प्रत्येक नागरिक के लिए उसकी मातृभाषा में शिक्षा उसका मौलिक अधिकार मानते थे। क्यों कि उनका मानना था कि अपनी मातृभाषा में व्यक्ति अधिक रुचि और सहजता से शिक्षा ग्रहण कर सकता है। वे शिक्षा को मानव के सर्वांगीण विकास का सशक्त माध्यम मानते थे। इसीलिए वर्धा योजना में बच्चों के लिए सात वर्षों की शिक्षा को नि:शुल्क

और अनिवार्य किए जाने पर बल दिया था। गांधीजी ज्ञान आधारित शिक्षा के स्थान पर आचरण आधारित शिक्षा के समर्थक थे। उनका मानना था कि शिक्षा-प्रणाली ऐसी होनी चाहिए जो व्यक्ति को अच्छे-बुरे का ज्ञान प्रदान कर उसे नैतिक बनने के लिए प्रेरित करे।

गांधीजी के शिक्षा-दर्शन में स्वावलंबन पर विशेष बल है। उनका स्पष्ट मानना था कि शिक्षा व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए जो शिक्षा के साथ-साथ कौशल को भी बढ़ावा दे, ताकि व्यक्ति लघु और कुटीर उद्योगों के माध्यम से स्वावलंबी बन सके।[31] वर्तमान एन.ई.पी. 2020 में छात्रों के 'स्किल-डेवलपमेंट' की बातें हो रही हैं, जिससे व्यक्ति शिक्षा के साथ-साथ रोजगार का प्रशिक्षण भी पा सके। नई शिक्षा नीति 2020 का यह बिंदु गांधी के शिक्षा-दर्शन से प्ररित है।

इस प्रकार हम देखते हैं गांधीजी के कार्य व दर्शन का केन्द्रीय बिंदु मानव-कल्याण था। वर्तमान में हम यद्यपि उनके कार्यों-सिद्धांतों की आलोचना कर सकते हैं परंतु मानव-कल्याण और मानवता के संरक्षण के संदर्भ में उनके कार्यों-सिद्धांतों से सहमत हुए बिना भी नहीं रह सकते। गांधीजी मानव-कल्याणार्थ अपने व्रतों-उपवासों, संकल्पों-नियमों तथा संयम से ऊर्जा संचित करके पुनः 'पराई पीर' हरने उठ खड़े होते थे। मानव-कल्याण और आपसी सामाजिक सौहार्द्र उनके राष्ट्र-निर्माण-दर्शन की कुंजी थे। इसीलिए राष्ट्र-निर्माण के प्रति उनके समर्पण को स्वीकारते हुए उनके धुर विरोधी नेताजी सुभाषचंद्र बोस ने 6 जुलाई, 1944 को रंगून रेडियो से प्रसारित अपने उद्‌बोधन में उन्हें 'राष्ट्रपिता' की उपाधि से संबोधित किया। उनके मानवतावादी दर्शन-चिंतन को उनको मिली 'महात्मा' की उपाधि प्रमाणित करती है, जो क्रमशः तत्कालीन तीन विद्वानों-वैद्य जीवराम कालीदास, स्वामी श्रद्धानंद एवं गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर द्वारा प्रदान की गई। जो उनके मानवतावादी दृष्टिकोण के लिए अप्रतिम पुरस्कार एवं उनके महत् कार्यों का सच्चा स्तवन है।[32]

आज जब संपूर्ण विश्व रूस-यूक्रेन युद्ध, चीन-ताइवान विवाद के चलते तृतीय विश्व युद्ध की आहट महसूस कर रहा है, परमाणु हमले की आशंका में पल-पल घुट रहा है, सामान्य मनुष्य वैश्विक महाशक्तियों के व्यापारिक एवं क्षेत्र विस्तार की दानवी भूख का शिकार हो रहा है, ऐसे में गांधीजी के दर्शन और विचार अति प्रासंगिक हैं। वैश्विक नेतृत्व को गांधीजी के विचारों को पढ़ने की, जीवन में उतारने की आवश्यकता है, जिससे उनकी वैचारिक अपंगता दूर हो सके, फिर से मानव-कल्याण सर्वोच्च प्राथमिकता पा सके।

संदर्भ :

1. गांधी की कहानी–लुई फिशर, प्रकाशक–सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन कनाट सर्कस, नई दिल्ली–110001, संस्करण–2017, पृष्ठ 19-20
2. वही, पृष्ठ-21
3. वही, पृष्ठ-22
4. वही, पृष्ठ-22
5. वही, पृष्ठ- 21, 22
6. वही, पृष्ठ-22
7. आजादी आधी रात को–डोमिनीक लापिएर, लैरी कालिन्स, हिंद पाकेट बुक्स-ए पेंगुइन रैंडम हाउस कंपनी-डी.एल.एफ. साइबर सिटी गुड़गांव, हरियाणा, भारत पृष्ठ-153
8. सत्य के प्रयोग–महात्मा गांधी, प्रकाशक–सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन कनाट सर्कस, नई दिल्ली–110001, संस्करण-2017, पृष्ठ-23
9. वही, पृष्ठ- 25
10. वही, पृष्ठ- 24
11. वही, पृष्ठ- 26
12. वही, पृष्ठ- 28
13. वही, पृष्ठ- 99
14. महाभारत-वन पर्व
15. https://hi.m.wikipedia.org सांचा : गांधी के सिद्धांत–विकिपीडिया, 20। 03। 2022
16. https://hi.m.wikipedia.org सांचा : गांधी के सिद्धांत–विकिपीडिया, 20। 03। 2022
17. सत्य के प्रयोग–महात्मा गांधी, प्रकाशक–सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन कनाट सर्कस, नई दिल्ली-110001, संस्करण-2017, पृष्ठ-40
18. https://hi.m.wikipedia.org सांचा : गांधी के सिद्धांत–विकिपीडिया, 21। 03। 2022
19. गांधी की कहानी–लुई फिशर, प्रकाशक–सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन कनाट सर्कस, नई दिल्ली–110001, संस्करण-2017, पृष्ठ-20
20. वही, पृष्ठ-55
21. सत्य के प्रयोग-महात्मा गांधी, प्रकाशक–सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन कनाट सर्कस, नई दिल्ली–110001, संस्करण–2017, पृष्ठ-28

22. वही, पृष्ठ-139
23. हिंद स्वराज-महात्मा गांधी, प्रकाशक–सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन कनाट सर्कस, नई दिल्ली–110001, संस्करण–2010, पृष्ठ-76
24. सत्य के प्रयोग–महात्मा गांधी, प्रकाशक–सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन कनाट सर्कस, नई दिल्ली–110001, संस्करण–2017, पृष्ठ-140
25. www-newstrack.com, 15/04/22
26. गांधी की कहानी–लुई फिशर, प्रकाशक-सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन कनाट सर्कस, नई दिल्ली–110001, संस्करण–2017, पृष्ठ-92
27. https://hindi.webdunia.com>gandhi 15/04/22
28. गांधी की कहानी–लुई फिशर, प्रकाशक-सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन कनाट सर्कस, नई दिल्ली–110001, संस्करण–2017, पृष्ठ-53
29. वही, पृष्ठ–52
30. वही, पृष्ठ–113, 114
31. www.drishtiias.com, 17/04/2022
32. https://hi.m.wikipedia.org, 17/04/2022

डॉ. अनिल कुमार मिश्र
अध्यक्ष
हिंदी विभाग
बाबा बरुआदास पी.जी. कॉलेज परुइय्या आश्रम,
अम्बेडकरनगर (उ.प्र.) पिन-224159
मो.न.-8687025322, 7985659562
email-dramishra74@gmail.com

❑❑❑

एकीकृत बाल विकास सेवा (आईसीडीएस) से लाभान्वित बच्चों के पोषण एवं स्वास्थ्य शिक्षा का एक अध्ययन

(समस्तीपुर जिला के जगमोहरा पंचायत के संदर्भ में)

डॉ. प्रगति • सोनी कुमारी सिंह

सार (Abstract) एकीकृत बाल विकास सेवा (आइसीडीएस) योजना महिला एवं बाल विकास मंत्रालय द्वारा कार्यान्वित एक केन्द्र प्रायोजित योजना है, इस योजना की शुरूआत 2 अक्टूबर, 1975 को पूरे भारत में बच्चों, गर्भवती महिलाओं तथा दूध पिलाने वाली माताओं की स्वास्थ्य, पोषण और विकास की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हुई। इस शोध अध्ययन का उद्देश्य एकीकृत बाल विकास सेवा (आइसीडीएस) से लाभान्वित बच्चों की पोषण स्थिति का आंकलन और एकीकृत बाल विकास सेवा (आइसीडीएस) से लाभान्वित बच्चों को स्वास्थ्य शिक्षा के प्रति जागरूक करना। साहित्य का पुनरावलोकन में हरपालानी (2021) प्रसार शिक्षा पष्टम संस्करण में निष्कर्ष के रूप में कही है कि एकीकृत बाल विकास योजना एक अनूठी योजना है जो भारत ने अपने बच्चों को उपहार स्वरूप दी है, इस आधार पर शोध परिकल्पना के अनुसार एकीकृत बाल विकास सेवा (आइसीडीएस) से लाभान्वित बच्चों की पोषण स्थिति अच्छी है और एकीकृत बाल विकास सेवा (आइसीडीएस) से लाभान्वित बच्चों स्वास्थ्य शिक्षा के प्रति जागरूक है। इस शोध अध्ययन में वर्णानात्मक शोध डिजाइन के आधार पर उद्देश्यपूर्ण प्रतिदर्श के द्वारा साक्षात्कार-अनुसूची में 200 उत्तरदाताओं का डाटा संग्रह करके निष्कर्ष के तौर पर यह देखने को मिला कि यह अपनी बेहतरीन और आगे सुधार के लिए विभिन्न महत्वपूर्ण क्षेत्रों में सुधार के प्रयास कर रही है। इस शोध अध्ययन के आधार पर यह अनुशंसाएँ की जा सकती है कि नई शिक्षा नीति-2020 के अनुसार नियंत्रण प्रणाली पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है

मुख्य शब्दः- आइसीडीएस, आँगनवाड़ी, बच्चों।

परिचय (Introduction) : एकीकृत बाल विकास सेवा (आइसीडीएस) दुनिया में माँ और बच्चे के स्वास्थ्य को बढ़ावा देने और उनके विकास के लिए सबसे बड़ा राष्ट्रीय कार्यक्रम है। लाभार्थियों में 6 वर्ष से कम उम्र के बच्चे, गर्भवती और स्तनपान कराने वाली माताएँ और 15-44 वर्ष की आयु की अन्य महिलाएं शामिल हैं। आईसीडीएस योजना द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाओं के पैकेज में पूरक पोषण, टीकाकरण, स्वास्थ्य जाँच, रेफरल सेवाएं, पोषण और स्वास्थ्य शिक्षा शामिल है। आयरन की कमी से होने वाले एनीमिया और विटामिन A की कमी से होने वाले जीरोफथाल्मिया को रोकने के लिए क्रमशः आयरन और फोलिक एसिड की गोलियां और विटामिन A की मेंगाडोज का वितरण भी किया जाता है।

एकीकृत बाल विकास सेवा (आइसीडीएस) योजना महिला एवं बाल विकास मंत्रालय द्वारा कार्यान्वित एक केन्द्र प्रयोजित योजना है। इस योजना की शुरूआत 2 अक्टूबर, 1975 को पूरे भारत में बच्चों , गर्भवती महिलाओं तथा दूध पिलाने वाली माताओं की स्वास्थ्य, पोषण और विकास की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हुई

- **एकीकृत बाल विकास सेवा (आइसीडीएस) योजना के तहत लाभार्थि हैं :**

1. 6 वर्ष की आयु तक के बच्चे।
2. गर्भवती महिलाएँ
3. स्तनपान कराने वाली (लैक्टेटिंग) महिलाएँ

- **एकीकृत बाल विकास सेवा आईसीडीएस योजना के उद्देश्य :**

1. 0-6 वर्ष के बच्चों के पोषण और स्वास्थ्य की स्थिति में सुधार करना।
2. बच्चे के उचित मनोवैज्ञानिक, शारीरिक और सामाजिक विकास की नींव रखना।
3. मृत्युदर, बीमारी, कुपोषण, स्कूल नही जाने वाले बच्चों की संख्या में कमी लाना और स्कूल छोड़ने की घटनाओं को कम करना।
4. बाल विकास को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न विभागों के बीच नीति और कार्यान्वयन का प्रभावी समन्वय स्थापित करना।
5. माता में उचित पोषण और स्वास्थ्य शिक्षा के माध्यम से बच्चों के

सामान्य स्वास्थ्य एवं पोषण संबंधी आवश्यकताओं की देखभाल करने की क्षमता बढ़ाना।

6. किशोर लड़कियों को सुविधा प्रदान करना और उन्हें शिक्षित और सशक्त बनाना ताकि वे आत्मनिर्भर एवं जागरूक नागरिक बन सकें।

- **एकीकृत बाल विकास सेवा (आइसीडीएस) योजना के अंतर्गत दी जाने वाली सेवाएँ :**

1. अनुपूरक पोषण (Supplementary Nutrition)
2. विद्यालय जाने से पूर्व अनौपचारिक शिक्षा (Pre-School Non-Formal Education)
3. पोषण एवं स्वास्थ्य संबंधी शिक्षा
4. प्रतिरक्षण (Immunization)
5. हेल्थ चेक-अप
6. परामर्श सेवाएँ

एकीकृत बाल विकास सेवा (आईसीडीएस) योजना का दूसरा नाम आँगनवाड़ी कार्यक्रम भी है, क्योंकि स्थानीय आँगनवाड़ी आईसीडीएस की आधारशिला है, इसलिए आईसीडीएस सेवाएं आँगनवाड़ी केन्द्रों के विशाल नेटवर्क द्वारा प्रदान की जाती हैं जिन्हें आम तौर पर आँगनवाड़ी कहा जाता है। जैसा कि नाम से स्पष्ट है आँगनवाड़ी वह केन्द्र है जिसमें आंगन हो।

आँगनवाड़ी केन्द्र का संचालन वेतनभोगी आँगनवाड़ी कार्यकर्ता करती है और आँगनवाड़ी सहायिका उसकी सहायता के लिए होती है आँगनवाड़ी केन्द्रों की स्थापना के लिए सामान्य दिशा निर्देश जनसंख्या मानकों पर आधारित हैं। आमतौर पर ग्रामीण-शहरी क्षेत्रों में 400-800 जनसंख्या पर एक आँगनवाड़ी केन्द्र खोला जा सकता हैं जनजातीय पहाड़ी क्षेत्रों में 300-800 की जनसंख्या पर एक आँगनवाड़ी केन्द्र स्थापित किया जा सकता है। दूरदराज और कम आबादी वाले क्षेत्र में लघु आँगनवाड़ी केन्द्रों की स्थापना के लिए भी प्रावधान है। ग्रामीण-शहरी क्षेत्रों में 150-400 की जनसंख्या पर एक लघु आँगनवाड़ी केन्द्र खोला जा सकता है। लघु आँगनवाड़ी केन्द्रों को केवल आँगनवाड़ी कार्यकर्त्ता ही संभालते हैं और वहाँ आँगनवाड़ी सहायक का कोई पद नहीं होता। निपसिड (NIPCCD) इस योजना के संचालन में पूर-पूरा सहयोग कर रहा है।

- **एकीकृत बाल विकास सेवा (आईसीडीएस) के तहत मुख्य 6 योजनाएँ :**

1. आँगनवाड़ी सेवा योजना।
2. प्रधानमंत्री मातृ वंदना योजना।
3. राष्ट्रीय क्रेच (शिशुगृह) योजना।
4. किशोरियों के लिये योजना।
5. बाल संरक्षण योजना।
6. पोषण अभियान।

कुमारी (2002) ने अपने पी. एच. डी. शोध, मातृत्व एवं बाल विकास परियोजना का गृहिणी के जीवन पर प्रभाव : दरभंगा नगर के संदर्भ में अध्ययन में निष्कर्ष निकाली कि ये परियोजनाएँ अत्यंत पिछड़े ग्रामीण जनजाति तथा इलाकों शहरों के झुग्गी-झोपड़ी के चुने हुए प्रखंडों में लागू की जा रही हे। इस परियोजनाओं से बच्चे एवं महिलाओं दोनों का विकास होता है।

शॉ और शॉ (2020) प्रसार शिक्षा नवीन संस्करण में निष्कर्ष के रूप में देखा कि एकीकृत बाल विकास योजना का शिशुओं और बच्चों की मृत्यु-दर और रोग-दर में कमी लाना सबसे महत्वपूर्ण कार्य है।

आईसीडीएस प्रावधानों के लाभार्थी

नीचे दी गई तालिका बताती है कि कैसे एकीकृत बाल विकास सेवाएं बच्चों और वयस्कों के विभिन्न समूहों के लिए फायदेमंद हैं-

सेवाएं	लक्षित लाभार्थी
पूरक पोषाहार कार्यक्रम (एसएनपी)	• गर्भवती और स्तनपान कराने वाली महिलाएं • 6 साल से कम उम्र के बच्चे स्वास्थ्य और पोषण जांच
स्वास्थ्य और पोषण जांच	• गर्भवती और स्तनपान कराने वाली महिलाएं • 6 साल से कम उम्र के बच्चे

सेवाएं	लक्षित लाभार्थी
प्रतिरक्षा	• गर्भवती और स्तनपान कराने वाली महिलाएं। • 6 साल से कम उम्र के बच्चे
प्री-स्कूल में बच्चों के लिए अनौपचारिक शिक्षा	• 6 साल से कम उम्र के बच्चे
स्वास्थ्य और पोषण शिक्षा	• गर्भवती और स्तनपान कराने वाली महिलाएं • 6 साल से कम उम्र के बच्चे
रेफरल सेवाएं	• गर्भवती और स्तनपान कराने वाली महिलाएं • 6 साल से कम उम्र के बच्चे

पाटनी एवं हरपालानी (2020) प्रसार शिक्षा एवं संचार नवीन संस्करण में कही है कि एकीकृत बाल विकास योजना स्कूल से पहले बच्चों और उनकी माताओं को जीवित रहने की दर बढ़ाने और उन्हें स्वस्थ, पौष्टिक भोजन तथा सीखने के अवसर प्रदान कराने वाली योजना है।

सिंह (2021) आहार विज्ञान एवं पोषण सत्रहवाँ संस्करण में एकीकृत बाल विकास योजना के बारे में निष्कर्ष निकाली है कि बालकों के स्वास्थ्य एवं पोषण स्तर में सुधार के लिये माताओं को पोषण एवं स्वास्थ्य शिक्षा प्रदान करना।

हरपालानी (2021) प्रसार शिक्षा षष्ठम संस्करण में निष्कर्ष के रूप में कही है कि एकीकृत बाल विकास योजना एक अनूठी योजना है जो भारत ने अपने बच्चों को उपहारस्वरूप दी है।

इस शोध अध्ययन का उदेश्य एकीकृत बाल विकास सेवा (आईसीडीएस) से लाभान्वित बच्चों के वर्तमान पोषण स्थिति का आंकलन और एकीकृत बाल विकास सेवा (आईसीडीएस) से लाभान्वित बच्चों को स्वास्थ्य शिक्षा के प्रति जागरूक करना। साहित्य का पुनरावलोकन के आधार पर शोध परिकल्पना के अनुसार एकीकृत बाल विकास सेवा से लाभान्वित बच्चों के वर्तमान पोषण स्थिति अच्छी है और एकीकृत बाल विकास सेवा से लाभान्वित बच्चों स्वास्थ्य शिक्षा के प्रति जागरूक है। शोध अध्ययन की प्रकृति

को देखते हुए वर्णात्मक शोध डिजाइन के अनुसार की गई है, क्योंकि शोध अध्ययन के विषय के बारे में तथ्य संकलित कर उनका एक विवरण प्रस्तुत की हूँ। शोध डिजाइन के आधार पर उदेश्यपूर्ण प्रतिदर्श के द्वारा साक्षात्कार अनुसूची में 200 उत्तरदाताओं का डाटा संग्रह करके निष्कर्ष के तौर पर यह देखने को मिला कि आईसीडीएस योजना झोपड़ियों में रहने वाले बच्चों तक पहुँचने में सक्षम है जिन्हें सबसे अधिक पोषण की आवश्यकता है, क्योंकि आईसीडीएस देश का पहला और एकमात्र ऐसा योजना है जिसका लक्ष्य किसी भी बच्यों का समग्र विकास करना है। आईसीडीएस अलग-अलग कार्यक्रमों के माध्यम से पोषण, स्वास्थ्य देखभाल और स्वास्थ्य शिक्षा में सफलता प्राप्त की है, यह माना जा सकता है कि सामुदायिक समर्थन और आत्मनिर्भरता दोनों ही सफलता के प्रमूख कारक हैं। यह अनुशंसा की जा सकती है कि आईसीडीएस योजना के तहत सेवा वितरण में सुधार पर ध्यान देने के लिए वितरण ढांचे में सुधार की आवश्यकता है। आईसीडीएस योजना को सफल बनाने में बाहरी परिसर एवं बड़े पदाधिकारियों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है, इसलिए उनकी सुरक्षा पर भी विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

➢ अध्ययन का उद्देश्य :

1. एकीकृत बाल विकास सेवा (आईसीडीएस) से लाभान्वित बच्चों की पोषण स्थिति का आंकलन
2. एकीकृत बाल विकास सेवा (आईसीडीएस) से लाभान्वित बच्चों को स्वास्थ्य शिक्षा के प्रति जागरूक करना

➢ अध्ययन की परिपकल्पना :

1. एकीकृत बाल विकास सेवा (आइसीडीएस) से लाभान्वित बच्चों की पोषण स्थिति अच्छी है।
2. एकीकृत बाल विकास सेवा (आइसीडीएस) से लाभान्वित बच्चों स्वास्थ्य शिक्षा के प्रति जागरूक है।

➢ **कार्यप्रणाली** (Methodology) शोध अध्ययन कार्यप्रणाली से तात्पर्य यह है कि शोध अध्ययन कार्यप्रणाली के अनुसार ही कार्य का संपादन और निष्कर्षों का निर्धारण की गई है।

- शोध का क्षेत्र (Area of Research) प्रस्तुत शोध का क्षेत्र दरभंगा प्रमंडल के समस्तीपुर जिला रोसड़ा अनुमंडल, बिथान प्रखण्ड के जगमोहरा पंचायत के 10 आँगनवाड़ी केन्द्र पर सम्पन्न किया गया हैं।

- **शोध डिजाइन (Research Design)** शोध डिजाइन मुख्यत: किसी भी शोध कार्य से पूर्व निर्मित एक योजनाबद्ध रूपरेखा है, इसलिए प्रस्तुत शोध शीर्षक की प्रकृति को देखते हुए वर्णानात्मक शोध डिजाइन के अनुसार की गई है, क्योंकि शोध विषय के बारे में तथ्य संकलित कर उनका एक विवरण प्रस्तुत किया गया हैं।
- **प्रतिदर्श (Sample)** प्रस्तुत शोध अध्ययन के प्रकृति को देखते हुए उदेश्यपूर्ण न्यायदर्श के द्वारा जगमोहरा पंचायत के 10 आँगनवाड़ी केन्द्र के 200 नामांकित बच्चों को लिया गया।
- **प्रविधि (Technique)** शोध अध्ययन में अवलोकन और साक्षात्कार प्रविधि को अपनाया गया। जिसके माध्यम से 200 साक्षात्कार-अनुसूची भरवायी जिसमें 200 का उत्तर प्राप्त हुआ।
- **उपकरण (Tools)** शोध अध्ययन में साक्षात्कार अनुसूची उपकरण का प्रयोग किया गया।
- **डाटा के स्त्रोत (Sources of Data)** प्राथमिक तथ्यों के संकलन के लिए साक्षात्कार-अनुसूची का प्रयोग किया गया, जिसमें जगमोहरा पंचायत के 10 आँगनवाड़ी केन्द्र पर जाकर प्राथमिक स्त्रोत द्वारा तथ्यों का संकलन किया गया।

➢ परिणाम और विचार-विमर्श (Results and discussions)

आँगनवाड़ी केन्द्र पर नामांकन के समय बच्चों की बीएमआई तालिका 1

क्र. सं.	बीएमआई	वजन की स्थिति	बच्चों की संख्या	प्रतिशत
1	< 5	कम वजन	140	70
2	5.85	सामान्य वजन	50	25
3	85.95	अधिक वजन	8	4
4	> 95	मोटापा	2	1
		कुल	200	100

नोट:- ओसमो (OSMO) बीएमआई चार्ट के अनुसार

तालिका 1 से स्पष्ट है कि आँगनवाड़ी केन्द्र पर नामांकन के समय बच्चों की बीएमआई पता लगाने के लिए हमने जगमोहरा पंचायत के 10 आँगनवाड़ी केन्द्र पर 200 बच्चों का साक्षात्कार-अनुसूची के द्वारा डाटा का संग्रह किया, जिसमे यह देखने को मिला कि 140 बच्चों का बीएमआई < 5, 50 बच्चों का बीएमआई 5-85, 8 बच्चों का बीएमआई 85-95 और 2 बच्चों का बीएमआई > 95 है।

आँगनवाड़ी केन्द्र पर नामांकन के 6 महीने बाद बच्चों की बीएमआई तालिका 2

क्र. सं.	बीएमआई	वजन की स्थिति	बच्चों की संख्या	प्रतिशत
1	< 5	कम वजन	20	10
2	5-85	सामान्य वजन	160	80
3	85-95	अधिक वजन	10	5
4	> 95	मोटापा	10	5
		कुल	200	100

नोटः- ओसमो (OSMO) बीएमआई चार्ट के अनुसार

तालिका 2 से स्पष्ट है कि आँगनवाड़ी केन्द्र पर नामांकन के 6 महीने बाद बच्चों की बीएमआई पता लगाने के लिए हमने पुनः जगमोहरा पंचायत के 10 आँगनवाड़ी केन्द्र पर 200 बच्चों का साक्षात्कार-अनुसूची के द्वारा डाटा का संग्रह किया, जिसमें यह देखने को मिला कि 20 बच्चों का बीएमआई ढ5ए 160 बच्चों का बीएमआई 5-85, 10 बच्चों का बीएमआई 85-95 और 10 बच्चों का बीएमआई ढ95 है।

अतः आँगनवाड़ी केन्द्र पर नामांकन के समय और नामांकन के 6 महिने बाद बच्चों की बीएमआई तालिका के तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट रूप से देखने को मिल रहा है कि एकीकृत बाल विकास सेवा (आइसीडीएस) से लाभान्वित बच्चों की पोषण स्थिति अच्छी है।

आँगनवाड़ी केन्द्र पर नामांकन के समय बच्चों की स्वास्थ्य शिक्षा के प्रति जागरूकता तालिका 3

क्र. सं.	स्वास्थ्य शिक्षा	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
1.	जागरूक है	80	40
2.	जागरूक नहीं है	120	60
	कुल	200	100

तालिका 3 से स्पष्ट है कि आँगनवाड़ी केन्द्र पर नामांकन के समय बच्चों की स्वास्थ्य शिक्षा के प्रति जागरूकता पता लगाने के लिए हमने जगमोहरा पंचायत के 10 आँगनवाड़ी केन्द्र पर 200 बच्चों का साक्षात्कार-अनुसूची के द्वारा डाटा का संग्रह किया, जिसमें यह देखने को मिला कि 80 बच्चों स्वास्थ्य शिक्षा के प्रति जागरूक है और 20 बच्चों स्वास्थ्य शिक्षा के प्रति जागरूक नहीं है।

आँगनवाड़ी केन्द्र पर नामांकन के 6 महीने बाद बच्चों की स्वास्थ्य शिक्षा के प्रति जागरूकता तालिका 4

क्र. सं.	स्वास्थ्य शिक्षा	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
1.	जागरूक है	180	90
2.	जागरूक नहीं है	20	10
	कुल	200	100

तालिका 4 से स्पष्ट है कि आँगनवाड़ी केन्द्र पर नामांकन के 6 महिने बाद बच्चों की स्वास्थ्य शिक्षा के प्रति जागरूकता पता लगाने के लिए हमने पुन: जगमोहरा पंचायत के 10 आँगनवाड़ी केन्द्र पर 200 बच्चों का साक्षात्कार अनुसूची के द्वारा डाटा का संग्रह किया, जिसमें यह देखने को मिला कि 180 बच्चों स्वास्थ्य शिक्षा के प्रति जागरूक है और 20 बच्चों स्वास्थ्य शिक्षा के प्रति जागरूक नहीं है।

अत: आँगनवाड़ी केन्द्र पर नामांकन के समय और नामांकन के 6 महीने बाद बच्चों की स्वास्थ्य शिक्षा के प्रति जागरूकता तालिका के तुलनात्मक

अध्ययन से स्पष्ट रूप से देखने को मिल रही है कि एकीकृत बाल विकास सेवा (आइसीडीएस) से लाभान्वित बच्चों स्वास्थ्य शिक्षा के प्रति जागरूक है।

➢ निष्कर्ष (Conclusion) :

हमें अपने शोध अध्ययन में निष्कर्ष के तौर पर यह देखने को मिला कि एकीकृत बाल विकास सेवा (आइसीडीएस) से लाभान्वित बच्चों की पोषण स्थिति अच्छी है और एकीकृत बाल विकास सेवा (आइसीडीएस) से लाभान्वित बच्चों स्वास्थ्य शिक्षा के प्रति जागरूक है। साथ ही यह अपनी बेहतरी और आगे सुधार के लिए विभिन्न महत्वपूर्ण क्षेत्रों में सुधार के प्रयास कर रही है। आइसीडीएस योजना झोपड़ियों में रहने वाले बच्चों तक पहुँचने में सक्षम है जिन्हें सबसे अधिक पोषण की आवश्यकता है, क्योंकि आइसीडीएस देश का पहला और एकमात्र ऐसा योजना है जिसका लक्ष्य किसी भी बच्चों का समग्र विकास करना है। आइसीडीएस अलग-अलग कार्यक्रमों के माध्यम से पोषण स्वास्थ्य देखभाल और स्वास्थ्य शिक्षा में सफलता प्राप्त की है।

➢ अनुशंसाएँ (Recommendations)

1. आइसीडीएस योजना के तहत सेवा वितरण में सुधार पर ध्यान देने के लिए वितरण ढ़ाँचे में सुधार की आवश्यकता है।
2. सीखने की निरंतरता को ध्यान में रखते हुए 3-6 वर्ष के बच्चों के लिए एक लचीला और खेल आधारित बुनियादी पाठ्यक्रम तैयार किया जाए।
3. नई शिक्षा नीति (2020) के अनुसार नियंत्रण प्रणाली पर विशेष ध्यान दिया जाए।
4. यह सुनिश्चित करना कि बच्चे प्राथमिक स्कूल में जाना तभी शुरू करें, जब वे विकासात्मक तौर पर इसके लिए तैयार हों।
5. एकीकृत बाल विकास सेवा (आइसीडीएस) योजना के क्षेत्र को व्यापक बनाना चाहिए ताकि यह उन क्षेत्रों में भी लागू हो सकें जो अभी इसकी पहुँच से बाहर है।
6. भौगोलिक दूरियाँ तथा परियोजनाओं की संख्या को ध्यान में रखते हुए कवरेज की दृष्टि से कार्यकर्त्ताओं मानकों में लचीलापन कार्यक्रमों को सुदृढ़ करने में मददगार होगा।
7. आइसीडीएस योजना को सफल बनाने में बाहरी परिसर एवं बड़े पदाधिकारियों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है, इसलिए उनकी सुरक्षा पर भी विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

8. योजनाबद्ध तरीके से पूरक आहार वितरण प्रक्रिया को संपन्न किया जाना चाहिये।

9. आँगनवाड़ी कार्यकर्त्ताओं को राशन वितरण हेतु एक विशेष वाहन आवंटित किया जाना चाहिये।

10. आँगनवाड़ी केन्द्रों एवं कार्यकर्त्ताओं की महत्वपूर्ण भूमिका होती है अतः उनकी सुरक्षा पर भी ध्यान दिये जाने की जरूरत है।

➢ संदर्भ/ग्रंथ-सूची (References/Bibliography)

1. हरपालानी (2021) प्रसार शिक्षा। स्टार पब्लिकेशन्स, आगरा।

2. कुमारी एम. (2002) मातृत्व एवं बाल विकास परियोजना का गृहिणी के जीवन पर प्रभाव : दरभंगा नगर के संदर्भ में अध्ययन ल. ना. मि. वि. वि., दरभंगा (बिहार)।

3. शॉ जी. पी. और शॉ जे. एस. (2020) प्रसार शिक्षा नवीन संस्करण, श्री विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा-2 पृष्ठ संख्या 299-304।

4. पाटनी एम. एवं हरपालानी (2020) प्रसार शिक्षा एवं संचार। नवीन संस्करण, स्टार पब्लिकेशन्स आगरा, पृष्ठ संख्या 300-303।

5. सिंह बी. (2021) आहार विज्ञान एवं पोषण। सत्रहवाँ संस्करण, पंचशील प्रकाशन, जयपुर पृष्ठ संख्या 52-53।

सोनी कुमारी सिंह
रीसर्च स्कॉलर,
गृह विज्ञान विभाग,
ल. ना. मि. वि. विद्यालय,
दरभंगा-846004 (बिहार)

डॉ. प्रगति
असिस्टेंट प्रोफेसर,
गृह विज्ञान विभाग,
ल. ना. मि. वि. विद्यालय,
दरभंगा-846004 (बिहार)

❑❑❑

राजस्थान साहित्य अकादमी

(राजस्थान सरकार का स्वायत्तशासी संस्थान)

मीरां भवन, ज्ञान नगर, सेक्टर-4, हिरणमगरी, उदयपुर-313002

wwww.rsaudr.org 02942461717

मधुमती

राजस्थान साहित्य अकादमी की मुख पत्रिका

वार्षिक सदस्यता शुल्क

पंजीकृत डाक से : ₹540

सदस्यता शुल्क 'सचिव, राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर' के नाम से भेजें या फिर अकादमी वेबसाइट www.rsaudr.org पर जाकर ऑन लाइन जमा करवाएं

सदस्यता संबंधी संपर्क हेतु ईमेल :

madhumatimembership@gmail.com

रचना प्रेषण हेतु ईमेल :

madhumati.rsaudr@gmail.com

देश की धड़कन राजस्थान की शान

राजस्थली

की यही पहचान

- हम जीवन में बीसियों तरह के व्यसन–शौक पालते हैं परन्तु पढ़ने की आदत नहीं डालते। यही कारण है कि हम अपनी सांस्कृतिक पहचान, शख्सियत और वजूद को संरक्षित नहीं रख पा रहे हैं।
- राजस्थानी ही वह भाषा है जिसकी लोरियों तले हमारा बचपन खेला, कूदा और बड़ा हुआ है। अपने पांवों पर खड़ा होने के बाद ममत्व और वात्सल्य को भुलाना तो हमारी परम्परा नहीं रही है। तो फिर हम क्यों भूल रहे हैं हमारी बाल–सुलभ जिज्ञासाओं को अनथक शांत करने वाली इस मायड़ को ?
- आईये ! हम भी बंगाल की तरह हमारे घरेलू बजट में पत्र–पत्रिकाओं को शामिल कर अपने बच्चों को एक सद्–संस्कार दें। परिवार को अपना वाजिब हक दें। अपने गैर–जरूरी खर्चों में कटौती कर पीढ़ियों को संस्कारित करने के इस अनुष्ठान में सहयोगी बनें।
- आज ही **राजस्थली** के सदस्य बनें और बनायें। पत्र–पत्रिकाओं को सहयोग और उनका संरक्षण हमारी नैतिक जिम्मेदारी है।

आओ ! **राजस्थली** को स्वावलम्बी बनाएं और
पुस्तक प्रेम की हमारी सांस्कृतिक परम्परा का परिचय दें।

सदस्यता शुल्क विवरण

पाँच वर्ष के लिए	1000 रुपये
आजीवन	2500 रुपये
संरक्षक सदस्यता	5100 रुपये

राजस्थली लेन-देन सारु :
खाता नांव : RAJASTHALI
बैंक : बैंक ऑफ इंडिया, श्रीडूँगरगढ़
खाता सं. : 746210110001995
IFSC : BKID 0007462

महावीर प्रसाद माली मरुभूमि शोध संस्थान,
श्रीडूँगरगढ़ के लिए मुद्रित एवं प्रकाशित।

मुद्रक : महर्षि प्रिंटर्स, श्रीडूँगरगढ़ (बीकानेर) राज.

जूनी ख्यात बैंक विवरण :
Account Name : Marubhumi Shodh Sansthan
Bank : Punjab National Bank, Sridungargarh
Account No. : 3604000100174114
IFSC : PUNB0360400

Website : http://rbhpsdungargarh.com